विषय-सूची नं० १

(अकारादिक्रम से)

*

विषय-सूची नं० २

(विषयानुक्रम से)

देश और नगर

राजा, राजवंश और राज्याधिकारी

साहित्य और साहित्यकार

★

सन्दर्भ-ग्रन्थ

लेखक	ग्रन्थ
नागरी प्रचारिणी	विश्वकोश १ २-३-४
नगेन्द्रनाथ वसु	विश्वकोश ४-५
डॉ भ श उपाध्याय	विश्व साहित्य की रूपरेखा
राहुल सांकृत्यायन	म एशिया का इतिहास
पं जवाहरलाल नेहरू	विश्व इतिहास की झलक
डॉ सत्यकेतु विद्यालंकार	एशिया का आ इतिहास
	यूरोप का आ इतिहास
श्रीकृष्ण चैतन्य	संस्कृत साहित्य का इतिहास
वाचस्पति गैरोला	"
लोकमान्य तिलक	गीता रहस्य
ज्ञानेश्वर	ज्ञानेश्वरी गीता
ज्ञानमण्डल	हिन्दी साहित्य कोश
परशुराम चतुर्वेदी	भारत की सन्त परम्परा
चिरञ्जीलाल पाराशर	विश्व सभ्यता का विकास
गंगा प्रसाद एम ए	अंग्रेज जाति का इतिहास
ज्योति प्रसाद सूद	राजनैतिक विचारों का इतिहास
आचार्य नरेन्द्रदेव	बौद्ध दर्शन
सुखसम्पत्तिराय भण्डारी	भारत के देशी राज्य
विश्वेश्वरनाथ रेउ	भारत के प्राचीन राजवंश
चिन्तामणि वैद्य	मध्य कालीन भारत
अत्रिदेव	आयुर्वेद का इतिहास
मजरुलदास	उर्दू साहित्य का इतिहास
डॉ सुकुमार	बङ्गला साहित्य का इतिहास
के भास्करन नायर	मलयालम साहित्य का इतिहास
जयचन्द्र विद्यालंकार	भा इतिहास की रूपरेखा
देवीप्रसाद मुन्सिफ	मारवाड़ राज्य का इतिहास
कर्नल टॉड	राजस्थान का इतिहास
गौरीशंकर ही ओझा	राजपूताने का इतिहास
	भारत की प्राचीन लिपि माला
डॉ रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास
रामनरेश त्रिपाठी	कविता कौमुदी ५ भाग
गुलाब राय एम ए	विज्ञान विनोद
अम्बिका प्रसाद वाजपेयी	समाचार पत्रों का इतिहास
शंकरराव जोशी	रोम साम्राज्य
हरिनाथ पाण्डेय	पश्चिमी यूरोप
प्लूटार्क	ग्रीस रोम के महापुरुष
प्राणनाथ विद्यालंकार	इंग्लैण्ड का इतिहास
एस मुकर्जी	यूरोप का इतिहास
पी वी० बापट	बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष
चन्द्रराज भण्डारी	भगवान महावीर
	भारत के हिन्दू सम्राट
डॉ ज्योति प्रसाद जैन	भारतीय इतिहास
डा रघुबीर सिंह	मालवा में युगान्तर
बाबूराम प्रेमी	जैन साहित्य और इतिहास
अलेक्जेण्डर फारबस	रासमाला
माधवाचार्य	सर्व दर्शन संग्रह
सत्यकाम विद्यालंकार	हिन्दी गीताञ्जलि
	गुजराती
मोहनलाल दुलीचन्द्	जैन साहित्यनो इतिहास
रतिलाल नायक	विज्ञान कथा
कृष्णलाल झवेरी	गुजराती साहित्य
	अंग्रेजी
John macy	The Story of the World Literature
H G Wells	Out line of History
K M Pannikar	A Servey of Indian History
Roy Chaudhary	Political History of Ancient India
Bhandarkar	Early History of Daccan.
E G Browne	Literary History of Parsia
H. H Howarth	History of Mangol
L A Mills	The New world of South East Asia
Chaldea	The Story of the Nations
Mawrice W Ph.D	A.Story of Indian Literature
Hays C. G H	A History of Modern Europe
Keith	A History of Sanskrit Literature

साप्ताहिक हिन्दुस्तान धर्मयुग मासिक कादम्बिनी हिन्दी नवनीत इत्यादि के करीब १०० अङ्क।

★

विश्व-इतिहास-कोष

Encyclopedia of World History

[पाँचवाँ खण्ड]

ज्ञान-मन्दिर—प्रकाशन, भानपुरा

विश्व-इतिहास-कोष

पाँचवाँ खण्ड

खगोल-विज्ञान

आकाश मण्डलीय सूर्य्य, चन्द्र तथा अन्य नक्षत्रो की स्थिति का ज्ञान कराने वाला विज्ञान, जिसकी उत्पत्ति का इतिहास बहुत प्राचीन है।

आकाश मण्डलीय नक्षत्रो का ज्ञान आदिमकाल से ही मनुष्य के अध्ययन की एक अनिवार्य वस्तु रहा है। सृष्टि मे अवतीर्ण होने के साथ ही मनुष्य जब देखता है कि प्रतिदिन नियमित रूप से सूर्य्य उसको प्रकाश प्रदान करता है और उसके अस्त होते ही सृष्टि मे घोर अन्धकार छा जाता है तथा उस घोर अन्धकार के अन्तर्गत आकाश मण्डल मे हजारो नक्षत्र जगमगाने लग जाते हैं। चन्द्रमा दिन प्रतिदिन घटता और बढ़ता हुआ उसकी रातो को सुन्दर बना देता है। तब स्वभावत उसके मन मे प्रश्न होता है कि यह सब क्या है?

मनुष्य की यही जिज्ञासा आगे जाकर खगोल शास्त्र, गणित शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र के रूप मे विकसित होती है। खगोल शास्त्र, गणित ज्योतिष और ज्योतिष शास्त्र मनुष्य की इसी जिज्ञासा-वृत्ति के क्रमागत विकसित रूप है। जिस प्रकार चिकित्सा विज्ञान मे, शरीर शास्त्र (एनाटोमी) का का विकास शरीरक्रिया विज्ञान मे (फिजियालाजी) और उसका विकास सम्पूर्ण चिकित्सा शास्त्र के रूप मे होता है उसी प्रकार खगोल शास्त्र के साथ गणित ज्योतिष और उसके पश्चात् समस्त ज्योतिष शास्त्र का विकास होता है। इसलिये इन तीनो विषयो का विवेचन ज्योतिष शास्त्र के विवेचन मे करना ही विशेष उपयुक्त रहता है।

लेकिन आज के युग मे मनुष्य ने अपनी वैज्ञानिक शक्ति से खगोल विज्ञान मे जो आश्चर्यजनक उन्नति करली है उसके कारण इस विज्ञान ने एक स्वतन्त्र विज्ञान का रूप धारण कर लिया है और इसीलिए इस पर आज कल स्वतन्त्र रूपसे विवेचन करने की आवश्यकता समझी जाती है।

खगोल-विज्ञान का विकास, मनुष्य की इस जिज्ञासा वृत्ति के कारण सभी देशो मे भिन्न २ रूपो में हुआ, मगर इस शास्त्र को वैज्ञानिक रूप सबसे पहले किस देश मे मिला, इस विषय मे इतिहासकारो के अन्तर्गत बडे मतभेद हैं।

प्रोफेसर व्हिटनी, कोलब्रुक इत्यादि विद्वानो के मत से भारतवर्ष मे खगोल विज्ञान और ज्योतिष का वैज्ञानिक ज्ञान वेबीलोनियन और यूनानी सभ्यता से आया और बरजेस के समान अंग्रेज विद्वानो के मत से भारतवर्ष अपने ज्योतिष ज्ञान के लिये किसी का ऋणी नही है।

ज्योतिषशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रन्थ "सूर्य्य सिद्धान्त" मे खगोलशास्त्र और ज्योतिषशास्त्र की उत्पत्ति का विवेचन करते हुए लिखा है कि—

"सत्युग के कुछ शेष रहने पर 'मय' नामक महान् असुर ने सब वेदागो मे श्रेष्ठ सारे ज्योतिषपिण्डो की गतियो का कारण बताने वाले, परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञानको जाननेकी इच्छासे कठिन तप करके सूर्य्य भगवान् की आराधना की। उसकी तपस्या से सन्तुष्ट होकर सूर्य्य भगवान् ने अपने एक अनुचर के द्वारा सबसे पहले उसको आकाश मण्डलीय ग्रहो का रहस्य बतलाया।"

इस उद्धरण से ऐसा प्रतीत होता है कि खगोल-शास्त्र और सूर्य्य सिद्धान्त का सबसे पहला ज्ञान बेबिलोनियन और असीरियन या आसुरी सस्कृति के लोगो को प्राप्त हुआ और वही से यह ज्ञान यूनान और भारतवर्ष मे साथ २ आया।

डा० गोरखप्रसाद अपने भारतीय ज्योतिष के इतिहास मे लिखते हैं कि "प्राचीन समय मे बाबुल लोगो का खगोलशास्त्र और ज्योतिष का ज्ञान बहुत बढा चढ़ा था। ये लोग टाइग्रिस और यूफ़ेटीज नदी के मध्य की तथा समीपवर्ती भूमि पर रहते थे। इन लोगो ने ग्रहणो की भविष्यवाणी करने के लिए

सरोस" नामक युग का आविष्कार किया था। यह युग २२३ चान्द्रमास या १८ वर्ष ११ दिन का होता था। ऐसे एक युग के ग्रहण आगामी युग में उसी क्रम में और प्राय ठीक उतने ही समयों पर होते हैं। इस युग का आविष्कार कब हुआ यह ठीक नहीं कहा जा सकता। परन्तु वहाँ के एक राजा के समय के लेखों से स्पष्ट होता है कि ईसा से १८ वर्ष पूर्व वहाँ पर तारा मण्डलों के नाम पड़ गये थे। यद्यपि उनमें थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहा।"

इन उदाहरणों से ऐसा अनुमान हो सकता है कि खगोल विज्ञान का पहला ज्ञान बेबिलोनियन लोगों को हुआ। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष में भी खगोल विज्ञान और ज्योतिष का ज्ञान वैदिक काल से ही था।

डॉ. बरजेस सूर्य्य सिद्धान्त की भूमिका में लिखते हैं कि—

(१) चंद्रमा की गति जानने के लिये सूर्य्य मार्ग का सत्ताइस नक्षत्रों में बाँटना हिन्दू ज्योतिष पद्धति में बहुत प्राचीन काल से है। सूर्य्यमार्ग के इसी प्रकार विभाग अरब और चीनी ज्योतिष में भी कुछ हेर फेर के साथ हैं मगर यह विभाजन विशुद्ध हिन्दू मूल से उत्पन्न हुआ है।

(२) सूर्य्य की गति को जानने के लिये सूर्य्य मार्ग को बारह राशियों के बारह भागों में विभाजित करना भी भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आ रहा है और सम्भव है कि जब इस विभाजन का शेष भाग भी दूसरे देश नहीं जानते थे उससे सदियों पहले इसको भारत के हिन्दू जानते थे।

भारत में खगोलविज्ञान का विकास

अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष के लोगों को आकाश मण्डलीय नक्षत्रों का ज्ञान हो चुका था यह बात वेदों से और ब्राह्मण ग्रन्थों से हमें स्पष्ट मालूम होजाती है। तैत्तिरीय संहिता में सत्ताइस नक्षत्रों के नाम उनके देवताओं के नामों के साथ बड़े सुन्दर ढंग से बतलाये गये हैं।

वेदांग-ज्योतिष

मगर इस संबंध का व्यवस्थित ज्ञान हमें 'वेदांग ज्योतिष' नामक एक अत्यन्त प्राचीन वैदिक छोटी सी पुस्तक में मिलता है, जिसमें केवल ४४ श्लोक हैं। इस छोटे से ग्रंथ का रचनाकाल कुछ विद्वानों के अनुसार ईसा से बारह सौ वर्ष पूर्व समझा जाता है। इस ग्रंथ में पंचांग बनाने की विधि ग्रह नक्षत्रों की गति का ज्ञान इत्यादि सभी बातों का क्रम रूप में वर्णन है। जिससे यह निर्विवाद माना जा सकता है कि उस समय भारतवर्ष के लोगों का खगोल सम्बन्धि ज्ञान काफी विकसित हो चुका था।

सूर्य्य सिद्धान्त

सूर्य्य सिद्धान्त भारतीय खगोलशास्त्र का एक अत्यन्त प्राचीन और मान्यग्रन्थ है। इसमें खगोल-विज्ञान का विश्लेषण करते हुए बतलाया गया है कि—

'वायु जिसा भेदसे सात प्रकार का होता है। इनमें से "आवह" वायु पृथ्वी से ऊपर की ओर ४८ कोस तक व्याप्त होकर भूमण्डल का कार्य्य चलाता है। इस वायुकी गति का नियम नहीं है यह चारों दिशाओं में आड़े टेढ़े चक्कर लगाता रहता है। इस "आवह" वायु से ऊपर "प्रवह" वायु बहता है। उसका बहाव हमेशा पश्चिम दिशा की ओर होता है। उसकी चाल घटती बढ़ती नहीं सदैव समान रहती है। आकाश मण्डल के सब नक्षत्र तारे इसी वायु में स्थित हैं।

'हम जिन तारों और नक्षत्रों को देखते हैं उनको दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। उनमें एक श्रेणी का नाम ग्रह (Planet) और दूसरी श्रेणी का नाम नक्षत्र (Fixed star) है। इनके ऊपर राशिचक्र लगा है। उस राशि चक्र को बारह समान भागों में बाँट कर उनके बारह नामकरण किये गये हैं यह राशिचक्र (१) मेष (Aries) (२) वृष (Taurus) (३) मिथुन (Gemini) (४) कर्क (Cancer) (५) सिंह (Leo) (६) कन्या (Virgo) (७) तुला (Libra) (८) वृश्चिक (Scorpio) (९) धन (Sagittarius) (१०) मकर (Capricornus) (११) कुम्भ (Aquarius) और (१२) मीन (Pisces) इन बारह भागों में विभक्त है।

इस राशिचक्र को फिर २७ भागों में बाँट कर उसके एक एक भाग को नक्षत्र संज्ञा दी गई। इन सब तारों के समूह को नक्षत्र मण्डल (Constellations) कहते हैं। ग्रहों और नक्षत्रों की एक-एक कक्षा है। नक्षत्र कक्षा सबसे ऊपर पड़ती है। उस नक्षत्र कक्षा के नीचे क्रम से शनि

बृहस्पति, मङ्गल, सूर्य, बुध, शुक्र और चन्द्र अनवरत अपनी-अपनी कक्षा मे रहकर पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं।"

पच सिद्धान्तिका के अनुसार पृथ्वी, ग्रह और नक्षत्र, अपनी-अपनी आकर्षणशक्ति से ही शून्य मार्ग मे अवस्थित रहते हैं (गोलाध्याय ३।२)

राशि चक्र की भाँति ग्रहो की कक्षा भी बारह भागो मे विभक्त है। राशि चक्र बराबर पश्चिम की ओर घूमा करता है और उसके आघात से ग्रह तथा नक्षत्र मण्डल भी पश्चिम की ओर गतिशील रहता है। ग्रहो की अपेक्षा नक्षत्र मण्डल की गति अधिक तेज होती है।

इस सम्पूर्ण राशिचक्र को ३६० भागो में बाँटा है। प्रत्येक भाग एक अश कहलाता है, प्रत्येक अश (Digree) फिर साठ भागो मे विभक्त है। इसमे के प्रत्येक भाग को 'कला' कहते हैं। कला का साठवाँ भाग 'विकला' कहलाता है। अतएव राशिचक्र के तीस अशो से एक राशि बनती है और राशिचक्र के प्रत्येक १३ अश और बीस कला का एक नक्षत्र बनता है। अश्विनी से नक्षत्रो की गणना प्रारम्भ होती है।"

इसी प्रकार आगे चलकर सूर्य्य सिद्धान्त में खगोल विज्ञान सम्बन्धी अनेक सूक्ष्म बातो और गणना का विवेचन किया गया है। सूर्य्य सिद्धान्त की गणना के आधार पर अब भी कई पचाग बनाये जाते हैं। परन्तु दैनिक गतियो मे त्रुटि रहने के कारण अब ग्रहो की स्थिति मे नौ दस अश का अन्तर पड जाता है। प्राचीन सूर्य्यसिद्धान्त के स्थिराक और भी अशुद्ध थे, इसलिये उस ग्रन्थ के बनने के कुछ ही सौ वर्ष पश्चात् उसके आधार पर गणना और वेध मे अन्तर पड़ने लगा। इसलिए आगे के ग्रन्थकारों ने सूर्य्यादि आकाशीय पिण्डो के लिए बीज सस्कार बनाया। अर्थात् उनकी गति मे परिवर्तन किया।

भारतीय खगोल शास्त्र के इतिहास मे किसी जैनाचार्य के द्वारा लिखी हुई 'सूर्य-प्रज्ञप्ति' नामक एक पुस्तक भी प्राप्त होती है जिसका रचना-काल ईसा से लगभग ३ सौ वर्ष पूर्व माना जाता है। इस ग्रन्थ मे जैन धर्म के मतानुसार विश्व की रचना का उल्लेख किया गया है।

मगर खगोल और ज्योतिषशास्त्र के ऊपर विशेष वैज्ञानिक विवेचना ईसा की ५वी शताब्दी से १२वी शताब्दी तक हुई। इस काल मे आर्य भट्ट (ई० सन् ४७६) वराहमिहिर (मृत्यु सन् ५८७ ई०) ब्रह्मगुप्त (५९८ ई०) लाटदेव (ईसा की ६ठी शताब्दी) भास्कर प्रथम, श्रीधर (ई० सन् ६५० के लगभग) महावीराचार्य (ई० सन् ८५०) आर्यभट्ट द्वितीय (ई० सन् ९५०) इत्यादि अनेकानेक लेखक हुए, जिन्होंने खगोल-शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र और गणित-शास्त्र के ऊपर अपनी अमूल्य देनो से विश्व साहित्य को प्रभावित किया। इनका विस्तृत वर्णन गणितशास्त्र और ज्योतिष-शास्त्र के साथ दिया जायगा।

वराह मिहिर के पहले से ही सम्भवत आकाश-मण्डल मे स्थित नक्षत्रो की जानकारी के लिए यन्त्रो का निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। उन्होने अपने ग्रथ के 'छन्दक यन्त्राणि' नामक १४ वे अध्याय मे कई प्रकार के साधारण यन्त्रो और उनके उपयोग की विधियो का वर्णन किया है।

उसके पश्चात् भास्कराचार्य ने भी अपने ग्रथ 'सिद्धात-शिरोमणि' के यन्त्राध्याय मे कई प्रकार के यन्त्रो का उल्लेख किया है। इन सब बातो से मालूम होता है कि यन्त्रो के द्वारा वेध लेने की प्रक्रिया का इस समय प्रारम्भ हो चुका था।

सवाई जयसिह और वेधशालाएँ

मगर भारतवर्षमे वैज्ञानिक रूप से यात्रिक वेध-शालाओ के निर्माण का श्रेय जयपुर के महाराज सवाई जयसिह द्वितीय को है, जिनका जन्म सन् १६८६ ई० मे हुआ था।

महाराजा जयसिह को बाल्यकाल से ही खगोल-विद्या और ज्योतिष-शास्त्र से बडा प्रेम था। जब उन्होने देखा कि आकाश-मण्डल के नक्षत्रो की वेधके द्वारा प्राप्त और गणना से प्राप्त स्थितियो मे अन्तर पाया जाता है, तब उन्होंने आकाशीय पिण्डो का वेध करने के लिए नवीन यन्त्र और गणना करने के लिए नवीन सारिणियाँ बनाने का विचार किया। इसके लिए उन्होने स्वय भी देश-विदेश के नवीन और प्राचीन ग्रन्थो का अध्ययन किया और कुछ विद्वानो को विदेशो मे भी इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजा।

उसके बाद कुछ यूरोपीयो और कुछ देशी ज्योतिषियो को बुलाकर उन्होने दिल्ली मे एक आधुनिक वेध-शाला का निर्माण करवाया, और ७ वर्षों तक वे उस वेध शाला मे नवीन तारो की सूची बनाने के लिए वेध करते रहे।

इसके पश्चात् उन्होने जयपुर, उज्जैन, बनारस और मथुरा मे भी वेध शालाओ का निर्माण करवाया। दिल्ली की

वेध-शाला के लिए उन्होंने उमूलबेग द्वारा निर्मित समरकन्द की वेध-शाला के अनुकरण पर कई पीतल के यंत्र बनवाये।

मगर जब उन्होंने देखा कि पीतल के ये यंत्र छोटे होने के कारण सूक्ष्म वेध को नहीं ले सकते और धुरी के घिस जाने के पश्चात् वे सरकने लग जाते हैं और उस सरक के कारण उनका वेध भी असत्य हो जाता है। सम्भव है, टालमी और हिपार्कस् नामक विद्वानों के वेधों में अशुद्धियाँ इन्हीं कारणों से रह गयी होंगी। तब उन्होंने इस कमी को दूर करने के लिए अपने दिमाग से जयप्रकाश यंत्र सम्राट यंत्र राम यंत्र आदि यंत्रों का निर्माण करवाया। इन यंत्रों को उन्होंने पत्थर और चूने से बनवाया। जो पूर्णतया स्थिर रहते हैं। और उन्हें याम्योत्तर तथा स्थान के अनुसार साधा गया और नापने तथा स्थायी करने में पूरी सावधानी रखी गयी। इस प्रकार उन्होंने शुद्ध वेध-शाला बनाने में सफलता प्राप्त की।

इसके पश्चात् इन वेधों की सचाई की परीक्षा के लिए उसी प्रकार के यंत्र जयपुर, मथुरा बनारस और उज्जैन में बनवाये और जाँच करने पर इन सभी वेध शालाओं में किए हुए वेधों में एकता पायी गयी।

इसी समय योरोप के कई स्थानों में भी वेध शालाओं की स्थापना हो चुकी थी। महाराजा जयसिंह ने कई विद्वानों को भेज कर उन वेध शालाओं की रिपोर्ट मँगवाई। उसकी जाँच करके यथोचित तुलना की गई तो पता चला कि चन्द्रमाकी स्थिति में आधे अंश का अन्तर पड़ता है। इसलिए वे इस परिणाम पर पहुँचे कि योरोप की वेध-शालाओं के यंत्र छोटे होने के कारण पूर्ण विश्वसनीय नहीं होते।

इस प्रकार खगोल विद्या के इतिहास में महाराजा जयसिंह ने जो महत्वपूर्ण काम किया वह इस विद्या के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा।

महाराजा जयसिंह के पश्चात् बापूदेव शास्त्री चिन्तामणि रघुनाथ आचार्य चन्द्रशेखरसिंह सामन्त वेंकटेश बापूजी केतकर लोकमान्य तिलक सुधाकर द्विवेदी शंकर दिक्षित दीनानाथ शास्त्री चुलैट इत्यादि विद्वानों ने भी खगोल विज्ञान के क्षेत्र को समृद्ध किया।

प्राचीन यूनान में खगोल विद्या

हम ऊपर इस बात की सम्भावना प्रकट कर चुके हैं कि संभवतः खगोल-विद्या का सबसे प्रथम विकास बेबीलोनिया के अन्तर्गत ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व हो चुका था और वहीं से संभवतः यह विज्ञान भारतवर्ष में और यूनान में पहुँचा। बेबीलोनियों से खगोल-विद्या का यह विज्ञान ईसा से करीब ७ सौ वर्ष पूर्व यूनान में पहुँचा और थेल्स नामक एक यूनानी विद्वान् ने एक बेबीलोनियन विद्वान् से इस विद्या का ज्ञान प्राप्त करके यूनान में उसका प्रचार किया।

थेल्स के पश्चात् पाइथागोरस का नाम आता है। जो ईस्वी पूर्व ५६ में हुआ था। इसने कई देशों में घूम कर खगोल-विद्या गणित और ज्योतिष अध्ययन किया। इसने तथा इसके शिष्यों ने इस मान्यता का समर्थन किया कि पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती रहती है।

पाइथा गोरस के पश्चात् अरिस्टार्कस् (२८४ ई० पूर्व) अपोलोनियस (ई० पूर्व २५०) अरिस्टीलस्, टिमोरिस इत्यादि कई विद्वान् हुए जिन्होंने सब ग्रहों की सूचियाँ तैयार की।

मगर प्राचीन यूनान में हिपार्कस् का नाम सब से ज्यादा प्रसिद्ध है। इसका समय ईस्वी सन् से १६१ वर्ष पूर्व का माना जाता है। यह सिकन्दरिया की वेध-शाला में बराबर वेध किया करता था।

हिपार्कस्

हिपार्कस् ने सायण और नक्षत्र-वर्षों की लंबाई चान्द्र मास की लंबाई, पाँचों ग्रहों के संयुति-काल सूर्य-मार्ग का तिरछापन (भारतीय भाषा में परमक्रान्ति) चन्द्रमार्ग का तिरछापन इत्यादि सभी बातों पर अपने अनुसन्धान किये थे। हिपार्कस् एक गोले को खगोल का रूप देकर उसपर नक्षत्रों के चिन्ह बनाकर उनका अध्ययन करता था। तारा-मण्डलों के बयान में जो नवीन बातें हिपार्कस् ने बतायी वे सब खगोल-शास्त्र पर आधारित मालूम होती हैं।

आधुनिक वेध-शालाओं के प्रधान यंत्र याम्योत्तर-यंत्र पर प्रयोग भी संभवतः हिपार्कस् ने किया। इस यंत्र से इसने जो बहुत से वेध किये वे इतने शुद्ध थे कि आश्चर्य होता है कि कैसे वह इन यंत्रों से इतनी शुद्धता प्राप्त कर

सका। उसने सूर्य और चन्द्रमा की गतियो का सच्चा सिद्धान्त बना लिया था।

हिपार्कस् ने खगोल-मडल के तारो की एक सूची भी बनायी, जिसमे लगभग ८५० तारो का उल्लेख था और इसमे प्रत्येक तारे की स्थिति लागीट्यूड (भोगाश) और लेटीट्यूड (शर) देकर बतायी गयी थी।

टालमी

हिपार्कस् के अधूरे कार्यको मिस्रदेश के निवासी क्लाडिग्रस टालमी ने पूरा किया। इसका जन्म ईसा की पहली शताब्दी मे हुआ था। यह खगोल-विद्या, गणित-शास्त्र और ज्योतिष-विज्ञान का महान् पडित था। आकाशी नक्षत्रो की गति के सम्बन्ध मे इसने जिस सिद्धान्त का निरूपण किया, वह 'टालमी-सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और यह सिद्धान्त लगभग १४ सौ वर्षों तक सारे योरोप के मस्तिष्क पर छाया रहा। इसका सबसे महान् और विशाल ग्रन्थ, जिसे अरबी मे 'अलमजस्ती' और अग्रेजी मे 'अलमेजेस्ट' कहते हैं खगोल और ज्योतिष शास्त्र का एक महान् ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ १३ बडे-बडे खण्डो मे विभक्त है। पहले खण्ड मे पृथ्वी और उसके रूप का वर्णन, आकाशीय पिंडो का वृत्तो मे चलना, सूर्य मार्ग का तिरछापन इत्यादि बातो का विवेचन किया गया है। दूसरे खण्ड मे खगोल सम्बन्धी कई प्रश्नो के उत्तर दिये गये हैं। तीसरे खड मे वर्ष की लम्बाई और सूर्य-कक्षा की आकृति और गणना विधि का विवेचन है। चौथे खण्ड मे चान्द्र मास की लबाई और चद्रमा की गति का विवेचन किया गया है। पाचवे खण्ड मे ज्योतिष-यत्रो की रचना, सूर्य तथा चद्रमा के व्यास, छाया का नाप, सूर्य की दूरी इत्यादि पर विचार किया गया है। छठे खड मे चन्द्रमा तथा सूर्य की युतियो तथा ग्रहो पर विचार किया गया है। सातवें खण्ड मे उत्तर दिशा के तारो की सूची और आठवें खण्ड मे दक्षिणी ताराओ की सूची दी गयी है। दोनो सूची में करीब १०२२ तारो की सूची है। खड ९ मे आकाश गगा का वर्णन है। और खड ९ से १३ तक ग्रहो सम्बन्धी बातें बतलायी गयी हैं।

इस प्रकार अल्मेजेस्ट नामक यह ग्रन्थ प्राचीन यूनान की ज्योतिष और खगोल-विद्या सम्बन्धी ज्ञान का प्रधान स्तभ माना जाता है।

अरब में खगोल-विद्या

खगोल-विद्या का ज्ञान, अरब मे ईसा की ८ वी शताब्दी मे, अब्बासी खलीफा अल मसूर के समय मे भारतवर्ष से गया था। एक भारतीय ज्योतिषी जो अपने विषय का पारगत विद्वान् था, खलीफा के दरबार मे गया। वह अपने साथ ग्रहो की सारणियाँ भी ले गया था तथा चन्द्र और सूर्य ग्रहणो के वेध और राशियो के निर्देशाक भी उसके साथ थे।

इसी ज्योतिषी के ग्रन्थ का अनुवाद खलीफा अल मसूर ने अरबी मे करवाया। इसी अरबी ग्रन्थ के द्वारा भारतीय ज्योतिष का ज्ञान योरोप मे प्रचारित हुआ।

यूनानी ग्रन्थो से भी अरब लोगो को खगोल विज्ञान का काफी ज्ञान प्राप्त हुआ।

१५ वी शताब्दी मे महान् विजेता तैमूर के पोते और सम्राट् शाहरुख के पुत्र उलूग-बेग ने खगोल-विद्या की जानकारी के लिए बहुत प्रयत्न किया। तारो और ग्रहो का ठीक ठीक वेध लेने के लिए उसने सन् १४२९ मे समरकन्द के पास कोहक नदी के ऊपर एक बहुत बडी वेध-शाला का निर्माण करवाया। इसके दरबार मे वेधशाला के विद्वान् काजी गयासुद्दीन, मोहिउद्दीन काशानी और यहूदी सलाउद्दीन रहते थे।

सन् १४३७ मे यही पर ज्योतिष की एक महत्वपूर्ण सारिणी तैयार की गयी। यह सारिणी पूर्वी देशो मे बनी हुई सभी ग्रह-सारिणियो से अधिक पूर्ण और शुद्ध थी। इसका पहला सस्करण १७ वी शताब्दी के मध्य काल मे, प्रोफेसर ग्रीव्स ने आक्सफोर्ड मे छपवाया था। डा० टॉमस हाइड ने सन् १६६५ ई० में इसका लैटिन अनुवाद प्रकाशित करवाया।

यूरोपीय खगोल-विद्या

यूरोप के अन्तर्गत आधुनिक ज्योतिष शास्त्र और खगोल विज्ञान की नीव डालने वाला कोपर निकस (१४७३-१५४३) माना जाता है।

उसके पश्चात् महान् वैज्ञानिक न्यूटन ने (१६४७) अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रिंसिपिआ' मे गुरुत्वाकर्षण के महान् सिद्धान्त और तीन गति-नियमो की घोषणा की। और इसी घोषणा के आधार पर यूरोपीय खगोल यत्र-कला का विकास हुआ।

१७वी शताब्दी के प्रारभ मे जोहान् कैप्लर नामक विद्वान् ने 'कैप्लर सिद्धान्त' नाम से तीन प्रसिद्ध इम्पीरिकल

खगोल मण्डल के, विशेषत चन्द्रमा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अन्तरिक्ष मे उडने वाले जहाजो का निर्माण किया गया। ऐसे अन्तरिक्ष जहाजो पर पहले कुत्तो और बन्दरो को भेजा गया और जब वे सकुशल वापिस आ गये तब वहाँ पर मनुष्य को भेजने की तैयारी होने लगी।

इस स्पर्द्धा मे रूसी वैज्ञानिक अमरीकी वैज्ञानिको से आगे निकल गये। तारीख १२ अप्रैल सन् १९६१ के दिन ससारभर के अखबारो ने प्रधान हेडिंग के साथ रूस के द्वारा अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त करने की खबर छापी।

अन्तरिक्ष का पहला यात्री मेजर 'यूरी गागरिन' था। जिसने सत्ताइस वर्ष की आयु मे सबसे पहले अन्तरिक्ष की यात्रा की। जिस जहाज पर गागरिन ने यात्रा की उसका नाम "वोस्टोक" था। यह साढे चार टन वजन का था। इस जहाज के दो मुख्य भाग थे। एक मे केबिन था जिसमे गागरिन के बैठने की जगह थी। इसमे मनुष्य की जरूरत मे आनेवाली सभी वस्तुएँ थी। इसी मे जहाज को वापस पृथ्वी पर लाने के यत्र भी थे और आक्सीजन की व्यवस्था भी थी। इस यान का बाहरी भाग ऐसी धातुओ के मिश्रण से बनाया गया था कि वापसी के समय दुबारा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र मे घुसते समय चाहे जितनी गर्मी हो उसमे पिघल न सके।

(२) जहाज के दूसरे हिस्से मे सारी मशीनरी लगी हुई थी। इस यान मे बेतार के तार की पूरी व्यवस्था थी जो पृथ्वी से उसे जोडे हुए थी। टेलीविजन का इन्तिजाम भी था। जिसके द्वारा पृथ्वी पर से भी अन्तरिक्ष यात्री की एक-एक दशा का अध्ययन किया जा सकता था। उसकी धडकने, मानसिक और शारीरिक अवस्था को अङ्कित करने के यत्र, जहाज की गति कम या अधिक करने के यत्र, तथा तापमान को उचित और स्थिर रखने के यत्र भी लगे हुए थे।

गागरिन ने इस जहाज पर बैठ कर पृथ्वी से ३०२ किलोमीटर की ऊँचाई तक यात्रा की और १०८ मिनिट तक वे अन्तरिक्ष में रहे।

गागरिन ने लौटकर बताया कि अन्तरिक्ष से पृथ्वी एक नीले रग के गेंद की तरह दिखलाई पडती है और इतनी ऊँचाईसे भी पृथ्वीके मुख्यभागों को पहचाना जा सकता है। अन्तरिक्ष मे गुरुत्वाकर्षण शक्ति नही रहती, इसलिए मनुष्य भार रहित अवस्था मे हो जाता है अपना वजन न होने का बडा अनोखा अनुभव उसे होता हैं।

गागरिन के पश्चात् ६ अगस्त १९६१ को रूसने मेजर 'टिटोव' नामक व्यक्ति को अन्तरिक्ष की उड़ान पर भेजा। टिटोव ने पृथ्वी की १७ परिक्रमाएं की।

अमेरिका पिछड जाने पर भी अपने उद्योग मे पूरी शक्ति से लगाहुआ था। २० फरवरी १९६२ के दिन उसने "जॉन ग्लेन" नामक व्यक्ति को पहले अन्तरिक्ष यात्री की तरह "फ्रेण्डशिप" नामक ४२०० पौण्ड वजन के जहाज पर अन्तरिक्ष की उडान पर भेजा। इस जहाज को "एटलस" नामक राकेट के जरिये अन्तरिक्ष मे पहुँचाया गया। पृथ्वी की तीन परिक्रमाएँ कर लेने के बाद फ्रेंण्डशिप मे वापसी के लिये लगाये गये राकेट चलाये गये। जब वह पृथ्वी से २१००० फुट ऊपर रह गया तब उसमे लगे हुए पैराशूट अपने आप खुल गये और वह जहाज धीरे-धीरे अटलाण्टिक सागर मे उतर गया।

जॉन ग्लेन ने अपनी अन्तरिक्ष यात्रा के समय मे बहुत से उपयोगी फोटो भी लिये।

इसके पश्चात् अमेरिका ने और भी अन्तरिक्ष-यात्रियो को अन्तरिक्ष मे भेजा।

मगर खगोल विज्ञान के क्षेत्र मे सबसे बडी आश्चर्य जनक घटना तब हुई जब ४ फरवरी १९६६ को रूस की समाचार एजन्सी तासने यह सूचना भेजकर ससार को चकित कर दिया कि रूस का अन्तरिक्ष यान "लूना ९" चन्द्र-लोक पर पहुँच गया है और वहाँ का विवरण सोवियत सघके स्टेशनो मे भेजने लगा है।

लूना ९ ससार का पहला अन्तरिक्ष विमान है जो बेखटके चन्द्रलोक मे सही सलामत उतर गया है और उतरने के सात घण्टे पाच मिनिट के पश्चात् उसने चन्द्रलोक के निर्जन धरातल का विश्लेषण प्रारम्भ कर दिया। साढे तीन दिन की लगातार उडान के पश्चात् "लूना-९" चन्द्रलोक के धरातल पर पहुँच गया। तारीख ४ फरवरी १९६६ को इस अन्तरिक्षयान और पृथ्वी के यानसचालन केन्द्र से ३ घण्टे २४ मिनिट तक रेडियो सम्पर्क बना रहा।

खगोल मण्डल के, विशेषत' चन्द्रमा का ज्ञान 'प्राप्त करने के लिए अन्तरिक्ष मे उडने वाले जहाजो का निर्माण किया गया। ऐसे अन्तरिक्ष जहाजो पर पहले कुत्तो और बन्दरो को भेजा गया और जब वे सकुशल वापिस आ गये तब वहाँ पर मनुष्य को भेजने की तैयारी होने लगी।

इस स्पर्द्धा मे रूसी वैज्ञानिक अमरीकी वैज्ञानिको से आगे निकल गये। तारीख १२ अप्रैल सन् १९६१ के दिन ससारभर के अखबारो ने प्रधान हेडिंग के साथ रूस के द्वारा अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त करने की खबर छापी।

अन्तरिक्ष का पहला यात्री मेजर 'यूरी गागरिन' था। जिसने सत्ताइस वर्ष की आयु मे सबसे पहले अन्तरिक्ष की यात्रा की। जिस जहाज पर गागरिन ने यात्रा की उसका नाम "वोस्टोक" था। यह साढे चार टन वजन का था। इस जहाज के दो मुख्य भाग थे। एक मे केबिन था जिसमे गागरिन के बैठने की जगह थी। इसमे मनुष्य की जरूरत मे आनेवाली सभी वस्तुएँ थी। इसी मे जहाज को वापस पृथ्वी पर लाने के यत्र भी थे और आक्सीजन की व्यवस्था भी थी। इस यान का बाहरी भाग ऐसी धातुओ के मिश्रण से बनाया गया था कि वापसी के समय दुवारा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र मे घुसते समय चाहे जितनी गर्मी हो उसमे पिघल न सके।

(२) जहाज के दूसरे हिस्से मे सारी मशीनरी लगी हुई थी। इस यान मे बेतार के तार की पूरी व्यवस्था थी जो पृथ्वी से उसे जोडे हुए थी। टेलीविजन का इन्तिजाम भी था। जिसके द्वारा पृथ्वी पर से भी अन्तरिक्ष यात्री की एक-एक दशा का अध्ययन किया जा सकता था। उसकी धडकनें, मानसिक और शारीरिक अवस्था को अङ्कित करने के यत्र, जहाज की गति कम या अधिक करने के यत्र, तथा तापमान को उचित और स्थिर रखने के यत्र भी लगे हुए थे।

गागरिन ने इस जहाज पर बैठ कर पृथ्वी से ३०२ किलोमीटर की ऊँचाई तक यात्रा की और १०८ मिनिट तक वे अन्तरिक्ष मे रहे।

गागरिन ने लौटकर बताया कि अन्तरिक्ष से पृथ्वी एक नीले रग के गेंद की तरह दिखलाई पड़ती है और इतनी ऊँचाईसे भी पृथ्वीके मुख्यभागों को पहचाना जा सकता है। अन्तरिक्ष मे गुरुत्वाकर्षण शक्ति नही रहती, इसलिए मनुष्य भार रहित अवस्था में हो जाता है अपना वजन न होने का बडा अनोखा अनुभव उसे होता हैं।

गागरिन के पश्चात् ६ अगस्त १९६१ को रूसने मेजर 'टिटोव' नामक व्यक्ति को अन्तरिक्ष की उडान पर भेजा। टिटोव ने पृथ्वी की १७ परिक्रमाएं की।

अमेरिका पिछड जाने पर भी अपने उद्योग मे पूरी शक्ति से लगाहुआ था। २० फरवरी १९६२ के दिन उसने "जॉन ग्लेन" नामक व्यक्ति को पहले अन्तरिक्ष यात्री की तरह "फ्रेण्डशिप" नामक ४२०० पौण्ड वजन के जहाज पर अन्तरिक्ष की उडान पर भेजा। इस जहाज को "एटलस" नामक राकेट के जरिये अन्तरिक्ष मे पहुँचाया गया। पृथ्वी की तीन परिक्रमाएँ कर लेने के बाद फ्रेंण्डशिप मे वापसी के लिये लगाये गये राकेट चलाये गये। जब वह पृथ्वी से २१००० फुट ऊपर रह गया तब उसमे लगे हुए पैराशूट अपने आप खुल गये और वह जहाज धीरे-धीरे अटलाण्टिक सागर मे उतर गया।

जॉन ग्लेन ने अपनी अन्तरिक्ष यात्रा के समय मे बहुत से उपयोगी फोटो भी लिये।

इसके पश्चात् अमेरिका ने और भी अन्तरिक्ष-यात्रियों को अन्तरिक्ष मे भेजा।

मगर खगोल विज्ञान के क्षेत्र में सबसे बडी आश्चर्य जनक घटना तब हुई जब ४ फरवरी १९६६ को रूस की समाचार एजन्सी तासने यह सूचना भेजकर ससार को चकित कर दिया कि रूस का अन्तरिक्ष यान "लूना-९" चन्द्र-लोक पर पहुँच गया है और वहाँ का विवरण सोविअट सघके स्टेशनो मे भेजने लगा है।

लूना ९ ससार का पहला अन्तरिक्ष विमान है जो बेखटके चन्द्रलोक मे सही सलामत उतर गया है और उतरने के सात घण्टे पाच मिनिट के पश्चात् उसने चन्द्रलोक के निर्जन धरातल का विश्लेषण प्रारम्भ कर दिया। साढे तीन दिन की लगातार उडान के पश्चात् "लूना-९" चन्द्रलोक के धरातल पर पहुँच गया। तारीख ४ फरवरी १९६६ को इस अन्तरिक्षयान और पृथ्वी के यानसचालन केन्द्र से ३ घण्टे २४ मिनिट तक रेडियो सम्पर्क बना रहा।

चलता है कि चन्देल-शासको की धार्मिक भावना बहुत उदार थी और उनके शासन मे सभी प्रकार के धर्मों को फूलने-फलने का अवसर था और वे सनातन तथा जैन-धर्म का समान रूप से आदर करते थे।

खजुराहोके ये सभी मन्दिर 'खजुर-सागर' नामक झील के किनारे पर ८ वर्ग मील के घेरे मे बने हुए हैं। मन्दिरोकी अनुपम भव्यता दूरसे ही दर्शको का चित्त आकर्षित कर लेती है। कला की विपुल सम्पत्ति यहाँ पर पत्थरो की खुदाई के रूप मे प्रकट हुई है। १० वी ११ वी सदी के मूर्ति-कला-विशेषज्ञो ने अपनी छेनी से मानो पत्थरो मे प्राण-प्रतिष्ठा कर दी है।

मन्दिरो मे कही पर भगवान् विष्णु प्रतिष्ठित हैं, कही महादेव विराजमान हैं, कही जगदम्बा के दर्शन होते हैं तो कही जैन-धर्म के अधिष्ठाता 'पारसनाथ' और 'ऋषभदेव' की पूजा होती है। सब देवता अलग-अलग हैं, पर इस अनेकता मे जो एकता पायी जाती है, वह इन मन्दिरो की कलात्मक एकता है। दो शताब्दियो के बीच निर्मित हुए इन करीब सौ मन्दिरो मे लगी हुई हज़ारो मूर्तियो के निर्माण मे कितना विशाल आयोजन, कितना मानवीय परिश्रम और कितने कलाकारों की कलात्मक योग्यता लगी होगी इसकी कल्पना भी आज करना कठिन है। यह विशाल आयोजन विश्वकर्मा का ही आयोजन जान पड़ता है।

इन मन्दिरो के आस पास सैकड़ो प्रस्तर खण्डों को सुर-सुन्दरियो, नायिकाओ और अप्सराओ का सौन्दर्य प्रदान किया गया है। तत्कालीन वेश-भूषा व आभूषण सज्जा, सूक्ष्म वस्त्रावृत्त, विविध अगो की भगिमा, मनोहर चिबुक, ओष्ठ, नासिका, कपोल, नेत्र, भ्रूलता एव ललाट से मण्डित मनो-भाव, उन्नत उरोज, नारी-गौरव के अनुरूप केशविन्यास—इन सबका सूक्ष्म कलारूप इन मूर्तियो मे अकित किया गया है।

गूढ़ से गूढ़ दैनिक जीवन यहाँ मूर्तियो के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। कही सुन्दरी स्नानान्तर केशपाश को जल-मुक्त कर रही है, कही वह दर्पण देखकर तिलक लगा रही है, तो कही पाँव का काँटा निकाल रही है। केवल इतना ही नही मनुष्य जीवन के आनन्द की पराकाष्ठा, स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्ध, चुम्बन, आलिंगन, मैथुन इत्यादि दृश्यो की पूर्ण अभिव्यक्ति भी वहाँ की मूर्तियो मे दिखलाई पडती है।

इन मूर्तियो की अभिव्यक्तियो के समर्थन और विरोध मे बहुत से विद्वानो ने बहुत कुछ लिखा है। कुछ लोगो ने इन मूर्तियो को अश्लील बतला कर इनका सम्बन्ध कौल, कापालिक, तान्त्रिक, शाक्त इत्यादि लोगो के साथ जोड़ा है, मगर इस विचार को कोई स्पष्ट आधार नही है।

वास्तविक बात यह है कि अश्लीलता की परिभाषा भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न प्रकार की रही है। जगत् के एक चिरन्तन सत्य को, स्त्री और पुरुष के यौन-मिलन को, जिससे सारे जगत् की उत्पत्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, हमेशा ही अश्लील समझा गया हो—यह बात सम्भव नही दिखलाई देती। हिन्दू-धर्म-शास्त्रो मे तो मोक्ष के कारणीभूत कारणो मे धर्म और अर्थ के बाद काम को बतलाया है। ऐसी स्थिति मे किसी कलाकार के लिए और कलाकृतियो के निर्माताओ के लिए यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वे अपनी कला-कृतियो मे धर्म और अर्थ का तो चित्रण कर दें लेकिन केवल अश्लील कह कर काम-कला के चित्रण की उपेक्षा कर दें। वे तो जगत् के महान् सत्य को अपनी कला के अन्दर सजीव-रूप से चित्रित करना चाहते थे। केवल खजुराहो मे ही नही, बल्कि पिछले २ हजार वर्षों मे निर्मित अनेक मन्दिरो और गुफाओ मे भी इन काम-कला के चित्रो का प्रदर्शन है। भुवनेश्वर, कोणार्क, जगन्नाथपुरी, एलोरा, बुद्धगया, तक्ष-शिला, मथुरा इत्यादि स्थानो की मूर्तियो मे भी नर-नारी-सभोग का प्रदर्शन किया गया है।

योग और भोग का परम समन्वय खजुराहो मे बने हुए इन विशाल मन्दिरो और मूर्तियो मे पाया जाता है। चन्देल स्थापत्य का पूर्ण विकास कन्दारिया महादेव के मन्दिर मे मिलता है। यह मन्दिर १०१ फीट ऊँचा, उतना ही लबा और उसका दो-तिहाई चौड़ा है। प्राचीन स्थापत्य-शास्त्र की भाषा मे खड़े रूप मे यह सप्ताङ्ग और बैठे रूप मे सप्तरथ-मन्दिर है। सम्पूर्ण मन्दिर एक सुदृढ़ शरीर के समान है और उसमें अधिष्ठित मूर्ति उसके प्राण के समान है। यह मन्दिर ९०० प्रतिमाओ से अलकृत है।

यह एक आश्चर्य की बात है कि इतने विस्तृत मन्दिरो के होते हुए भी इन मन्दिरो मे राम और कृष्ण का कोई

पुत्र नौनिहाल सिंह को खड्गसिंह के विरुद्ध बागी कर दिया तथा खड्गसिंह की रानी चन्द्रकुमारी को भी उनके खिलाफ कर दिया और किसी प्रकार खड्गसिंह को पकड कर तथा उन्हें कारागार मे बन्द कर नौनिहाल सिंह को पञ्जाब की राजगद्दी पर बैठा दिया।

सन् १८४० ई० की ५ वी नवम्बर को उसी कैदी की स्थिति मे खड्गसिंह की मृत्यु हुई और उसके आठ ही दिन के पश्चात् १३ नववर को एक छज्जे के नीचे दब जाने से नौनिहाल सिंह की भी मृत्यु हो गयी।

(वसु-विश्वकोष)

खण्डगिरि

उडीसा के पुरी जिले के बीच की एक पहाडी, जो भुवनेश्वर से ४ मील पश्चिम मे पडती है। इस पहाडी मे कई आश्चर्य जनक गुफाये बनी हुई हैं। खण्डगिरि के उत्तरी भाग वाली पहाडी को उदयगिरि कहते हैं।

एक गुफा का नाम अनन्त गुफा है। इस गुफा को मन्दिर के रूप मे बनाने के लिये कई खभे और छज्जे लगाए गये हैं। इसके सामने बरामदा और भीतर गृह है। बरामदे के चारो ओर वेदी बनी हुई है। सम्मुखभाग मे तीन स्वतत्र स्तम्भ हैं। इन स्तभो के ऊपर छत के नीचे कई मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इन मूर्तियो मे बोधिवृक्ष और स्वस्तिक की मूर्तियाँ भी दिखलाई पडती हैं।

इसी प्रकार दो अन्य गुफाओ का निर्माण भी किया गया है। एक गुफा मे सूर्य चन्द्र और कई देवी देवो की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। कुछ शिला-लेख भी लगे हुए हैं, पर उनके अक्षर घिस जाने से पढने मे नही आते।

खण्डगिरि को देखने से यह भली भाँति समझ मे आता है कि इस स्थान पर जैन-धर्म का बहुत काफी प्रभाव रहा। पहाड गुफाओ से भरा पडा है। यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता है कि इन गुफाओ का निर्माण कब हुआ।

उदयगिरि के अन्तर्गत बनी हुई हाथी गुम्फा मे एक विशाल और प्राचीन गुफा-मन्दिर बना हुआ है। इस गुफा मन्दिर मे कलिंग-सम्राट् खार-वेल का एक विशाल शिला-लेख खुदाहुआ है, जो ८४ वर्ग फुट के पत्थर पर १७ विशाल लाइनो मे खुदा हुआ है। इस शिला लेख मे ईसा से दो शताब्दी पूर्व के भारत का स्पष्ट चित्र सामने आ जाता है।

उदयगिरि की स्वर्गपुरी गुफा मे सम्राट् खारवेल की महारानी का एक शिला लेख पाया जाता है। इसी प्रकार मचपुरी गुफा के निचले भाग मे स्थित पातालपुरी गुफा को खार वेल के वशज कलिंगाधिपति महाराज 'कुदेशश्री' ने निर्माण करवाया था ऐसा लेख पाया जाता है।

खण्डदेव

एक सुप्रसिद्ध सस्कृत-ग्रन्थकार, जिनका दूसरा नाम श्रीधरेन्द्र था। यह रुद्रदेव के पुत्र और पडितराज जगन्नाथ और शभू भट्ट के गुरु थे। इनकी रची भट्ट-दीपिका, जैमिनी सूत्र की मीमामा कौस्तुभ नाम्नी टीका इत्यादि ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं।

सन् १६६५ मे काशी मे इनकी मृत्यु हो गयी।

खण्डवा

मध्य प्रदेश के नीमाड प्रान्त का एक नगर, जो मध्य रेलवे की दिल्ली-बबई लाइन पर एक बडे जकशन के रूप मे अवस्थित है।

खडवा एक बहुत प्राचीन नगर है। प्रसिद्ध इतिहासकार कनिंगहम के मत से टालेमी ने अपने ग्रथ मे जिस कोगनाबण्डा (Kognabanda) का जिक्र किया है, वह यही खडवा है।

११वी शताब्दी के आरभ मे प्रसिद्ध इतिहासकार अल्वेरूनी ने भी इसका उल्लेख किया है। अबूरेहान की 'तवारीखे हिन्द' नाम की किताब में कडरोहा के नाम से इसका वर्णन किया गया है। नगर के उत्तर-पश्चिम मे 'पद्म-कुण्ड' नामक एक सरोवर बना हुआ है। वहाँ पर सवत् ११८९ का एक शिलालेख लगा हुआ है।

१२वी शताब्दी मे खण्डवा जैनियो की पूजा-अर्चा का एक सुप्रसिद्ध स्थान रहा है। सन् १८०२ मे यशवन्त राव

जयपूर, अजमेर और आस पास के क्षेत्रों मे ज्यादा फैले हुए हैं। यहींसे निकल कर इन लोगो ने इन्दौर, कलकत्ता तथा बम्बई मे जाकर अपने व्यापार को चमकाया।

खण्डेलवाल जैन विशेषकर व्यापार और उद्योग के क्षेत्र मे अधिक लगे हुए हैं। जयपूर, अजमेर, इन्दौर, उज्जैन और कलकत्ता मे इनके बडी बडी फर्में स्थापित हैं। इन्दौरके सर सेठहुकुमचन्द खण्डेलवाल सरावगी थे। जिनकी बनाई हुई विशाल कीर्त्तियो और काचमन्दिर से आज भी इन्दौर नगर शोभाय मान हो रहा है। उज्जैन के रायबहादुर सेठ लालचन्द सेठी भी खण्डेलवाल जैन थे जो उज्जैन के औद्योगिक क्षेत्र ने अपना पूर्ण प्रभाव स्थापित किये हुए हैं और अजमेर मे मूलचन्द सुगन चन्द सोनी की सोने के काम से शोभित नसियां और काच का जैनमन्दिर आज भी अजमेर की प्रधान दर्शनीय वस्तुओ मे से है।

यदि खण्डेलवाल जाति को जैन धर्म की दीक्षा देने वाले जिन सेनाचार्य और आदिपुराण के रचयिता जिनसेना-चार्य एक ही हो तो उस हिसाब से खण्डेलवाल जाति की स्थापना का समय सन् ८४८ ठहरता है।

खंडेलवाल वैश्य

वैश्यो का एक जाति-भेद। राजस्थान के खडेला नामक स्थान से उत्पन्न वैश्यो की एक जाति।

खडेलवाल वैश्यो मे ७२ गौत्र होते है। 'खडेला' से उत्पन्न होने के कारण राजस्थान और जयपुर मे इनकी सख्या विशेष है। आठवी और नवी शताब्दी के मध्य जैन मुनि जिनसेना चार्य के उपदेश से इस जाति के बहुत से परिवारो ने जैन-धर्म ग्रहण कर लिया। ऐसे लोग खडेलवान जैन अथवा सरावगी नाम से प्रसिद्ध हुए। शेष खण्डेलवाल वैश्य कहलाये।

खंडेलवाल ब्राह्मण

गौड ब्राह्मणो की एक शाखा, जिसकी उत्पत्ति राजस्थान के 'खडेला' नामक स्थान से हुई और जो अपने आपको 'खण्ड' ऋषि के वशज बतलाते हैं।

इनके अन्दर ८४ गोत्र होते हैं।

खजार

प्रसिद्ध आक्रमणकारी हूण जाति की एक शाखा जो ७वी शताब्दी मे मध्यएशिया मे बहुत सगठित और आक्रमण-कारी थी।

खजारो के खान उस समय 'वोल्गा' नदी और कास्पि-अन सागर के पश्चिमी तट के शक्तिशाली शासक थे। उस समय ईरान के सम्राट् और रोम के विजेन टाइन सम्राट हेराक्लिअस के बीच बडी प्रतिस्पर्धा चल रही थी। सम्राट हेराक्लिअस खजारो के खगान से साठगांठ करके ईरान को पराजित करने की कोशिश कर रहा था। खजारो के नाम पर ही कास्पिअन समुद्र का नाम खजार-समुद्र पड गया था जिसे आगे जाकर मुसलमान लेखको ने खिजिर-समुद्र के नाम से उल्लेख किया है।

खजारो की राजधानी वोल्गा नदी और कास्पियन सागर के सगम पर ओल्गा के डेल्टा मे 'इतिल' नामक नगर मे थी। व्यापार मे सुविधा होने के कारण इतिल उस समय एक बडी नगरी बन गयी थी।

खजारो का शासक खाकान दैवीतत्त्वो से युक्त माना जाता था। इसका ईटो का महल एक द्वीप मे था, जिसको नावो के पुल द्वारा किनारो से मिला दिया गया था। खजारो का एक नगर 'सरकेल' था, जो दोन-नदी के तट पर था। इस नगर के निर्माण मे विजतीन (रोम) इञ्जिनियरो ने सहायता की थी। इनका एक और नगर 'समन्दर' नाम का था, जिसके पास अगूरो के बहुत से बाग थे।

९वी शताब्दी मे ये खजार अपने उत्कर्ष की चरमसीमा पर पहुँच गये थे। अजोफ समुद्र के तट तथा क्रीमिया का कुछ भाग भी खजारो के शासन मे था और उधर रहनेवाली कई स्लाव-जातियां इन्हे कर देती थी।

(राहुल साकृत्यायन—मध्य एशिया का इतिहास। चिरञ्जी-लाल पाराशर विश्व-सभ्यता का विकास)

खड्ग वीर

रूस के बाल्टिक तट पर जर्मनी के ईसाई धर्म-योद्धाओ के द्वारा स्थापित की हुई एक धर्म सेना, जिसकी स्थापना सन् १२०२ में की गई।

खण्डेराव होल्कर

इन्दौर राज्य के सस्थापक, मल्हार राव होल्कर के पुत्र और इतिहास-प्रसिद्ध धर्म-मूर्ति रानी अहल्याबाई के पति, जो सन् १७५४ ई० मे भरतपुर-राज्य के 'डीग' नामक स्थान पर सूरजमल जाट से लडते हुए मारे गये।

इनके पुत्र का नाम 'मालेराव' था।

खण्डेराव गायकवाड़

बडोदा-राज्य के राजा जो सन १८५६ ई० मे राजा गणपति राव गायकवाड के मरने पर बडोदा की राजगद्दी पर बैठे। यह गणपति राव के भाई थे।

खडेराव गायकवाड के गद्दी पर बैठने के कुछ ही दिनो पश्चात् भारत मे इतिहास-प्रसिद्ध 'सिपाही विद्रोह' का आरभ हुआ। उस समय इन्होने अग्रेजो की काफी सहायता की। जिसके फलस्वरूप अग्रेज सरकार ने इन्हे 'हिज हाईनेस' की उपाधि प्रदान की।

सन् १८६३ मे इनके भाई मल्हारराव ने इनके विरुद्ध कुछ षड्यत्र किया, जिससे इन्होने मल्हारराव को पकडवा कर कारागार मे बन्द करवा दिया। सन् १८७० मे खण्डेराव की मृत्यु हो गयी।

खंडाइत

उडीसे की एक लडाकू जाति, जो अपने को क्षत्रिय-सन्तान बतलाती है। यह जाति उडीसा, छोटा नागपुर सिह-भूमि इत्यादि क्षेत्रो मे बसती है। इस जाति के लोगो को पूर्वकाल मे युद्ध करने के उपलक्ष्य मे बड़ी-बडी जागीरें भी प्राप्त हुई थी।

खत्री

पञ्जाब, उत्तर प्रदेश, बगाल, विहार और बबई प्रदेश मे निवास करने वाली एक जाति, जो इस समय उद्योग और व्यवसाय मे लगी हुई है।

'खत्री' शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इस सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय ऐतिहासिक प्रमाण इस समय उपलब्ध नही है। फिर भी, इस शब्द की रूपरेखा से यह अनुमान लगाना असगत न होगा कि 'खत्री' शब्द स्पष्टतौर से सस्कृत के क्षत्रिय शब्द का अपभ्रश है। दूसरी बात खत्रियों के गोत्र भी प्राय वे ही हैं, जो क्षत्रिय समाज के अन्तर्गत पाये जाते है। तीसरी बात यह भी विचारणीय है कि पञ्जाब के क्षेत्र मे, जहाँ से खत्रियो की उत्पत्ति मानी जाती है, क्षत्रिय शब्द को धारण करने वाली कोई दूसरी जाति नही है।

इससे सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पञ्जाब मे बसने वाले क्षत्रिय किसी विशेष घटना के वश खत्री नाम से प्रसिद्ध हो गये।

ऐसा समझा जाता है कि किसी विशेष घटना के वश होकर पञ्जाब के क्षत्री सैनिक वृत्ति को छोड कर व्यव-साय और उद्योग धन्धो के क्षेत्र मे प्रविष्ट हो गये और तभी से वे खत्री नाम से प्रसिद्ध हुये।

खत्री लोग प्रधानत पश्चिम देशी और पूर्व देशी—इन दो भागो मे विभक्त हैं। इन दोनो भागो के रीति-रिवाजो और जीवन-यापन मे भी काफी अन्तर है। इनमें पारस्परिक विवाह सम्बन्ध भी बहुत कम या नही के बराबर होते हैं। बगाल देश मे जितने खत्री निवास करते है, वे सब प्राय औरगजेब के समय मे लाहौर से आकर यहाँ बसे थे। बगाल मे यह जाति एक प्रतिष्ठित जाति की तरह समझी जाती है। वर्धमान के महाराजा इसी जाति के गोष्ठीपति रहे थे।

पूर्विहा और पछैया खत्री फिर चार उप विभागों में बँटते हैं। १—बुनियाही २—सरिन ३—बाढी और ४—थोकरन। ऐसा कहा जाता है कि अलाउद्दीन खिलजी ने खत्रियों मे विधवा विवाह चलाने की चेष्टा की थी। पछाही खत्रियों ने उसका प्रतिवाद करने के लिए ५२ ब्राह्मण दिल्ली भेजे थे। इसी से उन्हें बुनियाही कहते हैं। पूर्विहा उनसे अलग रहने के कारण सरिन कहे गये हैं। थकर-जाति विद्रोही होने पर उनसे मिलने वाले थोकर नाम से प्रसिद्ध हुए।

सम्राट् अकबर के समय मे इस जाति मे मेहरचन्द, क्षणचन्द और कपूरचन्द नामक व्यक्ति बडे प्रभावशाली हुए। इनके वशधरो ने परस्पर विवाह आदि करके एक स्वतत्र श्रेणी की स्थापना की। इस श्रेणी को 'बाढ़ी' कहते हैं। मेहरचन्द के वशज मेहरोत्रा या मेहरा, क्षणचन्द के वशज खन्ना और कपूरचन्द के वशजो ने कपूर उपाधि को धारण

ईमानदार देखकर अपने व्यवसाय मे एक पद पर रख लिया। थोडे ही दिनो के पश्चात् उनकी कार्य-दक्षता से प्रसन्न होकर उन्हे अपने सारे व्यवसाय का अधिकारी बना दिया और उन्हे 'अल-ग्रामीन' की उपाधि प्रदान कर दी।

इसके पश्चात् जिस समय खदीजा की उम्र ४० वर्ष की थी और हजरत मोहम्मद २५ वर्ष के थे, खदीजा ने उनसे विवाह कर लिया। विवाह के ११ वर्ष के बाद उनको 'फातिमा' नामक एक कन्या हुई जिसका विवाह हजरत अली के साथ हुआ।

विवाह के पश्चात् खदीजा २५ वर्ष तक जीवित रही और उसने हजरत मुहम्मद के हर एक कार्य मे पूरी दिलचस्पी से हाथ बँटाया। ४० वर्ष की अवस्था मे जब हजरत मुहम्मद को खुदाई इलहाम हुआ और उन्होने अपने आपको इस्लाम का पैगम्बर घोषित किया, तब सबसे पहले खदीजा ने इस्लाम धर्म को ग्रहण कर हजरत मुहम्मद को 'रसूल' माना। जब तक खदीजा जीवित रही, हजरत मुहम्मद को मक्का मे कोई कष्ट नही हुआ, मगर खदीजा की मृत्यु के पश्चात् उनको विवश होकर मक्का छोडना पड़ा और मदीने में आकर अपना धर्म प्रचार करना पड़ा।

हजरत मोहम्मद खदीजा का बहुत ही आदर करते थे। जब तक खदीजा जीवित रही तब तक उन्होने दूसरा विवाह नही किया। खदीजा की मृत्यु के पश्चात् भी वह खदीजा को बडी इज्जत से याद करते थे। इससे उनकी द्वितीय पत्नी 'आयशा' को कभी कभी ईर्ष्या भी होती थी, मगर हजरत मुहम्मद ने खदीजा की प्रशसा करने मे कभी कोताही नही की।

खदीजा की कब्र अभी भी बनी हुई है। तीर्थयात्री उसके दर्शन करने जाया करते हैं। कब्र के एक पत्थर पर कुरान की एक आयत खुदी हुई है।

खना—वराहमिहिर

किम्वदन्तियो के अनुसार सुप्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य वराहदेव के पुत्र मिहिर की पत्नी खना।

'खना' के सम्बन्ध मे बगाल के अन्तर्गत इस प्रकार की किम्वदन्ती है कि मिहिर के पिता वराहदेव ज्योतिष शास्त्र मे अत्यन्त निपुण थे। मिहिर का जन्म होने के पश्चात् उसकी कुण्डली वना कर उन्होने देखा कि इस बच्चे की उम्र एक वर्ष से ज्यादा नही है। उन्होने अपनी आँखो के सामने अपने पुत्र की मृत्यु देखना नही चाहा। इसलिए उसे एक लकडी की पेटी मे बन्द करके समुद्र मे वहा दिया।

दैवयोग से यह पेटी बहती हुई लका-द्वीप मे जा पहुची। उस समय वहाँ पर अपनी सहेलियो के साथ खना स्नान कर रही थी। उन लोगो ने उस पेटी को खीच कर खोला तो उसमे उन्हे एक अत्यन्त सुन्दर बालक मिला। खना स्वय ज्योतिष-शास्त्र की पडिता थी। उसने उस बालक का आयुर्बल निकाल कर देखा तो वह सौ वर्ष का निकला।

उसके बाद उस बालक का वही लालन-पालन हुआ और उस बालक के युवक होने पर खना ने उससे अपना विवाह कर लिया और सब ज्योतिष ग्रन्थो का सग्रह करके वह मिहिर के साथ भारतवर्ष मे आयी और मिहिर की आयु के सम्बन्ध मे उसके पिता के भ्रम को दूर किया।

इस किम्बदन्ती मे कितना सत्य है, यह नही कहा जा सकता। क्योकि खना के नाम से जितने ज्योतिष-वचन चले, सब बगला भाषा मे हैं। यदि वह मिहिर की पत्नी होती तो उसके वचन बगला मे न मिलकर सस्कृत मे मिलते।

जो भी हो खना की कहावतें वराह-मिहिर-खना ज्योतिष-ग्रन्थ नामक बगला-पुस्तक मे सगृहीत हैं। ये कहावतें ठीक उसी प्रकार की हैं, जिस प्रकार राजस्थान मे वर्षा और खेती की फसलो के लिए 'घाघ और भड्डरी' की प्रसिद्ध हैं। इन कहावतो मे अच्छी वर्षा होने के निशान, अकाल पडने के निशान, आँधी और तूफान के लक्षण, तरह-तरह की खेती और उनमे दिये जाने वाली खाद का वर्णन इत्यादि बातें, बड़े सुलभ ढग से समझाई गई हैं और कई अशो मे सच्ची भी ठहरती हैं।

खनिज-विज्ञान

पृथ्वी के गर्भ मे छिपी हुई सम्पत्ति, तरह-तरह की धातुएँ, कोयला, मेगनीज, अभ्रक, लोहा, सोना, मिट्टी का तेल इत्यादि वस्तुओ को बाहर निकाल कर उनसे मानवीय आवश्यकताओ के पूर्ण करने के विज्ञान को खनिज-विज्ञान कहते हैं।

खनिज विज्ञान का इतिहास बहुत पुराना है। आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार जब मनुष्य पाषाणयुग, ताम्रयुग

इकट्ठे हो जाते हैं, उनमे कभी-कभी सोना-चाँदी इत्यादि कई बहुमूल्य धातुएँ प्राप्त हो जाती हैं।

३—भूगर्भीय खनन—इसमे पृथ्वी के अन्दर रहनेवाली खनिज सम्पत्ति को पृथ्वी के गर्भ मे घुस कर प्राप्त किया जाता है। खनिज विज्ञान मे यह कार्य सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। इस कार्य में सबसे पहले पूर्वेक्षण और गवेषणात्मक कार्यो को अत्यन्त सावधानी के साथ समाप्त कर लिया जाता है। खदान का काम सबसे पहले कूप बना कर प्रारम्भ किया जाता है। इन कूपो का व्यास १० से १२ फुट तक का होता है। इन कूपो के साथ भूमिगत मार्ग तथा गेलरियाँ भी बना ली जाती हैं। जिन शिलाओ से होता हुआ कूप जाता है, यदि वे सुदृढ नही हो तो उनके पीछे इस्पात, सीमेंट इत्यादि का स्तर लगाया जाता है। भूगर्भ खदानो मे इन कूपो का बडा महत्त्व है। क्योकि कर्मचारियो का खान मे आना जाना, खनिज पदार्थों का बाहर निकालना, खदान मे वायु का सञ्चालन तथा खदान मे पानी को बाहर फेंकने के लिए पम्पो का सञ्चालन इन्ही के द्वारा होता है।

भूगर्भीय खदानो मे आवश्यक प्रकाश तथा शुद्ध वायु के आवागमन का प्रबन्ध बहुत अच्छा रहता है। बहुत सी खदानो में अब बिजली का प्रकाश उपलब्ध हो गया है। फिर भी कई खदानो मे मोमबत्तियो का प्रयोग होता है। वायु के आवागमन के लिए भी बडे-बडे वायु मार्गों को आवश्यकता होती है, जो वायु का प्राकृतिक प्रवाह कर सके। इसके लिए बहुत से यत्रो की भी आवश्यकता होती है।

भूगर्भीय खानो मे दुर्घटनाएँ बडी भयकर होती है। खदानो के खोदने का काम अत्यन्त खतरे का होता है। किस समय क्या विपत्ति आयेगी—किसी को इसका पता नही रहता। खान के धसक जाने से अथवा वहाँ पर पानी भर जाने से सैकडो आदमी मर जाते हैं। विस्फोटक गैसो के विस्फोट हो जाने से कोयले की खदानो मे आग लग जाती है। और कभी-कभी इन गैसो के विस्फोट से सारी खदानें चकनाचूर हो जाती हैं और असख्य आदमी जीते जी जल कर भस्म हो जाते हैं। कोयलो की खदानो मे आग लग जाने पर उसका बुझाना भी बडा कठिन हो जाता है। कभी-कभी तो यह आग बरसो तक जलती रहती है।

इन दुर्घटनाओ को रोकने के लिए कई यन्त्रो का भी आविष्कार हो चुका है। दुर्घटना का मुकाबला करने के लिए कई बडी-बडी खदानो मे आपत्कालीन खनिज सैन्य-दल बनाया जाता है। जो इस प्रकार की दुर्घटनाओ को रोकने के लिए सुसज्जित रहता है।

भूमिगत खदानो से प्राप्त होनेवाले खनिज द्रव्यो मे लोहा, सोना, ताँबा, कोयला, अभ्रक, मेगनीज, युरेनियम, जिप्सम, टाल्क, बेल्साइट, एपेराइट, फ्लोराइट, फेल्सपार, पुष्पराग, हीरा, मिट्टी का तेल इत्यादि चीजें प्रधान हैं।

खदान को कितनी गहरी करने से उसमे काम किया जा सकता है। इसका निश्चय वहाँ की परिस्थिति के अनुसार होता है। खान जितनी गहरी होती जाती है, उतनी ही उसके भीतर गरमी बढती जाती है। ऐसा समझा जाता है कि कही-कही ५० से १०० फीट की गहराई तक और कही-कही २०० फीट की गहराई पर एक डिग्री गरमी बढती जाती है। मगर बाहर से आक्सीजन पहुँचा कर यह गरमी कम की जाती है।

इस प्रकार हजारो फीट गहराई के नीचे भी खदानो का काम बदस्तूर चलता रहता है। 'कोलार गोल्ड फील्ड' की सोने की खदाने भी बहुत काफी गहरी हैं।

(ना० प्र० विश्वकोष)

खमती

भारत के पूर्वी प्रदेश आसाम मे बसने वाली शान-राजवंश की एक शाखा।

ऐसा कहा जाता है कि किसी समय मे 'खमती' लोगो का एक विशाल राज्य था जो पोग राज्य के नाम से प्रसिद्ध था। यह त्रिपुरा से लेकर श्याम तक फैला हुआ था। इसकी राजधानी का नाम मोगमारग था।

१८वी शताब्दी मे बर्मा के राजा 'आलम्परा' ने इस राज्य को विध्वस कर दिया। तब इनमे से बहुत से लोग भाग कर आसाम के सदिया-विभाग मे जाकर बसे। किसी किसी इतिहासकार के मत से इरावती नदी के उद्गमस्थान, बडी खम्पती के मूल निवासी होने के कारण ये लोग खमती नाम से मशहूर हुए।

खमती लोग विशेष रूप से बौद्ध-धर्म के अनुयायी होते हैं। इनकी अपनी भाषा होती है, जिसमें स्याम देश के बहुत शब्द होते हैं। इनके बौद्ध-मठों में खमती की दीवारों पर खुदाई का बड़ा सुन्दर काम होता है। हाथी दाँत के ऊपर बनाई हुई कारीगरी में भी ये लोग प्रवीण होते हैं।

खमती लोग आसाम की अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक सभ्य और सुशिक्षित होते हैं। इनका धर्म-ग्रन्थ खमती भाषा में लिखा हुआ है। ये बुद्धदेव को 'फलोमा' के नाम से सम्बोधित करते हैं और इनके मठों को 'बापूचंग' कहा जाता है।

खम्भात

गुजरात-राज्य में खम्भात की खाड़ी के उत्तर में माही नदी के मुहाने पर बसा हुआ एक प्रान्त जो 'काम्बे' के नाम से भी प्रसिद्ध है।

प्राचीन युग में यह भारतवर्ष का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था। प्रसिद्ध इतिहासकार और यात्री टालमी (Tolmy) ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है कि—

'इस बन्दरगाह से कपास, सोने-चाँदी की चीजें, रेशम और छींटों का निर्यात प्रचुर रूप से होता था।' १३वीं शताब्दी तक यह प्रान्त भारत के एक हिन्दू राजा की राजधानी था। उसके पश्चात् १७वीं और १८वीं शताब्दी में यह कभी मराठों के अधिकार में और कभी अंग्रेजों के अधिकार में आता-जाता रहा।

सन् १८ ३ ई० में यह स्थायीरूप से अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। गुजरात के राजा कुमारपाल तथा अन्य राजाओं के समय में जब गुजरात में जैन-धर्म का बोलबाला हुआ तब खम्भात में भी जैन-धर्म का प्रभाव बड़ी तेजी से बढ़ा। इस नगर के दक्षिण-पश्चिम के विस्तीर्ण प्रदेश में पाये जाने वाले प्राचीन जैन-मन्दिरों के भग्नावशेष अभी भी उस प्रभाव की झाँकी दिखलाते हैं।

हाल ही में इस क्षेत्र में मिट्टी के तेल के विशाल भंडारों का पता लगा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस भूमि में और भी कई मिट्टी के तेल के भंडार उपलब्ध हो सकेंगे।

मध्य भारत के ...
विलीनीकरण के पहले
ऐसा अनुमान किया
में यह नगर ...
बड़ व्यापार की
का अच्छा व्यापार होता है।

कोटे पाल्पुर और बिहार
इस जाति के कुछ
चोल जाति की एक शाखा
इतिहासकारों ने इस जाति को
बतलाया है। स्वयं खरवार लोग
राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व से
रोहितासगढ़ से अपनी उत्पत्ति बतलाते
राजवंश भी है। पलामू और ...
जाति के ही थे। इस जाति के लोग
होते हैं।

पलामू जिले में इस जाति की
१—... २—... और
... हैं।
करते हैं।

खरवार जाति का एक विशाल
है। यहाँ पर ये लोग ...
... श्रेणियों में विभाजित हैं।

खरोष्ठी-लिपि

दाहिनी ओर से बाईं ओर
लिखी जाने वाली लिपि।

खरोष्ठी-लिपि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में
कल्पना भी की जाती है कि ... और
... प्रयुक्त होनेवाली 'खरोष्ठी' लिपि को
... ने इसे ... किया।
लिया। चूँकि ...

की उत्तरी-सीमाओं को छूता था। इसलिए उत्तर-पश्चिम भारत के कई लोगो को यह लिपि सीखनी पडी। परन्तु बाद मे 'ब्राह्मी' लिपि के ससर्ग के कारण इस लिपि मे कुछ परिवर्तन हुए और इसका नाम खरोष्ठी लिपि पड गया। मगर दायी ओर से बाईं ओर लिखी जानेवाली इसकी पद्धति बदस्तूर रही।

भारत वर्ष मे ईसा से पूर्व तीसरी और चौथी शताब्दी से लेकर ईसा की तीसरी शताब्दी तक खरोष्ट्री लिपि का काफी प्रचार था। इस लिपिमे लिखे हुए लेख पत्थर की शिलाओ, धातु सिक्को, मिट्टी के बर्तनो तथा भोज पत्रो पर उपलब्ध हुए हैं।

ईरान से भारत आते समय इस लिपि का प्रचार मध्य एशिया में भी हो गया। खरोष्ठी लिपि के अनेको लेख मध्य एशिया से मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि यह लिपि मनसहरा (पाकिस्तान) शाहाबाज गढ़ी, कान्धार, बैक्ट्रिया तथा सोग्द मे भी चलती थी। मासीमजार, नीया इत्यादि स्थानोसे इस लिपि मे लिखेहुए काष्ट पट्टिकाओ पर कई अभिलेख मिले हैं। इन पट्टिकाओ की लबाई ७ से १५ इञ्च और चोडाई १॥ से २॥ इञ्च तक होती है। किसी किसी पट्टिका मे सस्कृत को खरोष्ठी लिपि मे लिखा गया है। तरिम उपत्यका में खरोष्ट्री भाषा के लेखो से यह सिद्ध होता है कि वहाँ के निवासी शक-जाति के लोग खरोष्ट्री लिपि और उसमे लिखी जानेवाली भारतीय भाषा से परिचित थे।

खलखा-मंगोल

मध्य एशिया मे वाह्य मगोलिया की एक जाति खलखा मगोल, जो १६ वी शताब्दी मे एक शक्तिशाली राज्य की स्वामी थी।

कल्मक-मगोलो के बाद ज्यादा शक्तिशालो खलखा मगोल थे। खलखा मगोलों के ४६ झडे थे। अर्थात् ये छोटे छोटे ४६ कबीलो मे विभक्त थे। इनके ४ मुख्य भेद थे। पश्चिमी खलखा, उत्तरी खलखा, मध्यवर्ती खलखा और पूर्वी खलखा।

ये सब मगोल शासक 'तायन-खान' के वशज थे। खलखा—राजवश तायन-खान के छोटे लडको का था।

खलखा-मगोलों और कलमक मगोलो के बीच आपस में सघर्ष होता रहता था। इसलिए खलखा मगोलो ने चीन के तत्कालीन मचू सम्राट् 'कांगसी' (१६६१ से १७२३) से सहायता मांगी। कागसी ने खलखो की मदद की और ओईरोद या कलमख कबीलो को आसानी से दबा दिया।

सन् १६६१ मे कांगमी ने दक्षिणी मगोलिया में खलखो की एक बडी परिषद् बुलाई। जहाँ पर एकत्रित होकर खलखा मगोलो के राजुलो ने चीन की अधीनता स्वीकार करते हुए चीन से अपनी सुरक्षा का वचन लिया। तब से प्राय मचू वश के अन्तिम समय या सन् १९११ ई० तक खलख-मगोलो ने चीन की अधीनता ब-दस्तूर जारी रखी और प्रति वर्ष ८ सफेद घोडे और १ सफेद ऊँट भेंट के रूप मे भेजते रहे।

सन् १६८८ में गलदन नामक कलमख-राजवश के राजुल ने खलखो के खान 'तूशी एतू' पर चढाई की। जिससे खलखो मे भगदड मच गयी और तूशीएतू के बीबी बच्चे ३०० आदमियो के साथ अपनी जान लेकर भागे। लेकिन चीन ने उसी समय खलखो की मदद के लिए सेना भेजी। पेकिंग से ८० लीग (योजन) दूरी पर जाकर लडाई छिडी, जिसमे जीत-हार का कोई परिणाम नही निकला।

इसके बाद अप्रैल सन् १६६६ ई० मे एक बहुत बडी चीनी सेना ने स्वयं सम्राट कांगसी के नेतृत्व मे गल्दन के विरुद्ध अभियान प्रारभ किया, जिसमे गलदन को हार हुई और सन् १६६७ में उसने आत्महत्या कर ली।

(H H Howorth—History of Mangol और राहुल साकृत्यायन मध्य एशिया का इतिहास)

खलील जिब्रान

मध्य एशिया मे लेबनान देश के एक महाकवि, जिनका जन्म ६ जनवरी सन् १८८३ ई० को लेबनान के बशरी नामक नगर मे एक सम्पन्न ईसाई परिवार मे हुआ।

खलील जिब्रान की माता का नाम कलोमारसिमी था। १२ वर्ष की छोटी आयु मे ही इनको अपने माता-पिता के साथ कई देशो का भ्रमण करना पडा।

अध्ययन के बाद यह अरबी, फ्रेंच और अग्रेजी भाषा के बडे पडित हो गये। कविता करने का और कहानियाँ लिखने

खिलाफत के इस सारे इतिहास को इतिहासकार पाँच भागो मे विभक्त करते हैं। (१) प्रारम्भिक खिलाफत (६३२–६६१) (२) उमैया खिलाफत (६६१–७५०) (३) अब्बासी खिलाफत (७५०–१२५८) (४) काहिरा खिलाफत (१२५८–१५१७) और (५) उसमानी खिलाफन (१५१७-१९२४) तक।

प्रारम्भिक खिलाफत का प्रारम्भ खलीफा अबू-बकर से प्रारम्भ होता है जो सन् ६३२ मे निर्वाचित किये गये। चूँकि इस खिलाफत का हजरत मुहम्मद के तुरन्त वाद ही निर्माण हुआ था और इसके खलीफा हजरत के चुने हुए साथी थे इसलिए इस खिलाफत के खलीफो मे सादा जीवन और धार्मिक अनुशासन की भावनाएँ ही प्रधान रही। इस खिलाफत मे चार खलीफा हुए (१) अबूबकर (२) ऊमर (३) उसमान और (४) अली—इन चारो खलीफाओ ने अभाव और दरिद्रता मे ही अपना जीवन बिताया। इनके रहने के लिए न तो वडे बडे महल थे, न शरीर-रक्षक थे और न इनके वडे-बडे दरबार ही लगते थे। इनके जीवन का प्रधान लक्ष्य इस्लाम के अनुयायियो मे इस्लाम की धार्मिक भावनाओ को ज्वलन्तरूप से आगृतरखना था। इनके द्वारा बनाये हुए धार्मिक विधानो और कुरान की व्याख्याओ को सुन्नी लोग ईश्वर-वाक्य की तरह मानते थे। खलीफा अबूबकर के समय मे मक्का और मदीना को छोडकर सारे अरब मे जो विद्रोह जागृत हो गया था। उसका उन्होंने दमन किया। खलीफा अबूबकर अपने पश्चात् ऊमर को खलीफा पद के लिए मनोनीत कर गये थे।

खलीफा ऊमर दूसरे खलीफा थे। इनका समय सन् ६३४ से ६४४ तक रहा। इनके समय मे मुसलमानो के अन्तर्गत किसी रूप मे राजनैतिक महत्वाकाक्षा जागृत हो गई थी, और इन्ही के समय मे इनकी सेनाओ ने ईराक, ईरान, सीरिया और मिस्र को जीत कर वहा पर इस्लाम का झण्डा गाड दिया और खिलाफत धीरे २ एक साम्राज्य का रूप ग्रहण करने लगी। खलीफा ऊमर के समय मे अरबी मुसलमानो का रहन सहन भी काफी ऊँचा हो गया था और उनमे साम्राज्य-विस्तार की भावनाए और प्रतिशोध की भावनाए जोर पकड रही थी और इसी प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर एक ईरानी गुलाम ने खलीफा ऊमर की हत्या कर दी।

अभी तक खिलाफत के लिए उत्तराधिकारी चुनने के सम्बन्धमे कोई योजनावद्ध विधान की रचना नही हुई थी। महमूद साहव के वाद मदीना की एक अनुशासनहीन सभा ने मतभेद की परवाह किये बिना अबूबकर को खलीफा चुना था और ऊमर को अबूबकर ने अपनी इच्छा से मनोनीत कर दिया था। खलीफा ऊमर ने अपनी मृत्यु के पहले ६ व्यक्तियो की एक समिति खलीफा का चुनाव करने के लिए बना दी थी।

इसी छ. व्यक्तियो की समिति ने तीसरे खलीफा के स्थान पर उसमान को चुना। उसमान का राज्य-काल सन् ६४४ से ६५६ तक रहा। इनके शासन-काल मे अरब के मुसलमानो की काफी उन्नति हुई। मगर भीतरी रागद्वेष भीतर ही भीतर वढता गया जिसके कारण उसमान का भी उनके घर मे ही विद्रोहियो द्वारा कत्ल कर दिया गया।

खलीफा उस्मान के पश्चात् 'अली' खलीफा के पद पर आये।

खलीफा अली, मुहम्मद साहव के सच्चे अनुयायी थे और वे अभाव व दरिद्रता के जीवन को विशेष रूप से पसन्द करते थे। इस कारण दमिश्क का राज्यपाल म्वाविया जो शाही और वैभवपूर्ण जिन्दगी पसन्द करता था, अली का कट्टर विरोधी हो गया। अली का सारा समय म्वाविया के विरोध में ही बीता और उसी के षड्यन्त्र से उनके वडे लडके हसन को विष खाकर मरना पडा और उनके दूसरे लडके हुसैन को म्वाविया के पुत्र 'यजीद' ने 'कर्बला' के मैदान मे पानी बिना तडफा-तडफा कर मार डाला। कर्बला के मैदान मे हुसेन और उनके ६९ साथियो की मौत इस्लाम के इतिहास मे बडी दर्दनाक घटना है। इसने इस्लाम की फूट को सदा के लिए स्थायी बना दिया।

खलीफा अली की भी सन् ६६१ मे एसे समय मे हत्या कर दी गयी, जव वे मस्जिद मे लोगो को नमाज पढ़ा रहे थे।

उम्मैया खिलाफत

खलीफा अली की हत्या के पश्चात् खिलाफत ने दूसरा

यह नगरी रेल, नदी, सडक और यातायात का एक प्रसिद्ध केन्द्र है। इस नगरी मे पादरियो का एक विशाल गिर्जाघर, काउण्ट मूरावी एव का स्मारक और एक म्युजियम बना हुआ है। यह नगरो मछली उद्योग, समूर-उद्योग, लकडी उद्योग और वायुयान बनाने के उद्योग के लिए प्रसिद्ध है। यहा की जन-सख्या २८०००० है।

खबारोफ (येरोफेयी खबारोफ)

रूस का एक सुप्रसिद्ध व्यापारी और अनुसन्धानकर्त्ता, जो १७वी शताब्दी के मध्य मे हुआ।

जून सन् १६४६ ई० मे साइबेरिया की ओर आगे बढते हुए रूसी लोगो ने 'आमूर-नदी' के क्षेत्र का पता लगाया। यह देख कर सन् १६४९ ई० मे खबारोफ नामक एक व्यापारी ने अपना धन और समय एक अभियान के सगठन मे लगाया। फास-बेकोफ नाम के एक और व्यापारी ने पैसे और सहानुभूति से उमका उ साह बढाया। डेढ सौ स्वयसेवक तैयार किए गये, जिनके लिए हथियार और भोजन सामग्री की व्यवस्था खबारोफ ने की।

यह दल आगे बढते हुए अल्बाजीन पहुचा। खबारोफ ने अल्बाजीन को अपना केन्द्र बना कर उस स्थान की मजबूत किलेबन्दी की और वहाँ के आस पास के क्षेत्र को अपने अधिकार मे कर लिया।

खबारोफ साइबेरिया मे रूस के प्रसार का सबसे बड़ा वाहक था। आमूर नदी के दाहिने किनारे पर इसने 'खबार बस्क' नामक एक औद्योगिक नगर की स्थापना की जो आज भी सोवियट रूस का एक प्रसिद्ध औद्योगिक जगर है।

खश

गढ़वाल, तिब्बत और नेपाल मे रहनेवाली एक जाति, जो शक जाति से उद्भूत मानी जाती है।

ई० पू० तीसरी शताब्दी से प्रथम शताब्दी के बीच मध्य एशियाके ससनद और आल्ताई प्रदेश मे शक जाति की कई शाखाएँ रहती थी। इन जातियो मे (१) सकरौका (२) दाहे (३) खस (४) वु-सून और (५) यूची ये जातियाँ प्रधान थी।

इनमे से खस जाति के लोग तरिम उपत्यका, सिकियाँग तिब्बत और काश्मीर मे वसते थे। यह जाति गिलगिट और चित्राल मे कसक़र, कश्मीर मे कश, काशगर मे खशगिरि और कश्मीर तथा नैपाल मे खस या खसिया के नाम से प्रसिद्ध है। इसी जाति के नाम पर नेपाली भाषा का दूसरा नाम खसकुरा भी कहा जाता हैं। इतिहास के "पीतल-युग" मे तरिम उपत्यका मे इनका निवास था, हूणो के द्वारा भगाये जाने के पहले सारी तरिम-उपत्यका खस भूमि के रूप मे थी।

भारतीय पुराणो मे भी इस जाति का वर्णन पाया जाता है। हरिवश पुराण के अनुसार महाराजा सगरने खश जाति के लोगो को पराजित किया था। मनु के मत से खश जाति की उत्पत्ति व्रात्य क्षत्रियो से हुई हैं। राज तरंगिणी के अनुसार मिहिर कुल के समय मे कश्मीर के नरकुल नामक स्थान मे खश जाति के लोग रहते थे। राजा क्षेम गुप्त ने इन्हे ३६ गांव जागीर मे दिये थे।

काश्मीर की रानी "दिद्दा" भी खश वश के अन्दर पैदा हुई थी ऐसा समझा जाता है। आजकाल यह जाति नेपाल मे विशेष रूप से रहती है। इस जाति के लोग सैनिक वृत्ति के होते हैं और सनातन धम का पालन करते है।

खांडेराय-रासो

नरवर राज्य के मत्री और वीर योद्धा, खाण्डेराय के पराक्रम का वर्णन करनेवाला ग्रन्थ, जिसकी रचना ईसवी सन् १७४९ मे यदुनाथ नामक कवि ने की।

इस ग्रन्थ मे सन् १७०४ से लेकर सन् १७४४ तक के मालवा के सम्पूर्ण इतिहास का वृत्तान्त दिया हुआ है।

मालवा की उत्तरी सीमा पर शिवपुरी का राज्य स्थित था। यहाँ पर कछवाह राजवश के राजाओ का शासन था। यहाँ का राजा अनूप सिंह था और खाण्डेराय उसका प्रधान सेनापति था।

खाण्डेराय का इस राज्य की वृद्धि मे बहुत बड़ा हाथ था। इसी खाण्डेराय की प्रशसा मे खाण्डेराय-रासो लिखा गया है।

स्लाम ग्रहण कर लिया, तब इस उपाधि का भी इस्लामी रण हो गया।

खान (खागान)

प्राचीन युग में मध्य-एशिया के कबीलो के सरदार को पदवी। यह पदवी ई० सन् के आरम्भ से पहले हो प्रारम्भ हो चुकी थी।

ई० सन् से १८३ वर्ष पूर्व मध्य एशिया की हूण जाति के अन्तर्गत 'माउदन' नामक एक प्रवल विजेता पुरुष हुआ। इसने अपना राज्य पूर्व मे कोरिया से लेकर वल्काश तक और उत्तर मे बैकाल से लेकर दक्षिण मे क्विन्तल पर्वतमाला तक फैला दिया था। इतने बडे राज्य का शासन बिना पूर्ण व्यवस्था के नही हो सकता था। इसलिए माउदून को अपने शासन की व्यवस्था के लिए एक शासन यत्र का निर्माण करना पडा।

इस शासन-यन्त्र का प्रधान शान्-यू कहलाता था। शान्-यू राजा या सरदार का वाचक शब्द है। यह शब्द चीनी भाषा से लिया गया था। इसी शब्द से आगे जाकर हूणो की एक शाखा तुर्क साम्राज्य के समय मे खाकान, खगान या खान शब्द की उत्पत्ति हुई। सबसे पहले अवार अथवा ज्वान-ज्वान कबीले ने खान या खाकान की उपाधि धारण की। बाद मे तो तुर्क कबीलो मे राजा के लिए यह शब्द बहु प्रचलित हो गया। मगोलवंश ने भी राजा के लिए इसी उपाधि को अपनाया और उन्ही के अनुकरण पर मध्य एशिया मे सन् १९१७ ई० तक खान की उपाधि राजा के लिए ही सुरक्षित थी।

लेकिन भारतवर्ष मे मुगलो के समय से यह पदवी टके सेर हो गयी और हरेक मुसलमान अपने आगे खान शब्द का इस्तेमाल करने लगा।

खान और तुर्क शब्द अक्सर भारतवर्ष मे मुसलमानो के ही साथ लगाये जाते हैं। मगर वास्तव मे ये शब्द मुसलमान होने के सूचक नही हैं।

इतिहास के बहुत प्राचीन समय मे जब कि पैगम्बर और इस्लाम का उदय भी नही हुआ था, तब भी तुर्क जाति और दूसरे कबीलो मे खान शब्द का प्रयोग होता था।

तुर्क जाति हूण जाति की ही एक शाखा समझी जाती थी और इस शाखा का पुराना नाम असम्सेना था। इस जाति के लोग इस्लाम के उदय से पूर्व तथा उसके उदय के कुछ पश्चात तक बौद्ध धर्म का पालन करते थ। इसी प्रकार खान शब्द भी बहुत पुराने समय से प्रचलित था। चगेज खाँ, हलाकू खाँ, इल-खान, तोवा-खान इत्यादि अनेको खान ऐसे हुए, जो मुसलमान नही थे,—अधिकाश बौद्ध-धर्म का पालन करते थे।

खान-जमा-अलीकुली

खान-जमा उजबेक वशीय हैदर सुल्तान का पुत्र था। जो सम्राट् हुमायूँ और अकबर का समकालीन था।

खान जमा-अलीकुली ने 'कन्दहार' को विजय करने मे हुमायूँ की बडी मदद की थी। इससे उसे हुमायूँ ने 'अमीर' की पदवी प्रदान की थी।

सम्राट् अकबर के राज्य पर आसीन होने के बाद शेर-शाह के सेनापति और मत्री 'हेमू' ने जब दिल्ली पर आक्रमण किया, उस समय भी खान-जमा ने ऐसी वीरता बतलाई कि हेमू घायल हो गया और उसकी सारी सेना भाग गयी।

इस बहादुरी से प्रसन्न होकर सम्राट् अकबर ने उसे 'खान जहान्' की पदवी प्रदान की।

मगर कुछ समय पश्चात् अफगानो के साथ साठ-गाठ करने के सन्देह मे सम्राट अकबर की इनके प्रति नाराजी हो गयी। और इन्हे अफगानो का षड्यन्त्र दबाने के लिए जौनपुर मे सूबेदार नियुक्त किया।

इधर खान जमा के हृदयमे भी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह की भावनाएँ पैदा होगयी और उसने सन् १५६६ ई० मे कुछ उजबेक सरदारो को साथ लेकर सम्राट के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इस पर अकबर बादशाह ने सन् १५६७ ई० मे सकरावल के मैदान मे खान-जमा से युद्ध कर उसको मार डाला।

खान-जहान-अली

सुन्दर वन को आबाद करनेवाले एक मुसलमान सरदार जिनकी मृत्यु सन् १४५९ ई० मे हुई।

खान-जहान अली बगाल के सूबेदार महम्मद शाह सुलतान के समकालीन थे। ऐसा कहा जाता है कि उस

लाम ग्रहण कर लिया, तब इस उपाधि का भी इस्लामी रण हो गया।

खान (खागान)

प्राचीन युग में मध्य-एशिया के कबीलो के सरदार की दवी। यह पदवी ई० सन् के आरम्भ से पहले ही प्रारम्भ हो चुकी थी।

ई० सन् से १८३ वर्ष पूर्व मध्य एशिया की हूण जाति के अन्तर्गत 'माउदन' नामक एक प्रबल विजेता पुरुष हुआ। इसने अपना राज्य पूर्व मे कोरिया से लेकर बल्काश तक और उत्तर मे बैकाल से लेकर दक्षिण मे क्विन्त्वल पर्वतमाला तक फैला दिया था। इतने बडे राज्य का शासन बिना पूर्ण व्यवस्था के नही हो सकता था। इसलिए माउदून को अपने शासन की व्यवस्था के लिए एक शासन-यत्र का निर्माण करना पडा।

इस शासन-यन्त्र का प्रधान शान्-यू कहलाता था। शान्-यू राजा या सरदार का वाचक शब्द है। यह शब्द चीनी भाषा से लिया गया था। इसी शब्द से आगे जाकर हूणो की एक शाखा तुर्क साम्राज्य के समय मे खाकान, खगान या खान शब्द की उत्पत्ति हुई। सबसे पहले अवार अथवा ज्वान ज्वान कबीले ने खान या खाकान की उपाधि धारण की। बाद मे तो तुर्क कबीलो मे राजा के लिए यह शब्द बहु प्रचलित हो गया। मगोलवंश ने भी राजा के लिए इसी उपाधि को अपनाया और उन्ही के अनुकरण पर मध्य एशिया मे सन् १९१७ ई० तक खान की उपाधि राजा के लिए ही सुरक्षित थी।

लेकिन भारतवर्ष मे मुगलो के समय से यह पदवी टके सेर हो गयी और हरेक मुसलमान अपने आगे खान शब्द का इस्तेमाल करने लगा।

खान और तुर्क शब्द अक्सर भारतवर्ष मे मुसलमानो के ही साथ लगाये जाते हैं। मगर वास्तव मे ये शब्द मुसलमान होने के सूचक नही हैं।

इतिहास के बहुत प्राचीन समय मे जब कि पैगम्बर और इस्लाम का उदय भी नही हुआ था, तब भी तुर्क जाति और दूसरे कबीलो मे खान शब्द का प्रयोग होता था।

तुर्क जाति हूण जाति की ही एक शाखा समझी जाती थी और इस शाखा का पुराना नाम असम्सेना था। इस जाति के लोग इस्लाम के उदय से पूर्व तथा उसके उदय के कुछ पश्चात तक बौद्ध धर्म का पालन करते थ। इसी प्रकार खान शब्द भी बहुत पुराने समय से प्रचलित था। चगेज खाँ, हलाकू खाँ, इल-खान, तोवा-खान इत्यादि अनेको खान ऐसे हुए, जो मुसलमान नही थे,—अधिकाश बौद्ध-धर्म का पालन करते थे।

खान-जमा-अलीकुली

खान-जमा उजबेक वशीय हैदर सुल्तान का पुत्र था। जो सम्राट् हुमायूँ और अकबर का समकालीन था।

खान जमा-अलीकुली ने 'कन्दहार' को विजय करने मे हुमायूँ की बडी मदद की थी। इससे उसे हुमायूँ ने 'अमीर' की पदवी प्रदान की थी।

सम्राट् अकबर के राज्य पर आसीन होने के बाद शेर-शाह के सेनापति और मत्री 'हेमू' ने जब दिल्ली पर आक्रमण किया, उस समय भी खान-जमा ने ऐसी वीरता बतलाई कि हेमू घायल हो गया और उसकी सारी सेना भाग गयी।

इस बहादुरी से प्रसन्न होकर सम्राट् अकबर ने उसे 'खान जहान्' की पदवी प्रदान की।

मगर कुछ समय पश्चात् अफगानो के साथ साठ-गाठ करने के सन्देह मे सम्राट अकबर की इनके प्रति नाराजी हो गयी। और इन्हे अफगानो का षड्यन्त्र दबाने के लिए जौनपुर मे सूबेदार नियुक्त किया।

इधर खान जमा के हृदयमे भी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह की भावनाएँ पैदा होगयी और उसने सन् १५६६ ई० मे कुछ उजबेक सरदारो को साथ लेकर सम्राट के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इस पर अकबर बादशाह ने सन् १५६७ ई० मे सकरावल के मैदान मे खान-जमा से युद्ध कर उसको मार डाला।

खान-जहान-अली

सुन्दर वन को आबाद करनेवाले एक मुसलमान सरदार जिनकी मृत्यु सन् १४५९ ई० मे हुई।

खान-जहान अली बगाल के सूबेदार महम्मद शाह सुलतान के समकालीन थे। ऐसा कहा जाता है कि उस

बारी आ गयी। फिर पेशवा की बद इन्तजामी से यहाँ की दरिद्रता और भी बढ़ गयी, जिससे लोगो ने अपना काम धन्धा छोडकर दल बाँध कर लूट-मार करना शुरू किया।

सन् १८१८ ई० मे यह प्रान्त इसी हालत मे अंग्रेजो के हाथ आया। कई वर्षों तक बलवाई भील अंग्रेजो को तग करते रहे। सन् १८२५ ई० जेंनरल 'आउटर्म' ने भीलो की फौज खडी करके इस उपद्रव को दबाया।

सन् १८५२ ई० मे यहाँ पर फिर भयकर बलवा हुआ और सन् १८५७ ई० मे 'भागोजी' और काजर सिंह के नेतृत्व में भील लोगो ने फिर उपद्रव जारी किया। मगर यह उपद्रव दबा दिया गया।

खान देश मे कई पत्थर के मन्दिर, कुण्ड और कूएँ बने हुए हैं। ये सब अधिकाश १२वी और १३ वी शताब्दी के बने हुए हैं। ये सब इमारतें पहाड़ो को काट-काट कर बनाई गयी हैं। मुसलमानी इमारतो मे 'एरडील' की मस्जिद बहुत प्रसिद्ध है। चालीस गाँव ताल्लुका की पीतलखोरा उपत्यका मे एक टूटा-फूटा बौद्ध बिहार है जो सम्भवत ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व का माना जाता है। दर्रे के नीचे पाटन का उजाडनगर है जिसमे पुरानी कारीगरी के मन्दिर और शिला लेख लगे हुए हैं। फिर सामने की ओर पहाड़ पर गुफाएँ भी बनी हुई हैं।

खान देश की भूमि बडी उपजाऊ और लहलहाती हुई है। इस क्षेत्र मे 'ताप्तीनदी' अपनी १३ सहायक नदियो के साथ १८० मील तक बहती है और उसने इस धरती को सुजला-सुफला बना रखा है। यहाँ की मुख्य पैदावार कपास और मूँगफली है।

इस जिले के अमलनेर स्थान मे प्रताप सेठ के द्वारा बनाया हुआ तत्वज्ञान-मन्दिर, तत्व चिन्तन के लिए एक सुन्दर सस्था है। प्रताप सेठ इस प्रान्त के एक अच्छे उद्योग पति थे। जिनकी बनाई हुई २-३ कपडा मिलें इस प्रान्त में अभी भी चल रही हैं।

खान-जहान लोदी

सम्राट् जहाँगीर के दरबार का एक प्रतिष्ठित मुसाहिब, जो दौलत खाँ लोदी का पुत्र था।

खान-ज्हान लोदी २० वर्ष की अवस्था मे जहाँगीर के दरबार मे उपस्थित हुआ। सम्राट् ने इसको तीन हजारी मनसब और सलावत खान की उपाधि प्रदान की। कुछ समय के बाद इसकी बहादुरी और ईमानदारी से प्रसन्न होकर बादशाह ने इसको खान-जहान की पदवी प्रदान की।

हिजरी सन् १०१८ मे बादशाह ने इसे बारहहजार सैनिको के साथ दक्षिण मे मलिक-अंबर से युद्ध करने को भेजा मगर उस युद्ध मे उसकी पराजय हुई।

उसके पश्चात् यह मुल्तान का सूबेदार और उसके पश्चात गुजरात का सूबेदार बना दिया गया।

सम्राट् जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् शाहजहाँ ने इसे मालवे का सूबेदार बनाया, मगर चूँकि सम्राट् जहाँगीर के समय में यह शाहजादा खुर्रम अर्थात् शाहजहाँ का विरोधी रह चुका था, इस लिए शाहजहाँ से यह हमेशा शकित रहा करता था।

फल स्वरूप सन् १०३९ हिजरी मे यह आगरे से निकल भागा। शाहजहाँ के सरदारो ने इसका पीछा किया, तब यह निजाम की शरण में चला गया, मगर निजाम भी इसकी पूरी सहायता न कर सका। शाही-सेना बराबर इसका पीछा करती रही और अन्त मे यह उससे लड़ता हुआ मारा गया।

खान-जहान कोकल्तास

सम्राट् औरगजेब के एक अमीर, जिनका दूसरा नाम मीर मलिक हुसेन था।

सन् १६७० ई० मे आलमगीर ने इन्हें दक्षिण का सूबेदार बनाया। सन् १६७४ ई० मे बादशाह ने इन्हे सात हजारी ओहदा और खान-जहान-बहादुर-कोकल्तास-जाफर जग का खिताब दिया।

सन् १६९७ ई० मे इनकी मृत्यु हो गयी। इन्होंने 'तारीख-आसाम' नामक आसाम का इतिहास लिखा है।

खान दौरान (१)

मुगल सम्राट् अकबर के दरबार के एक अमीर जिनका जन्म सन् १५३० ई० के करीब हुआ।

सम्राट् अकबर की मृत्यु के पश्चात् सम्राट् जहागीर ने

सन् १६०७ ई० में इनको 'शाहबेग खाँ काबुली' का खिताब दिया और उन्हें काबुल का सूबेदार बनाया।

सन् १६२० ई० में नब्बे वर्ष की उम्र में लाहौर में इनकी मृत्यु हो गयी।

खान दौरान-नसरतजंग (२)

मुगल-सम्राट शाहजहाँ के कृपापात्र एक अमीर, जो ख्वाजा हिसारी नक्शबन्दी के लड़के थे।

सबसे पहले सम्राट् जहाँगीर ने इन्हें दक्षिणप्रदेश में नियुक्त किया था। उसके बाद ये निजाम की सेवा में तथा मलिक अम्बर के पास भी रहे।

जब मुगल साम्राज्य की राजगद्दी पर शाहजहाँ आसीन हुए, तब यह उनकी सेवा में वापस आ गये। शाहजहाँ ने इन्हें तीन हजारी मनसब और 'नसीरी खाँ' की पदवी प्रदान की।

खाने जहान लोदी को दबाने के लिए शाहजहाँ ने इनको राजा जयसिंह के साथ बुरहानपुर भेजा। इसके पश्चात् अफगानिस्तान में कन्धार दुर्ग विजय करने में इन्होंने अपनी अपार वीरता का परिचय दिया।

उसके बाद यह मालवा का सूबेदार बनाये गये। बाद में इन्होंने महाबत खाँ के साथ दौलताबाद के दुर्ग पर विजय प्राप्त की। उसके पश्चात् परिन्दा दुर्ग पर इन्होंने बड़ी आसानी से विजय प्राप्त की।

इसके कुछ समय पश्चात् मालवे में जुझार सिंह बुन्देला और उसके पुत्र विक्रमाजीत ने विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह को दबाने के लिए शाहजहाँ ने इन्हें मालवे का सूबेदार बनाया। वहाँ पहुँच कर इसने जुझार सिंह और विक्रमाजीत सिंह के सिर कटवा कर बादशाह के पास भिजवा दिये। इसी प्रकार इसने कई और लड़ाइयों में भी विजय प्राप्त की। जिससे खुश होकर बादशाह शाहजहाँ ने इसे 'नसरत जंग' की उपाधि और पाँच हजारी मनसब प्रदान किया।

अपने अन्तिम समय में यह लाहौर में नियुक्त किया गया। ऐसा कहा जाता है कि वहाँ पर एक ब्राह्मण युवक को इसने जबरदस्ती मुसलमान बनाया। तब उस ब्राह्मण युवक ने एक दिन रात को इसके पेट में छुरी भोंक दी जिससे उसकी सन् १६४५ ई० मृत्यु हो गयी। इसकी लाश ग्वालियर में ले जाकर गाड़ी गयी।

खान दौरान (३)

खान-दौरान 'नसरत-जंग' के लड़के। बादशाह औरंगजेब के शासन में इन्हें पंच हजारी मनसब प्राप्त हुआ था। जिन्दगी के आखिरी वक्त सम्राट ने इन्हें उड़ीसा का सूबेदार बनाया। वहीं सन् १६६७ में इनकी मृत्यु हो गयी।

खानदौरान (४)

बादशाह फर्रुखसियर के दरबार के एक अमीर।

बादशाह मुहम्मद शाह के शासन में सैयद हुसेनअली खाँ का कत्ल और उनके भाई कुतुब उल-मुल्क की गिरफ्तारी हो जाने पर खान दौरान को सन् १७२१ में अमीर-उल-उमरा की पदवी दी गयी। उसके पश्चात् बादशाह ने उन्हें 'शम्स-उद्दौला' का भी खिताब प्रदान किया।

सन् १७३९ में यह नादिर शाह से लड़ते हुए लड़ाई में मारे गये। इनका असलीनाम ख्वाजा मुहम्मद आसीम था।

खार-वेल (सम्राट्)

कलिंग देश के सुप्रसिद्ध राजा 'खार-वेल'। जिनका जन्म ईसवी सन् पूर्व १६० में हुआ।

सम्राट खार-वेल का वंश एल-वंश के नाम से प्रसिद्ध है और यह एल-वंश चेदि-राजवंश की एक शाखा था जिसमें 'छिपुराज' हुआ था।

सम्राट् अशोक ने चक्रवर्ती-पद पाने के लिए कलिंग-देश पर आक्रमण किया था। जिसमें करीब एक लाख आदमी मारे गये थे। उस समय कलिंग मौर्य-साम्राज्य का अंग हो गया था।

अशोक के पश्चात् मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर सम्राट् सम्प्रति आये। सम्प्रति के शासन-काल के अन्तिम वर्षों में कलिंग फिर स्वतन्त्र हो गया। और वहाँ पर एक नये राज-वंश का उदय हुआ। इस नये राजवंश की स्थापना सम्भवतः

'क्षेमराज' नामक व्यक्ति ने की थी और उसीने कलिंग को पुनः स्वतंत्र किया था।

सम्राट् खारवेल इसी क्षेमराज के पौत्र थे। उनका जन्म ईसा से पूर्व १६० वर्ष के लगभग हुआ। १५ वर्ष की आयु मे उन्हे युवराज पद प्राप्त हुआ और २४ वर्ष की आयु मे ईसवी पूव १६६ मे उनका राज्याभिषेक हुआ।

सम्राट् खारवेल ने अपने राज्यकाल का सारा हाल एक विशाल शिलालेखमे खुदवादिया था। यह शिलालेख उडीसा प्रदेश के पुरी जिले में स्थित भुवनेश्वर से तीन मील की दूरी पर विद्यमान खण्डगिरि के उत्तरीभाग पर हाथी गुम्फा-नामक गुफा-मन्दिर की छतपर खुदाहुआ है। १७ पक्तियो का यह महत्व पूर्ण लेख ८४ वर्गफीट क्षेत्र मे लिखा हुआ है। लेख की भाषा अर्ध मागधी तथा जैन-प्राकृत मिश्रित अपभ्रश है। इस लेख का हिन्दी-अनुवाद हम डा० ज्योति प्रसाद जैन लिखित भारतीय इतिहास नामक ग्रन्थ से यहाँ पर उद्धृत करते हैं।

"अर्हन्तों एव सर्व सिद्धों को नमस्कार करके, चेदि-राजवंश की प्रतिष्ठा के प्रसारक, प्रशस्त एव शुभ लक्षणों से युक्त, चारों दिशाओं के आधार-स्तभ, अनेक गुणों से विभूषित, कलिंग-देश के अधिपति, एलवशी महाराज, महामेघवाहन—श्री खार-वेल द्वारा यह लेख खुदवाया गया" अपनी आयु का चौबीसवाँ वर्ष समाप्त होने पर पूरे यौवन-काल में उस उत्तरोत्तर वृद्धिमान महान् विजेता का कलिंग के तृतीय राजवश में आजीवन के लिए महा-राज्याभिषेक हुआ।

अभिषेक होने के पहले वर्ष में ही उसने आधी-तूफान आदि दैवी प्रकोपों से नष्ट हुए कलिंग नगर की राजधानी के गोपुर, प्रकार, प्रासादों आदि का जीर्णोद्धार करवाया। शीतल जल के सरोवरो एव झरनो आदि के बाँध बनवाए, उद्यानों का पुनर्निर्माण करवाया और अपने ३५ लाख प्रजाजनों को सुखी किया।

अपने शासन के दूसरे वर्ष में उसने शातकर्णी राजा की परवाह न करके घुड़सवार, हाथी, पैदल और रथोंकी विशाल सेनाको पश्चिम दिशा में भेजो तथा काश्यप क्षत्रियों के सहायतार्थ मूषिकों की राजधानी का विध्वंस करवाया।

अपने शासन के तीसरे वर्ष में इस गन्धर्वविद्या विशा-रद नरपति ने नृत्य-संगीत वादित्र के प्रदर्शनों तथा अनेक उत्सवों एव समाओं के आयोजन द्वारा अपने राज्य के नागरिकों का मनोरञ्जन किया।

अपने शासन के चौथे वर्ष में उसने अपने पूर्ववर्ती कलिंग युवराजों के निवास के लिए निर्मित 'विद्याधर-निवास' में निवास करते हुए उन 'रठिक' और 'भोजक' राजाओं से, जिनके राज्मुकुट और राजछत्र नष्ट कर दिये गये थे, रत्नो की भेंट लेकर अपने चरणों में नमस्कार करवाया।

अपने राज्यके पाँचवेंवर्ष में राजा उस-नहर को अपनी राजधानी तक लिवा लाया, जिसे महावीर-सम्वत् १०३ में नन्दराजा ने सबसे पहले खुदवाया था।

अपने राज्य के छठे वर्ष में उसने राजसूय यज्ञ किया। प्रजाजनों के करादि माफ किये। दीन-दुखियो पर कृपा दिखायी।

राज्य के सातवें वर्ष में उसको वगदेशीय रानी से एक पुत्र को प्राप्ति हुई।

अपने राज्य के आठवें वर्ष में खारवेलने विशाल सेना के साथ उत्तरापथ की विजय-यात्रा की, मगध पर आक्रमण किया, गोरथ-गिरि पर भीषण युद्ध करके राज गिरि-नरेश को त्रस्त किया। उसके भयसे यवन-राज 'दिमित्र' भी अपनी समस्त सेना, वाहन, आदि को यत्र-तत्र छोड़कर मथुरा से भाग गया।

अपने शासन के नौवें वर्ष में कल्पवृक्ष के समान उस राजा ने याचकों को चालक युक्त घोड़े, हाथी, रथ, मकान, शरण-गृह आदि दान किये। ब्राह्मणों को भरपेट भोजन कराया और अर्हन्तों की पूजा की। उसने प्राचीन नदी के दोनों तटो पर ३८ लाख मुद्रा व्यय करके महाविजय प्रसाद नामक सुन्दर और विशाल राज महल बनवाया।

अपने राज्य के दसवें वर्ष में उसने अपनी सेनाओं को विजय-यात्रा के लिये फिर से उत्तरापथ की ओर भेजा। फल स्वरूप उसके सब मनोरथ पूरे हुए।

ग्यारहवें वर्ष में उसने दक्षिण देश को विजय किया। 'पिथुण्ड नगर' का उसने विध्वस किया और ११३ वर्ष से संगठित चले आये 'तामील'-राज्यों के सगठन को छिन्न-भिन्न किया। (पाठान्तर—श्री केतुभद्र की तेरहसौ

वर्ष प्राचीन जिन द्वारा निर्मित प्रतिमा का जलूस निकाला जिसकी स्थापना पूर्ववर्ती राजाओं ने पिथुण्ड नगर में की थी।)

बारहवें वर्ष में उसने उत्तरापथ के राजाओं में अपने आक्रमणों द्वारा आतंक पैदा किया। उन्हें अस्तव्यस्त कर दिया। मगध की जनता में भारी भय का संचार किया। अपने हाथियों को 'गांगेय' नामक राज-प्रासाद में प्रविष्ट किया और मगध राज बृहस्पति से अपने चरणों में प्रणाम करवाया। पूर्व काल में नन्द राजा के द्वारा अपहृत 'कलिंग-जिन' की प्रतिमा को तथा अंगराज के बहुमूल्य रत्नों एवं धन सम्पत्ति को विजित सम्पत्ति के रूप में अपने घर वापस लाया। इस सम्पत्ति से उसने अनेक मन्दिरों पर ऐसे शिखर बनवाए जिनमें रत्नों के द्वारा बहुमूल्य पच्चीकारी की गयी थी। इसी वर्ष उसने दक्षिण के पाण्ड्य राजा से अभूतपूर्व एवं आश्चर्य जनक जल पोतों से भरे हुए उपहार घोड़े हाथी मणि-माणिक्य, मुक्ता आदि, कर और भेंट के रूप में प्राप्त किया।

अन्त में अपने राज्य के तेरहवें वर्ष में इस राजा ने सुपर्वत-विजय-चक्र में स्थित कुमारी पर्वतपर अपने राजभक्त प्रजा जनों द्वारा पूजे जाने के लिए उन अर्हन्तों की स्मृति में निषद्यायें निर्माण करायीं, जो निर्वाण प्राप्त कर चुके थे।

तपस्वी मुनियों के निवास करने के लिए गुफाएँ बनवाईं। स्वयं उपासक के व्रत ग्रहण किये और अर्हन्त् मन्दिर के निकट उसने एक सुन्दर तथा विशाल सभा-मण्डप बनवाया। जिसके मध्य में एक बहुमूल्य रत्न जटित मान-स्तम्भ स्थापित किया गया। उक्त सभा मण्डप में उसने उन समस्त जैन मुनियोंका सम्मेलन किया जो चारोंदिशाओं से उसमें सम्मिलित होने के लिए आये थे।

इस मुनि सम्मेलन में राजा ने भगवान की दिव्य ध्वनि में अवतरित उन द्वादशांगी द्वादशांग श्रुत का पाठ कराया जो कि महावीर-संवत् १६४ से निरन्तर ह्रास को प्राप्त होते चले आ रहे थे।

इस प्रकार उस क्षेमराज वृद्धिराज भिक्षुराज धर्म-राज नरेश ने भगवान् की उक्त कल्याणकारी वाणी के सम्बन्ध में प्रश्न करते हुए उसका श्रवण और चिन्तन करते हुए अपना समय बिताया।

विशिष्ट गुणों के कारण वह समस्त धर्मों का आदर करने वाला, धर्म संस्थाओं का उद्धार, सुधार एवं संस्कार करने वाला, अप्रतिहत चक्रवाहन सामन्तों का तथा विजयी एवं साम्राज्य उपार्जक और संरक्षक, राजर्षियों के वंश में उत्पन्न महा विजयी राजचक्री ऐसा राजा खार वेल था।"

भारतीय इतिहास के विश्लेषण की दृष्टि से यह शिला-लेख अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। प्राचीनता की दृष्टि से सम्राट अशोक की धर्म लिपियों के बाद इसी शिला लेख का नंबर आता है। प्राचीनयुग के जितने भी शिलालेख मिले हैं उन सब शिला लेखों में यह शिलालेख सर्वाङ्गपूर्ण है। इस लेख में तत्कालीन परिस्थिति जन-संख्या वंश देश और जाति इत्यादि अनेक प्रकार के महत्त्व-पूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख मिलता है। इस देशके लिए भारतवर्ष का नाम, इसी शिलालेख में सबसे पहले खुदा हुआ मिलता है।

इस शिला लेख से यह बात भी स्पष्ट रूप से मालूम हो जाती है कि सम्राट खार-वेल जैन धर्म के अनुयायी थे। जैन-धर्म के प्रति उनकी बहुत श्रद्धा थी और उस समय जैन धर्म के आगम-ज्ञान का जो ह्रास हो रहा था उसके लिए वह दुःखी था। उसी के उद्धार के लिए उन्होंने मुनियों का सम्मेलन और सरस्वती आन्दोलन का प्रारंभ किया था।

इस शिला लेख का अन्वेषण सन् १८२५ ई० में सर्व प्रथम 'स्टर्लिङ्ग' नामक एक अंग्रेज विद्वान् ने किया था। तब से आज तक अनेक पश्चिमी और भारतीय विद्वानों ने इस लेख के ऐतिहासिक महत्त्व का अध्ययन किया है। खारवेल के द्वारा निर्मित गुफा-मन्दिरों की कला पर भी लोगों ने बड़ा आदर प्रदर्शित किया है।

खार-वेल के पश्चात् लगभग दो सौ वर्षों तक उसके वंशजों ने कलिंग देश पर शासन किया। पाताल पुरी नामक गुफा को उनके वंशज महाराज 'कुदेपश्री' ने निर्मित करवाया था।

खार-वेल के एक वंशज वक्र देव के पुत्र महेन्द्रादित्य गन्धर्व सेन धर्म मित्र ने मालवे के अन्तर्गत उज्जयिनी नगरी में ईसवी सन् पूर्व ७४ में राज्य स्थापित कर 'धर्म-मित्र' वंश

की स्थापना की थी। गर्द-भिल्ल ने राज्य के मंद मे मदोन्मत्त हो जैन मुनि, कालिकाचार्य की वहिन 'सरस्वती' का अपहरण करलिया था। तव कालिकाचार्य ने प्रयासकरके शक-राजाओ के द्वारा उज्जैन पर आक्रमण करवाके ईसवी सन् ६१ में गर्द भिल्ल को राज्यसे हटवा दिया। लेकिन उसके पराक्रमी पुत्र विक्रमादित्य ने ईस्वी पूर्व ५७ मे शको को मार भगाया और मालव-राज्य को स्वतत्र कर काफी समय तक राज्य किया।

ईसाकी पहली शताब्दी मे खार-वेल वश मे फूट पड जाने के कारण दक्षिण के सात वाहन राजा ने कलिंग देशको विजय कर लिया।

(डा० ज्योतिप्रसाद जैन . भारतीय इतिहास)

खादी

चरखे पर हाथ से कते हुए तथा हाथ से वुने हुए वस्त्रो को भारतीय भाषाओ मे 'खादी' या 'खद्दर' कहा जाता है। इसी वस्त्र ने भारतीय राजनीति के इतिहास मे वडा महत्व ग्रहण कर लिया था। जिसके कारण भारतीय स्वाधीनता-सग्राम के इतिहास मे खादीका नामभी अमर होगया। सन् १९२० से लेकर सन् १९४८ तक के 'गाधी युग' में खादी, स्वाधीनता, त्याग और गाधीवाद के प्रतीकरूप मे इतिहास के पृष्ठों पर अङ्कित है।

चरखे पर या तकली पर सूत का कातना इतिहास के किस युग मे मनुष्य ने सीखा, इस बात के कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, पर मोहन-जोदडो, क्रीट और वेबिलोनियन सभ्यता के युग मे भी मनुष्य वस्त्र-निर्माण कला का ज्ञान रखता था—ऐसे प्रमाण वहा की खुदाइयों मे मिले हैं।

कपड़ा बनाने की मशीनो और इञ्जिन का आविष्कार होने के पहले हाथ की कताई और बुनाई से ही सारे वस्त्र बनाये जाते थे। इस हस्तकला में मनुष्य ने इतनी अधिक उन्नति करली थी कि ढाके की मलमल के एक थान से जो बास की नली में रक्खा हुआ था, अम्बाडी सहित हाथी ढक गया था।

मगर वस्त्र-उद्योग की ये सब महीन हस्त कारीगरियाँ राजा, महाराजा और धनिक लोगो के उपयोग मे आनेवाली थी। समाज का बहुसंख्यक समाज तो मोटे सूत और कम परिश्रम से वनी हुई मजवूत खादी को पहन कर ही अपना जीवन-यापन करता था।

इस खादी के द्वारा जहाँ लाखो मनुष्य अपना तन ढकते थे। वहाँ लाखो गरीब स्त्री-पुरुषो की इससे जीविका भी चलती थी, और इस प्रकार के तत्कालीन सामाजिक ढाचे मे खादी एक मजवूत आर्थिक स्तम्भ की तरह वनी हुई थी।

मशीन-युग के आविष्कार के पश्चात्, कम दाम मे ऊँचे दर्जे के वस्त्र उपलब्ध होने लगे। ऊँचे दर्जे के वस्त्रो को देखकर लोगो मे वस्त्रो के सम्बन्ध मे शौकीनी की भावनाएँ भी जागृत होने लगी और सारा जनसमाज खादी की तरफ से हट कर इस नवीन वस्त्र उद्योग की तरफ आकर्षित होने लगा।

इस प्रकार खादी उद्योग मौत के मुँह मे जाने लगा और सन् १८६४ से (जब पहली कपडा मिल भारत मे लगी) लेकर सन् १९२० तक तो यह वहुत ही कम हो गया।

सन् १९१९ मे महात्मा गाधी अखिल भारतीय नेता के रूप मे अग्रेजी सलतनत के खिलाफ सत्याग्रह का अभियान लेकर प्रकट हुए। इस आन्दोलन का नेतृत्व उन्होने केवल अग्रेजी सल्तनत को हटा कर राष्ट्रीय आजादी प्राप्त करने तक ही सीमित न रक्खा, बल्कि नैतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी क्षेत्रो मे एक अभूतपूर्व क्राति पैदा कर देने की विशाल योजना के सिद्धान्त पर प्रारम्भ किया। वे बार-बार कहते थे कि राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त होने पर भी अगर मनुष्य के नैतिक, आर्थिक और सामाजिक धरातल का सतुलन कायम न रहा तो इतिहास ऐसी आजादी का गुणगान नही करेगा और वह आजादी शायद टिकाऊ भी न रहे।

इसलिए मनुष्य के नैतिक और आर्थिक धरातल का सतुलन बनाये रखने के लिए उन्होने चर्खा चलाने और खादी पहनने का अनिवार्य कार्यक्रम रक्खा।

खादी के आर्थिक और नैतिक पहलू पर महात्मा गाधी ने बडी निष्ठा के साथ मनन किया और उस मनन के पश्चात् इस खादी-आन्दोलन को सफल बनाने के लिए वे पूरी शक्ति से जुट गये।

उन्होने बतलाया कि—

(१) खादी किसी भी देश के आर्थिक अङ्ग की रीढ बन सकती है। देहातो मे लाखो आदमी ऐसे हैं जो खेती बाड़ी

के कामों से बचनेवाले समय को व्यर्थ बरबाद करते हैं। अगर ऐसे लोग फुरसत के समय में चरखा कात कर सूत तैय्यार करें और उस सूत के वस्त्र बनावें तो उससे वे अपनी वस्त्र सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरी कर सकते हैं जिससे वस्त्रों में खर्च होनेवाला उनका पैसा बचेगा। बचे हुए कपड़े को वे हाट में बेच कर उससे पैसा उपार्जन करेंगे और उनके बचे हुए समय का भी उपयोग होगा।

(२) इस आर्थिक पहलू से भी खादी का नैतिक पहलू विशेष महत्वपूर्ण है। खादीसस्ती होने से ऊँचे से लेकर नीचे तक समाज के सब लोग आसानी से पहन सकते हैं। इसलिए समाज के अन्दर कीमती और ऊँचे वर्ग के कपड़ों को पहनने से जो एक विषमता की भावनाएँ पैदा होती हैं और मनुष्य के अन्दर अपने कपड़ों की वजह से अपने आपको दूसरों से ऊँचा और दूसरों से अलग समझने की जो हीन भावना पैदा हो जाती है उससे मनुष्य बच जायेगा। और वह (Simple Leaving & High Thinking) सादा जीवन और ऊँचे विचार की आदत का अभ्यस्त हो जायगा।

(३) आर्थिक और नैतिक पहलू की तरह इसका वैज्ञानिक पहलू भी महत्वपूर्ण है। खादी मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है। यह गर्मी में ठण्डी और सरदी में गर्म रहती है। इसके पहनने से मनुष्य पसीने से होने वाले चर्म-रोगों से भी बच जाता है।

इस सारी विवेचना के साथ महात्मा गांधी ने अपनी धीर गम्भीर आवाज में सारे देश के अन्दर इस उद्योग को तेजी के साथ बढ़ाने की अपील की। कांग्रेस वालों के लिए तो यह अनिवार्य कर दी गई।

खादी आंदोलन के संचालन में महात्मा गांधी को जिन लोगों ने अन्तरात्मा की आवाज के साथ योग दिया उनमें डा० राजेन्द्र प्रसाद सेठ जमनालाल बजाज, श्रीकृष्णदास जाजू, विनोबा भावे इत्यादि लोग विशेष उल्लेखनीय हैं।

देखते ही देखते सारे देश में खादी-आन्दोलन की बाढ़ आ गई। देहातों से लेकर शहरों तक कस्बों और शहरों की धूम मच गई। जमनालाल बजाज की सुव्यवस्थित योजना से सारे देश के शहरों और कस्बों में छोटे-छोटे खादी-भण्डार खुल गये। ये खादी भण्डार देहात में कते हुए सूत को खरीदते और उस सूत का कपड़ा बना कर थोड़े मुनाफे पर बेचते थे इस प्रकार सारे देश में खद्दर ही खद्दर दिखाई पड़ने लगा। खद्दर की टोपी और खद्दर का थैला मानों सभ्यता के ज्ञापक चिन्ह की तरह हो गया।

इस आन्दोलन से एक दूसरा अप्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि महात्मा गांधी ने सतोगुण का धरातल देकर जिस अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रारम्भ किया था खादी-आन्दोलन अप्रत्यक्ष रूप से उस सतोगुणीय धरातल को बनाने में मदद कर रहा था। खादी पहनते ही मनुष्य के अन्दर एक उज्ज्वल और नैतिक विचारधारा का जन्म होता था। वह समझने लगता था कि अगर मेरे से कोई गलत या हिंसात्मक काम हो जावेगा तो लोग मुझे और मेरी इस पोशाक को क्या कहेंगे !

इन बातों के बावजूद भी देश में हिंसात्मक आन्दोलन हुए और गांधीजी को अपने आन्दोलन भी वापस लेने पड़े। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि खादी ने अपना काम किया और कई बार परिस्थिति को नियन्त्रण में रखा।

इस प्रकार सन् १९१९ से १९४८ तक खादी भारत के इतिहास में एक प्रमुख अध्याय के रूप में जीवित रही। उसने सारे स्वाधीनता के युग में सैनिकों के अन्दर त्याग नैतिकता और बलिदान की भावनाओं को जागृत रखा। गांधीजी के तरकस का यह सब से प्रभावशाली तीर था।

१५ अगस्त सन् १९४७ को भारत स्वाधीन हुआ और ३० जनवरी सन् १९४८ को महात्मा गांधी शहीद हो गये। उनके साथ ही एक प्रकार से गांधी-युग समाप्त हो गया।

अब भारत के इतिहास में एक दूसरे युग का प्रारम्भ हुआ जिसे 'स्वाधीनता-युग" कहा जाता है। कुछ लोग इसे 'नेहरू-युग' भी कहते हैं।

इस युग में मनुष्य की भावनाओं ने एक दूसरा रूप ग्रहण किया। अभी तक आजादी के जिस पौधे को लोगों ने अपने त्याग से और शहीदों ने अपने रक्त से सींच कर बड़ा किया था वह अब फल देने लग गया था। अब उनकी भावनाएं उस पौधे को सींचने की अपेक्षा जल्दी से जल्दी इसके फल लूटने को व्यग्र हो रही थी। स्वाधीनता के एक ही मीठे घूँट ने सारे देश की त्याग की भावनाओं को ग्रहण की भावनाओं में बदल दिया।

मनुष्य वे ही थे, समाज वही था, मगर भावनाएँ वदल गई थी, सोचने का तरीका वदल गया था। त्याग की जगह ग्रहण, सादगी की जगह वैभव और सेवा की जगह स्वार्थ की मानव पूजा करने लगा।

इन सारी भावनाओ का असर "खादी" और "खादी आन्दोलन पर भी पडा। खादी अब गरीवी और सादगी की जगह वैभव की प्रतीक हो गई। शुद्ध खादी के दर्शन करना हो तो वह अब सडको पर चलती-फिरती नही मिलेगी। अब उसके दर्शन पचास-पचास हजार की मोटरो के अन्दर बैठे हुए मिनिस्टरो और सम्भ्रान्त काग्रेसियो के शरीर पर ही होवेंगी। अब खादी गरीव की झोपडियो में नही वगीचो के वीच बने हुए विशाल वगलो के एअरकण्डीशन कमरो में ही दिखाई देगी या बडे-बडे नाच और सगीत के सास्कृतिक प्रोग्रामो में आगे की कुरसियो पर बैठे हुए विशिष्ट पुरुषो के शरीर पर ही उसके दर्शन होगे। अव वह पीछे की कुरसियो पर बैठना पसन्द नही करती।

गरीबो की इस खादी को वेचनेवाले खादी-भण्डार भी अब छोटी-छोटी दुकानो पर गरीव दुकानदारो के अधीन नही चलते। अव शहर या टाऊन के सबसे महत्वपूर्ण मोर्चों पर बडे-बडे विशाल हालो मे सजे हुए खादी भण्डार आपको दिखाई देंगे। जिनमे ऊँची २ तनखा पाने वाले ऊँचे-ऊँचे कर्मचारी आपको खादी वेचते हुए दिखाई देंगे। खादी भण्डारो का मासिक व्यय हजारो रुपयो की सख्या मे होता है। इस खादी का निर्माण करने वाले कारीगर अभी भी चाहे भूखो मरते हो, मगर इन कर्मचारियो के वैभव और खादी भण्डारो के वैभव मे कोई कमी नही है। अब इन खादी भण्डारो की दुकानदारो मे खरीददार भी गरीब लोग नही जाते। बडे-बडे मिनिस्टिर और काग्रेसी पूँजीपति ही इनके खरीददार रहते हैं।

इतिहास का जैसा विचित्र परिवर्तन इस खादी के इतिहास मे देखने को मिलता है वह शायद दूसरी जगह देखने को नही मिलेगा। नैतिकता और त्याग यह शुभ्र प्रतीक अब वैभव और विलास का प्रतीक बन गया है। भारतवर्ष के मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की स्पष्ट उपलब्धि खादी के इतिहास मे देखने को मिल जाती है।

खानाबदोश

कबीले के रूप मे घूमने वाली जातियो को 'खानावदोश' कहते हैं।

खानावदोशो का इतिहास बहुत प्राचीन काल से प्रारभ होता है। ऐसा समझा जाता है कि जब तक मनुष्य को कृषि कर्म और मकान बनाने की कला का ज्ञान नही हुआ था, तव तक वह खानाबदोश के रूप मे समूह बाँध कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमता रहता था।

ससार के प्राय सभी देशो मे खानावदोश जातियाँ छोटे-बडे रूपो मे रही, मगर मध्य एशिया के अन्दर इन जातियो ने जितना जोर पकडा, उतना शायद अन्यत्र देखने को नही मिलेगा। इन जातियो ने धीरे-धीरे स्थायित्व प्राप्त-कर वडे-बडे साम्राज्यो की भी स्थापना की।

बहुत सी खानावदोश कौमे मध्य एशिया मे पैदा हुई, जिनमें से कई पश्चिम की ओर योरोप मे चली गयी। कुछ कौमो ने पूरब मे चीन के अन्दर जाकर उपद्रव मचाए और कुछ दक्षिण मे भारत के अन्दर उतरआई। हूण, शक, तुर्क, उजबक, सुनहरी कबीला, सफेद कबीला—और इस तरह की बहुत सी कौमे लहरो की तरह एक के वाद एक आती रही। सफेद हूणो ने भारत मे आकर लूटपाट मचाई और 'एटीला' के हूणो ने योरोप मे जाकर वर्वादी का ताण्डव मचाया। सेलजुक तुर्कों ने मध्य एशिया से आकर बगदाद के साम्राज्य पर कब्जा किया। तुर्कों की एक दूसरी शाखा उस्मानी तुर्क ने 'कुस्तुतुनियाँ' पर कब्जा कर योरोप मे वीएना के दरवाजे तक पहुच गये। मगोलिया से मंगोल आक्रमणकारियो ने आकर ससार मे तहलका मचा दिया। वे लोग योरोप के मध्य तक पहुच गये और चीन को भी अपने शासन मे ले लिया।

इस प्रकार मध्य एशिया के खानाबदोशो ने अपनी विशाल शक्ति से ससार की राजनीति मे वहुत वडे-बडे उलट-फेर किए।

मगर दूसरे देशो की खानाबदोश जातियाँ इतनी उग्र और बर्बर नही हुई। वे लोग छोटे-छोटे कबीलो मे रहकर किसी प्रकार अपना जीवन-यापन करते हैं। उत्तरी ध्रुव प्रदेश मे रहने वाली 'एस्कीमो जाति' मध्य आस्ट्रेलिया की 'अरूटा जाति' अफ्रीका की 'बुशमेन' लकी की 'वेद्दा' उत्तरी

अमेरिका की 'एस्कीमो' अफ्रीका की 'बुशमैन' और 'मसाई'—ये सभी खानाबदोश जातियाँ अपने छोटे-छोटे समूह बनाकर घूमती रहती हैं और शिकार तथा पशुपालन के द्वारा अपना गुजारा करती हैं।

भारतवर्ष में भी बहुत से खानाबदोश कबीले हैं, जिनमें 'कंजर' 'भील' 'सांसी' 'बंजारे' 'बागड़ी' 'कालबेलिए' 'गाड़ोलिया लुहार' इत्यादि जातियाँ उल्लेखनीय हैं। कंजर, सांसी इत्यादि जातियाँ चोरी का काम करने के लिए प्रसिद्ध हैं और अन्य जातियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के धन्धे करके अपना गुजारा करती हैं।

खालसा

सिक्ख-सम्प्रदाय के १० वें गुरु गोविन्द सिंह के द्वारा स्थापित एक सिक्ख-सम्प्रदाय। जिसकी स्थापना उन्होंने सन् १६९९ ई० में की।

'खालसा' शब्द की व्युत्पत्ति अरबी-शब्द 'खालिस' से हुई है जिसका अर्थ शुद्ध और पवित्र होता है।

सिक्ख-सम्प्रदाय मुगल सम्राटों की दृष्टि में हमेशा कांटे की तरह खटकता रहता था। यह एक साहसी और बहादुर लोगों का संगठन था। जिसकी शक्ति को बढ़ती हुई मुगल-सम्राट नहीं देखना चाहते थे। इसी प्रवृत्ति को लेकर सम्राट जहांगीर ने गुरु 'अर्जुन देव' को और 'औरंगजेब' ने गुरु तेग बहादुर को प्राणदण्ड की सजा दी। औरंगजेब ने वीर बालक 'हकीकत राय' को भी जिन्दा ही दीवार में चुनवा दिया था।

ये सारी घटनाएं ऐसी थीं जो किसी भी जाति को अपनी आत्मरक्षा के लिए सावधान कर सकती थीं।

गुरु गोविन्द सिंह ने इन सारी घटनाओं पर पूरी तरह से अध्ययन कर आत्मरक्षा के लिए एक नवीन संगठन की नींव डाली। उन्होंने सन् १६९९ ई० में बैसाखी मेले के दिन एक सार्वजनिक सभा में म्यान से तलवार निकालकर एक ऐसे वीर को ललकारा जो अपना मस्तक देने को तैयार हो। जो व्यक्ति इस बलिदान के लिए खड़ा हुआ उसको लेकर वह डेरे में गये और खून से लथपथ तलवार लेकर बाहर आये। फिर उन्होंने दूसरे व्यक्ति को ललकारा। इस प्रकार ५ व्यक्तियों को लेकर उन्होंने ऐसे बहादुर व्यक्तियों को चुन लिया जो अपना मस्तक देने में जरा भी नहीं हिचकते थे।

वास्तव में गुरु गोविन्द सिंह ने उन लोगों को मारा नहीं था। उनको भीतर ले जाकर वे एक बकरे को मारते और उसके खून से सनी तलवार को लेकर बाहर निकलते थे। मगर लोग यही समझते थे कि वे उस मनुष्य को मार कर बाहर आ रहे हैं।

फिर उन्होंने उन पांचों व्यक्तियों को बाहर लाकर उन पर अभिमन्त्रित जल का छिड़काव करके उनको 'पञ्चप्यारे' की उपाधि से अलंकृत किया और उन्हीं को गुरु के स्थान पर प्रतिष्ठित किया और स्वयं भी उनके पास से दीक्षा ग्रहण की।

इसके बाद खालसा-सम्प्रदाय का उद्घाटन हुआ। खालसा-धर्म में दीक्षित प्रत्येक व्यक्ति के नाम के साथ सिंह शब्द लगाना अनिवार्य कर दिया गया और प्रत्येक खालसा सम्प्रदायी के लिए केश कंघा कच्छ कड़ा और कृपाण—ये पांच 'ककार' धारण करना अनिवार्य कर दिया।

इस प्रकार एक ही दिन में गुरु गोविन्द सिंह ने 'वाह गुरु का खालसा' और 'वाह गुरु की फतह' का नारा लगा कर सिक्ख-सम्प्रदाय को सैनिक-सम्प्रदाय के रूप में बदल दिया। जिसने अन्त तक मुगल साम्राज्य से कठोर संघर्ष करके अन्त में 'रणजीत सिंह' के नेतृत्व में विशाल खालसा राज्य को स्थापित किया।

गोविन्द सिंह की मृत्यु के बाद 'बन्दा बैरागी' ने एक सेनापति के रूप में खालसा-सम्प्रदाय का नेतृत्व संभाला। उसने मुगल-साम्राज्य के साथ संघर्ष में अपूर्व बहादुरी का परिचय दिया मगर अन्त में पकड़ा गया और मारा गया। उसके बाद भी मुसलमान शासकों द्वारा खालसा-सम्प्रदाय पर भयंकर अत्याचार हुए। जिसके परिणामस्वरूप सन् १७४८ की २९ मार्च को अमृतसर में खालसा-दल की स्थापना हुई। इस अवसर पर खालसा को ११ दलों में विभाजित किया गया। प्रत्येक दल ने अलग-अलग एक नेता चुना और सरदार सिंह 'जस्सा आलिया' इसके प्रधान नेता चुने गये।

सन् १७६२ में अहमद शाह ने खालसा दल पर हमला और करारी चोट की मगर अन्त में १२ मिसलों के रूप में यह दल अपना राज्य स्थापित करने में समर्थ हुआ। और

रणजीत सिंह के समय मे इस खालसा शक्तिका चरमोत्कर्ष हुआ। आज भी यह खालसा सम्प्रदाय पञ्जाब के अन्दर अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

खावन्द मीर

फारसी और अरबी भाषा के एक लेखक और विद्वान, जिनका जन्म अनुमानत सन् १४७५ के आसपास हिरात नगर में हुआ था।

सन् १४९८ मे इन्होने फारसी के प्रसिद्ध ग्रन्थ रोजत्-उल-शफा नामक ग्रन्थ के आधार पर 'खुलासत-उल अखबार' नामक एक सुन्दर ग्रन्थ का निर्माण किया।

सन् १५२७ मे जब हिरातनगर के अन्तर्गत बहुत उत्पात हुआ तब ये हिरात छोडकर मौलाना साहबउद्दीन और मौलाना इब्राहीम कानूनी नामक दो विद्वानो के साथ भारत चले आये। सन् १५२८ मे आगरा आकर इन्होने सम्राट बाबर से मुलाकात की। बाबर ने इन्हें उचित सम्मान प्रदान किया।

बाबर की मृत्यु के पश्चात् ये हुमायूँ के साथ रहे और 'कानून-हुमायूँ' नामक एक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का उद्धरण अबुल फजल ने "अकबरनामा" मे दिया है।

इन ग्रन्थों के अलावा इनकी और भी कई रचनाएँ हैं। जिनमें 'मसीर-उल मुलुक' 'अखबार-उल-अखबार' 'दस्तूर-उल-वजरा' 'मुन्तखिब तारीख' इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

सन् १५३५ मे इनकी मृत्यु हो गयी।

खाल्दिया

प्राचीन युग में मध्य एशिया मे 'दजला' और 'फरात' नदी के बीच में बसा हुआ एक भूभाग, जो प्राचीन सुमेरियन और बेबीलोनियन सस्कृतियो का केन्द्र स्थान था।

दजला और फरात नदी की हरी भरी घाटी में कई सभ्यताओका जन्म और विकास हुआ। बाइबिल मे इस स्थान को 'ईडन गार्डन' के नाम से सम्बोधित किया गया है और बतलाया गया है कि स्वर्ग से पतित होकर 'हजरत आदम' सबसे पहले इसी घाटी मे अवतीर्ण हुए थे।

इस क्षेत्र मे सबसे पहले, यहाँ के मूल-निवासियो की सभ्यता का प्रसार हुआ। इस सभ्यता को 'ईलम सभ्यता' कहते हैं।

दजला नदी के पूर्वी भाग के ऊँचे पठारो पर यह राज्य फैला हुआ था और इसकी राजधानी 'सूसा' थी। इस सभ्यता का समय ईसा से ४५०० वर्ष पहले कूता जाता है।

सुमेरियन सभ्यता

इसके पश्चात् यहाँ की सभ्यता मे दूसरी सभ्यताओ के रक्त का मिश्रण होतागया। इन सभ्यताओ मे पहली सभ्यता सुमेरियन सभ्यता मानी जाती है। सुमेरियन-सभ्यता के सस्थापक लोग कौन थे? किस मार्ग से उन लोगो ने यहाँ पर प्रवेश किया—इस बारे मे विवाद अभी तक समाप्त नही हुआ है। सुमेरियन शब्द का प्रयोग सबसे पहले प्रसिद्ध इतिहासकार 'ओपार्ट' ने किया था। उसका अर्थ होता है—कालेसिर वाले लोग। दजला-फरात की इस सुमेरियन-सभ्यता का समय इतिहासकार ऊली (Wolley) ईसवी सन् ४५०० से पूर्व मानते हैं। सुमेरियन सभ्यता के लोग लेखन कला से परिचित थे। इनकी प्राचीन लिपि पत्थरो पर लिखी हुई पायी गयी है। 'रोजेस्टा' का पत्थर इसका सबसे बडा प्रमाण है। यह लिपि ईसा से ३२०० वर्ष पहले की कूती गई है।

सुमेरियन सभ्यता का प्रामाणिक इतिहास तेलोनगर से पुरातत्ववेत्ता 'डी० सर जक' को व्यवस्थित रूपसे प्राप्त हुआ था। यह मिट्टी की तीस हजार ईटो पर खुदा हुआ है। इसे ससार का प्रथम पुस्तकालय कहा जा सकता है। इस साहित्य से सुमेरियन सस्कृति के राजाओ की व्यवस्थित वशावलियो का पता चलता हैं।

बेबीलोनियन सभ्यता

जिस समय सुमेरियन सभ्यता शिथिल हो रही थी, उसी समय 'सेमेटिक' जाति के एक समुदाय ने उस पर आक्रमण करके उसे नष्ट कर दिया। ये लोग 'अनातोलिया' की ओर से आकर फिलिस्तीन और मेसोपोटेमिया मे आकर बस गये थे। इन्होंने अपनी राजधानी 'अक्काद नगर' मे स्थापित की थी। बेबीलोनियन सभ्यता के अन्तर्गत दर्शन-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, खगोल-शास्त्र, व्यापार, चिकित्सा, स्थापत्य-कला, चित्रकला इत्यादि सभी प्रकार के ज्ञान की सर्वतोमुखी उन्नति हुई थी। इसी सभ्यता के अन्तर्गत सम्राट् 'हम्मूरबी'

नामक एक प्रतापी सम्राट हुआ जिसने ईसवी पूर्व २१२३ से २०८१ तक—४२ वर्ष राज्य किया। यही पहला सम्राट था जिसने कानून के महत्त्व को समझ कर अपने राज्य-शासन का सारा विधान मिट्टी की शिलाओं पर खुदवा दिया। यह विधान संसार का सबसे पहला लिखित विधान माना जाता है।

इसके अतिरिक्त इस सम्राट ने अपने शासनकाल में बड़ी बड़ी नहरें सड़कें किले और भव्य मन्दिरों का निर्माण करवाया।

आसुरी सभ्यता

इसके बाद बाबुली-साम्राज्य को ध्वंस करके दजला-फरात के ऊपर वाले दोआबे में बेबीलोन से करीब तीन सौ मील उत्तर बसने वाली असुर-जाति ने इस क्षेत्र पर अधिकार किया। इस जाति ने समूचे मेसोपोटेमिया पर अधिकार करके एक नयी आसुरी सभ्यता का विकास किया। यह सभ्यता ईसवी पूर्व ७२० से लेकर ६२६ तक चलती रही। इसका सबसे प्रतापी और अन्तिम सम्राट असुर बनिपाल था। इसका शासनकाल ईसवी सन् पूर्व ६६८ से लेकर ईसवी सन् पूर्व ६२६ तक रहा।

यह शासक असीरियन संस्कृति का सबसे पराक्रमी और क्रूर शासक था। यहूदियों का तो इसने कत्ले-आम करवा दिया तभी से यहूदी इसकी राजधानी 'निनवे' को 'रक्तपात नगर' के नाम से स्मरण करते हैं।

सबसे पहले इसने मिस्र में जाकर वहाँ की अराजकता का दमन किया और वहाँ के समृद्ध नगर 'थीबीज' को लूट लिया। इसके बाद इसने 'ऐलाम' राज्य पर आक्रमण करके वहाँ की राजधानी 'सूसा' को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। वहाँ की भूमि में नमक डाल कर और उसमें कटिदार झाड़ियाँ लगा कर उसे कृषि के अयोग्य बना दिया और वहाँ के राजा का सिर काट कर राजधानी निनवे के सिंह द्वार पर लगा दिया। वहाँ के सेनापति 'तिमार्नु' की खाल अपने सामने खिंचवाई। इसके बाद अपनी राजधानी में भारी विजयोत्सव मनवाया और इस जलूस में अपने रथ में घोड़ों की जगह चार राजाओं को जोता। जलूस में आगे बल्लम पर एलाम के राजा और उसके सेनापति के सिर टंगे हुए थे।

मगर इतना अत्याचारी और क्रूर होते हुए भी यह साहित्य का बड़ा प्रेमी था। बेबीलोन से प्राप्त सभी साहित्य का अनुवाद करवा कर उसे तीस हजार ईंटों पर खुदवाकर उसे अपने राजकीय भंडार में सुरक्षित रखवा दिया। इसी साहित्य के सहारे आज वहाँ के इतिहास पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

असुर बनिपाल के मरते ही सारे साम्राज्य में अराजकता फैल गयी। इस अराजकता का लाभ उठा कर खाल्दिया' में पुनः राज्य-सत्ता की प्रतिष्ठा हुई और 'नेबोपोलेसर' नामक एक सरदार के नेतृत्व में खाल्दिया ने फिर अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और ईरान इसराईल तथा मिस्र तक पर भी अपना अधिकार कर लिया।

नेबोपोलेसर के पुत्र नेबूचडनेजर ने खाल्दिया की शक्ति को चोटी तक पहुँचा दिया। इसने 'जेरूसलेम' का भयंकर विध्वंस किया। मगर इसके बाद ईरानी-साम्राज्य की शक्ति ने खाल्दिया पर आक्रमण करके हमेशा के लिए उसे समाप्त कर दिया।

खासिया

भारत के आसाम राज्य में ब्रह्मपुत्र और सुरमा नदी के बीच में पड़ने वाली पहाड़ियाँ। जिनकी तलहटी में सुरमा-सी अधवाटी भी बसी हुई है और यह प्रान्त खासिया-जयन्तिया जिले के नाम से प्रसिद्ध है। इस जिले में संसार में सबसे अधिक वृष्टि होती है। चेरापूंजी में वार्षिक वर्षा का औसत ४२८ इंच है। आसाम का सुप्रसिद्ध हिल स्टेशन शिलांग भी इसी जिले में पड़ता है। इस जिले का क्षेत्रफल ५५४१ वर्गमील और जन-संख्या ४६२१५५ है।

खासिया जिले के उत्तर में कामरूप और नवगांव पूर्व में नवगांव और कछार, दक्षिण में सिलहट और पश्चिम में गारो पहाड़ है।

अंग्रेजी राज्य के समय में यह जिला तीन विभागों में बँटा हुआ था जिसमें एक भाग 'स्वाधीन खासिया' था। अंग्रेजों के अधिकृत खासिया में २४ परगने और जयन्ती जिले में २१ परगने पड़ते थे।

सन् १७६५ ई में बंगाल की दीवानी मिलने पर 'ईस्ट-इण्डिया कम्पनी' की दृष्टि सिलहट की ओर गयी।

उस समय इस क्षेत्र मे जगली लोग रहते थे। उनका आचार-विचार और धार्मिक विश्वास भारत के दूसरे लोगो से नही मिलता था। यहाँ पर नारगी और चूना बहुत अच्छा पैदा होता था। इसी लालच मे कुछ अंग्रेज चूना और नारगी का व्यवसाय करने यहाँ बस गये।

सन् १८२६ मे नोङ्ग-खालोग नामक परगने के शासक ने उत्तरी आसाम और सुरमाउपत्यका के बीच सडक बनाने के लिए कई अग्रेजो को ठीका दिया था। उसी समय कुछ अग्रेज नोङ्ग-खालोग मे जाकर रहने लगे थे। खासिया लोगो के साथ उनका व्यवहार अच्छा न था। इसलिए सन् १८२९ ई० की चौथी अप्रैल को खसिया लोगो ने अग्रेजो पर आक्रमण करके उनके कई अधिकारियो और सिपाहियो को मार डाला। तब खासियो को दबाने के लिए ब्रिटिश सेना को भेजा गया।

इस ब्रिटिश सेना का भी खासियो ने बहुत लम्बे समय तक धनुष-बाणो से मुकाबला किया और सैकडो अग्रेजो को मार डाला, मगर अन्त मे सन् १८३३ ई० मे उनको अग्रेजो का अधिकार स्वीकार करना पडा।

खासिया-जाति

आसाम-राज्य के खासिया जयन्तिया क्षेत्र मे बसनेवाली एक जाति जिसे कुछ लोग मगोल रक्त से और कुछ प्राचीन खस जाति के रक्त से उत्पन्न मानते हैं।

इस ग्रन्थ मे पहले हम "खश" जाति का वर्णन कर आये हैं। कई इतिहासकारों के अनुसार "खासिया" उसी खश जाति के वशज है। खश जाति पूर्वकाल मे मध्य एशिया, तरिम उपत्यका मे व्यापक शासन करती थी वही से यह जाति नैपाल और आसाम की पहाडियो मे आकर बस गई।

खासियाजाति की सभ्यता अभी तक मातृमूलक प्रणाली पर ही चल रही है। इस सभ्यता मे माता के वश के ऊपर ही परिवार चलता है। पिता का वश इस सभ्यता मे अत्यन्त गौण माना जाता है। विवाह होने के साथ ही वर कन्या के घर चला जाता है और जीवन भर उसी परिवार का सदस्य बन कर रहता है। विवाह के उपरान्त उसकी मिहनत और कमाई का अधिकार पत्नी परिवार को होता है। वशावली नारी के नाम से चलती है और सम्पत्ति की स्वामिनी भी नारी ही होती है।

इस सभ्यता मे विवाह के पश्चात् 'तलाक' भी जायज माना जाता हैं। स्त्री यदि बाँझ हो या पुरुष नपुसक अथवा किसी और व्याधि से ग्रस्त हो तो वे माँ-बाप या सरदार के सामने जाकर कारण बताकर विवाह बन्धन तोड देते हैं। इस अवसर पर स्त्री और पुरुष को ५-५ कौडियाँ अदल बदल करने को दी जाती हैं। फिर उनसे पूछ कर वे कौडियाँ फेंक दी जाती हैं। कौडिया फेक देने पर विवाह का बन्धन सदा के लिए टूट जाता है। एक बार विवाह-बन्धन टूट जाने पर फिर उनका दूसरे के साथ विवाह नही हो सकता। मगर दूसरे परिवार मे विवाह करने का अधिकार दोनो को होता है। इस जाति मे विधवा-विवाह को जायज माना जाता है, किन्तु बहु विवाह इसमे निषिद्ध माना जाता है।

खासिया-जाति के लोग ईश्वर और पुनर्जन्म को मानते हैं, पर हिन्दू-धर्म या ब्राह्मणो पर उनकी कोई श्रद्धा नही है। इस जाति के लोग उपदेवता की पूजा कियाकरते हैं। बीमार होने पर ये किसी प्रकार की औषधि नही करते, मगर जिस देवता के कोप से वह रोग पैदा होता है, उसकी शान्ति के लिए बलि प्रदान करते हैं। मृत्यु के पश्चात् ये शव का दाह करते हैं। दाह करने के बाद उसकी भस्म को जमीन मे गाडकर उस स्थान पर एक चबूतरा बना देते हैं।

खासिया-जाति मे खासी, सनतेंग, वार और लिंगम्—ये चार शाखाएँ प्रधान हैं। खासियो के प्रत्येक कबीले मे राजा, मत्री, पुरोहित और जन-समाज—ये चार श्रेणियाँ होती हैं। हर एक कबीले मे स्त्री ही सर्वोच्च शासक होती है और वह अपने पुत्र अथवा भाजे को लिंगडोह (मुख्य मत्री) बना कर उसके द्वारा शासन करती है।

ख्वारेज्म

मध्य एशिया का एक सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक भूभाग। जिसमे कई सभ्यताओ और साम्राज्यो का उत्थान-पतन हुआ है।

ख्वारेज्म के उत्तर की तरफ सिरदरिया (यक्सर्तनदी-) और अराल समुद्र की प्राकृतिक सीमा बनी हुई है। उसके

पूरब में किज़िल कुम की विस्तृत लाल मरुभूमि है। जो शत्रु के लिए किसी दुरूह पर्वत श्रेणी से कम नहीं है। ख्वारेज्म के दक्षिण में काराकुम की काली ,मरुभूमि उसे मेव से अलग करती है। दक्षिण की ओर से अमु नदी ख्वारेज्म में प्रवेश करती है और यही इस प्रदेश को समृद्ध बनाने का प्रधान कारण है मगर एक स्थान पर नदी के दोनों किनारों पर पहाड़ और रेगिस्तान के कारण मार्ग इतना तंग होजाता है कि वहाँ शत्रु को आसानी से रोका जा सकता है। इस प्रकार ख्वारेज्म सिर्फ राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं प्राकृतिक दृष्टि से भी एक स्वतन्त्र इकाई है। बहुत कम अपवादों के साथ यह सोवियत क्रान्ति के समयतक अपनी सत्ता को अलग कायम रखे रहा। ख्वारिज्म की भूमि पश्चिम मे कास्पियन समुद्र और दक्षिण में खुरासान से अलग करने वाले रेगिस्तान काराकुम और पूर्व में बुखारा से अलग करने वाले रेगिस्तान से घिरी हुई बालुका-समुद्र में द्वीप की तरह है। उत्तर में अराल समुद्र के दोनो तरफ भी मरुभूमि है। इस प्रकार बालुका-राशि के भीतर रहते भी ख्वारेज्म हमेशा ही बड़ा उर्वर और समृद्ध रहा। योरोप के साथ होने वाले व्यापार का भी यह केन्द्र रहा।

ख्वारेज्म का इतिहास अत्यन्त प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इस भूमि में कई संस्कृतियों ने जन्म लिया और उनका पतन हुआ। ईस्वी पूर्व चौथी से तीसरी सहस्राब्दी तक इस क्षेत्र में 'केल्त मीनार' संस्कृति के अवशेष मिलते हैं।

केल्त मीनार अमुनदी से निकलकर उत्तर की ओर जाने वाली पुरानी नहरों में से एक है। इसी नहर के नाम पर सोवियत इतिहासकारों ने इस संस्कृति का नाम केल्त-मीनार रखा है। यह संस्कृति 'मुत्र प्रसिद्ध' संस्कृति की परम्परा में थी।

प्रसिद्ध केल्त-मीनार संस्कृति के पश्चात् ख्वारेज्म में ईस्वी पूर्व २री सहस्राब्दी के अन्तर्गत 'ताज़ाबगयाब' संस्कृति का उदय होता है। यह ताम्रयुग की संस्कृति थी।

ईस्वी पूर्व प्रथम सहस्राब्दी के पश्चात् इतिहास के दूसरे चरण में जब हम आगे बढ़ते हैं तो ख्वारेज्म की भूमि में हमें नहरों का एक जाल बिछा हुआ दिखाई देता है। यह नहरों का युग था और इस प्रकार की नहरें बिना किसी स्थायी शासन के बनना संभव नहीं थी। इससे पता लगता है कि ख्वारेज्म व ईरान में अखामनी साम्राज्य के कायम होने के पूर्व ही किसी स्थिर शासन का उदय हो चुका था। और यह स्थिर शासन सम्भवतः 'मस्सागत' जाति का रहा होगा।

ईस्वी पूर्व ७ वीं सदी में उनका केन्द्रीय शासन स्थापित हो चुका था। नहरों के उस युग में कई नगर भी बस चुके थे जिनके अवशेष अभी भी मरुभूमि में दबे हुए मिलते हैं।

ईस्वी पूर्व ५५ में ईरान के महान् शासक 'दारयव' ने ख्वारेज्म को अपने विशाल साम्राज्य में विलीन कर लिया, मगर ख्वारेज्म की भौगोलिक स्थिति प्रतिकूल होने के कारण यह प्रान्त स्थायीरूप से उसके अन्तर्गत नहीं रहा और ईस्वी पूर्व ४ थी सदी के प्रारंभ में 'कंग-जाति' ने वहाँ पर अपना राज्य कायम किया। उसके बाद जब 'सिकन्दर महान्' ने अखामनी-साम्राज्य को ध्वस्त करके मध्य एशिया में विशाल 'यवन-राज्य' की स्थापना की उसके बाद भी कंग जाति का संघर्ष ग्रीक लोगों के साथ चलता रहा।

ईसा की पहली से तीसरी सदी तक 'कुषाण-साम्राज्य' का एशिया में विस्तार हुआ। कुषाणों का साम्राज्य पूर्व भारत से लेकर पश्चिम में अराल समुद्र तक पहुँच गया था। कुषाणों का साम्राज्य एक सभ्य साम्राज्य था और उसके अन्दर, जिस प्रकार भारत की सर्वतोमुखी उन्नति हुई, उसी प्रकार ख्वारेज्म की भूमि भी उस युग में सभ्यता के ऊँचे शिखर पर पहुँच गयी।

ईसा की तीसरी से पाँचवीं शताब्दी तक की ख्वारेज्म की संस्कृति को 'कुषाण-अफ्रीग' संस्कृति कहा जाता है। यह संस्कृति प्राचीन और अर्वाचीन ख्वारेज्म के इतिहास का सन्धिकाल थी। इस युग में ख्वारेज्म के नगरों को यहाँ का रेगिस्तान निगलने लग गया था। और नहरें भी बन्द होने लग गयी थीं। इस मरुभूमि में हाल ही में जो खुदाई हुई है उसमें कई प्रकार की कलाओं के ध्वंसावशेष, सिक्के, मूर्तियाँ और चमड़े के पट्टों पर लिखे हुए 'कंग-भाषा' के अभिलेख मिले हैं, जिनसे उस समय की—नगर-निर्माण-कला और भवन-निर्माण-कला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

ख्वारेज्म-शाह

इसके पश्चात् ख्वारेज्म के इतिहास में एक नया मोड़ आता है और यह प्रदेश ख्वारेज्म-शाह 'मामून' के अधिकार में गया। 'मामून' सुप्रसिद्ध आक्रमणकारी महमूद गजनवी का

बहनोई था। अपने साले मुहम्मद गजनवी का 'खुतवा' उसने ख्वारेजम मे फिराया। इससे नाराज होकर वहाँ की जनता ने ख्वारेजम-शाह मामून को कैद करके मार डाला।

इससे क्रुद्ध होकर मुहम्मद गजनवी ने ख्वारेजम पर आक्रमण करने के लिए सेना के साथ प्रस्थान किया। और ३ जुलाई सन् १०१७ को उसने ख्वारेजम की राजधानी 'कात' पर कब्जा कर लिया। वही पर उसने मामून को मारनेवाले तीनो विद्रोहियो को हाथी के पाँव के तले कुचलवा कर मरवा डाला, और मामून के ७वर्ष के भतीजे'अबुल-हारिश' को, जिसको विद्रोहियो ने गद्दी पर बैठाया था—पैरों मे वेडी डालकर गजनी ले गया।

इस प्रकार ख्वारेजम-शाह का पुराना वश खत्म हो गया। उसकी जगह पर महमूद गजनवी ने अपने प्रधान हाजिब अल्तूनताश को ख्वारेजमशाह बनाकर एक नये वश की स्थापना की।

अल्तून ताश के बाद उसका पुत्र हारून ख्वारेजम की गद्दी पर बैठा। यह एक प्रभावशाली शासक था। इसने सलजुकी तुर्कों से मित्रता करके अपनी शक्ति को बहुत बढा लिया। इस वश का अन्तिम ख्वारेजम-शाह 'इस्माइल' था।

इस वश के खतम हो जाने के पश्चात् सल-जुकी तुर्कों ने तीसरे ख्वारेजम वश की स्थापना की। इस तीसरे वश का स्थापक 'अनोस्तगीन' नामक एक गुलाम था जिसको 'सल्-जुकी' अमीर विल्गतगीन ने 'गर्जिस्तान' के एक आदमी से खरीदा था। अनोस्तगीन ने अपनी योग्यता से बहुत तरक्की की। तरक्की करते-करते वह ख्वारेजम का राज्यपाल भी बन गया।

अनोस्तगीन की मृत्यु सन् १०९७ ई० मे हुई। उसके बाद उसका पुत्र कुतुबुद्दीन मुहम्मद ख्वारेजम की गद्दी पर बैठा और उसने ख्वारेजम-शाह की उपाधि धारण की। इसने कराखिताई आक्रमणकारियो को हराकर उन्हें वार्षिक कर देने के लिए मजबूर कर दिया।

सन् ११२७ ई० मे कुतुबुद्दीन की मृत्यु हो गयी और उसकी जगह उसका पुत्र अतसिज ख्वारेजम की गद्दी पर बैठा। अभीतक ख्वारेजम के शासक सल्जुकी तुर्कों के इशारो पर नाचते थे, मगर अतसिज ने इस बोझ को उतार फेंका और स्वतंत्र रूप से अपने राज्य का विस्तार करने लगा। इससे नाराज होकर सल-जुकी सुल्तान ने आक्रमण करके सन् ११३८ ई० मे अतसिज को ख्वारेजम से भगा दिया। मगर सन् ११४० मे वापस आकर अतसिज ने ख्वारेजम के राज्यपाल 'सुलेमान' को भगा कर वहाँ पर पुन अधिकार कर लिया।

सन् ११५६ मे अतसिज की मृत्यु हो गयी और उसकी जगह उसका पुत्र 'इल्-अर्सलन' ख्वारेजम की गद्दी पर बैठा। इल् अर्सलन के समय मे सन् ११५७ ई० सलजुकी सम्राट् 'सिंजर' का ७५ साल की उम्र में देहान्त हो गया। उसके साथ ही तत्कालीन एशिया की सबसे बडी सल्तनत का अन्त हो गया और इस सल्तनत को किरमानी, सीरियन, ईराकी और रूमी सलजुकी शासकों ने आपस मे बाँट कर टुकडे-टुकडे कर दिया।

इस कारण अब एशिया मे ख्वारेजम शाह इल्-अर्सलन ही एशिया का सबसे शक्तिशाली मुसलमान सुल्तान हो गया। फिर भी खुरासन के कराखिताई शासक अभी भी बलवान् थे। और ख्वारेजम शाह को उन्हे वार्षिक कर देना पडता था। सन् ११७१ मे वार्षिक कर न चुकाने के कारण करा-खिताई शासक 'गुरखान' की सेना ने ख्वारेजम पर आक्रमण किया। मार्च सन् ११७२ ई० में इल् अर्सलन मारा गया।

इल्-अर्सलन के पश्चात् उसका पुत्र 'तकाश' कराखिताइयो की मदद से सन् ११७२ के दिसम्बर मे ख्वारेजम की गद्दी पर बैठा। तकाश ने सन् १२०० तक ख्वारेजम का शासन किया। इसके शासन-काल मे ख्वारेजम-साम्राज्य की और भी वृद्धि हुई। सन् ११८२ ई० मे उसने बुखारा पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। और वहाँ हिदायत दी कि 'खुतबे मे खलीफा के नाम के साथ उसका नाम भी पढ़ा जाय।'

जिस समय शहाबुद्दीन गोरी काबुल और भारत मे 'कुफ्र' का चिराग बुझाकर इस्लाम का झडा फहराने मे लगे हुए थे, उस समय तकाश, किपचक भूमि को काफिरो से रहित करने मे लगा हुआ था।

सन् ११८७ ई० मे तकाश ने नेशापोर पर अधिकार कर लिया और खुरासान के शासक सिंजरशाह को पकडकर अन्धाकर दिया। और 'मेर्व' पर भी अधिकार कर लिया।

इसके बाद उसने 'खिरवरिया' के उत्तर में गैर-इस्लामी तुर्कों पर आक्रमण किया। तुर्कों का सरदार 'कूचू खान' था। इस लड़ाई में एक सेनापति के विश्वासघात से तकाश की बहुत बड़ी पराजय हुई। मगर उसके बाद एक लड़ाई में उसने कूचूखान को बन्दी बना लिया।

इसके बाद तकाश ने खलीफा की सेना पर भी आक्रमण कर उसको भी हराया। मगर इसके बाद अब्बासी खलीफाओं के साथ जो झगड़ा उत्पन्न हुआ उसमें ख्वारज्मी सेना की बड़ी मिट्टी पलीद हुई।

सन् १२   ई में तकाश की मृत्यु हुई। तकाश की मृत्यु हो जाने पर उसका दूसरा लड़का मुहम्मद कुतुबुद्दीन और अलाउद्दीन उपाधि के साथ ख्वारेज्म की गद्दी पर आसीन हुआ। उसके भतीजे हिन्दू-खान ने उसके खिलाफ विद्रोह करके खुरासान के कई शहरों पर अधिकार कर लिया। मगर महमूद ने सन् १२०१ ई तक खुरासान के सारे राज्य को वापस ले लिया और हिरात नगर पर भी चढ़ाई कर घेरा डाल दिया। इससे नाराज होकर भारत-विजेता शहाबुद्दीन गोरी ने ख्वारेज्म पर आक्रमण कर दिया। मगर कराखताइयों की मदद से मुहम्मद ने गोरी को 'अन्दखुद' नामक स्थानपर भारी पराजय दी और शहाबुद्दीन को भागना पड़ा।

अब मुहम्मद ख्वारेज्म शाह का सितारा पूरी बुलन्दी पर आ गया। सारे खुरासान पर उसका कब्जा हो गया और इस्लाम का सुल्तान भी अब गोरी की जगह ख्वारेज्म शाह हो गया।

११ मार्च सन् १२ ६ ई को जातीय बदला लेने के लिए जब हिन्दुओं ने शहाबुद्दीन को मार डाला तो इस्लामी दुनिया में मुहम्मद ख्वारेज्म-शाह का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं रहा। गोरी-साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया और उसका फायदा उठाकर दिसम्बर सन् १२ ६ में ख्वारेज्म-शाह ने 'हिरात' नगर में विजयोन्माद के साथ प्रवेश किया।

सन् १२ ६ ई में उसने कराखिताई राज्य पर भी चढ़ाई की और उत्तरार और तराज तक का प्रदेश उनसे छीन लिया।

दूसरा अभियान उसने सन् १२१ ई में किया। बुखारा पर अधिकार करके वह समरकन्द की ओर बढ़ा गया। समरकन्द के करा खिताई शासक उस्मान ने उसका स्वागत किया। मगर इसके कुछ समय बाद 'उस्मान' से उसका झगड़ा हो गया और उसने समरकन्द पर आक्रमण करके उस पर कब्जा कर लिया।

अभी तक ख्वारेज्म की राजधानी 'गुरगांज' थी जो एक कोने में पड़ती थी। इसलिए वहाँ से इतने बड़े विस्तृत साम्राज्य का संचालन होना कठिन था। क्योंकि अब ख्वारेज्म का साम्राज्य अफगानिस्तान और ईरान तक फैल गया था। इसलिए अब 'समरकन्द' को ही मुहम्मद ने अपनी राजधानी बनाया। वहाँ पर उसने एक जामा मस्जिद और एक विशाल महल बनवाना प्रारंभ किया।

सन् १२१५ ई० में उसने अपने पुत्र 'जलालुद्दीन' को गोरियों के राज्य का शासक बनाया। इसके बाद बगदाद के अब्बासी खलीफा 'नासिर' के साथ उसका बड़ा झगड़ा हो गया। खलीफा ने षड्यन्त्र के द्वारा मुहम्मद की हत्या करवाने की कोशिश की। उसके कुछ पत्र मुहम्मद के हाथ पड़ गये। जिससे क्रुद्ध होकर ख्वारेज्म-शाह ने अपने यहाँ के इमामों से एक फतवा निकलवा कर नासिर को खलीफा की गद्दी से हटवा दिया और सैयद अलाउलमुल्क 'तिरमिजी' को खलीफा बनाकर इसके नाम से 'खुतबा' पढ़वाया।

सन् १२१७ में उसने सारे ईरान पर पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया किन्तु इसी समय 'बगदाद' में भेजी गयी एक फौज 'कुर्दिस्तान' के बर्फीले तूफान में पड़ कर नष्ट हो गयी।

इसके बाद ख्वारेज्म-शाह के दिन पलट गये। सुप्रसिद्ध मंगोल आक्रमणकारी 'चंगेज खाँ' ने पहले तो ख्वारेज्म-शाह की विशाल शक्ति को देख करके उससे सुलह करने का प्रयत्न किया मगर ख्वारेज्म-शाह अपनी शक्ति के मद में इतना मतवाला हो रहा था कि उसने चंगेज खाँ की परवाह नहीं की और धीरे धीरे इन दोनों के सम्बन्ध आपस में बिगड़ने लगे। सन् १२१८ ई में चंगेज खाँ का अभियान प्रारम्भ हो गया। चंगेजखाँ की सेना ख्वारेज्म-शाह की सेना से कम थी। मगर वह सुव्यवस्थित और अनुशासन पूर्ण थी। ख्वारेज्म-शाह की सेना बहुत विशाल थी मगर उसमें हिम्मत और साहस की कमी थी उसने कहीं भी चंगेज खाँ की सेना से जमकर लड़ाई नहीं की। चंगेजखाँ की सेना के सामने वह एक जगह से दूसरी जगह बराबर भागता रहा। अन्त में एक

द्वीप मे जाकर दिसम्बर सन् १२२० ई० मे वह मर गया। उसके पास 'कफन' का कपडा भी नही था, जिसके लिए एक अनुचर ने अपना एक चोगा दिया।

एक रूसी इतिहासकार ने लिखा है कि—"यह था अन्त एक ऐसे बादशाह का जिसने विशाल सलजुकी साम्राज्य के अधिकाश भाग को एक छत्रछाया के नीचे ला दिया था। मङ्गोल आक्रमण के समय उसने भयङ्कर कायरता दिखलाई।"

इसके बाद चङ्गेज खां के भयङ्कर आक्रमण से सारा ख्वारेजम-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

ख्वारेजम की सभ्यता और शिक्षा

ख्वारेजम बडा समृद्ध प्रदेश था। समृद्ध के साथ साथ शिक्षा और सभ्यता मे भी यह प्रदेश बहुत आगे बढ़ा हुआ था। इस क्षेत्र मे कई बडे-बडे विचारक और लेखक हुए। सन् ११९६ मे 'शहरिस्तानी' ख्वारेजम का बहुत अच्छा विचारक हुआ। वह एक बहुत बुद्धिमान विचारक था। उसके ज्ञान और गभीर विचार शक्ति को देख कर लोग आश्चर्य करते थे। मगर गम्भीर दार्शनिक होने के कारण वह धर्म-शास्त्रो पर अन्धविश्वास न करके उन पर आलोचनात्मक विचार करता था। इसी लिए लोग उसे नास्तिक कहते थे। राजवश के अन्तिम समय मे कवि 'फखरुद्दीन राजी' भी ख्वारेजम दरबार मे रहा।

इसी तरह गुरगाज में वकील शहाबुद्दीन खीवगी ने एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की थी जो शायद मध्यएशिया का सबसे बडा पुस्तकालय था।

मङ्गोलो के आक्रमण के समय जब उसे वहाँ से भागना पड़ा तो अपनी पुस्तकें छोडते समय उसे बडा दुख हुआ। भागते-भागते भी उसने कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें साथ लेली, मगर वह अन्त मे मङ्गोलो के हाथ मारा गया।

उसके मरने के बाद इतिहासकार नसावी ने उन किताबो को फिर से सग्रह किया, मगर उसे भी अन्त मे वहाँ से भागने को मजबूर होना पडा और अन्त मे मङ्गोलो के आक्रमण मे वह सुन्दर पुस्तकालय नष्ट हो गया।

खीवा-साम्राज्य

सन् १५१० ई० मे सुप्रसिद्ध उजबेक-विजेता 'महम्मद शेबानी' को हराकर ईरान के सफ्फावी बादशाह 'शाहा-इसमाइल' ने ख्वारेजम को तीन हिस्सो मे बाँट कर वहाँ अपने तीन गवर्नर नियुक्त किये। (१) खीवा हजारास्प (२) उरगज और (३) वेसिर।

चूँकि ईरान के शाही खानदान ने मुसलमानो के शीया धर्मको राज्य-धर्म घोषित किया था और ख्वारेजम मे सुन्नी-धर्म की प्रधानता थी। इसलिए राज्य के विरुद्ध वहाँ विद्रोह होते रहते थे। इसी विद्रोह के फलस्वरूप सन् १५१२ 'हुशामुद्दीन कतल नामक एक धर्म नेता ने उजबक बकाखान के पुत्र 'इल्वर्स' को लाकर वेसिर की गद्दी पर बैठा दिया।

उसके बाद यह राजवश 'खीवा-खान' के नाम से पूरी दो शताब्दी तक चला। इस समय मे १९ शासको ने इस प्रदेश पर शासन किया।

इस राजवश मे "अबानेक" "हाजीमुहम्मद" (१५५६-१६०२) इस्फन्दयार, (१६२२-१६४२) और अब्दुल गाजी नामक खानो के नाम विशेष उल्लेखनीय है। अब्दुल गाजी (१६४३-१६६३) बडा क्रूर और अत्याचारी शासक था। इसने अपने राज्य मे तुर्कमान जाति को जडमूल से समाप्त करने का प्रयास किया। सन् १६४४ मे अराल-तट से आकर इसने खीवा पर अधिकार कर लिया और सार्वजनिक क्षमादान की घोषणा करके भगे हुए तुर्कमान परिवारो को लौटने के लिए कहा। मगर ये लौटे हुए तुर्कमान सरदार जब जियाफत मे खाने पर बैठे उसी समय इन सबको एक सिरे से कत्ल करवा दिया। इसी प्रकार जहाँ पर भी उसने तुर्कमानो को देखा सबको कत्ल करवा दिया।

इतना क्रूर और हत्यारा होने पर भी अबुल गाजी इतिहास और साहित्य का बडा प्रेमी था। उसने एक ऐसे इतिहास ग्रथ का निर्माण किया जो आज भी इतिहासकारो के लिए प्रकाश का काम देता है।

सन् १७१४ मे यादगार खान के साथ ही इस खान वश का शासन ख्वारेजम मे समाप्त हो गया और इनकी जगह पर बाहर से नये नये लोगो ने यहाँ आकर शासन किया।

सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति के बाद यह सारा प्रदेश सोवियट शासन के उजबेकिस्तान गणराज्य मे विलीन हो गया।

(म० ए० इतिहास)

—

खिजर खाँ

सैयद-वंश में उत्पन्न पंजाब का सूबेदार 'खिजर खाँ' जिसने सन् १४१४ ई० में दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

खिजर खाँ अपने को 'तैमूर लंग' का प्रतिनिधि घोषित करता था। सन् १४१४ में उसने दिल्ली पर कब्जा कर लिया दिल्ली के आसपास के थोड़े से प्रदेश पर उसका राज्य था। उसके बाद उसके तीन उत्तराधिकारियों ने दिल्ली पर राज्य किया। सन् १४५० ई० में इस वंश के अन्तिम शासक 'अलाउद्दीन' को 'बहलोल खाँ' लोदी ने दिल्ली के सिंहासन से हटा कर स्वयं दिल्ली का सुल्तान बन बैठा। तब अलाउद्दीन दिल्ली का परित्याग करके बदायूँ में जाकर एक साधारण सामन्त की तरह रहने लगा।

खिताई

मध्य एशिया में रूसी सत्ता के अन्तर्गत 'सिरदरिया' नदी के दक्षिण भाग में स्थापित खिताई-राज्य।

खिताई तुर्क राज-वंश से एक भिन्न जाति थी और इस जाति का स्वतन्त्र राज्य था। इन्हीं खिताइयों ने आगे चल कर भविष्य में चीन के बहुत से भाग को विजय कर लिया था। इसीलिए चीन का एक नाम 'खिताई' भी पड़ गया था।

इसी खिताई के नाम से 'नान खिताई' चीनी रोटी का नाम करण हुआ। हमारे देश में बिकने वाली 'नान खताई' भी उसी रोटी की याद दिलाती है।

सन् ९९६ ई० में खिताई-शासक ने चीन की अधीनता के विरुद्ध विद्रोह करके अपने को सबसे बड़ा 'खगान' घोषित कर दिया। उसको दबाने के लिए चीनी सेनाएँ भेजी गयीं मगर खिताई-शासक ने उन सेनाओं को हराकर भगा दिया। तब पूर्वी तुर्क के खगान 'मी-चो' ने खिताई-लोगों पर आक्रमण करके उनकी भारी पराजय दी।

इसके बाद भी खिताइयों के उपद्रव चलते रहे और वे चीन की उत्तरी सीमा से चीन पर बराबर आक्रमण करते रहे।

१०वीं और ११वीं सदी में सुंग-राजवंश के शासन-काल में उत्तरी चीन पर खिताई लोगों के आक्रमण बहुत बढ़ गये थे। और सुंग-राजवंश ने इनको दबाने के लिए दूसरे तातारियों के 'किन' नामक कबीले से मदद माँगी। किन लोगों ने आकर खिताई-आक्रमणकारियों को तो दबा दिया, मगर उनकी जगह पे खुद उत्तरी चीन के मालिक बन बैठे और सुंग-राजवंश को दक्षिणी भाग में चला जाना पड़ा।

खिल्अत

राजा या सम्राटों के द्वारा बुद्धिमानी पूर्ण और वीरता-पूर्ण कामों को करने वाले लोगों का सम्मान करने के लिए पुरस्कार के रूप में जो पोशाक प्रदान की जाती है उसे 'खिलअत' कहा जाता है।

खिलअत देने का रिवाज विशेष करके मुसलमानी शासकों के जमाने में विशेषरूप से रहा। वैसे इस्लाम के पूर्ववर्ती संसार के राज्यों में भी बुद्धिमानी पूर्ण या वीरतापूर्ण कार्यों के लिए पोशाकें या जागीरें देने की प्रथा थी मगर खिलअत के रूप में लोगों का सम्मान करने की प्रथा खासकर मुसलमानी काल से ही प्रारम्भ हुई।

खिलअत की पोशाक बढ़िया रेशमी या मखमली कपड़े से तैयार की जाती थी और इस पर सुनहरे सितारे से या बढ़िया कसवत से उत्तम डिजाइन तैयार किये जाते थे। इन डिजाइनों में कई प्रकार की चित्रकारी भी की जाती थी। उमैया-खिलाफत और अब्बासी-खिलाफत के समय इस प्रकार की खिल-अत को प्राप्त करना बड़े सम्मान की बात मानी जाती थी।

भारतवर्ष के अन्तर्गत भी मुसलमानी काल में इन खिल-अतों के देने का बड़ा भारी रिवाज था। इन खिलअतों के बनाने के लिए राज-महलों में कारखाने बने हुए रहते थे जिन्हें 'खास्तिराज' कहा जाता था। इन कारखानों में खिल-अत बनाने का काम ही होता था।

राजस्थान के राजाओं ने भी मुसलमानी शासकों के अनुकरण पर अपने दरबारियों को खिलअत देने की प्रथा को स्वीकार किया। राजस्थान की भाषा में खिल-अत को 'सिरोपाव' कहते हैं। राजस्थान में सिरोपाव के साथ-साथ राजभक्त दरबारियों को पैर में सोना पहनने का सम्मान भी दिया जाता था। यह भी खिलअत के बराबर ही सम्मान समझा जाता था।

खिलचीपुर

मध्य प्रदेश का एक नगर, जो अंग्रेजी राज्य के समय भूपाल एजेंसी का एक देशी राज्य था।

इसके पूर्व मे राजगढ, पश्चिम मे इन्दौर, दक्षिण मे और नरसिंहगढ़ पडता है। इसका पुराना नाम 'खीचीपुर-पाटन' था।

खिलचीपुर के राजा खीची चौहान थे। सन् १५४४ मे खीची-वश के उग्रसेन ने इस राज्य की स्थापना की थी। गागरोनकी खीची राजधानी से उन्हे घरेलू झगडे के कारण चला आना पडा था। दिल्ली सम्राट् ने पीछे से उनको जो सनद दी उसमे इनको जीरापुर तथा माचलपुर का परगना (जो बाद मे इन्दौर राज्य के अधीन हो गये) और ग्वालियर का सुजालपुर भी दियागया था। सन् १७७० ई० मे यह प्रान्त खीचियो के हाथ से निकल गया। क्योकि राजा अभय सिंहको सेंधियासे सन्धि करना पडा था।

सन् १८७३ ई० मे खिलचीपुर के राजा अमरसिंह को राव बहादुर का पुश्तैनी खिताब प्राप्त हुआ। सन् १८६६ ई० मे राजा भवानी सिंह यहाँ की गद्दी पर बैठे। बाद मे राव बहादुर दुर्जनसालसिंह यहाँ की राजगद्दी के अधिकारी हुए।

खिलजी-राजवंश

मध्य एशिया के पश्चिमी तुर्कों से सम्बन्धित एक राजवश। जिसने भारत मे सन् १२६० से १३२० तक शासन किया।

पश्चिमी तुर्कों के राजवश ने मध्य-एशिया मे काफी समय तक एक विस्तृत भूभाग पर शासन किया। यह तुर्क राजवश २४ विभागो मे बँट गया था। इनमे से तुगलक, खिलजी और गुलाम राजवशों ने भारत मे आकर राज्य किया था।

सन् ६३४ मे पश्चिमी तुर्क साम्राज्य मे शे–गुई के उत्तराधिकारियों में तु-न-वोशे शबोलो नामक व्यक्ति "खिलीश-खान" के नाम से गद्दी पर बैठा था। ऐसा समझा जाता है कि खिलजी शब्द की उत्पत्ति इसी "खिलिश" शब्द से हुई।

मध्य-एशिया के पश्चात् इस वश के लोग अफगानिस्तन मे आकर बस गये और काफी समय तक अफगानिस्तान मे रहने के कारण इनका रहन सहन भी अफगानो की तरह हो गया था।

बारहवी सदी मे जब मुहम्मद गोरी के आक्रमण भारत पर प्रारम्भ हुए, उस समय खिलजी वश के भी कई लोग मुसलमानी सेना के अच्छे-अच्छे पदो पर नियुक्त होकर आये। सन् ११९३ मे मुहम्मद गोरी के सेनापति कुतुबुद्दीन ने मेरठ और दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

बिहार का खिलजी वंश

कुतुबुद्दीन की सेना मे मुहम्मद-बिन बाख्तियार खिलजी नामक एक उप सेनापति था। उसने सन् ११९७ मे बिहार प्रान्त की राजधानी बिहार दुर्ग पर कब्जा कर लिया। यह स्थान उस समय बौद्धधर्म का प्रधान केन्द्र था। थोडे ही परिश्रम से खिलजी का यहाँ पर अधिकार हो गया। उसने अनेको बौद्ध विहार, पुस्तकालय, मन्दिर और मूर्तियाँ नष्ट कर दी और बौद्ध भिक्षुओ को तलवार के घाट उतार दिया। सन् ११९९ मे इसी सेनापति ने बगाल पर भी आक्रमण करके केवल १८ सवारों के साथ उस पर विजय प्राप्त की। बूढ़ा राजा लक्ष्मण सेन बिना लडे योही डरके मारे भाग गया। नदिया को तहस नहस करके खलजी ने लखनौती या गौड को अपनी राजधानी बनाया। बिहार और बगाल की विजय के बाद सन् १२०६ मे उसने आसाम पर आक्रमण किया और वही उसका अन्त हो गया।

दिल्ली का खिलजी वंश

सन् १२४६ से १२६६ तक दिल्ली के तख्त पर अल्तमश का छोटा लडका नासिरुद्दीन बैठा। इसका प्रधान मत्री बलबन था। नासिरुद्दीन की मृत्यु बाद सन् १२६६ मे बलबन गद्दी पर बैठा। यह बडा क्रूर और जालिम शासक था। गद्दी पर बैठते ही इसने अल्तमश द्वारा सगठित चालीस शम्सी गुलाम सरदारो के दलका दमन किया जो इसका भीषण प्रतिद्वन्दी बना हुआ था। हिन्दुओ पर भी इसने निर्मम अत्याचार किये। इसके इन बर्त्तावो के कारण इसके शासन की जडें कमजोर हो गई थी। फल स्वरूप जब सन् १२८६ मे इसकी मृत्यु हुई तो चारो ओर अराजकता छा

गई। इसके बाद इसका पोता कैकुबाद गद्दी पर बैठा जो बड़ा दुराचारी और निकम्मा था।

कैकुबाद की अयोग्यता से तङ्ग आकर सन् १२९० में सरदार लोगों ने इसका कत्ल करवा दिया और उसकी जगह राज्य की उत्तर पश्चिमी सीमा के रक्षक जलालुद्दीन खिलजी को दिल्ली का सुल्तान बना दिया।

जलालुद्दीन वृद्ध अनुभवी और नम्र प्रकृति का होते हुए भी एक कमजोर शासक था। इसके शासन में दिल्ली के आस पास भयङ्कर अकाल पड़ा जिससे त्रस्त होकर अनेक लोगों ने जमना में डूब कर प्राण दे दिये। इसके समय में मंगोलों का भी आक्रमण होनेवाला था। मगर उसने उनको रिश्वत देकर किसी प्रकार समझा बुझाकर वापस किया और अपनी नाम बचाई। इसकी कमजोरी से राज्य में ठगों और लुटेरों का जोर बहुत बढ़ गया था।

सन् १२९४ में उसने अपने भतीजे एवं दामाद अलाउद्दीन खिलजी को मालवा-विजय करने के लिए भेजा। जब वह मालवा तथा देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्रराय को पराजित कर लूट के माल के साथ वापस आया तो जलालुद्दीन ने बड़े प्रेम से उसका स्वागत किया। जब ये चाचा भतीजा गले मिल रहे थे उसी समय अलाउद्दीन के इशारे से उसके एक नौकर ने जलालुद्दीन को मार डाला। और सन् १२९६ में अलाउद्दीन खिलजी अपने चाचा की जगह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

सन् १२९६ में गद्दीपर बैठते ही उसने जलालुद्दीन के सब पक्षपातियों को मरवा डाला।

सन् १२९७ से १३ २ तक अलाउद्दीन खिलजी ने अपने विश्वसनीय सेनापति मालिक काफूर की सहायता से रणथंभोर चित्तौड़ मालवा गुजरात देवगिरि, और द्वार समुद्र को रौंदते हुए मदुरा तक अपनी विजय का झण्डा गाड़ दिया। इस प्रकार कुछ अर्सेतक हिमालय से कुमारी अन्तरीप तक उसकी ध्वजा फहराने लगी। और यवनक के प्रभुत्वशाली शासकों में उसका साम्राज्य सबसे अधिक विशाल और विस्तीर्ण हो गया। (अलाउद्दीन खिलजी का विशेष परिचय इस ग्रंथ के प्रथम भाग में देखें।)

अलाउद्दीन खिलजी अत्यन्त क्रूर अत्याचारी था। मगर पढ़ा लिखा न होने पर भी यह विद्वानों का आदर करता था। फारसी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो उसका दरबारी था। 'राघो' और 'चेतन' नामक दो ब्राह्मण पण्डितों का भी उस पर काफी प्रभाव था। दिल्ली के नगरसेठ पूरणचन्द्र अग्रवाल का भी वह बड़ा आदर करता था। इसी प्रकार जैनाचार्य माधवसेन, रामचन्द्र सूरि और जिनचन्द्र सूरि का भी उसने बड़ा सम्मान किया था।

सन् १३१६ में अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु हो गई तब उसके परमविश्वासपात्र सेनापति मलिक काफूर ने अलाउद्दीन के बड़े लड़के को जेल में डाल कर उसके छोटे शिशु को गद्दी पर बैठाकर राज्य की सारी बागडोर अपने हाथ में लेली। मगर वह पूरे पैंतीस दिन भी राज्य नहीं कर पाया था कि अलाउद्दीन के तीसरे पुत्र मुबारक खाँ के षड़यन्त्र से सेना ने मलिक काफूर का वधकर डाला। और उस बालक-राजा को अन्धा कर मुबारक खाँ कुतुबुद्दीन मुबारक के नाम से गद्दी पर बैठ गया। मगर वह भी चार वर्ष राज करके सन् १३२० में अपने मित्र खुसरो बरादो के हाथ मार डाला गया। इस प्रकार दिल्ली के खिलजीवंश का अन्त हो गया।

मालवे का खिलजी वंश

१४वीं सदी के अन्त में जब सन् १३८८ में फीरोजशाह की मृत्यु हो गयी तो उसके मरते ही सारे साम्राज्य में अराजकता और अव्यवस्था हो गयी। बहुत से सूबेदार स्वतंत्र बन बैठे। इसी अवसर पर मालवे के सूबेदार ने भी एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

सन् १४३५ में इस वंश के सुल्तान 'होशंग शाह' की मृत्यु हो गयी तब उसकी जगह महम्मद खिलजी ने सन् १४३६ में इस राज्य पर अधिकार कर लिया। इस वंश में ४ सुल्तान हुए जिन्होंने सन् १५३१ ई. तक राज्य किया। अन्तिम सुल्तान महम्मद खिलजी द्वितीय को गुजरात के बहादुर शाह ने परास्त कर इस वंश का अन्त कर दिया।

खीची चौहान-राजवंश

राजपूत जाति के चौहान-राजवंश की एक शाखा खिची का इतिहास १२वीं या १३वीं शताब्दी से आरंभ होता है।

राजपूतों में ४ राजवंश ऐसे हैं जो अग्निवंश के माने

जाते है और जिनकी उत्पत्ति अग्नि से बताई जाती है। ये चारो राजवश (१) परमार, (२) परिहार, (३) सोलकी और (४) चौहान हैं।

चौहानो की कुल २४ शाखाएँ हैं। उन शाखाओ मे चौहान, हाडा, खीची और सोनगरा अपनी वीरता के लिए बहुत प्रसिद्ध रहे है। इनमे हाडा राजवश कोटा और बूंदी मे, खीची-राजवश गागरोन, राघोगढ और खिलचीपुर मे और सोनगरा राजवश जालोर मे अपनी वीरता के लिए बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। चौहान वश के राजपुरुषो ने अपनी जन्मभूमि के सम्मान के लिए समय समय पर बडी वीरता का प्रदर्शन किया है।

खीची-राजवश की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे ऐसी किम्वदन्ती है कि किसी समय इस वश के किसी पुरुष ने देवी भगवती को एक पात्र खिचडी का भोग लगाया था। तब देवी ने सन्तुष्ट होकर इनको अच्छा वरदान दिया। तभी से इस वश के लोग खिचडी नही खाते हैं और इसी खिचडी से इनका नाम 'खीची' पडा।

कुछ लोगो के मत से 'खीच' नामक स्थान पर रहने के कारण इनका नाम खीची पडा और इनका प्रान्त खीचीवाडा के नाम से विख्यात हुआ।

खीची-वश का पूर्व पुरुष 'अजय-राव' नामक व्यक्ति समझा जाता है। अजयराव की १६वी पुश्त मे गया सिंह नामक व्यक्ति हुए। उनके दो-पुत्र प्रसङ्ग राय और पिलपञ्ज राय थे। ये दोनो खीचीपुर पाटन मे रहते थे, और दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान के समसामयिक थे। पृथ्वीराज ने इन दोनो को मालवाप्रान्त मे 'गागरोन' का परगना जागीर मे दिया।

इसके बाद इस परिवार मे 'जैतपाल' नामक एक बडा प्रतापी पुरुष हुआ। इसके सम्बन्ध मे अबुल फजल ने 'आइने-अकबरी' मे लिखा है कि—'जैतपाल ने सन् १३२४ ई० मे कमालुद्दीन को पराजित कर मालवा के राज्य पर अधिकार किया था।'

जैतपाल के छोटे भाई के लडके का नाम 'धारूजी' था। ये बडे बहादुर और भाग्यशाली थे। इन्हे खीचीराज-वश मे बडी श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता हैं। राजपूतो के भाट आज तक भी उनका कीर्तिगान करते हैं। भाटो के ग्रन्थो मे लिखा कि प्रधान प्रधान राजपूत राजागण सुल्तान अलाउद्दीन के साथ अपनी लडकियो के सम्बन्ध करते हैं, मगर धारूजी ने कभी इस आदेश को नही माना। धारूजी के लडको मे अरिसिंह सबसे बडा था। इसके शासनकाल मे खीचीवाडा-राज्य दक्षिण मे सारङ्गपुर और शुजालपुर तक और पूर्व मे भेलसा तक फैला हुआ था। राजपूतो के भाटो के अनुसार 'अरिसिंह ६० लाख हिन्दू और १८ लाख मुसलमानो के ऊपर शासन करते थे।''

इसी परिवार मे आगे चलकर 'लाल सिंह' नामक व्यक्ति ने सन् १६७७ मे राघोगढ नामक नगर की स्थापना की। इसी वश मे आगे चल कर 'जयसिंह' नामक राजा हुआ। इसके राज्यकाल मे मराठो ने कई वार खीची वाडे पर आक्रमण किया। बहुत समय तक जयसिंह ने बडी वीरता के साथ उनका मुकावला किया, मगर अन्त मे सन् १८१६ ई० में पराजित होकर उसे राज्य छोड कर भागना पडा और उसी स्थिति में उसकी मृत्यु हुई।

उसके पश्चात् सन् १८२० ई० में ब्रिटिश सरकार ने जय सिंह के पुत्र 'दुकूल सिंह' को राघोगढ और वालभट्ट का जिला दिला दिया।

खीची-राजवश के उग्रसेन नामक एक व्यक्ति ने सन् १५४४ ई० में खिलचीपुर-राज्य की स्थापना की, जिसका वर्णन हम खिलचीपुर नाम के साथ हम इसी खण्ड मे पीछे दे चुके है।—(मुहनोत नेणसी की ख्यात, वसु विश्व-कोष)

खुत्तु शिलिश

अत्यन्त प्राचीन युग मे एशिया माइनर के हित्ती राजवश का एक राजा। जिसका समय ईसा से पूर्व तेरहवी शताब्दी मे माना जाता है।

अभी कुछ समय पहले तक हित्ती राजवश की सभ्यता था इतिहास की इतिहास कारो को कोई जानकारी न थी। पर जर्मन विद्वान ह्यूगो विक्लर ने प्राचीन हित्ती साम्राज्य की राजधानी ''बोगज कोई'' के आस पास खुदाई करके वहाँ से क्यूनी फार्म लिपि मे खुदी हुई २०००० ईंटो के विशाल भण्डारको बरामद किया। इन ईंटो से हित्ती साम्राज्य के सारे इतिहास के परदे उठ गये। इन ईंटो से पता

सकता है कि ईसासे पूर्व सत्रहवीं सदीसे लेकर ई० पूर्व बारहवीं सदी तक के पूरे पाँच सौ वर्ष मध्य युग के राज्यों में मिस्र और बेबिलोन साम्राज्य के पश्चात् तीसरा नम्बर हित्ती साम्राज्य का था। इन्हीं मेंसे मिली हुई एक पट्टिका पर इन्द्र वरुण मित्र आदि देवताओं का उल्लेख किया गया है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इस सभ्यता पर भारतीय सभ्यता का काफी प्रभाव पड़ा था।

इसी हित्ती राजवंश में ईसा से तेरह सौ वर्ष पूर्व मुत्तालिस नामक राजा हुआ। जिसने ईसा से १२८८ वर्ष पूर्व कदेश के युद्ध में मिस्री सम्राट रामसेस द्वितीय की सेनाओं को बुरी तरहसे पराजितकर दिया। उसके बाद मुत्तालिसके उत्तराधिकारी सम्राट हुत्तुशिलिश के साथ रामसेस द्वितीय की एक संधि हुई। यह सन्धि ई० पू० १२७२ में एक चाँदी की पट्टिका पर खोदी गई। इसमें १८ पैराग्राफ हैं। इस संधि में दोनों साम्राज्य भविष्य में कभी एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे और बाहरी आक्रमण के समय एक दूसरे की सहायता करेंगे। इस तरह की शर्तें दी गई हैं।

इस संधि के बाद हित्ती नरेश की कन्या का विवाह राम सेस द्वितीय के साथ हुआ।

खु-फू (खीओप्स)

प्राचीन मिस्र के चौथे राजवंश का पहला फराऊन् सम्राट। जिसने मिस्र की राजधानी मैम्फिस के 'गीजे' नामक स्थान पर सबसे पहला पिरामिड बनवाया। इसका राज्य काल ईसा से ३ हजार वर्ष पूर्व था।

खु-फू बड़ा अभिमानी और धर्मविरोधी स्वभाव का राजा था। इसने एक लाख से भी अधिक मजदूरों को लगा कर 'गीजे' में सब से पहला पिरामिड बनवाया।

गीजे का यह विचित्र त्रिकोण पिरामिड ४८१ फीट ऊँची ११ एकड़ जमीन पर बनाया गया है। इसकी लंबाई और चौड़ाई ७५५ फीट है। इसके बनाने में ७-८ मन के करीब २५ लाख पत्थर लगे हैं। इनमें से किसी-किसी पत्थर का वजन ४२ मन से भी ज्यादा है।

यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि उस युग में जबकि न तो क्रेनें और दूसरे किसी प्रकार के मशीनरी साधन प्राप्य नहीं थे। इतने भारी वजन के लाखों पत्थर किस प्रकार ५ सौ फीट ऊँची पहाड़ी पर चढ़ाये गये होंगे।

इस पिरामिड के आसपास राज-महल कचहरियाँ, पार्क आदि बनने से मेम्फीस नगरने एक सुन्दर राजधानी का रूप ग्रहण कर लिया था। उस समय कला-कौशल और दस्तकारी में मिस्र की यह प्राचीन राजधानी उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी थी।

खु-फू का उत्तराधिकारी खफरे नामक फराऊन हुआ, जिसने ५६ वर्ष तक मिस्र का शासन सुचारु रूप से किया। इसने मिस्र के 'गीजा' नामक स्थान के विशाल पिरामिड नं० २ की रचना की। यह सम्राट बड़ा लोक-प्रिय था। इसकी एक आदमकद मूर्ति काहिरा के म्यूजियम में रखी हुई है।

खुमान राणा

मेवाड़ के एक सुप्रसिद्ध राणा जिन्होंने सन् ८१२ ई० से सन् ८३६ ई० तक शासन किया।

'बापा रावल' के चित्तौड़ से चले जाने के पश्चात् मेवाड़ में एक नये युग का प्रारम्भ होता है और मेवाड़ का इतिहास एक दूसरी करवट लेता है। मेवाड़ के इतिहास में राजा खुमाण का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इन्हीं के शासन काल में चित्तौड़ पर सबसे पहला मुसलमानी आक्रमण हुआ और आक्रमणकारियों ने चित्तौड़ को घेर लिया। चित्तौड़ की रक्षा करने के लिये राणा खुमाण ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। जिससे मुसलिम सेना की पराजय हुई और राणा की सेना ने मुसलमानी सेना के सेनापति 'महमूद' को गिरफ्तार कर लिया।

यह सेनापति महमूद गजनवी नहीं था बल्कि उससे दो शताब्दी पहले खलीफा अल-मामून के द्वारा भारत-विजय के लिए भेजी गयी सेना का सेनापति था। ऐसा अनुमान किया जाता है।

राणा खुमाण को २४ बार शत्रुओं से युद्ध करना पड़ा था। उन युद्धों में राणा खुमाण ने अपनी बहादुरी का जो परिचय दिया था वह रोम के सम्राट सीजर की तरह राजपूतों के लिए परम गौरवपूर्ण है।

खुमाण का प्रताप उसके जीवनकाल में ही बहुत बढ़ गया था। उसका प्रभाव अब तक यह है कि जब उदयपुर के

किसी पर कोई विपत्ति आती है या कोई ठोकर खाकर गिर जाता है तो लोगो के मुँह से निकल पडता है कि 'खुमान तुम्हारी रक्षा करे।'

राणा खुमान ने अपने जीवनकाल मे ही अपने राज्य की गद्दी पर अपने छोटे पुत्र 'जगराज' को बैठा दिया था। मगर कुछ दिनो के बाद उसका विचार बदल गया और वह फिर अपने लडके को गद्दी से हटा कर पुन गद्दी पर बैठ गया।

इस घटना से पुत्रो के साथ उसका झगडा बहुत बढ गया और एक दिन उसके मङ्गल नामक लड़के ने उसकी हत्या कर डाली और स्वय राजगद्दी पर बैठ गया। मगर मेवाड़ के सरदारो ने इस बात को पसन्द नही किया। सबने मिलकर मङ्गल को राज्य से निकाल दिया। तब मङ्गल ने वहाँ से उत्तर की ओर मरुभूमि मे जाकर 'जैसलमेर' के समीप 'लोद्रवा' नामक नगर बसाया और मङ्गली गोत्र की स्थापना की।

ऐसा समझा जाता है कि मेवाड के सुप्रसिद्ध 'एकलिंग' मन्दिर की स्थापना इन्ही राणा खुमान ने हारीत ऋषि के तपस्या-स्थल पर की थी।

खुदाई-खिदमतगार

सीमाप्रान्त मे खान 'अब्दुल गफ्फार' खाँ द्वारा सगठित एक शातिप्रिय सगठन। इस सगठन के सदस्य लाल कुर्त्ती पहनते थे। इसलिए इसको 'लाल कुर्त्ती' दल भी कहते।

सन् १९३० के अप्रैल मास मे उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त में राजनैतिक आन्दोलन को दबाने के लिए ब्रिटिश-सरकार ने पेशावर में शान्तिपूर्ण भीड पर भयङ्कर गोली-वर्षा की। साल भर तक वहाँ की जनता ने अग्रेज शासन के भयङ्कर अत्याचारो को शान्तिपूर्वक सहन किया।

मगर इन अत्याचारो के कारण सीमाप्रान्त मे जबर्दस्त राजनैतिक जागृति हो गई थी। इसी राजनैतिक जागृति के कारण खान अब्दुलगफ्फार खाँ के नेतृत्व मे एक विशाल अनुशासनपूर्ण और शान्तिप्रिय सगठन जोर पकड रहा था। इस सगठन के लोग लाल कुर्त्ती पहनते थे और इसने एक शान्तिपूर्ण सैनिक-सगठन का रूप ग्रहण कर लिया था। ब्रिटिश सरकार इस सगठन से बहुत चिढती थी।

खुदीराम बोस

बङ्गाल के एक सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी नवयुवक, जिनको सन् १९०८ की ११वी अगस्त को फाँसी की सजा दी गयी।

यह वह जमाना था, जब लार्ड 'कर्जन' ने बङ्गाल के दो टुकडे कर दिये थे और उसमे सारे बङ्गाल मे एक भीषण क्राति का प्रारम्भ हो गया था। इस क्रान्ति का नेतृत्व 'वारीन्द्रकुमार घोष' कर रहे थे। इसके लिए इन्होने कलकत्ते मे मानिकतल्ला बागान मे किराये पर एक मकान लिया और प्रचार के लिए 'युगान्तर' नामक पत्र निकाला। इस पत्र के सम्पादक स्वामी विवेकानन्द के भाई 'भूपेन्द्रनाथ दत्त' हुए।

यह पत्र बहुत लोकप्रिय हुआ और सन् १९०८ मे इसकी बिक्री २० हजार प्रतियो की हो गयी।

आन्दोलन बडी तेजी से चल रहा था और सरकार का दमनचक्र भी बडी तेजी पर था। इस दमनचक्र के अन्तर्गत 'किंग्सफोर्ड' नामक एक अग्रेज बहुत बदनाम हो चुका था। क्रान्तिकारी इस ताक मे थे कि किसी तरह किंग्सफोर्ड साहब का खातमा किया जाय।

इस कार्य के लिए क्रान्तिकारी दल ने खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नामक दो युवको को नियुक्त किया। इसी बीच किंग्सफोर्ड का तबादला मुजफ्फरपुर हो गया। इसलिए अब ये दोनो युवक बम और रिवाल्वर लेकर मुजफ्फरपुर पहुँचे और एक दिन, जिस गाडी मे बैठ कर किंग्सफोर्ड निकला करता था, उस गाडी पर बम फेक दिया, मगर दैवयोग से उस दिन उस गाडी मे किंग्सफोर्ड नही था, उसकी जगह 'कैनेडी' परिवार की दो महिलाएँ थी, वे दोनो ही उस विस्फोट मे मारी गयी, मगर यह बात मालूम हो गयी कि युवक किसे मारना चाहते थे।

बम फेंक करके दोनो नवयुवक भागे। प्रफुल्ल चाकी ने तो दुश्मनो से घिर जाने के कारण रिवाल्वर से आत्महत्या कर ली मगर खुदीराम बोस भागते भागते सन् १९०८ की पहली मई को गिरफ्तार हो गये। कई महीनो तक उन पर मुकदमा चला और ११ अगस्त सन् १९०८ ई० को उनको फाँसी दे दी गयी।

खुदीराम बोस ने अपने बयान मे बतलाया कि कैनेडी परिवार की महिलाओ के मरने का मुझे बहुत दुख है। मैं

किंग्सफोर्ड को मारना चाहता था। खुदीराम ने हाथ में गीता लेकर बड़ी प्रसन्नता के साथ फाँसी की रस्सी को ग्रहण किया। उनकी लाश उनके वकील कालिदास मुकुरजी को दे दी गयी। उन्होंने ही उसका दाह-संस्कार किया। उस समय हजारों लोग वहाँ पर उपस्थित थे। उनकी भस्म उसी समय हजारों परिवारों में बट गयी। खुदीराम की शहादत ने एक बार सारे बङ्गाल को झकझोर डाला। उनकी मृत्यु पर हजारों कविताएँ लिखी गयी जिनमें से कुछ कविताएँ कितने ही बङ्गालियों की जबान पर हो गयीं।

खुरजा

दिल्ली से कलकत्ता जाने वाली लाइन पर गाजियाबाद और अलीगढ़ के बीच में स्थित एक व्यापारिक मण्डी और रेलवे का जंक्शन।

खुरजा कपास, गल्ला और तिलहन की एक सुप्रसिद्ध व्यापारिक मण्डी है। यहाँ का घी अपनी शुद्धता के लिए सारे उत्तर प्रदेश में प्रसिद्ध है।

जैन-समाज के द्वारा बनाया हुआ यहाँ का विशाल जैन मन्दिर अपने शिल्प-स्थापत्य और सोने से की हुई कारीगरी के लिए बहुत प्रसिद्ध है। इस मन्दिर के दर्शन करने बाहर से भी जैनी लोग आते रहते हैं। इस नगर के बीच में एक सुन्दर सरोवर भी बना हुआ है।

खुरदा

उड़ीसा-राज्य के अन्तर्गत पुरी जिले का एक उपविभाग जो अक्षांश १९.४१ एवं २०.२६ और देशान्तर ८४.५६ और ८५.११ के मध्य में बसा हुआ है।

उड़ीसा के प्रतापी हिन्दू राजाओं का अन्त होने के पश्चात् बचे हुये राजा लोग इस उपविभाग में आकर कुछ वर्षों तक अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सके थे। इस क्षेत्र में जङ्गल और दुर्गम पर्वत होने से मराठा-आक्रमणकारी एकाएक प्रवेश नहीं कर पाते थे। इसी से यह क्षेत्र सन् १७१८ तक स्वाधीन रहा।

सन् १५२४ में सूर्यवंश के राजा 'प्रताप रुद्रदेव' का स्वर्गवास हो जाने पर सूर्यवंश का निशान करीब-करीब साफ ही हो गया। उनका मंत्री 'गोविन्द विद्याधर' ने क्रमसे उनके सब लड़कों को मारकर सन् १५३३ में वह 'राजा गोविन्ददेव' के नाम से यहाँ की गद्दी पर बैठा।

गोविन्ददेव के गद्दी पर बैठने के कुछ समय पश्चात् ही गोलकुण्डा के मुसलमान शासकने उड़ीसापर आक्रमण किया। उस समय राजा गोविन्ददेव वहाँ से भाग कर आठ महीने तक मालिकन्धा नामक स्थान पर रहे।

इसी बीच गोविन्ददेव के दो भतीजे रघुभञ्ज छोटराय और श्रीचन्दनने कटक पर आक्रमण करके वहाँ के शासक गोविन्द देव के मन्त्री 'मुकुंद हरिचन्दन' को वहाँ से भगा दिया और वहाँ के राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस पर राजा गोविन्ददेव ने गया के मैदान में युद्ध कर भतीजों को हरा दिया मगर उनकी भी वहीं पर मृत्यु हो गई।

गोविन्ददेव की मृत्यु के पश्चात् उनके मन्त्री जनार्दन विद्याधर ने एक व्यक्ति को प्रतापरुद्रदेव द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठाया। आठ वर्ष राज्य करने पर यह राजा भी मर गया।

अन्त में राजा गोविन्ददेव के प्रिय पात्र और उनके समय में कटक के शासक मुकुन्द हरिचन्दनने सन् १५५ में तेलंगी मुकुन्ददेव के नाम से शासन भार ग्रहण किया। इन्हीं के समय में सन् १५५८ में बंगाल के सुप्रसिद्ध आक्रमणकारी "काला पहाड़" का आक्रमण हुआ जिसने राजा को मारकर इस राज्य को अपने अधिकार में कर लिया।

इसके पश्चात् सन् १५८० तक इस प्रदेश में अराजकता का दौरदौरा रहा। बाद में यहाँ के सब सरदारों ने मिल कर दनाई विद्याधर के पुत्र रामचन्द्रदेव को गद्दी पर बिठाया। इनका वंश "भोई वंश" के नाम से प्रसिद्ध था। राजा रामचन्द्रदेव ने काला-पहाड़ के द्वारा ध्वस्त किये गये देव मन्दिरों का निर्माण, उद्धार और देव मूर्तियों का उद्धार किया। जगन्नाथदेव की मूर्ति भी इसी समय पुनः प्रस्तुत की गई। सन् १५९२ में दिल्ली-सम्राट् की ओर से राजा मानसिंह यहाँ के शासनकर्ता होकर आये। इस समय तेलङ्ग मुकुन्ददेव के दो लड़के और रामचन्द्र देव के बीच राज्य के लिए झगड़ा प्रारम्भ हो गया था। राजा मानसिंह ने मध्यस्थ बन कर राज्य का बँटवारा करके

खुरदा प्रदेश और पुरुषोत्तम क्षेत्र रामचन्द्रदेव को दिलवा कर महाराजा की पदवी उन्ही के लिए सुरक्षित रक्खी।

रामचन्द्र देव के वाद इस वश मे वारह शासक और हुए, जिन्हों ने सन् १८०४ अर्थात् ढाई शताव्दी तक राज्य किया।

अन्तिम शासक मुकुन्ददेव द्वितीय ने सन् १८०४ मे अग्रेजी-राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जिसके परिणाम-स्वरूप अग्रेजो ने इनका राज्य छीनकर उडीसा-प्रान्त मे मिला लिया।

वह राजवश प्रसिद्धि के तौर पर 'जगन्नाथ के राजा' के नाम से जाना जाता था, मगर वैसे यह वश वडे जागीरदारो की तरह ही था।

खुरासान

मध्य एशिया मे ईरानी साम्राज्य का एक पूर्वी प्रान्त जिसका क्षेत्रफल १,२५००० वर्गमील और जनसख्या करीव तेरह लाख (१९५६) है।

'खुरासान' का इतिहास वहुत प्राचीन है। मध्य एशिया के अन्तर्गत निरन्तर होने वाले परिवर्तनो का प्रभाव इस क्षेत्र पर भी पडता रहा।

ऐसा कहा जाता है कि ई० सन् से पूर्व छठी या सातवी शताव्दी मे ईरान के प्रसिद्ध पैगम्वर 'जरथोस्ट' अवतीर्ण हुए थे। उनकी जन्मभूमि 'अजरवेजान' मे थी। वही से उन्हो ने अपने नवीन जरथोस्टी-मत का प्रचार प्रारम्भ किया था। मगर जव अजरवेजान मे उनको अपने मत के प्रचार मे सफलता नही मिली तो वे खुरासान में आकर अपने मत का प्रचार करने लगे और इस क्षेत्र मे उन्हें काफी सफलता मिली।

'साइरस' महान् ने जव मध्य एशिया और ईरान मे सुप्रसिद्ध अखामनी साम्राज्य की स्थापना की, तव खुरासान भी इस विस्तृत साम्राज्य का एक अङ्ग रहा।

सिकन्दर महान् ने ईस्वी सन् पूर्व ३३३ ई० मे ईरानी-साम्राज्य को विध्वस्त करके वहाँ पर ग्रीक-वैक्टीरियन-साम्राज्य की स्थापना की, तव खुरासान उस साम्राज्य का एक अग हो गया।

उसके पश्चात् यह पार्थियन और सासानी साम्राज्य का अग वन कर रहा। उसके वाद जव ईरान मे 'इस्माइल सामनी' ने सामानी साम्राज्य की नीव डाली। उसके वाद सामानी साम्राज्य के शासक 'नूह' ने १०वी सदी के मध्य मे 'अल्पतगीन' नामक एक गुलाम को 'खुरासान' का शासक वनाया।

अल्पतगीन ने करीव ५० साल तक खुरासान मे एक वादशाह की तरह सर्वेसर्वा वनकर शासन किया। उसके वाद जव नूह की मृत्यु हो गयी और उसका पुत्र मसूर गद्दी पर वैठा तो उसकी अल्पतगीन से खटक गयी। तव मसूर को उसके साथियो ने सलाह दी कि वह अल्पतगीन को राजधानी मे वुलवा कर मरवा डाले। तव मसूर ने अल्पतगीन को दरवार मे बुलाया, मगर अल्पतगीन के गुप्तचर ने मसूर के षडयन्त्र की सारी खवर अल्पतगीन को दे दी।

अल्पतगीन ३० हजार घुडसवारो को लेकर राजधानी की ओर चला, जव राजधानी तीन रोज के रास्ते पर रह गयी तव एक दिन उसने अपने सव सरदारो को वुला कर वादशाह के सारे षड्यन्त्र की वात वतलायी। तव खुरासान के सरदारोने तव उसे विद्रोह करने को कहा। मगर अल्पतगीन ने कहा कि जिस साम्राज्य को मैंने ६० वर्ष से सभाल कर रखा है, इस ८० वर्ष की उम्र मे उसके साथ क्या विद्रोह करू॑।

ऐसा कह कर उसने सारी सेना तथा खुरासान और ख्वारेजम के उन सरदारो को वादशाह मसूर के पास भेज कर वह उस साम्राज्य से निकल गया और कुछ गुलाम सवारो के साथ हिन्दुस्तान की ओर 'जिहाद' के लिए निकल गया।

सन् ९९७ मे सामानी-साम्राज्य समाप्ति की स्थिति मे आ गया। उसके वाद यह प्रान्त महम्मद गजनवी के अधिकार मे चला गया। महमूद ने खुरासान के अन्दर अपने 'खुतवे' मे खलीफा कादिर का भी नाम पढवाया और अपने को खलीफा का खुरासानी-राज्यपाल घोषित किया। महम्मद गजनवी ने ही इस्लाममे सवमे पहले सुल्तान की उपाधि धारण की थी।

सन् १००६ ई० मे जव महम्मद गजनवी हिन्दुस्तान के अभियान मे, मुल्तान मे ठहरा हुआ था, उस समय कराखानी सेनाओ ने खुरासान पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया।

जब महमूद गजनवी को यह खबर मिली तो वह मुल्तान से तुरन्त वापस आया। वहाँ से लौट कर उसने कराखानियों को बहुत बुरी तरह से पराजित किया और खुरासान पर फिर से अधिकार कर लिया।

उसके बाद खुरासान का भाग्य भी ईरान के साथ बनता रहा और इसमें कई उत्थान-पतन हुए और आज भी यह प्रांत ईरान का एक प्रसिद्ध और खुशनुमा प्रान्त है।

खुर्रम शाहजादा

सम्राट जहाँगीर का द्वितीय पुत्र शाहजादा खुर्रम जिसका जन्म सन् १५९२ ई० में हुआ और जो आगे चलकर बादशाह शाहजहाँ के नाम से मुगल साम्राज्य की गद्दी पर बैठा।

इसका पूरा विवरण शाहजहाँ के प्रकरण में अगले भागों में देखिए।

खुलना

पूर्वी पाकिस्तान के दक्षिणी-पश्चिमी भाग का एक जिला और नगर। जिले की जनसंख्या २ ७९,६११ और शहर की जनसंख्या ७ १६२ है।

खुलना जिला के 'बेगरहाट' स्थान में पहले गौड़ राजाओं की राजधानी थी। उसके भग्नावशेष अब भी पाये जाते हैं।

उसके बाद १६वीं सदी तक यहाँ पर स्वतन्त्र मुसलमानी राज्य रहा और उसकी राजधानी ईश्वरीपुर में थी। सन् १५७६ म सम्राट अकबर ने इसे जीत कर मुगल साम्राज्य में मिला लिया।

उसके बाद सन् १९४७ में भारतवर्ष के बँटवारे के समय यह पूर्वी पाकिस्तान में चला गया।

खुलना सुन्दर बन में तमूर नदियों से घिरा हुआ जलमय सुन्दर प्रदेश है मधुमती भैरवी कपोताक्षी भद्रा इच्छामती शिवसा इत्यादि यहां की प्रधान नदियाँ हैं।

सन् १८८२ के पहले खुलना स्वतन्त्र जिला नहीं था। वह जैसोर जिले का एक उपभाग था मगर इसी वर्ष २४ परगने से सातखीरा-उपविभाग और जैसोर से बागेरहाट उप विभाग लेकर उन्हें खुलना के साथ मिलाकर एक नये जिले की रचना की गयी। खुलना के आस पास खजूर का बड़ा भारी जङ्गल है। इस खजूर से गुड़ बनाया जाता है।

इसके अतिरिक्त यहाँ पर चावल जूट, नारियल और सुपारी की काफी पैदावार होती है।

इस जिले के बागेरहाट नामक स्थान में खान जहान अली की बनाई हुई 'साठ गुम्बज' नामक विशाल मस्जिद के भग्नावशेष दृष्टि गोचर होते हैं। 'सातखीरा' नामक स्थान पर बहुत से हिन्दू-मन्दिर भी बने हुए दिखाई देते हैं।

खुसरू शाहजादा

मुगल-साम्राज्य के सुप्रसिद्ध सम्राट 'जहाँगीर का सबसे बड़ा पुत्र जिसका जन्म ६ अगस्त सन् १५८७ ई० को लाहौर में आमेर की राजकुमारी शाहबेगम मानबाई के गर्भ से हुआ था।

जिस समय खुसरू का जन्म हुआ था उस समय उसके पिता 'शाहजादा सलीम' की उम्र सिर्फ १८ वर्ष की थी। इस छोटी सी उम्र में ही शाहजादा सलीम की ऐय्याशी और शराब पीने की आदत का पता सम्राट अकबर को लग गया था। उस समय अकबर का स्वास्थ्य भी धीरे धीरे कमजोर होने लग गया था। इसलिए प्रमुख सामन्तों ने जिनमें राजा मानसिंह और मिर्जा अजीज कोका प्रमुख थे बादशाह को सलाह दी कि अकबर के पश्चात् गद्दी का मालिक सलीम की जगह खुसरू को बनाया जाय क्यों कि यह एक चरित्रवान तेजस्वी और बहादुर लड़का है।

उसके बाद खुसरू जब सत्रह साल का हुआ तब अकबर ने राजा मानसिंह को उसका संरक्षक नियुक्त किया और उसकी शिक्षा के लिए सुप्रसिद्ध विद्वान् अबुलफजल और उसके भाई अबुल खैर को नियुक्त किया।

जब खुसरू को यह मालूम हुआ कि अकबर के बाद उसकी गद्दी का अधिकारी वह होने वाला है तो वह अपने पिता सलीम के प्रति अपमान और अनुचित व्यवहार करने लगा।

पिता के प्रति खुसरू की ऐसी भावनाएँ देखकर उसकी माँ शाह बेगम बड़ी दुखी रहती थी और पिता का विरोध न करने के लिए अपने बेटे खुसरू को समझाती रहती थी। मगर

अन्त मे खुसरू के व्यवहार से दुखी हो सन् १६०४ ई० मे उसने आत्महत्या कर ली।

अब सम्राट् अकबर मौतके दरवाजेपर पहुँच चुका था ऐसे समयमे खुसरूके मामा राजा मानसिंह और उसके ससुर मिर्जा अजीज कोका ने खुसरू को राजसिंहासन दिलाने के लिए सरदारो की बैठक बुलाई, मगर इस बैठक मे सैय्यद खाँ बारह ने अपने कई सहयोगियो के साथ खुसरूके राजसिंहासन पर बैठाने का विरोध किया। जिससे यह सारी योजना असफल हो गयी और १७ अक्तूबर सन् १६०५ ई० को अकबर की मृत्यु के पश्चात् शाहजादा सलीम जहाँगीर की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा।

गद्दी पर बैठने के साथ ही सम्राट् जहाँगीर ने खुसरू के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया। मगर खुसरू के दिल मे निराशा और घृणा के जो बीज जम गये थे, वे बराबर बढते गये। ६ अप्रैल सन् १६०६ ई० को वह ३५० घुडसवारो के साथ पञ्जाब की ओर भाग निकला। लाहौर पहुँचते पहुँचते उसके पास १२००० सैनिक हो गये। जहाँगीर ने भी उसका मुकाबला करने के लिए मुगल सेना को भेज दी। लाहौर के पास 'भैरावल' नामक स्थान पर दोनो सेनाओ की टक्कर हुई, जिसमे खुसरू हार गया और वह काबुल जाने के लिए वहाँ से भाग निकला। मगर चिनाव नदी पार करते करते पकड लिया गया और हथकडी बेडी पहना कर लाहौर लाया गया, जहाँ जहागीर उसका इन्तजार कर रहा था।

जहाँगीर ने खुसरू के साथियो को सडक के दोनो तरफ सूलियाँ लगाकर सूलियो पर लटकाया और उन सूलियो के बीच मे खुसरू को निकाला।

सन् १६०७ ई० मे जहाँगीर काबुल गया और साथ मे खुसरूको भी ले गया। यहाँ पर भी खुसरू ने जेलमे अपने जेलर 'एतबार खाँ और आसफ खाँ के भतीजे नुरुद्दीन' को मिला कर जहाँगीर की हत्या का षड्यन्त्र रचा, मगर इसकी खबर भी जहाँगीर को लग गयी और उसने एतबारखाँ और नुरूद्दीन को मौत की सजा देकर, खुसरू को दोनो आँखो से अन्धा कर दिया, मगर उसके बाद फारसके एक हकीम 'सुदरा' की चिकित्सा से सन् १६१० तक उसकी एक आँख की ज्योति वापस आगयी। सन् १६११ मे जहाँगीर ने 'शेर अफगान की विधवा 'मेहरुन्निसा से व्याह किया और उसे 'नूरजहाँ' का पद देकर 'मलका' बनाया।

इसी समय से मुगल-राजनीति ने एक नया मोड लिया। नूरजहाँ ने अपनी आँखो के नशे से जहाँगीर को मदहोश कर शासन की सारी सत्ता को अपने हाथो मे ले लिया और अपनी कुटिलता और षड्यन्त्र पूर्ण राजनीति के चक्कर मे मुगल साम्राज्य को लपेट लिया। दरबार मे उसके समर्थको का एक दल था। शुरू शुरू मे वह खुसरू के विरोध मे शाहजादा खुर्रम' को युवराज बनाने के पक्ष मे हुई। मगर कुछ समय बाद वह खुर्रम से भी नाराज हो गयी और अपने पहले पति 'शेर अफगान' से उत्पन्न अपनी लडकी लाडली बेगम के पति 'शहरयार' को युवराज बनाने के पक्षमे होगयी। वह खुसरू और खुर्रम दोनो का अस्तित्व मिटा देना चाहती थी।

सन् १६२० ई० मे दक्षिण के इतिहास प्रसिद्ध सेनापति 'मलिक अम्बर'ने बीजापुर और गोलकुडा की रियासतो का एक सघ बना कर मराठो की सहायता मे अहमद नगर और बरार पर कब्जा कर लिया। जिससे दक्षिण मे मुगल साम्राज्य की नीव कमजोर पड गयी। इस स्थिति पर नियन्त्रण करने के लिए एक विशाल मुगल सेना का वहा भेजा जाना अत्यन्त आवश्यक था। जहागीर ने शाहजादा खुर्रम के सेनापतित्व मे वहाँ सेना भेजना चाहा, मगर शाहजादा खुर्रम ने इसी शर्त पर वहाँ जाना कबूल किया कि शाहजादा खुसरू को भी उसके साथ भेजा जाय। जहाँगीर खुसरू को उसके प्रतिद्वन्द्वी भाई खुर्रम के साथ भेजे जाने से होने वाले दुष्परिणामो को जानता था। इसलिए वह खुसरू को खुर्रम के साथ नही भेजना चाहता था। मगर नूरजहाँ एक ही ढेले मे दोनो शिकार करके अपने दामाद शहरयार का रास्ता साफ कर देना चाहती थी। इसलिए उसने जोर देकर दोनो शाहजादो को दक्षिण के अभियान पर भेज दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि खुर्रम ने दक्षिण मे विद्रोहियो पर विजय प्राप्त कर सन् १६२१ ई० के अन्त मे खुसरूको बुरहानपुर में मरवा डाला। सन् १६२२ ई० को उसकी लाशको बुरहानपुर से खुदवाकर इलाहाबाद ले जाया गया और वहाँ 'खुसरू बाग मे उसकी माँ की कब्र के पास दफनाया गया।

खुसरूबाग

इलाहाबाद रेलवे स्टेशन के पास चहार दीवारी से घिरा हुआ एक सुन्दर बाग जिसका निर्माण सन् १६२२ ई० के आस-पास हुआ।

इस सुन्दर बगीचे में सम्राट जहांगीर के पुत्र खुसरू और उसकी माँ शाह बेगम तथा शाही परिवार के और कई कुमार और कुमारियों की कब्रें बनी हुई हैं। इस बाग का इतिहास ऐसी क्रूर और अमानुषिक घटनाओं से भरा हुआ है, जिन्हें पढ़ कर हृदय दहल जाता है।

मुगल-साम्राज्य के इतिहास का एक खूनी अध्याय इस खूनी कब्रों के अन्दर सो रहा है।

मुसलमानी-इतिहास की यह परम्परा जिसमें राजगद्दी के उत्तराधिकार के लिए विद्रोह, षड्यन्त्र और हत्याएँ होती रही हैं बराबर शुरू से दिखलाई पड़ती है। बाबर की गद्दी के लिए हुमायूँ के विरुद्ध उसके भाई कामरान का विद्रोह, अकबर के खिलाफ सलीम का विद्रोह, सलीम के खिलाफ खुसरू का विद्रोह दारा और शाहजहाँ के खिलाफ औरङ्गजेब का विद्रोह—एक के बाद एक ऐसी कड़ियाँ हैं जो इस परम्परा को कायम रखे हुए हैं।

खुसरू बाग भी इसी खूनी परम्परा की एक ज्वलन्त यादगार है।

(डा० किशोरी शरण लाल—अमृतपत्रिका)

खुशरोज

सम्राट् अकबर के द्वारा स्थापित किया हुआ एक उत्सव, जिसे 'नौरोज' का या नव वर्ष का उत्सव भी कहते हैं।

जिस दिन सूर्य मेष राशि में आता है, उस दिन ईरान में नौरोज का उत्सव मनाया जाता है। उसी के अनुकरण पर सम्राट् अकबर ने भी इस मेले का प्रारम्भ किया था। इस मेले में धीर-धीरे उत्सवों के साथ सम्राट् के महल के विशाल आंगन में 'मीना बाजार' नाम से एक बाजार लगाया जाता था। इस बाजार में बेचनेवाली और खरीदने वाली सभी उच्च कुलों की स्त्रियाँ होती थीं। जिसमें बादशाह की बेगमें भी होती थीं।

ऐसा कहा जाता है कि इस बहाने सम्राट अकबार नव युवती स्त्रियों के रूप को देखकर अपनी रसिक वृत्ति को चरितार्थ करते थे और यदि किसी पर निगाह जमती तो उसको हर कौशल से अपने यहाँ महल में बुलाकर अपनी मनोकामना पूर्ण करते थे।

कहा जाता है कि संयोगवश एकबार उनके सामने राजा पृथ्वीराज की स्त्री पर अकबार बादशाह की निगाह जा जमी और वे उससे प्रेम-भिक्षा का निवेदन कर बैठे। अकबर की इस हरकत को देखकर उस तेजस्विनी क्षत्राणी का खून खौल उठा और वह कमर से छुरी निकाल कर अकबर की छाती पर चढ़ बैठी। यह देखकर सम्राट अकबर ने उस तेजस्विनी नारी से बार-बार क्षमा माँगी और प्रतिज्ञा की कि आगे से किसी भी सती स्त्री के साथ वे ऐसी हरकत न करेंगे। तब जाकर उस सती ने उनको छोड़ा।

आजतक भी राजपूतों के भाट उस महान सती की प्रशंसा के गीत गाते हैं।

खुशहाल खाँ खटक

सत्रहवीं सदी में अफगानिस्तान में पश्तो भाषा का एक सुप्रसिद्ध कवि। जो सम्राट औरङ्गजेब का समकालीन था। अफगान लोग अभी तक उसको राष्ट्रीय नायक की भांति ही महत्व देते और सत्कार करते हैं।

वह कवि होने के साथ ही एक सिपाही भी था। उसके जीवन का अधिकांश भाग मुगलों के साथ युद्ध करते ही बीता था। उसकी कविताएँ देश प्रेम जाति प्रेम और दार्शनिक विचारों से सम्बन्धित होती थीं। उसकी रचनाओं में बुनी-याल तवारीखे पश्तो बाजनामा हादिया आदि उल्लेखनीय हैं। उसकी एक कविता एक नमूना जो श्रीमती प्रभजोत कौर ने अनुवादित किया है इस प्रकार है—

ऐ मौन!

आज बातें न कर, कुछ अवकाश दे कुछ क्षण जा
कुछ सुन लूँ कुछ कह लूं, और कहलूं इस धरती का
मैं अधिकारी

कुछ हूक, कुछ राग, वह पवन मेरे देश की,
श्वासों में तनिक हवा दे

घेर निद्रा में सोये वीर जो, नींद से तनिक उठा लूं
कुछ बोल हैं ललकार के, कुछ वार हैं तलवार के
धार पाकर लहू की, इस लौ को भड़का लूं
कसम अल्लाह पाक की, और कसम है इस खाक की
वैरी का लहू उंडेल कर, धरती को मेहन्दी रचा लूं
(धर्मयुग ६-७-६४)

खुसरू मल्लिक (१)

भारत वर्ष के अन्तिम खिलजी-नरेश कुतुबुद्दीन-मुबारक का एक मुँह लगा गुलाम। जो धीरे-धीरे उसका वजीर हो गया और बाद मे दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेज दिया गया। मगर अन्त मे इसने अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया और सन् १३२० ई० के अन्त मे अपने मालिक 'कुतुबुद्दीन-मुबारक' को मार कर 'नसीर-उद्दीन' के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठ गया।

मगर उसकी इस हरकत को देख कर दरबारी लोगो ने 'गाजीबेग तुगलक' के नेतृत्व मे विद्रोह करके इसे मार डाला। और स्वयं गाजीबेग 'गयासुद्दीन' तुगलक के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

खुसरू मल्लिक (२)

दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक का भांजा, जिसको सन् १३३७ ई० मे मुहम्मद तुगलक ने एक विशाल सेना के साथ नैपाल-विजय के लिए भेजा था। बडी कठिनाई से पहाड को पार करके यह सेना जब चीन की सरहद पर पहुची तो एक तरफ से चीनी सेना ने और दूसरी तरफ से नैपाली सेना ने आक्रमण करके इनके सारे सामान को लूट लिया। दूसरी ओर भयकर बरसात शुरू हुई और ये उसी जगह पर बहुत से लोगो के साथ मौत के मेहमान हुए।

खुसरू-परवेज

ईरान के सासानी राजवश का बादशाह जिसका समय सन् ५९१ ई० से सन् ६२५ ई० तक रहा।

खुसरू-परवेज ईरान के सासानी- राजवश के बादशाह 'हरमूज तृतीय' के लडके थे। सम्राट् हरमूज की मृत्यु के पश्चात् उनके सेनापति 'बहराम' ने ईरान पर अपना कब्जा कर लिया था। मगर रोम के सम्राट् की सहायता से बहराम को पराजित कर खुसरू ईरान के तख्त पर बैठे। रोमन सम्राट की मदद से बैठने के कारण खुसरो उनको अपने धर्म पिता की तरह समझते थे।

सन् ६०३ ई० मे जब रोमन सम्राट 'मारिस' का कत्ल हो गया, तब उसका बदला चुकाने के लिये खुसरू ने रोम साम्राज्य पर चढाई कर दी और सीरिया तथा पेलिस्टाइन को लूट कर तहस नहस कर डाला। 'जेरु सलेम' को जीतकर वहाँ से सोने का असली 'क्रास' मिट्टी मे से निकाल कर विजय की निशानी के तौर पर अपनी राजधानी मे ले आये।

मगर इसका बदला रोम के सम्राट हेराक्लियस ने ईरान पर हमला करके लिया और कास्पियन सागर से लेकर 'इस्फहान' शहर तक सारे प्रदेश को ध्वस्त कर दिया। सरकारी खजाने को लूटा और अच्छे अच्छे महलो को तहस-नहस कर डाला।

देश की ऐसी बरबादी देखकर ईरानी जनता ने खुसरू परवेज के बडे लडके 'कबाद' के नेतृत्व मे विद्रोह कर दिया। कबाद ने अपने पिता को हथकडी-बेडियो से कस दिया और उनके सामने उनके १८ लडको की हत्या की गयी। इसके बाद उनको भी कत्ल कर दिया गया।

इस प्रकार सन् ६२८ ई० मे ईरान के जगतप्रसिद्ध 'नौशेरवा' के खानदान के गौरव का अन्त हो गया। हालांकि उसके बाद भी ५ वर्ष के बीच मे ११ सम्राट् एक दूसरे की हत्या करके ईरान के तख्त पर बैठे।

इस वश का अन्तिम राजा 'यज्दगिर्द' तृतीय था, जो अरबो के द्वारा पराजित कर दिया गया।

ख्रुश्चेव (निकिता ख्रुश्चेव)

रूसी सोवियट सघ के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री। उसके पहले सोवियट सघ के प्रधान सचिव। जिनका जन्म १७ जनवरी १८९४ को रूस के कुर्स्की प्रान्त के कालीनोवोक नामक स्थान मे हुआ था।

निकिता ख्रुश्चेव अपने समय के एक महान् राजनीतिज्ञ,

विचारक और विश्व-शान्ति के अन्यतम विधायक रखने वाले महान् व्यक्तियों में से एक रहे। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जब सारे संसार में एक अभूतपूर्व उथल पुथल हो रही थी और शस्त्र निर्माण में भयङ्कर प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी। उस समय जिन लोगों ने विश्वशांति और युद्ध को रोकने की दिशा में अथक परिश्रम किया उसमें भारत के प० जवाहरलाल नेहरू अमेरिका के प्रसिडेन्ट कनेडी और सोवियट संघ के निकिता ख्रुश्चेव इन तीन व्यक्तियों के नाम सर्वोपरि है। यह भी इतिहास की एक विचित्र घटना है कि जगन्नियन्ता ने एक दो वर्ष की कमोबेश अवधि में ही तीनों महान् व्यक्तियों को विश्व के मंच पर से हटा दिया। दो को मौत ले गई और तीसरे ख्रुश्चेव को राजनैतिक रणभूमि पर अपने व्यक्तित्व को बलि करना पड़ा।

निकिता ख्रुश्चेव सन् १९१८ में साम्यवादी दल के सदस्य बने। दो वर्ष तक इन्होंने गृहयुद्ध के समय रूस के दक्षिण मोर्चे पर सक्रिय भाग लिया। सन् १९२१ में य केन्द्रीय समिति के सदस्य चुने गए। सन् १९३५ से १९३८ तक मास्को क्षेत्र तथा नगर दल समिति के प्रथम सचिव चुने गये।

द्वितीय महायुद्ध के समय निकिता ख्रुश्चेव स्टालिनग्राड और यूक्रेन के युद्ध मोर्चे के लिए गठित युद्ध-परिषद् के प्रभावशाली सदस्य बनाए गए। उस समय इन्होंने भारी और जन समाधानों से घिर हुए सोवियत यूक्रेन क्षेत्र में युद्ध का संचालन किया। उस समय इन्होंने जर्मन सेनाओं से यूक्रेन का युद्ध करवाने में बड़े साहस का परिचय दिया।

सितम्बर सन् १९५३ में निकिता ख्रुश्चेव सोवियट संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के प्रधानसचिव चुने गए। उसके पश्चात् इन्होंने सोवियट संघ के तत्कालीन प्रधान मंत्री बुल्गानिन के साथ भारतवर्ष की यात्रा की। इसी यात्रा में कश्मीर जाकर इन्होंने यह घोषणा की थी कि "कश्मीर भारत का अविभाज्य अङ्ग है"। तब से अपनी सत्ता छोड़ने तक वे अपने इस वाक्य पर दृढ़ रहे। और संयुक्त राष्ट्रसंघ में जब जब भी पाकिस्तान अमेरिका इत्यादि देशों ने कश्मीर के मामले में भारत विरोधी प्रस्ताव पास करवाने का प्रयत्न किया रूस ने 'वीटो' लगा कर उसे समाप्त कर दिया। इससे इनके दृढ़ निश्चयी स्वभाव का पता लगता है।

सन् १९५८ में ख्रुश्चेव बुल्गानिन की जगह सोवियट संघ के प्रधान मंत्री बनाये गये। प्रधान मन्त्री बनने के बाद इन्होंने रूस के भूतपूर्व सर्वेसर्वा स्टालिन की रीतिनीति और उसके द्वारा विरोधियों पर जो भयङ्कर अत्याचार किये थे उनका भण्डाफोड़ करना प्रारम्भ किया। उस समय इन्होंने सारे रूस में और संसार में स्टालिन के विरुद्ध एक हवा बहा दी। और लेनिन के आदर्श पर सोवियट संघ की नीति का निर्माण करने पर बल दिया।

स्टालिन के विरुद्ध किये गये इस प्रचार से दो बड़े भारी किन्तु गम्भीर परिणाम हुए। एक तो रूस में तथा अन्य देशों में जो स्टालिनवादी लोग थे वे भीतर ही भीतर ख्रुश्चेव के विरुद्ध हो गये। दूसरे दुनिया का सबसे बड़ा स्टालिनवादी देश चीन ख्रुश्चेव की नीति से चौंक पड़ा और उस देश ने धीरे-धीरे ख्रुश्चेव की समझौतावादी नीति पर कीचड़ उछालना शुरू किया। इस प्रकार संसार का साम्यवादी दल दो भागों में विभक्त हो गया। एक दल ख्रुश्चेव की नरम नीति का समर्थक हो गया और एक दल माओत्से-तुङ्ग की उग्र नीति के पीछे हो गया।

मगर ख्रुश्चेव एक दृढ़ निश्चय के साथ रूस का नवनिर्माण करने में जुटे रहे। उनके समय में उनके प्रोत्साहन से रूस ने वैज्ञानिक क्षेत्र में सर्वतोमुखी उन्नति की। आणविक निर्माण में, अन्तरिक्ष की खोज में विज्ञान के क्षेत्र में प्रायः सभी क्षेत्रों में उन्होंने अपने महान् प्रतिद्वन्द्वी अमेरिका को पीछे रख दिया। रूस की इस विद्युद्वेग से होनेवाली वैज्ञानिक उन्नति को अमेरिका समेत सारा संसार बड़े आश्चर्य की दृष्टि से देख रहा था। इसकी वैज्ञानिक सफलता को सारे संसार ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया। सैनिक दृष्टि से भी रूस संसार की सर्वोपरि शक्तियों में हो गया था।

मगर इन सब बातों के बावजूद भी ख्रुश्चेव विश्वशान्ति और युद्ध वर्जन के आन्दोलन में किसी से पीछे नहीं रहे। इस समस्या को निबटाने के लिए उन्होंने पण्डित जवाहरलाल और प्रेसीडेण्ट कैनेडी का बराबर साथ दिया। हालांकि कुछ मतभेद ऐसे थे जिनका निबटना बहुत कठिन था।

इन्हीं भारी सफलताओं के बीच में भी ख्रुश्चेव के शासन में कुछ घटनाएं ऐसी हुईं जिनमें उनकी विफलता ने संसार के अन्दर रूसी सोवियट संघ को बदनाम किया।

इनमें से पहली घटना हङ्गरी में हुई। वहाँ पर कम्युनिस्ट शासन द्वारा किए गए अत्याचारों के खिलाफ जनता क्षुब्ध हो उठी।

दूसरी घटना क्यूबा मे हुई। सन् १९६० मे जनरल कास्ट्रो को सत्ता प्राप्त हुई। और उन्होने क्यूबाका नवीनीकरण करना प्रारम्भ किया। इससे अमेरिका के साथ उनका भयङ्कर मतभेद हो गया।

इन मतभेदो मे अमेरिका को नीचा दिखानेके लिए क्यूबा ने रूस के साथ साठ-गाठ करना शुरू कर दी। रूस ने अमेरिका के निकट ऐसे सुविधाजनक अड्डे प्राप्तकरने के अवसर को छोडना उचित नही समझा। उसने अपने जहाजो और पनडुब्बियो को क्यूबा तट पर भेजना प्रारम्भ किया और अमेरिका को धमकी दी कि वह स्वतन्त्र क्यूबा के मामले मे हस्तक्षेप न करे। वरना रूसी राकेट क्यूबा की रक्षा करने को तैयार है। मगर अमेरिका ने इस नाजुक प्रसङ्ग पर बडी दृढ़ता से काम लिया और रूस को चेतावनी दी कि अमुक-अमुक समुद्री सीमा के भीतर रूसी जहाज और पनडुब्बिया प्रवेश न करें, वरना उन्हें डुबो दिया जावेगा। साथ ही अमेरिका ने अपनी बहुत-सी जलशक्ति को भी उन सीमाओ पर जाने का आदेश दे दिया।

अमेरिका के इस दृढ रुख को देख कर ख्रुश्चेव स्तम्भित रह गये और उन्होने इस मामले को प्रतिष्ठा का विषय न बना कर क्यूबा मे बढाये हुए कदमो को वापस खीच लिया।

ख्रुश्चेव की इस कमजोरी की सारे ससार मे विशेष कर कम्यूनिस्ट देशो मे बडी कटु आलोचना हुई और इस घटना से उनकी प्रतिष्ठा को भी बहुत धक्का लगा। मगर उन्होने अपनी आन के पीछे एक बडे युद्ध को प्रारम्भ करने का खतरा उठाना उचित नही समझा।

ख्रुश्चेव की स्टालिन विरोधि नीति, चीन के साथ उन का बढता हुआ विरोध तथा आर्थिक दृष्टि से रूस की सम्भाव्य उन्नति न होने तथा इसी प्रकार की और भी कई छोटी-बडी बातो के कारण, सोविएट सघ मे गुप्तरूप से ख्रुश्चेव के विरोधियो की सख्या बढती जा रही थी।

और जैसा कि कम्युनिस्ट देशो मे अक्सर होता है एक दिन ऐसा आया जब बिना किसी विशेष हलचल के सर्वोच्च सोवियट ने अचानक सन् १९६४ मे ख्रुश्चेव का पत्ता काट दिया और वे अपने सभी पदो से पदच्युत कर दिये गये। उनके स्थान पर कोसिजिन सोवियट सघ के प्रधान मत्री बना दिये गये जो इस समय काम कर रहे हैं।

ख्रुश्चेव के विरोधी पक्ष का उन पर यह आरोप है कि उन्हो ने मार्क्स की क्रातिकारी नीति के विरुद्ध सशोधनवादी नीति को अपनाया, जो कि कम्युनिज्म के मौलिक सिद्धातो के विरुद्ध है।

पद भार से मुक्त होने पर ख्रुश्चेव की क्या स्थिति है, वे कहा रहते है क्या करते हैं, आदि सभी बातो से ससार अनभिज्ञ है। जो व्यक्ति किसी समय ससार के आङ्गन मे एक प्रकाशमान नक्षत्र की तरह चमकता था वह जीवित होते हुए भी आज अन्धेरे के किस कोने मे पडा हुआ है कोई नही जानता। कम्युनिस्ट व्यवस्था मे सभी व्यक्तियो का इसी प्रकार अन्त होता है। मोलोटोव, मालेनकोव, बुलगानिन बेरिया आदि सभी इसी उदाहरण को पुष्ट करते हैं।

खूनी रविवार

९ जनवरी सन् १९०५ ई० रविवार के दिन रूस के अन्तर्गत जो भारी हत्याकाण्ड हुआ, उसके उपलक्ष्य मे यह रविवार वहा पर 'खूनी रविवार' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

रूस-जापान युद्ध के कारण उस समय रूस की आर्थिक अवस्था बहुत खराब होगयी थी। जीवनोपयोगी सब चीजो की महँगाई सीमा से बाहर हो गयी थी। कारखानो के मजदूरो की मजदूरियाँ कम कर दी गयी थीं। तब इसके विरोध में 'बाल्शेविक' लोगो ने वहाँ सडको पर जलूस सगठन सगठित किये। 'ट्रोटस्की' पीटर्स वर्ग की 'सोवियट' का नेता बन गया। इस आन्दोलन से जार की सरकार हक्कबक्का गयी। वह किसी हद तक झुक भी गयी और उसने 'डूमा' के रूप मे एक वैधानिक परिषद् बनाने का आश्वासन दिया।

सरकार के इस वादे से नरमदल के कुछ लोग सन्तुष्ट हो गये। मगर क्रातिकारी लोग इससे सन्तुष्ट नही हुए और ९ जनवरी सन् १९०५ ई० को रविवार के दिन १४००० मजदूर जार के चित्र, झडे और ईसाई मूर्तियाँ लिए हुए प्रार्थना के गीत गाते हुए हेमन्त प्रासाद की ओर चले। चारो तरफ पोलिस का सगीन पहरा लगा हुआ था, फिर भी इस जलूस का बहुत सा अश राज-प्रसाद के मैदान में पहुँचने मे सफल हुआ।

पुलिस ने इस जलूस पर धुआंधार गोलीवर्षा करना

प्रारम्भ किया जिससे एक हजार मजदूर मारे गये और दो हजार से अधिक घायल हुए। जिसके परिणाम-स्वरूप यह खूनी रविवार भारत के 'जलियानवाला बाग' की तरह रूस के मजदूरों के लिए शहीदों का स्मारक-पर्व दिन बन गया।

मगर इस क्रान्ति में साधारण जनता और किसान विशेष रूपसे सम्मिलित नहीं थे। इस लिए सरकारने और पुलिस ने इस भूखी जनता को कुछ क्रान्तिकारी दलों के विरुद्ध भड़का दिया। जिसके परिणाम स्वरूप रूसियों ने यहूदियों की और तातरियों ने आरमेनियन लोगों की हत्याएँ कीं। क्रान्तिकारी विद्यार्थियों और गरीब मजदूरों में भी झगड़े हो गये। देश के भिन्न २ स्थानोंमें इस क्रांतिकी कमर तोड़ देने के बाद सरकार ने क्रान्ति के दो तूफानी केन्द्र 'पीटर्सबर्ग' और 'मास्को पर हमला किया। पीटर्सबर्ग की सोवियट आसानी से कुचल दी गयी मगर मास्को में फ़ौज ने क्रान्तिकारियों की मजदूरों और पाँच दिन की लड़ाई के बाद ही 'सोवियट' पूरी तरह कुचली जा सकी।

इसके बाद सरकार ने बिना मुकदमा चलाए एक हजार आदमियों को फाँसी दे दी। सत्तर हजार को जेल भेज दिया। सारे देश में इस क्रांति के फलस्वरूप प्रायः चौदह हजार लोग मारे गये। इस प्रकार पराजय और विनाश के साथ सन् १९०५ की रूसी क्रांति का अन्त हुआ मगर इसने जनता के अन्दर जो जागृति पैदा कर दी वही जागृति सन् १९१७ ई० में सफल क्रांति के रूप में प्रकट हुई।

खेड़ ब्रह्म

हिन्दुओं का एक प्राचीन तीर्थ स्थान। जो गुजरात के माहीकांठा नामक क्षेत्र में ईडर से ९ मील उत्तर की ओर हरनाई नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित है।

ब्रह्म पुराण की परम्परा के अनुसार ब्रह्माने अपने पापों से छुटकारा पाने के लिए विष्णु से उपाय पूछा तो उन्होंने उन्हें भरत खण्ड के किसी पवित्रस्थान पर यज्ञानुष्ठान करने की सम्मति दी।

तब ब्रह्माने विश्वकर्मा को आदेश देकर आबूपहाड़ से दक्षिण साबरमती के दाहिने तटपर ४ कोस के घेरे का एक नगर बनवाया। वह नगर स्वर्ण प्राचीर से घिरा हुआ था —— ——में चौबीस दरवाजे थे। हिरण्याक्ष नदी उसमें बहती थी। फिर उन्होंने यज्ञ कर्म करने के लिये नौ हजार ब्राह्मणों की सृष्टि की। यज्ञ पूर्ण होने पर ब्रह्माने उन ब्राह्मणों की रक्षाके लिए १८००० वैश्यों को पैदा किया और ब्राह्मणों से कहाकि तुम यहाँ मेरा एक मन्दिर बनाओ और उसमें चतुर्मुख मूर्ति स्थापित करो।

ब्रह्मा के पश्चात् उनके पुत्र 'भृगु' ने एक बार यह जानने के लिए कि ब्रह्मा विष्णु और महेश इन तीन देवों में सब से बड़ा कौन है। सब के पास जाकर उनकी निन्दा करना प्रारम्भ किया। अपनी निन्दा को सुनकर ब्रह्मा और शिव बहुत बिगड़े और वे भृगु को दण्ड देनेको तैयार हुए। तब भृगु विष्णु के पास गये और उन्होंने उनकी छाती में लात मार दी। मगर विष्णु तनिक भी नाराज नहीं हुए। उल्टे उन्होंने भृगुकी लातको सहलाते हुए कहाकि आपको बड़ी चोट आई होगी क्षमा करें। तब भृगु ने विष्णु को ही सबसे बड़ा देवता माना।

इन देवताओं के अपमान से जो पाप हुआ उसे छुड़ाने के लिए भृगु खेड़ब्रह्म गये और हिरण्याक्ष में स्नान कर आगे आश्रममें शिवजी की स्थापनाकर कठिन तपश्चर्या में लग गये।

यहीं पर भृगुऋषि का आश्रम भी था ऐसा कहा जाता है। यहीं पर बहुत से प्राचीन मन्दिरों के ध्वंसावशेष दिखाई पड़ते हैं। नगर के उत्तर की ओर जगल में जो ध्वंसावशेष हैं। उनमें कईयों की शिल्प कला बहुत उत्तम है।

यहाँ पर माघ शुक्ल १४ को मेला लगता है।

खे-ली-खान

मध्य एशिया के पूर्वी-तुर्की कबीले का एक प्रसिद्ध खाकान। जिसका समय सन् ६१८ से सन् ६२८ तक रहा।

खेली खान उसके पूर्ववर्ती खान शा-पु-लुयाखान का, छोटा भाई था। इस समय तुर्क साम्राज्य मंचूरिया से लेकर काला सागर तक और पश्चिम में सतलज तक पहुँच गया था।

शा-पु लुया खान की पटरानी चीन की राजकुमारी थी। खान की मृत्यु के बाद अपने पुत्रको अयोग्य जानकर इसने अपने देवर खेली-खान को गद्दी पर बिठाया और स्वयं उसकी पटरानी बन गई।

जिस समय खे-ली खान राजगद्दी पर आया उस समय उसका राज्य किसी रूप मे चीन के मातहत था। खेली खान को चीन का यह हस्तक्षेप पसन्द नही था। उसने चीन के एक दूसरे प्रतिद्वन्दी से ६००० सेना लेकर अपनी दस हजार सेना के साथ चीन के शान् शी प्रदेश मे लूटमार मचाना प्रारम्भ की। मगर चीनी सेनाने उसे बुरी तरह हराया। खे ली खान ने तब चीन के पास मित्रता जोडने का सन्देश भेजा। मगर चीन ने उसका विश्वास नहीं किया। सन् ६२२ मे जब तुर्की साम्राज्य मे अकाल पडा हुआ था तब चीनी सेनाने उस पर आक्रमण किया। मगर इस आक्रमण मे उसे सफलता नही मिली।

इसका प्रति शोध लेने के लिए खेली-खान और तु ली खानने मिलकर कई वर्षों तक चीन की सीमाओ पर लूटमार मचाई।

इस समय चाऊ-राजवश की गद्दी पर राजकुमार ताईसङ्ग सम्राट् बनकर आ चुका था। खे ली खान के उपद्रवो से तङ्ग आकर एक दिन चीनी राजकुमार अपने घोडे से शरीर रक्षको को साथ लेकर खे-ली की सेना के सामने चला गया। राजकुमार की इस हिम्मत को देखकर खे ली खान इतना प्रभावित हुआ कि उसने घोडे से उतरकर राजकुमार का अभिवादन किया। इसी समय सन् ६२६ मे खे ली खान और चीन के बीच एक सधि हुई जिसके परिणामस्वरूप खे ली की सेना लौट गई।

सन् ६२७ मे उत्तर दिशामे बैकाल और उइगुर कबीलो ने खे ली के अत्याचारोसे तङ्ग आकर वहांके तुर्क अफसरो को मार भगाया। उक्त कबीलोके विद्रोह को दवाने के लिए खे-लीने अपने ऊप खाकान तू ली को भेजा। मगर तू ली की सेना बुरी तरह पराजित हुई और तू-ली ने घोडे पर भाग कर जान बचाई। तू ली की इस हार से खे-ली बडा क्रुद्ध हुआ और उसने उसे गिरफ्तार कर लिया। तू-ली ने तुरन्त चीन-सम्राट् को खबर भेजकर अपनी मदद के लिए चीनी सेना बुलाली।

इसके बाद खे-ली खान का पतन शुरू हो गया। चीन सरकार ने उसको पकड कर उसे अपने यहाँ सम्मान पूर्वक रक्खा। मगर वहां वह शीघ्र ही मर गया।

खे-ली खान के बाद उसका साम्राज्य बहुत कुछ छिन्न-भिन्न हो गया।

खैबर-दर्रा

भारतवर्ष के उत्तर पश्चिम मे, उसे मध्यएशिया से मिलाने वाला एक विशाल पहाडी दर्रा। जो दो पहाडो के बीच मे ३३ मील लम्बा चला गया है। यही दर्रा भारत पर विदेशी आक्रमण का सबसे महत्वपूर्ण मार्ग रहा है।

अपनी प्राकृतिक सीमाओ मे भारतवर्ष तीन तरफ सागरो की विशाल जल राशि से और उत्तर की तरफ विशाल हिमालय की चोटियो से घिरा हुआ है। इस लिए प्राचीन काल मे इन दिशाओ से बाहरी आक्रमण कारियो के आने का खतरा बहुत कम था। सिर्फ खैबर का यह दर्रा ही एक ऐसा मार्ग था जहा से बाहरी आक्रमणकारियो ने प्रवेश कर इस देश पर विपत्तियो के पहाड ढहाये।

मकदूनिया के सिकन्दर महान् ने ईसा पूर्व चौथी शताब्दी मे इसी राह से भारतवर्ष मे प्रवेशकर राजा पोरस को हरा कर अपने साम्राज्य की स्थापना की थी। इसी मार्ग से ८वी सदी मे मुहम्मद बिन कासिम ने आकर यहा के राजा दाहिर को पराजित कर यहा पर भयङ्कर लूट मार की थी। इसी मार्ग से मुहम्मद गजनवी ने कई बार प्रवेश कर यहाँ के राजा जयपाल और आनन्दपाल को हरा कर सारे भारतवर्ष मे विनाश का ताण्डव नृत्य मचाया था। मतलब यह कि पुर्तगाल फ्रेंच और अग्रेजो के पहले जितने भी आक्रमणकारी इस देश पर आये वे सब इसी मार्ग से भारत मे प्रविष्ट हुए थे।

मुगल बादशाहो ने इस दर्रे पर स्थायी अधिकार रखने के लिए कई बार प्रयत्न किये मगर अफरीदी लोगो ने उनके अधिकार को स्थायी नही रहने दिया। सम्राट् अकबर ने इस दर्रे मे जानेवाली सडक का काफी सुधार किया। जिससे वहाँ गाडियाँ मजे मे आती जाती रही। मगर उस समय भी खैबर पर रोशानिया लोगो का दबदबा था। सन् १५८६ मे अपने भाई मिर्जा मोहम्मद हकीम के मरने पर अकबर ने काबुल पर अधिकार करने के लिए राजा मानसिंह के नेतृत्व मे जो सेना भेजी थी उसे भी रोशानियो से लडकर आगे बढना पडा था। सन् १६७२ मे औरङ्गजेब के सेनापति मुहम्मद अमीन खा को इन लोगो ने खैबर की राह मे भटका दिया और उस सेना को मार काट कर खजाना और स्त्री बच्चो को लूट लिया।

अग्रेजी राज्य के समय मे भी अफगानिस्तान की राज-

नीति में उनके रहने के कारण अंग्रेजी सेना को इस क्षेत्र में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। एक बार तो सारी अंग्रेजी सेना को काट दिया गया था।

अंग्रेजी शासन काल में इस क्षेत्र में सड़कों वगैरह की अच्छी व्यवस्था हो गयी और सण्डीकोतल तक तो रेल मार्ग भी बना गया है।

खैरपुर

सिन्ध प्रदेश के उत्तरी भाग में बसा हुआ एक नगर जो पहले एक देशी राज्य के रूप में था और अब पाकिस्तान के अधिकार में है।

खैरपुर का इतिहास विशेष कर सिन्ध-प्रदेश के इतिहास से जुड़ा हुआ है। सन् १७८६ में बलूच कबीला मीर फतेह अली खां तलपुर सिन्ध के राजा हुए। उनके पश्चात् उनके भानजे सोहराब खां तलपुर ने अपने दो लड़कों मीररुस्तम और अली मुराद के साथ खैरपुर में अपने राज्य की स्थापना की। उस समय यहां का राज्य अफगानिस्तान के अमीर को कर दिया करता था। मगर सन् १८११ में मीर रुस्तम ने अफगानिस्तान की अधीनता छोड़ दी। कुछ समय पश्चात् मीररुस्तम और अली मुराद दोनों भाइयोंके बीचमें झगड़ा पड़ जाने से अंग्रेजों ने बीच में पड़ कर उस झगड़े को निपटाया और सन् १८३२ में उनके बदले में सिन्धु प्रदेश के रास्ते से अंग्रेजी सेना को बेरोकटोक जाने का अधिकार ले लिया।

अलीमुराद ने खैरपुर में अपना प्रभुत्व स्थापन कर अंग्रेजों को काफी सहायता दी। उसका परिणाम यह हुआ कि मियानी और डोबर की लड़ाई के बाद जब सारा सिन्ध प्रदेश अंग्रेजों के अधिकार में आ गया तब सन् १८६६ में अंग्रेज गवर्मेंट ने यहां के राजा को एक सनद दी। जिसमें तलपुर मीरों को मुसलमानी कानून के अनुसार खैरपुर पर शासन करने का अधिकार दिया।

सन् १८६४ में अलीमुराद की मृत्यु हो गयी और उनके पुत्र मीर फैज महम्मदखां को राजगद्दी मिली उनके बाद मीर अली इमाम बक्श खां यहां के शासक हुए।

अंग्रेजी राज्य में यहां के राजा को १५ तोपों की सलामी और हिज हाइनेस का खिताब दिया गया था।

खेर-बाल गङ्गाधर (बाला साहेब)

भारतीय स्वतन्त्रता युद्ध के एक प्रसिद्ध कार्य कर्ता और बादमें बम्बई प्रान्त के मुख्यमन्त्री जिनका जन्म सन् १८८८ में रत्नागिरी जिले में और मृत्यु सन् १९५७ में हुई।

बाला साहब खेर के पिता एक पोस्टमैन का काम करते थे और उन्हें चार रुपया मासिक वेतन मिलता था। बड़ी कठिनाई से उन्होंने सन् १९०२ में मैट्रिक की और सन् १९०८ में बी ए की परीक्षा पास की। इसके बाद वकालत की परीक्षा पासकर वकालत प्रारम्भ की मगर इनकी वकालत ज्यादा नहीं चली और इन्हें बड़ी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

इसी समय संयोगसे हाईकोर्टके जज फ्रेंक बीमन ने इनकी इण्टर-व्यू से खुश हो कर इन्हें १००) मासिक वेतन पर रख लिया। इसके बाद सन् १९१२ से १९१८ तक उन्होंने फ्रेंक बीमन के साथ वकालत का काम किया।

सन् १९१९ २ में जब महात्मा गांधी का अहिंसात्मक आंदोलन इस देश में प्रारम्भ हुआ तो बालासाहब खेर भी उसमें पूरे उत्साह और आत्म विश्वास के साथ शामिल हुए। उस समय ये बम्बई वकालत करते थे।

सन् १९३७ में जब ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाने का निश्चय किया तो बालासाहब खेर को मुख्यमन्त्री बनाया गया। यह उनके जीवन की आश्चर्यजनक घटना थी। उस समय बम्बई कांग्रेस के अध्यक्ष श्री नरीमान थे। मगर सरदार पटेल से मतभेद हो जाने के कारण उन्हें उस पद से त्यागपत्र देना पड़ा था। श्री बहादुर राव देव की सिफारिश पर सरदार पटेल ने पहले दिन बाला साहब खेर को विधान सभा अध्यक्ष पद के लिए और दूसरे ही दिन मुख्यमन्त्री पदके लिए चुन लिया। बाला साहब खेर के लिए यह एक नाटकीय घटना थी।

बम्बई राज्य में सात गवर्नरों के साथ बाला साहब को काम करना पड़ा। इन गवर्नरों के साथ मौलिक नीति में पूर्ण मतभेद रहते हुए भी बालासाहब के सम्बन्ध बहुत अच्छे रहे। ये गवर्नर इङ्गलैंड जाकर भारत मन्त्री के सामने बाला साहब खेर की प्रशंसा करते थे। इसी से एक बार भारत मन्त्री लार्ड पैट लौरेन्स ने ब्रिटिश पार्लमेंट में श्री खेर की प्रशंसा करते हुए कहा था कि— श्री खेर भारत में एक

दिव्य पुरुष हैं। प्राचीन काल मे भारत अपने जिन दिव्य गुणो के लिए प्रसिद्ध रहा है वे सभी गुण श्री खेर मे पाये जाते है।"

डाडीमार्च और नमक सत्याग्रह के समय मे आर्थिक स्थिति कमजोर होने पर भी श्री खेर ने बडे उत्साह से भाग लिया और सन् १९३० मे उन्होंने चार बार जेल यात्रा की थी।

सन् १९४७ मे श्री खेर स्वाधीन सरकार के अन्तर्गत फिर से बम्बई के मुख्य मत्री बनाये गये। पाच वर्ष तक योग्यता पूर्वक शासन करने के बाद सन् १९५२ मे जब उन्हे फिर से चुनाव लडने को कहा गया तो उन्होने इन्कार करदिया। वे चाहते थे कि मन्त्रिपद किसी की ठेकेदारी नही है, दूसरे व्यक्तियो को भी इसके लिए अनुकूल अवसर मिलना चाहिये। तब उन्हे इगलैंड मे भारत का हाई कमिश्नर बना कर भेजा गया। दो वर्ष वहा काम करके सन् १९५४ मे अपनी पत्नी की बीमारी के कारण वे वापस आगये।

सन् १९५६ में श्री मावलङ्कर की मृत्यु के बाद एक बार उन्हे फिर बम्बई का मुख्य मन्त्री बनना पडा।

८ मार्च सन् १९५७ को श्री खेर का देहान्त हुआ। उनकी मृत्यु पर श्रद्धाजलि देते हुए श्री नेहरू ने कहा था कि —"बाला साहब खेर का व्यक्तित्व असाधारण था। उनकी देशभक्ति, विद्वत्ता और चारित्रिक शुद्धता आदि महान गुण सबके लिए अनुकरणीय रहेगे।"

खोकन्द

मध्य एशिया के आधुनिक उजबेकिस्तान गणराज्य के फरगाना जिले का एक शहर, जिसका इतिहास बहुत पुराना है।

वैसे यह नगर प्राचीनकाल मे हूण, उइगर, ईरान इत्यादि कई शक्तियो के आधीन रहा, मगर इसको स्वतत्र और विशिष्ट रूप तब मिला, जब सन् १७४७ ई० से सन् १८७६ तक यह एक स्वतत्र इकाई के रूप मे प्रकट हुआ।

खोकन्द के इस नये राजवश का प्रारभ 'यादगार खोजा, नामक व्यक्ति ने किया। उसके बाद इस वश मे १४ खान और हुए। जिसमे से पहला खान यादगार खोजा का दामाद 'शहारुख बेक' था, जिसने अपने श्वसुर को मारकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद इस वश का पाँचवाँ खान 'नरबुते' नामक व्यक्ति हुआ। जिसने सन् १७७० से सन् १८०० ई० तक शासन किया। इस खान ने चीन-सम्राट् के साथ अपने सम्बन्धो को बहुत बढ़ाया। चीन-सम्राट् ने उसे पुत्र की उपाधि प्रदान की। नरबुते ने खोजिन्द को छोड कर सारे फर्गाना प्रान्त को जीत लिया था। और अन्दीजान, नमगान्, ओश आदि नगर उसके हाथ मे थे।

सन् १८०० ई० मे खलीफा अबूबकर के वशज 'यूनस खोजा' ने नरबूते को पकड कर मार डाला।

नरबूते के मारे जाने के बाद उसका बडा लडका 'आलम बेग अपने भाई 'रुस्तम बेग' और दूसरे सम्बन्धियो की मार कर गद्दी पर बैठा। खोकन्द के खानो मे सबसे पहले इसी ने खान की पदवी धारण की। इसने अपने नामका खुतबा पढ़वाया और सिक्का चलवाया। आलम खान बडा दुराचारी और अत्याचारी था, इसलिए उसके सरदारो ने उसे मरवाकर सन् १८०९ ई० मे 'उमर खान' को गद्दी पर बैठाया।

उमर खान के शासन काल मे खोकन्द व्यापार का एक बहुत बडा केन्द्र बन गया था। क्योकि उसने रूस को यह आश्वासन दिया था कि अगर मेरी हदमे तुम्हारा कारवाँ लुट गया तो उसका सारा हरजाना मैं दूगा। इससे खोकन्द के साथ रूस का व्यापार खुल गया था।

सन् १८२२ ई० मे उमरखान के मरजाने पर 'मदली खान' खोकन्द की गद्दी पर बैठा। इसके समय मे खोकन्द का झडा 'यारकन्द' अक्सू और खोतन पर भी फहराने लगा था। मगर उसके बाद ये स्थान चीन के अधिकार मे चले गये।

सन् १८३१ ई० मे खोकन्दकी चीनके साथ एक सन्धि हुई। जिसके अनुसार खोकन्द को अक्सू, ओश, तुफनि, काशगर, यारकन्द और खोतन से आनेवाले माल पर कर लगाने का अधिकार मिल गया।

सन् १८४० ई० से मदली खान शराब और साकी के चक्कर मे पड गया। इससे वहाँ के सरदारो ने बुखारा के शासक अमीर 'नसरुल्ला' की सहायता से मदलीखान और उसके सारे परिवार को कत्ल करवा दिया।

मदली खान की मृत्यु के पश्चात् 'शेरअली' और उसके बाद 'मुराद' खोकन्द की गद्दी पर बैठे। इस समय खोकन्द के

अन्दर तीन राजनैतिक दल थे। जो सत्ता हथियाने के लिए एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे थे। दो दल 'किपचक' मुसलमानों के थे और तीसरा दल 'सर्त जाति' का था।

सर्त-जाति के षड्यन्त्र से बहुत से किपचक-नेता मारे गये। 'खुदायार' नामक शासक ने 'अकमस्जिद' में किपचकों का कत्ले-आम करने का हुक्म दे दिया। सन् १८५१ ई० २० हजार किपचक तलवार के घाट उतारे गये। किपचकों के मुख्य सेनापति 'फकरबी' को बड़ी यन्त्रणा देकर मारा गया। पहले उसके हाथ-पैर तोड़ डाले गये फिर उसके सिर पर शीशे का इतना भारी भार रखा गया कि आँखें अपने कोटर से बाहर निकल आईं। फिर उसके सारे शरीर पर रुई लपेटी गयी और ऊपर से खूब खौलता हुआ तेल डाला गया फिर उसकी बोटी बोटी काटी गयी। इस प्रकार उसकी मृत्यु हुई।

इसके पश्चात् खोकन्द-राज्य में मल्ला खान शाह मुराद खुदायार दूसरी बार, सैय्यद सुल्तान खुदायार तीसरी बार और नासिर-उद्दीन इतने खान और हुए। इसके बाद २ मार्च सन् १८७६ को एक राजादेश के द्वारा खोकन्द के राज्य को 'फरगाना प्रदेश' के नाम से रूसी साम्राज्य में मिला लिया गया।

रूसी क्रान्ति के समय सन् १९१७ ई० में खोकन्द फिर एक बार संग्राम में आया। नवम्बर सन् १९१७ ई० में अंग्रेजों की शह से अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करके इसने अपनी स्वतंत्र सरकार कायम कर ली। इस आन्दोलन का आस-पास के सभी क्षेत्रों के मध्यवर्गियों ने समर्थन किया। समरकन्द में इस आन्दोलन का समर्थन करने के लिए 'इत्तिफाक' के नाम से एक संगठन कायम किया गया।

तब रूस के सोवियत-कमाण्डर ने इस आन्दोलन को समाप्त करने के लिए १९ फरवरी सन् १९१८ ई० के दिन एक 'अल्टीमेटम' दिया जिसे विरोधी दल ने मानने से इनकार कर दिया।

परिणामस्वरूप २ फरवरी को सवेरे 'लाल सैनिकों' ने पुराने नगर पर धावा बोल दिया। २१ २२ फरवरी सन् १९१८ को खोकन्द की सरकार ने सोवियट-सेनापति के आगे आत्मसमर्पण कर दिया और खोकन्द सोवियट-संघ के उज्बेकिस्तान गणराज्य का एक अंग हो गया।

—

खोजन्द (लेनिनाबाद)

मध्य-एशिया का एक ऐतिहासिक नगर जो सिर नदी के तट पर बसा हुआ है। इस समय यह नगर सोवियट संघ के उज्बेकिस्तान गणराज्य में है।

खोजन्द का इतिहास भी खोकन्द की तरह बहुत प्राचीन है। ग्रीक-विजेता सिकन्दर महान् ने इस प्रदेश को विजय कर सिरदरिया के किनारे खोजन्द के समीप 'अलेक्जेंड्रिया' नामक एक शहर बसाने का निश्चय किया था। मगर वहाँ के लोगों के विद्रोह कर देने के कारण उसे यह नगर नदी के बायें तट पर बसाना पड़ा।

सन् ७१२ के आसपास यह नगर बगदाद के खलीफा अब्दुल मलिक की खिलाफत में आया। सन् ८०१ के करीब यह तुर्क जाति की शाखा उइगरों के अधिकार में था। उसके बाद कभी यह ख्वारेज्म शाह के अधिकार में कभी खोकन्द खानों के और कभी बुखारा के खानों के हाथ में आता जाता रहा।

इसके बाद सन् १९१८ में रूसी क्रांति के पश्चात यह शहर सोवियट संघ के उज्बेकिस्तान-गणराज्य का एक अंग हो गया और इसका नाम 'खोजन्द' से बदल कर 'लेनिनाबाद' कर दिया गया।

—

खोजेनिया जामिमोर्या

रूस के सुप्रसिद्ध यात्री अफनासी के द्वारा सन् १४६९ से १४७२ तक की हुई भारत यात्रा का रूसी भाषा में लिखित प्रसिद्ध ग्रन्थ।

अफनासी जिस समय भारतवर्ष में आया था उस समय दक्षिणी भारत में बहमनी सुलतान महम्मद शाह तृतीय का शासन था। अफनासी ने अपने इस यात्रा विवरण में तत्कालीन भारत का मनोरंजक वर्णन किया है। यह हस्तलिपि स्मारकों के सुप्रसिद्ध रूसी इतिहास के छठे खण्ड में छपी है और इससे पन्द्रहवीं सदी के रूसी गद्य की रूप रेखा दृष्टिगोचर होती है। अफनासी का विशेष परिचय इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में देखें।

—

खोजा (१)

बम्बई की एक प्रसिद्ध व्यापारी कौम जो विशेष कर किराने और मेवे का व्यापार करती है। खोजा जाति बड़ी व्यापारिक सूझ वाली जाति है। बम्बई मे इनकी कई बडी-बडी व्यापारिक फर्में स्थापित हैं। यह जाति विशेषकर मुसलमान धर्म के इस्माइलिया या आगाखानी सम्प्रदाय को माननेवाली होती है।

खोजा (२)

मुसलमानी राज्यकाल मे हरमखाने (अन्त पुर) मे पहरा देने वाले और बेगमो की नौकरी बजाने वाले, लोगो को खोजा कहते थे। खोजा अकसर हिजडे होते थे। मुगल इतिहास मे पढने को मिलता है कि कई बार ये खोजा लोग भी बड़े प्रभावशाली और शक्तिशाली होते थे। बादशाह और बेगमो पर इनका प्रभाव रहता था।

खोजा उबैदुल्ला अहरार

पन्द्रहवी सदी मे समरकन्द का एक प्रसिद्ध सूफी सन्त, जो तुर्की और फारसी के सुप्रसिद्ध कवि और लेखक अली-शेर-नवाई का समकालीन था।

समरकन्द मे रहते हुए अली-शेर-नवाई को जिन लोगो से मुख्य प्रेरणा मिली उनमे खोजा अहरार सब से मुख्य था। खोजा अहरार एक सूफी सन्त होते हुए भी विशाल जमीदारी का मालिक था। ऐसा कहा जाता है कि एक आदमी एक बार गधे पर चढ़ कर अन्तर्वेद मे उत्तर से दक्षिण की यात्रा कर रहा था। वह कई मील तक चलता गया लेकिन जहाँ भी किसी हरे, भरे लहलहाते खेत को देख कर पूछता कि "यह किसका खेत है ?" तो यही उत्तर मिलता कि खोजा अहरार का है। जब वह सुनते-सुनते थक गया तो एक जगह उसने गधे को भी यह कह कर हकाल दिया कि जा तू भी खोजा अहरार का होजा।

खोजा अहरार की सब से अधिक महिमा इसी बात में थी कि उसकी सारी सम्पत्ति परोपकार के कामो मे खर्च होता था।

खोजा यादगार

मध्य एशियामे खोकन्द के राजवश को प्रारम्भ करने वाला खोजा यादगार। जिसका समय सन् १७४० के आसपास है।

अस्त्राखानी राजवश की सत्ता निर्बल पडजाने पर फरगाना और ताशकन्द मे एक नये राजवश की स्थापना खोजा यादगार ने की। इसने अपनी लडकी की शादी शाह रुख बेग नामक एक व्यक्ति से की। जो वोल्गानदी के किनारे पर बसे किसी कबीले का अमीर था। इसी शाहरुख ने सन् १७४७ मे अपने ससुर खोजा यादगार की हत्या कर अपने आप को खान के स्थान पर प्रतिष्ठित किया। यह राज वश सन् १८७६ तक खोकन्द पर शासन करता रहा।

खोतन

मध्य-एशिया के उत्तरापथ मे तरिम उपत्यका का एक प्रधान नगर।

खोतन, तरिमउपत्यका मे बसे हुए आठ नगरो मे से एक हैं। तरिमउपत्यका के वे सब नगर पहले शक जाति की शाखाओ के अधीन थे। सन् २१५ मे यहाँ के राजा का नाम 'विजय सम्भव' था। राजा विजय सम्भव बौद्ध धर्म को मानने वाला था। इसके समय मे सुप्रसिद्ध बौद्ध आचार्य, 'वैरोचन' ने भारतवर्ष की ब्राह्मी लिपि के आधार पर 'खोतानी' लिपि का आविष्कार किया था।

राजा विजयसम्भव की आठवीं पुश्त मे विजय-वीर्य्य नामक राजा हुआ। इसकी रानी चीन की राजकुमारी ने इसके सहयोग से गोशृङ्ग पर एक बौद्ध-विहार का निर्माण करवाया था। इसी चीनी राजकुमारी ने खोतन मे चीन के बने रेशमी वस्त्रो का प्रचार भी किया था।

राजा विजयवीर्य्य के पश्चात उसका एक पुत्र विजय-धर्म राजगद्दी पर बैठा। इसके समय मे 'समन्त-सिद्धि' नामक एक बौद्ध आचार्य ने भारत से आकर खोतन मे बौद्ध धर्म के 'सर्वास्तिवाद' मत का प्रचार किया। विजयधर्म के पश्चात् विजय सिंह और विजयकीर्तिनामक राजा हुए।

सन् ६३२ मे खोतनमे विजय-सग्रामक नामक एक प्रतापी नरेश हुआ। इसने बौद्ध धर्म की ज्योति को एक बार फिर से

प्रकाशित किया। इसी के राज्यत्व-काल में चीनी यात्री हुएन सङ्ग भारत से लौटता हुआ 'खोतन' में ठहरा था। विजय-संग्रामक के पश्चात् विजयधर्म और विजय वाहन नामक राजा हुए। विजय धर्म ने खोतन में अर्हत वैरोचन के लिए 'मैत्र' नामक एक विहार को बनवाया था। राजा विजय वाहन के कई सिक्के खोतन में मिले हैं।

इसके पश्चात् सन् ६६२ में तरिमउपत्यका का यह सारा प्रदेश तिब्बत राजवंश के अधिकार में चला गया। उस समय काशगर और यारकन्द से लेकर नेपाल और काश्मीर तक तिब्बत की विजय पताका लहरा रही थी।

खोतन के वैभव और वहाँ पर बौद्ध धर्म की स्थिति का वर्णन करते हुए सुप्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने लिखा है—

"गोमती विहार में ३ ०० बौद्ध भिक्षुओं के ठहरने की व्यवस्था है। यह विहार बौद्ध भिक्षुओं से प्रायः भरा रहता है। प्रति वर्ष वसन्त ऋतु में यहाँ भगवान बुद्ध की मूर्ति का जुलूस निकलता है। इस जुलूस में राजा नंगे पैर धूप जलाकर जुलूस में रथ के आगे चलता है और रानी द्वार के ऊपर से फूलों की वर्षा करती है। यह उत्सव १५ दिन तक चलता है।"

इससे मालूम होता है कि उन दिनों 'खोतन' बौद्ध धर्म का एक बड़ा केन्द्र बना हुआ था। खोतन के विहारों में संस्कृत और खोतनी भाषा के ग्रन्थों का विशाल संग्रह रहता था। बौद्ध धर्म के कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ खोतननगर से प्राप्त हुए हैं।

[ग]

गक्खड़

भारत के उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त में बसनेवाली एक असभ्य और लड़ाकू जाति। इस जाति ने सन् १ ८ में महमूद गजनवी के साथ होने वाले संयुक्त हिन्दुओं के युद्ध में बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। आजकल यह जाति मुसलमान है।

मुहम्मद गजनवी के आक्रमणों को रोकने के लिए भारत वर्ष के प्रायः सभी हिन्दू राजाओं ने सम्राट आनन्दपाल के नेतृत्व में एक संयुक्त प्रयत्न सन् १ ८ में किया था। इतिहासकार फरिश्ता ने इस युद्ध का वर्णन बड़े ही विस्तार रूप से किया है। इस युद्ध में गक्खड़ जाति के भी करीब ३ ० सैनिक शामिल हुए थे।

अटक के निकट छाछा के मैदान में दोनों सेनाएँ आमने सामने डटकर ४ दिन तक योग्य अवसर की प्रतीक्षा करती रहीं परन्तु असभ्य और उघाड़े सिर वाले गक्खड़ों ने हिन्दुओं की ओर से एक दम मुसलमानी सेना पर आक्रमण कर दिया और थोड़े ही समय में इन पाँच हजार मुसलमानों को काट डाला।

गक्खड़ों का जोश देख कर उस दिन युद्ध बन्द कराने की इच्छा से सुलतान मुहम्मद बाहर निकल आया। मगर उसी समय तुरही इच्छा से आनन्दपाल का हाथी बारूदों और तीरों की वर्षा से घबरा कर पीछे भाग गया। इस घटना को भागने के लिए सेनापति की सूचना समझ कर हिन्दू सेना भी भाग निकली और सुलतान की हार जीत में बदल गई।

इसके पश्चात् शाहबुद्दीन गोरी के समय में भी इस गक्खड़ जाति ने बड़ा विद्रोह किया था। इस विद्रोह का दमन करने के लिए सुलतान फिर भारत में आया। कुतुबुद्दीन भी उससे आ मिला। दोनों ने मिलकर उपद्रव तो दबा दिया। मगर अवसर देखकर इन्हीं गक्खड़ों ने सिंधु नदी के तीर पर सुलतान के डेरे में घुसकर सन् १२ ६ में उसे मार डाला।

गङ्ग-राजवंश

प्राचीन भारत में दक्षिण प्रदेश का एक सुप्रसिद्ध राजवंश। जिसका शासनकाल ई० सन् १०१६ से सन् १ २४० तक रहा। दक्षिण प्रदेश का यह सब से दीर्घजीवी राजवंश था।

गंग-वंश के लोग अपने को राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र-भरत की पत्नी विजय-महादेवी के पुत्र गांगेय का वंशज मानते थे। ऐसा उनके शिला-लेखों और ताम्रपत्रियों से ज्ञात होता है।

गङ्ग-वंश की कलिंग शाखा के एक शिलालेख में इस वंश की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है कि—'गङ्गों का यह राजवंश चन्द्रवंशी था और इसका मूल गांगेय था। इस वंश में ययाति का पुत्र तुर्वसु हुआ। तुर्वसु को कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उसने गंगा की आराधना करके एक पुत्र प्राप्त किया। उसका नाम 'गांगेय' रखा गया। इसी गांगेय की सन्तानें गङ्गवंश के नाम से प्रसिद्ध हुईं।—कोल पाण्डव

केरल इत्यादि दक्षिण के राजवश भी अपने को तुर्वसु के वशज बतलाते हैं और यह भी कहते हैं कि 'ययाति' ने पृथ्वी का बटवारा करते समय उनको आग्नेय दिशा प्रदान की थी। चोल, पाण्ड्य, गङ्ग इत्यादि राजवश बहुत प्राचीन है, मगर वे अपनी उत्पत्ति यादवो मे नहीं मानते। इससे मालूम होता है कि वे महाराष्ट्रीय आर्यो से भिन्न हैं। ये वश दक्षिण की मिश्र आर्य्य शाखा के है।

इस वश मे महाभारत काल मे विष्णुगुप्त नामक व्यक्ति अहिच्छत्र का राजा था। इसी अहिच्छत्र वश मे आगे चलकर पद्मनाभ नामक राजा हुआ। जिस पर उज्जयिनी के राजा ने आक्रमण कर पराजित कर दिया। ऐसे सङ्कट-काल मे उसने अपने दद्दिग और माधव नामक दो बालक पुत्रो को राजचिन्हो के साथ दक्षिण देश मे भेज दिया।

ये राजकुमार कुछ बडे होने पर कर्नाटक प्रदेश के 'पेरूर' नामक स्थान पर पहुँचे। उस समय वहाँ पर जैनाचार्य सिंह-नन्दि अपने शिष्य समुदाय के साथ ठहरे हुए थे। ये दोनो युवक अकस्मात् उन आचार्य्य के पास पहुँच गये। आचार्य्य सिंहनन्दी ने कुछ समय अपने पास रख कर इन्हें राज विद्या का अध्ययन करवाया। बाद मे एक दिन उन्होने उनके सिर पर कर्णिकार पुष्पो का मुकुट पहना कर उनका राज्याभिषेक किया और अन्त मे धर्म और न्याय के सम्बन्ध मे कुछ आवश्यक चेतावनिया देकर उनका राजचिन्ह 'मत्त-गयन्द' निश्चित कर वहाँ से राज्य स्थापना के रवाना किया।

इन दोनो राजकुमारो ने बड़े उत्साह के साथ अपना सैनिक सगठन कर उस समय के वाण राजवश पर विजय प्राप्त कर गगवाडी ९६००० की नीव डाली।

गग राजवश के कई शिलालेख प्राप्त हुए हैं। एक शिला लेख से मालूम होता है कि दद्दिग और माधव ने नन्दिगिरि मे अपने दुर्ग का निर्माण करवाया, कोलाल को अपनी राजधानी बनाया और अपने राज्य को ९६००० की सज्ञा दी। दद्दिग की मृत्यु शीघ्र ही हो गई। उसके भाई माधव कोगुणिवर्म प्रथम ने सन्१८५ से सन् २५० तक शासन किया।

माधव कोगुणिवर्म का पुत्र किरीयमाधव हुआ। यह बडा विद्वान् और नीतिज्ञ था, इसने वैशेषिक सूत्रो पर टीका की रचना की थी। इसके हरिवर्मन, आर्य्यवर्मन और कृष्णवर्मन नामक तीन पुत्र हुए। हरिवर्मन मुख्य राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपनी राजधानी 'कोलाल' से हटाकर तालवनपुर नगर मे स्थापित की।

आर्य्यवर्मन को पेरूर का शासक बनाया गया। इसी से गगवश की दूसरी पेरूर शाखा का उद्भव हुआ। कृष्णवर्मन को 'कैवार' का शासक बनाया गया। इसी से गंगवश की तीसरी कैवार शाखा का प्रारम्भ हुआ।

हरिवर्मन की चौथी पुश्त मे माधव तृतीय नामक एक प्रतापी राजा हुआ। इसके राज्यकाल का एक विशाल लेख प्राप्त हुआ है। उससे मालूम होता है कि इसका विवाह कदम्ब नरेश कुरन्दवर्मन की पुत्री के साथ हुआ। इस राजा के कुछ दानपत्र भी मिले हैं जो सन् ३५७ और सन् ३९६ के बीच मे लिखे गये थे।

इस वश मे आगे चल कर दुविनीत कोगुणि नामक एक बडा प्रतापी शासक हुआ। इसने सन् ४८२ से ५२२ तक राज्य किया। इसने पल्लव नरेश त्रिलोचन को परास्त किया और पूर्व तथा पश्चिम दोनो दिशाओ मे उसने अपने साम्राज्य का काफी विस्तार किया। दुर्विनीत कोगुणि अपने समय मे दक्षिण प्रदेश का सबसे बडा शासक था। शासक होने के साथ ही यह बडा विद्वान् भी था। महाकवि भारवि भी कुछ समय तक इसके दरबार मे रहे थे। और उनके किरातार्जुनीय काव्य के पन्द्रहवें सर्ग पर उसने एक टीका भी लिखी थी उसने अपने गुरु आचार्य्य पूज्यपाद द्वारा रचित पाणिनी व्याकरण की शब्दावतार टीका का कन्नड अनुवाद भी किया था। कन्नड भाषा के प्रारम्भिक लेखको मे इसका नाम भी प्रमुख है।

दुर्विनीति कोगुणि के समय के कई ताम्रपत्र भी मिले हैं। उसके शासन के अन्तिम वर्ष का ताम्रपत्र गुम्मरेडिपुर मे मिला है।

दुर्विनीति के पश्चात् गगवश के शासन मे शिथिलता आ गई। इसलिये कोलाल से कुछ राजवशीय पुरुष कलिंग चले गये और कलिंग मे जाकर उन्हो ने गंग राजवशका राज्य स्थापित किया और अपने नाम से गंग-सम्वत् का प्रारम्भ किया। इन्ही दिनो अर्थात् ई० सन् ६३० के आस पास गग वश की पेरूर और कैवार शाखाओ का भी अन्त हो गया।

गंगवंश की प्रधान शाखा में दुर्विनीत के पश्चात् मुष्कर श्रीविक्रम और भूविक्रम राजा हुए। इनके समय में दक्षिण प्रदेश में चालुक्य राजवंश बड़ा वैभवशाली होगया था और गंगवंश के राजा चालुक्य राजवंश के एक प्रकार अधीनस्थ हो गए थे।

ई॰ सन् ७२६ में गंगवंश की गद्दी पर श्रीपुरुष मुत्तरस अभिषिक्त हुआ। इसके राज्य काल में गंगवंश अपने उत्कर्ष की परम सीमा पर पहुँच गया था। श्रीपुरुष को चालुक्यों पल्लवों और राष्ट्रकूटों से कई युद्ध करना पड़े। एक युद्ध में उसने पल्लव नरेश को मार कर उसके छत्र पर अधिकार कर लिया। वेणुम्बिइ के युद्ध में उसने महान् पराक्रमी बाणराय को परास्त किया। पाण्ड्य नरेशों के साथ विवाहसम्बन्ध स्थापित कर उसने उनके साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिये। पल्लवों पर विजय करके इस राजा ने 'परमादि' तथा 'राजकेसरी' इत्यादि विरुद धारण किये थे। राजा श्री पुरुष जैन धर्म का बड़ा आदर करता था। इसके समय के मिले हुए दानपत्रों से पता चलता है कि इसने कई जैन मन्दिरों को कई गांव जागीर में दिये थे। प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री स्वामी विद्यानन्द ने अपना आश्रम इसकी राजधानी में ही बनाया था। क्योंकि इसी समय के लगभग जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने शृङ्गेरी में अपने मठ की स्थापना की थी। स्वामी विद्यानन्द का शङ्कराचार्य के साथ बड़ा शास्त्रार्थ था। सन् ७७७ में ५ वर्ष तक अधिक राज्य करके राजा श्री पुरुष अपने पुत्र शिवमार द्वितीय को राज्य देकर वानप्रस्थ हो गया। सन् ७८८ में उसकी मृत्यु हुई।

राजा शिवमार के सिंहासन पर बैठने के कुछ समय पश्चात् राष्ट्रकूट राजा ध्रुव ने गंगराज्य पर आक्रमण करके शिवमार को कैद कर लिया। सन् ७९४में वह जेल से छूटा और छूटते ही इस पराक्रमी राजा ने नन्दिवर्मन राष्ट्रकूट, चालुक्य और हैहय राजवंश के मित्र संघ को पराजित कर पल्लवों से मित्रता करली। पर कुछ समय पश्चात् राष्ट्रकूटों ने उसे फिर बन्दी बना लिया जहाँ से सन् ८१ में उसे मुक्ति मिली।

सन् ८१५ ई॰ में 'राचमल सत्य वाक्य' गंगराज्य की गद्दी पर आया। इस समय गंगराज्य चारों ओर शत्रुओं से घिरा हुआ था। एक ओर राष्ट्रकूटों की महान् शक्ति की दूसरी ओर बाण राजवंश और नोलम्ब वे सामन्त उसे तंग कर रहे थे। फिर भी किसी प्रकार बाण राजाओं को पराजित कर और नोलम्ब राज्य के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित कर उसने अपने राज्य की समृद्धि को बनाये रखा।

राचमल सत्यवाक्य के पश्चात् ऐरेयप नीति मार्ग राजा हुआ। इसने अपने पुत्र बुतेन्द्र का विवाह राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष की कन्या चन्द्रबेलब्बा के साथ करके राष्ट्रकूटों से मैत्री स्थापित करली। कुडलूर में पाए हुए एक शिला लेख से मालूम होता है कि अपने अन्तिम समय में इस राजा ने जैन धर्म में वर्णित पद्धति से समाधिमरण के द्वारा शरीर का त्याग किया था।

ऐरेगंग नीति मार्ग की मृत्यु सन् ८७० में हुई थी। इसके पश्चात् इसका दूसरा पुत्र राचमल सत्यवाक्य द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा। इसने चालुक्य, पाण्ड्य और पल्लव राजाओं के साथ कई लड़ाइयां लड़ी। इसकी मृत्यु सन् ९०७ में हुई।

इसके पश्चात् ऐरेयप नीति मार्ग द्वितीय राजा हुआ। इसका विवाह चालुक्य राजकुमारी जाकब्बा के साथ हुआ था। पल्लवों को हरा कर उनके कई दुर्गों पर इसने अधिकार कर लिया था।

नीतिमार्ग द्वितीय के बाद गंगवंश की गद्दी पर राचमल्ल सत्यवाक्य तृतीय और उसके पश्चात् बुतुग द्वितीय बैठा। बुतुग द्वितीय ने सन् ९३८ से ९५३ तक राज्य किया। बुतुग का विवाह राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय की बहन रेवा से हुआ था। इस प्रकार राष्ट्रकूटों साथ गंगवंश के सम्बन्ध क्रमशः दृढ़ होते जा रहे थे। और इससे गंगवंश शक्ति प्राप्त करता जाता था।

बुतुग के पश्चात् उसका पुत्र और कृष्ण तृतीय का भानजा मरुलदेव गद्दी पर बैठा। इसने ९५३ से ९६१ तक राज्य किया। इसकी बहन 'सोमा' का विवाह राष्ट्रकूट कृष्ण तृतीय के पुत्र के साथ हुआ था।

मरुल के पश्चात् उसका सौतेला भाई मारसिंह गंगवंश का अन्तिम महान् प्रतापी नरेश था। इसकी एक प्रशस्ती श्रवणबेल गोला के ब्रह्मदेव स्तम्भ पर खुदी हुई है। उसके अनुसार मारसिंह गंग को धर्म-महाधुर्य गंग-विद्याधर इत्यादि कई विरुद प्राप्त थे।

इस प्रशस्ति में लिखा है कि "इसने मालवे पर आक्रमण करके वहाँ के परमार राजा को पराजित किया। राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय के लिए उसने गुर्जर देश को

विजय किया। कृष्ण के शत्रु अल्ला का दमन किया। विंध्य प्रदेश के किरातो को छिन्न भिन्न किया। शिलाहार राजा विज्जलासे युद्ध किया। वनवासी के राजाओ को करारी पराजय दी, मानुरो का दमन किया। उचङ्गी के सुदृढ दुर्गों को जीत लिया। सवर राजकुमार नरङ्ग का नाश किया। चेर, चोल पाण्डय और पल्लवो का दमन किया और चालुक्य विजयादित्य का अन्त किया। उसने कई स्थानो पर दर्शनीय जिन मन्दिरो का निर्माण करवाया।"

सन् ९७४ मे मारसिंह ने राजत्याग किया और सन् ९७५ मे समाधिमरण के द्वारा उसकी मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु होते ही गङ्ग राज्य मे अराजकता फैल गयी। और यह राज्य चोल राजवश और लोमसाल राजवश के एक सामान्त राज के रूप मे विजय नगर साम्राज्य तक जीवित रहा।

गङ्ग राजवश के साथ एक ऐसे व्यक्ति का भी नाम जुडा हुआ है जिसने अपने समय मे राजनैतिक, सास्कृतिक और धार्मिक क्षेत्रो मे ऐसी स्मृतियाँ कायम की, जो आज भी उसके नाम को अमर कर रही हैं। यह व्यक्ति मन्त्री "चामुण्ड राय" था। यह मार सिंह के अन्तिम समय से लेकर उसके पौत्र राकस गङ्गा के शासनकाल तक गङ्ग-साम्राज्य का प्रधान मन्त्री रहा। इस समय गङ्गवशके तेजी से होते हुए पतन को इसने अपने व्यक्तित्व के बल से किसी प्रकार रोका। कई युद्धो मे उत्कृष्ट वीरता का प्रदर्शन करके इसने वीर-मार्तण्ड, समर केसरी आदि कई उपाधिया प्राप्त की।

मगर चामुडराय की सबसे अमर कीर्ति श्रवण बेल गोला मे उसके द्वारा सन् ९७८ मे बनाई गई गोमेटेश्वर को सत्तर फीट ऊची विना सहारे की खडी हुई वह अद्भुत मूर्ति है जो रूप शिल्प और मूर्तिविज्ञान की ससार मे अद्वितीय कलाकृति है। चामुण्डाय के ही समकालीन सुप्रसिद्ध जैनाचार्य नेमीचन्द्र सिद्धाचक्रवर्ती थ। जिन्होने "गोम्मटसार" के समान महान ग्रन्थो की रचना की।

गङ्गवश की दूसरी शाखा जिसने पाचवी सदी मे कलिंग पर अपना शासन प्रारम्भ किया था "गजपति" वश के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस राजवश ने गग सम्बत के नाम से अपना एक सवत् भी चलाया।

ऐसा समझा जाता है कि ग्यारवी सदी से पहले यह राजवश दक्षिण के चालुक्य राजवश का सामन्ती राज्य था। पर जब चोल राजवश ने दक्षिण मे चालुक्य राजवश को श्री हीन कर दिया तब उसका लाभ उठा कर तत्कालीन गग-नरेश वज्रहस द्वितीय भी स्तन्त्र होगया। वज्रहस्ते द्वितीय का राज्याभिषेक सन् १०३८ मे हुआ था।

वज्रहस्त का पुत्र राजवाज वेंगीका नाश करनेवाले प्रसिद्ध राजेन्द्रचोल की पुत्री रूप सुन्दरी का पति था। राजराज का पुत्र अनन्त वर्मन को गग और चोल वश में उत्पन्न होने के कारण चोल-गग कहाते थे। इस राजवश मे यह राजा अत्यन्त प्रतापी हुआ और इसने बहुत दमय तक राज्य भी किया। इस राजा के चार लेखो को इतिहासकार कीलहार्न ने उद्धृत किया है। जिसमे ई० सन् १०८१ का लेख सबसे विस्तीर्ण है। वगाल ज० रा० ए० सो० जिल्द ६५ भाग १ के पृष्ठ २४० पर इसका एक लम्बा चौडा ताम्र लेख और छपा है। इस लेख मे उड़ीसा पर उसकी बिजय का वर्णन लिखा हुआ हैं। लिखा है कि 'इस उत्कल रूपी समुद्र का मन्थन करने पर उसे भूमि, द्रव्य, एक हजार हाथी और दस हजार घाडे प्राप्त हुए।' इससे ऐसा मालूम होता है कि उडीसा के सुप्रसिद्ध केसरी वश का विनाश इसी के द्वारा हुआ था। इस लेख मे यह भी लिखा है कि जगन्नाथ का सुप्रसिद्ध इसी चोड-गग ने बनवाया जिसमे समस्त ससार का उत्पत्ति कर्त्ता इस मन्दिर मे आकर रहने लगा और लक्ष्मो भी रानाकर को छोड कर यहाँ आनन्द पूर्वक रहने लगी।

इस राजा ने करीब ७० वर्ष राज्य किया। इसके बाद सन् ११४२ मे इसके पुत्र कामार्णव का राज्या भिषेक हुआ। इसने केवल दस वर्ष राज्य किया। इसके बाद राघव ने १५ वर्ष, राजराज द्वितीय ने २५ वर्ष राज्य किया। इसके बाद करीब सोलहवी सदी तक यह राजवश किसी प्रकार चलता रहा और अन्त मे मुसलमानी आक्रमण से इसका विध्वस हुआ।

गग राजवश कौन से धर्म का अनुयायी रहा इस विषय मे मतभेद है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार चिन्तामणि वैद्य ने गग वंश को प्रारम्भ से शैव धर्म का अनुयायी और बाद मे वैष्णव बतलाया हैं। राजा द्वितीय वज्रहस्त (सन् १०५८) के एक लेख को उद्धृत करते हुए उन्हो ने बतलाया है कि यह कुल कलिंग मे आकर गोकर्ण महादेव के प्रसाद से शक्ति शाली हुआ। इस महादेव का मन्दिर महेन्द्र पर्वत पर है।' एक स्थान पर उन्हो ने लिखा है कि गग-राजवश दक्षिण की

निर्मित धार्म शाखा का है। पहले ये लोग लिंगपूजक थे। प्रारम्भ में उन्होंने जैन मत का बहुत प्रचार किया मगर बाद के राजा प्रायः वैष्णव हो गये' मगर जैन मत के साथ इस वंश का कोई सम्बन्ध था इसका उन्होंने कहीं उल्लेख नहीं किया।

इसके विपरीत डॉ ज्योति प्रसाद जैन ने अपने 'भारतीय इतिहास' नामक ग्रन्थ में कई दानपत्रों और लेखों के उद्धरण देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि गंग-वंश के मूल संस्थापक 'दडिग और 'माधव'' ने जैनाचार्य सिंहनन्दी के आशीर्वाद से ही बाण राजवंश को जीतकर गंग राजवंश की स्थापना की और जैन धर्म को ग्रहण किया इसके बाद दक्षिण गंग राज्य में जितने भी राजा हुए उनमें से अधिकांश के गुरु जैनाचार्य थे और उन आचार्यों के उपदेश से उन्होंने ने कई जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया और उन जैन मन्दिरों की व्यवस्था के लिए कई ग्राम दान में दिये। जिनके दानपत्र इस समय प्राप्त हैं। इनमें से एक दो राजाओं ने समाधि-मरण की जैन विधि से प्राण त्याग भी किये। गंग राजवंश के अन्तिम समय में इस राज्य का प्रधान मन्त्री चामुण्डराय जो प्रत्यक्ष जैन ही था जिसने श्रवणबेल गोला में 'गोम्मटेश्वर की विशाल मूर्ति का निर्माण करवा कर उसकी स्थापना की।

यह भी सम्भव हो सकता है कि वैद्य महाशय ने कलिंग के गंगवंश को शैव धर्म का अनुयायी बताया हो और जैन महाशय ने दक्षिण देश के गंगवंश को जैन बतलाया हो। जो भी हो मगर इसमें संदेह नहीं कि गंगवंश के राज्य काल में दक्षिण देश में जैन धर्म का बड़ा प्रभाव था। कई बड़े-बड़े जैनाचार्य उस समय दक्षिण देश में आविर्भूत हुए। उन्होंने संस्कृत और कन्नड़ भाषा में बड़े बड़े जैन ग्रन्थों की रचना कर दोनों प्रकार के साहित्य को समृद्ध किया। राज्य की ओर से इन आचार्यों को पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। और जैन मंदिरों और जैन संस्थाओं को इन राजाओं ने बड़े-बड़े दान और जागीरें प्रदान कीं।

(चिन्तामणि वैद्य-मध्य युगीन भारत
डॉ ज्योतिप्रसाद जैन—भारतीय इतिहास।)

गंगटोक—सिक्किम

भारत के उत्तर हिमालय पहाड़ के अन्दर बसे हुए छोटे से सिक्किम-राज्य की राजधानी।

गंगटोक दार्जिलिंग से उत्तर पूर्व २८ मील की दूरी पर भारत और तिब्बत के व्यापारिक मार्ग पर बसा हुआ एक छोटा सा नगर है जिसकी जनसंख्या केवल १८४८ है। और जो सिक्किम प्रदेश की राजधानी है।

इतना छोटा राज्य होने पर भी भारत की उत्तर पूर्वी सीमा पर पहाड़ी क्षेत्र में बसा होने के कारण इस राज्य का बड़ा महत्त्व है।

सिक्किम राज्य की स्थापना सोलहवीं सदी के पहले दशक में हुई ऐसा समझा जाता है। नामग्याल राजवंश का इतिहास ही वास्तव में सिक्किम का इतिहास है। यह राजवंश मैनाक (पूर्वी तिब्बत) से सिक्किम में आया और अपने आप को राजा इन्द्रबोधि का वंशज बतलाता है। राजा इन्द्रबोधि हिमाचल प्रदेश के थे। उनके वंशज तिब्बत गये और वहीं पर बस गये।

६वीं शताब्दी में इसी घराने के एक व्यक्ति ने मैनाक-राज्य की स्थापना की थी। इसी मैनाक घराने का एक राजकुमार १५वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अपने परिवार सहित पश्चिम की तीर्थ यात्रा पर गया। रास्ते में उसका एक पुत्र रविबोध सास्या के सरदार की पुत्री से शादी करके 'चुम्बी-घाटी' में बस गया। इसी राजकुमार ने १६वीं शताब्दी के प्रथम दशक में सिक्किम राज्य' की स्थापना की।

हिमालय की पूरी प्रतिरक्षा और व्यवस्था की शृंखला में सिक्किम का विशेष महत्त्व है। चीन और भारत के बीच का यह राज्य बंगाल और उत्तर प्रदेश के जिलों से भी छोटा है। इसका क्षेत्रफल लगभग ९८ सौ वर्गमील है और यह अपने से बड़े चार पड़ोसी राष्ट्रों—भारत नेपाल तिब्बत और भूटान से घिरा हुआ है। मनोभिराम नैसर्गिक सुषमा से परिवेष्टित सुन्दर पहाड़ों की छाया में आबाद और सर्वदा धवल हिम से मण्डित शिखरों से शोभायमान इस राज्य में बहुत से मनोरम हैं, हरी लहलहाती घाटियां हैं, गरजती हुई जल धाराएं हैं, मर्मर करते हुए निर्झर हैं, अपूर्व प्राकृतिक

सुखमा से सम्पन्न इस अञ्चल का कण-कण, दर्शकों के हृदय मे आनन्द की अलख ज्योति को जगा देता है ।

सन् १९५० ई० की भारत-सिक्किम, सन्धि के अनुसार इस लघु राज्य की रक्षा की जिम्मेदारी भारत पर है । इसी लिये नाकुला, खाँगराला, सिसला, डकीला, नाथूला जैसे दर्रों पर भारत की सेनाएँ तैनात हैं ।

गंग कवि

सम्राट् अकबर के समकालीन हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि, जिनके जन्म का और कुल का निश्चित वृत्तान्त ज्ञात नही है। पर सम्भवत यह ब्रह्मभट्ट-जाति के थे और अकबर के सम-कालीन होने से इनका समय १६वी सदी के अन्दर ही किसी समय हो सकता है ।

गग अपने समय के सुप्रसिद्ध कवि थे । यद्यपि इनका कोई ग्रथ उपलब्ध नहीं हुआ है, पर पुराने सग्रह ग्रथो मे इनके जो उद्धरण पाये जाते हैं, उनसे इनकी मार्मिक कवित्व शक्ति का पता चलता है। वीर और शृङ्गाररस तथा अन्योक्ति और हास्यरस पर इन्हो ने बडी सुदर कविताओ की रचना की है । इनकी कविताओ का सुप्रसिद्ध मुसलमान कवि 'रहीम' खानखाना वडा आदर करते थे । ऐसा कहा जाता है कि एक बार रहीम खानखाना ने इनको एक छप्पय पर ३६ लाख रुपये इनाम दिये थे । इस किम्बदन्ती मे कहा तक सत्य है यह नही कहा जा सकता । यह छप्पय इस प्रकार है—

कवित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल-वन ।
अहि फन मनि नहिं लेत, तेज नहिं बहत पवन वन ॥
हंस मानसर तज्यो, चक चकी न मिले अति ।
वहु सुन्दरि पद्मिनी, पुरुष न चहे न करे रति ॥
खल भलित शेष 'कविगग' मन—
अमित तेज रवि-रथ खस्यो ।
खानानखान बैरम-सुवन—
जबहि क्रोध कर तग कस्यो ॥

एक अन्य कवि ने कवि गग की प्रशसा मे एक सवैया इस प्रकार लिखा था—

सब देवन को दरबार जुरयो, तहँ पिंगल छद बनायके गायो ।
जब काहुते अर्थ कह्यो न गयो, तब नारद एक प्रसग चलायो ॥
मृतलोक में है नर एक गुनी, कवि गंग को नाम सभामें बतायो
सुनि चाह भई परमेश्वर को, तब गंगको लेन गनेश पठायो ॥

इससे पता चलता है कि गग कवि अपने समय के एक सुप्रसिद्ध कवि थे ।

एक ऐसी जनश्रुति है कि इनकी स्पष्टवादिता से नाराज होकर किसी नवाब ने इनको हाथी के पैरो के नीचे कुचलवा दिया था । उस समय मरने के पहले गगकवि ने यह दोहा कहा था—

कबहुँ न भँडुवा रन चढ़े, कबहुँ न बाजी बम्ब ।
सकल सभाहिं प्रणाम करि बिदा होत कविगग ॥

मगर इस जनश्रुति को कोई भी ऐतिहासिक आधार नही है ।

गग कवि की कविता के नमूने—

बैठी थी सखिन संग, पिय को गमन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग-आगि भरकी ।
गंग कहै त्रिविध सुगन्ध के पवन बह्यो,
लागत ही ताके तन भई विथा जर की ।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर कहँ,
लागत ही और गति भई मान-सर की ।
जलचर जरे और सेवार जरि छार भयो,
जल जरि गयो, पक सूख्यो भूमि दर की ।
झुकत कृपाण मयदान ज्यों उदोत भान,
एकन ते एक, मानो सुखमा जरद की ।
कहे 'कविगग' तेरे बल को बयारि लगे,
फूटी गज-घटा, घनघटा ज्यों सरद की ॥
ऐते मान सोनित की नदियाँ उमड़ चलीं,
रही न निशानी कहूँ मही में गरद की ।
गौरी गह्यो गिरिपति, गनपति गह्यो गौरी,
गौरीपति गही पूँछ लपकि वरद की ॥
(रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास)

गङ्गाधर कविराज

बगाल-राज्य के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् वैयाकरणी और चिकित्सक । जिनका जन्म सन् १७९९ ई० मे जैसोर जिले के 'मागुरा' नामक ग्राम मे हुआ था । और मृत्यु सन् १८८५ मे हुई इनके पिता का नाम भवानी प्रसाद राय था ।

सन् १७७५ ई० मे रिश्वत लेने के आरोप मे ये पद-च्युत कर दिये गये। लेकिन फिर शीघ्र ही उनका भाग्य चमका और अंग्रेज अधिकारी मानसून की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के बाद अब हेस्टिग्ज सर्वेसर्वा हो गया और सन् १७७६ ई० मे उसने पुन गङ्गागोविंद को अपना दीवान बना लिया।

अब गङ्गागोविंद का भाग्य-सूर्य मध्य आकाशमे आ गया था। बडे बडे जमीदार, ताल्लुकेदार और बडे-बडे जमीदारो के गुमाश्ते बडी बडी भेटे ले कर उनकी सेवा मे हमेशा खडे रहते थे। उस समय बङ्गाल में जमीन का बदोबस्त पाच सालाना ही था। पाच साल पूरे हो जाने पर गङ्गा गोविंद के पास जिसकी भेंट अधिक पहुच जाती उसी के नाम पर नया बदोबस्त हो जाता था।

गङ्गा गोविद का प्रभाव इतना बढ़ गया कि राजा कृष्ण चद्र भी उनसे भयभीत रहते थे।

सन् १७८१ ई० मे 'कमेटी आफ रेवेन्यू' की स्थापना हुई। इस कमेटी मे भी गङ्गा गोविद सिंह की प्रधानता थी। लार्ड हेस्टिग्स गङ्गागोविंदसे पूछे बिना कोई काम नही करते थे।

इस प्रकार अन्याय के द्वारा उन्होने लाखो रुपये की दौलत कमाई। मगर हेस्टिग्स के चले जाने के बाद गङ्गा गोविंद भी पद च्युत कर दिये गये और जब लदन की पार्लियामेट मे हेस्टिग्स के खिलाफ मुकद्मा चला और 'एडमण्ड बर्क' नामक प्रसिद्ध विद्वान ने हेस्टिग्स के खिलाफ प्रभावशाली वक्तृताए दी। उन वक्तृताओ में उन्होने गङ्गा गोविंद की भी बडी कडी आलोचना की थी।

गङ्गा नगर

नवीन राजस्थान प्रदेश की उत्तरी सीमा का एक सुप्रसिद्ध नगर और जिला जो पहले बीकानेर रियासत मे था। इस जिले का क्षेत्रफल ८ हजार वर्गमील और जनसख्या १० लाख ३७ हजार ४२३ है।

यह नगर और जिला बीकानेर नरेश महाराजा गगासिंह द्वारा आबाद किये जाने के कारण इसका नामकरण उन्ही के नाम पर किया गया है। यह राजस्थान की सबसे अधिक रेतीली भूमि मे स्थित है। पहले यहा पर मरुभूमि होने के कारण कोई भी पैदावार का साधन नही था। महाराजा गङ्गा सिंह ने जब यहा की जनता की कठिनाइयो को देखा तो उन्होने जल की सुविधा के लिए इस जिले मे 'श्री गङ्गा नहर के नाम से एक नहर योजना बनाई। इस गङ्गा-नहर के आने से इस जिले की बहुत सी भूमि हरी-भरी हो गयी और बीकानेर रियासत के अन्दर यह जिला सबसे अधिक उपजाऊ माना जाने लगा। उपजाऊ होने के कारण यहा बहुत से लोग आकर बसने लगे। महाराजा गङ्गासिंह की इस जिले के ऊपर बहुत निगाह थी और उन्होने इसकी उन्नति के लिए सभी सम्भव प्रयत्न किये।

उसके पश्चात् वृहत् राजस्थान मे इस जिले का विलीनीकरण हो जाने के पश्चात् राजस्थान सरकार का ध्यान भी इस जिले के विकास की ओर विशेष रूप से गया है। मुख्य मत्री मोहनलाल सुखाडिया के मत्रित्व मे 'राजस्थान-नहर-परियोजना' का आरम्भ हुआ। यह नहर विश्व मे शायद सबसे अधिक लम्बी नहर है। इसकी लम्बाई ४३० मील है और यह सारी नहर सीमेट से बनाई गयी है।

इस नहर के चालू होजाने पर केवल गगानगर जिले का ही नही, बल्कि राजस्थान के काफी हिस्से का सिंचाईकरण हो जायगा। भाखडा-नागल योजना के जल द्वारा भी इस जिले की लाखो एकड भूमि की सिंचाई हो रही है।

सिंचाई की वृद्धि के साथ-साथ इस क्षेत्र मे कृषि के विकास के लिए यान्त्रिक साधनो का भी बहुत अधिक उपयोग किया जा रहा है। राज्य की ओर से सूरतगढ क्षेत्र मे ३०,६७० एकड भूमि मे एक सुनियोजित कृषि योजना-फार्म की स्थापना की गयी है जो शायद एशिया मे सब से बडा कृषि का फार्म है। यह फार्म कृषि-प्रयोग-शाला की तरह है जिसमे मरुभूमि के अन्दर कृषि का विकास करने, उत्तम बीज पैदा करने और पशुओ की नस्ल सुधारने के प्रयोग किये जा रहे हैं।

कृषि की उन्नति के साथ साथ औद्योगिक क्षेत्र मे भी यह जिला आगे बढ़ रहा है। कई उद्योगपति यहा पर भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योगो की स्थापना की योजना बना रहे हैं।

इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र मे भी यह स्थान काफी आगे बढा हुआ है। इस जिले मे तीन डिग्री कालेज और कई हायर सेकेण्डरी स्कूल और कई दूसरे सास्कृतिक स्थान बने हुए हैं।

पञ्चानन कविराज छोटी उम्र से ही सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। व्याकरण, अलङ्कार, चिकित्सा इत्यादि सभी विषयों में योग्यता प्राप्त कर २१ वर्ष की अवस्था में ये मुर्शिदाबाद जाकर चिकित्सा करने लगे। चिकित्सा में सफलता मिलने के कारण उनकी ख्याति दूर दूर तक फैल गयी। बंगाल में आधुनिक आयुर्वेद परम्परा के ये जनक माने जाते हैं। इनकी शिष्य परम्परा बहुत विस्तृत है। इन्होंने आयुर्वेद के कई ग्रन्थों का निर्माण किया है।

इन्होंने 'मुग्ध बोध' व्याकरण की एक विशाल संस्कृत टीका की रचना की थी। इस टीका में दस हजार श्लोक थे। इसके पश्चात् वोपदेव गोस्वामी मुग्धबोध व्याकरण के जितने अंश को अपूर्ण छोड़ गये थे उसको इन्होंने पूर्ण किया और फिर सम्पूर्ण मुग्धबोध की टीका की। जिससे इनकी कीर्ति बहुत अधिक बढ़ गयी।

गङ्गा बाई

पेशवा नारायण राव की पत्नी और एक प्रसिद्ध महाराष्ट्रियन महिला।

सन् १७७३ ई० की ३० अगस्त को वेतन न मिलने के कारण बहुत से सिपाहियों ने मिल कर १८ वर्षीय पेशवा नारायण राव की हत्या कर डाली।

नारायण राव के पश्चात् रघुनाथ राव पेशवा हुए, मगर नाना फड़नवीस हरिपंत फड़के इत्यादि मराठा सरदार रघुनाथ राव के खिलाफ थे। इसी समय पता लगा कि नारायण राव के मरने के कुछ पहले उसकी पत्नी गङ्गाबाई को गर्भ रह गया था। यह जानकर मराठा सरदारोंने गर्भ की सुरक्षा के लिये सन् १७७४ की १ जनवरी को उन्हें 'पुरंदर' के सुरक्षित किले में भेज दिया।

सन् १७७४ ई की १८ अप्रैल को गङ्गाबाई को एक पुत्र हुआ। गङ्गाबाई का यही पुत्र ४० दिन का होने पर माधव राव पेशवा के नाम से गद्दी पर बिठाया गया। रघुनाथ राव उस समय कर्णाटक में थे। पर उन्होंने यह समाचार सुना तो वे वहाँ से उत्तर दिशा की ओर चल दिये।

उस समय हैदराबाद और बरार में 'रामोसी' नामक डाकुओं के उपद्रव बहुत बढ़ गये थे। इन रामोसियों के पास घुड़सवार सेना भी थी। भैरवी के बाराजी उनके दल के नायक थे। ऐसा कहा जाता है कि इन बाराजी ने पुरंदर की एक ब्राह्मण-कन्या का सतीत्व नष्ट किया था। उस ब्राह्मण कन्या ने पुरंदर के किले में जाकर गङ्गाबाई के सामने अपना सारा दुखड़ा रोया और उसके बाद उस ब्राह्मणी ने जोर से अपनी जीभ को खींच कर उखाड़ डाला।

इस घटना से गङ्गाबाई इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने मंत्रियों को बुला कर उनके सामने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक रामोसी बाराजी जीवित हैं तब तक मैं अन्न न ग्रहण करूँगी। तब मंत्रियों ने बारा जी को मार डालने का निश्चय किया और धोखे से किसी प्रकार उन्हें बुलवा कर मरवा डाला।

कुछ ही समय के पश्चात् गङ्गाबाई का नाना फड़नवीस के प्रति विशेष पक्षपात देख कर मराठा सरदारों में फूट पड़ गयी और नाना फड़नवीस के विरोधियों ने नाना फड़नवीस पर यह आरोप लगाया कि गंगाबाई को जो गर्भ था वह नारायणराव का नहीं बल्कि नानाफड़नवीस का था।

इस बात के प्रचार से दुखी होकर गंगाबाई ने सन् १७७० ई के सितम्बर महीने में जहर खाकर आत्महत्या कर ली। —(वसु विश्वकोष)

गङ्गा गोविन्द सिंह

बङ्गाल-राज्य के 'पाइक पाड़ा' राजवंश में उत्पन्न एक प्रसिद्ध व्यक्ति, जो आगे जा कर वारन हेस्टिङ्गस के दीवान बन गये।

गङ्गा गोविंद उत्तर राढ़ीय कायस्थ समाज के कुलीन गरमोथर के वंशज थे। सन् १७५६ ई में वे बङ्गाल के नायब सूबेदार महम्मद रजा खाँ के अधीन कानूनगो का काम करते थे। मगर जब महम्मद रजा खाँ पदच्युत हो गये तो इनकी भी नौकरी छूट गयी। मगर उसके कुछ ही समय पश्चात् किसी प्रभावशाली व्यक्ति के द्वारा वे लार्ड हेस्टिङ्गस के पास पहुंच गये।

थोड़े ही दिनों में इनकी कार्य क्षमता से प्रसन्न होकर हेस्टिंग्स ने इन्हें अपना दीवान बनालिया और राजस्व विभाग के सभी कार्यों का भार उन्हें सौंप दिया। इतनी बड़ी सत्ता हाथ में आजाने पर उन्होंने दुने हाथों से रिश्वत खाना आरम्भ कर दिया और उस रिश्वत का बड़ा भाग लार्ड हेस्टिंग्स की जेबों में पहुंचने लगा।

गये जो वहाँ आज भी विद्यमान हैं। फारसी और संस्कृत के अनेको अलभ्य और सचित्र ग्रन्थो का वहाँ सग्रह किया गया।

डा० गगानाथ झा के द्वारा निर्मित किया हुआ दरभगा का राजपुस्तकालय आज भी बिहार की एक अमूल्य निधि है। इस पुस्तकालय मे अध्ययन करने का भी गगानाथ झा को काफी अवसर मिला।

सन् १८९६ ई० मे डा० गगानाथ झा ने कुमारिल भट्ट के तन्त्रवार्तिक और श्लोकवार्तिक नामक कठिन ग्रथो का अंग्रेजी अनुवाद कर लिया था। ये दोनो अनुवाद महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री की प्रेरणा से 'बिब्ली ओथेका इण्डिका' की पुस्तक माला से प्रकाशित हुए। इन अनुवादो से डा० गगानाथ की काफी कीर्ति हो गयी।

इन दिनो इलाहाबाद मे म्योर-कालेज के प्रिंसिपल डा० जॉर्ज थीबो सस्कृत के बडे अच्छे विद्वान थे। इन्होने डाक्टर झा के सस्कृत ज्ञान से प्रभावित हो कर सन् १९०२ ई० मे इनकी नियुक्ति म्योर सेण्ट्रल कालेज मे कर दी।

यहा पर डा० थीबो के सहयोग से इन्होने बहुत से दर्शन-ग्रथो का अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद कर डाला। इसके साथ ही इन्होंने 'डाक्टर आफ लेटर्स की' उपाधि प्राप्त करने के लिए प्रभाकर मिश्र के मीमासक-मत पर एक ग्रन्थ लिखकर समर्पित किया। इस ग्रथ पर सन् १९०९ ई० मे प्रयाग विश्वविद्यालय ने इन्हे सस्कृत मे 'डाक्टर आफ लेटर्स' की पदवी प्रदान की। सस्कृत भाषा मे इस पदवी को प्राप्त करने वाले ये पहले व्यक्ति थे। सन् १९१० ई० भारत सरकार ने इनको महामहोपाध्याय की और सन् १९४१ ई० मे 'सर नाइट' की सम्मानपूर्ण उपाधिया प्रदान की।

सन् १९१८ मे ये काशी-सस्कृत कालेज के प्रिंसिपल बनाये गये, और सन् १९२३ ई० मे इलाहाबाद युनिवर्सिटी के उप-कुलपति (वाइस चासलर) नियुक्त हुए। उप-कुलपति होने के पश्चात् इन्होंने प्रयाग-विश्वविद्यालय का आधुनिक ढग से सगठन करना प्रारम्भ किया। और पूरे परिश्रम के साथ अच्छे अच्छे अनुभवी विद्वानो को बुलाकर विश्वविद्यालय मे नियुक्त किया। अभी तक अच्छे-अच्छे पदोपर विशेषकर यूरोपियन विद्वान ही रखे जाते थे और यूरोप की डिग्रियो को भारतीय डिग्रियो से ज्यादा प्राथमिकता दी जाती थी, मगर डाक्टर गगानाथ झा ने इस प्रथा को बन्द कर के भारतीय विद्वानो और भारतीय डिग्रियो को अधिक महत्व देना प्रारम्भ किया।

डा० झा स्त्रियो और पुरुषो की सह-शिक्षा के बडे विरोधी थे और उनका विश्वास था कि महिला छात्राओ का पुरुष छात्रो के साथ अध्ययन करना सर्वथा अनुचित है। उस समय बहुत से अध्यापक सह शिक्षा के पक्ष मे थे, मगर डा० झा अपने सिद्धान्त पर इतने दृढ थे कि इसके लिए वे अपना पद त्याग करने के लिए भी प्रस्तुत रहते थे। अन्त मे कुलपति को इनका मत मानने के लिए विवश होना पडा और प्रयाग विश्व विद्यालय मे महिलाओ के अध्ययन के लिए अलग व्यवस्था हुई।

प्रयाग विश्व-विद्यालय मे डा० गगानाथ झा इतने लोकप्रिय थे कि वे लगातार तीन बार विश्वविद्यालय के उप-कुलपति निर्वाचित हुए। प्रयाग विश्वविद्यालय की नीव को सुदृढ़ बनाने का श्रेय डा० गगानाथ झा को है।

ग्रन्थ-रचना

डा० गगानाथ झा सस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी और मैथिल-भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे। इन सभी भाषाओ मे इन्होने स्वतन्त्र रचनाए और अनुवाद किये हैं। इनके अंग्रेजी मौलिक ग्रन्थो मे (१) प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्व मीमासा (२) हिन्दू लॉ इन इट्स सोरसेज (दो भाग) (३) शङ्कराचार्य (४) पूर्व मीमासा इन इट्स सोरसेज, इत्यादि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त विज्ञान भिक्षु-कृत योग सार सग्रह, मम्मट कृत काव्य-प्रकाश, वाचस्पति मिश्र कृत साख्य-तत्व कौमुदी और शकराचार्यकृत छान्दोग्योपनिषद् भाष्य इत्यादि सस्कृत-ग्रन्थो के इन्होने सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद किये। सस्कृत की इनकी रचनाओ मे मीमासा मण्डनम्, प्रभाकर-प्रदीप, भाव-बोधिनी इत्यादि कई रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

इनकी हिंदी-रचनाओ मे वैशेषिक दर्पण, न्याय-प्रकाश, कवि रहस्य, भारतीय धर्म-शास्त्र इत्यादि और मैथिली भाषा की रचनाओ मे वेदान्त-दीपिका नामक रचना उल्लेखनीय है। ऊपर जितने नाम दिये गये हैं—उनके सिवाय भी इनकी कई रचनाए और हैं, जिनकी कुलसख्या ५१ तक पहुचती है।

डा० गगानाथ झा की इन रचनाओं को देख कर स्पष्ट मालूम पडता है कि दर्शन-शास्त्र उनका सबसे ज्यादा

ऐसा समझा जाता है कि सब से पहले इटली मे 'वेनिस' की सरकार के द्वारा सन् १५६३ ई० मे 'गजट' के नामकरण से पहला राजकीय पत्र प्रकाशित हुआ।

सन् १६६५ ई० मे इग्लैंड से 'ग्रावसफर्ड गजट' निकलने लगा जो दूसरे वर्ष 'लन्दन गजट' के रूप मे बदल गया। उसके बाद वहाँ से 'सेंट जेम्स गजट' 'वेस्ट मिनिस्टर गजट' इत्यादि और भी कई गजट प्रकाशित होने लगे।

भारतवर्ष मे सन् १७८० ई० मे 'बगाल गजट' और इण्डियन गजट प्रकाशित होने लगे। उसके बाद देश के सभी प्रान्तो और रियासतो ने इस प्रकार के गजट प्रकाशित करना शुरू किये। इन गजटो मे राज्य मे बनने वाले कानून विभागीय सूचनाएँ, ट्रासफर्स (तबादले) तथा अन्य आवश्यक राजकीय सूचनाएँ प्रकाशित होती रहती है।

इस प्रकार गजट का क्षेत्र पत्रकार कला से अलग होकर राजकीय सूचनाओ के प्रकाशन तक सीमित हो गया।

(ना० प्र० वि०)

गजनी

अफगानिस्तान का एक प्राचीन नगर जिसका इतिहास ईसा की दसवी सदी से प्रारम्भ होता है।

ईसा की दसवी शताब्दी तक अफगानिस्तान के बहुत से भाग पर भारतीय राजा शासन करते थे। भारतवर्ष के इस सिन्धु-पश्चिम प्रान्त के उस समय दो भाग थे। एक को काबुलिस्तान और दूसरे को जाबुलिस्तान कहते थे। उत्तर के काबुलिस्तान मे लाल्लीय नामक राजपुरुष के द्वारा स्थापित किया हुआ शाही ब्राह्मणवश शासन करता था और दक्षिण के जाबुलिस्तान मे भाटी राजपूतों का शासन था।

ई० सन् ९२१ मे, जब ईरान मे सामानी सम्राट नस्र का का शासन था, याकूब इलेका नामक एक साहसी कसेरा जाति के मुसलमान ने एक बर्बर सेना की सहाता से भारत पर आक्रमण करके, काबुल और जाबुल दोनो प्रान्तो पर अधिकार कर लिया।

याकूब-ई-लेस ने विजय प्राप्त कर "गजनी" नाम के छोटे से ग्राम के पास किला बना कर उसे एक वैभव सम्पन्न राजधानी का रूप दे दिया और उसके आसपास के सब प्रदेश जीत कर वहा के राजपूत राजाओ को भगा दिया।

याकूब के पश्चात् यह नगर सामानी सम्राट अब्दुल मलिक के हाजिब (गुलाम) अल्पतगीन के हाथ मे आया। अल्पतगीन 'सामानी' सम्राटो की छत्रछाया मे गजनी का गवर्नर बनादिया गया और उसने करीब साठ वर्षों तक यहा का शासन किया।

अल्पतगीन के पश्चात् उसका दामाद सुबुक्तगीन गजनी की गद्दीपर बैठा। इसने काशगर के राजा इलेक खॉ के साथ हुए सामानियो के भयङ्कर युद्ध मे सामानी सम्राट की भारी मदद की और इलेक खा को बुरी तरह पराजित किया।

सुबुक्तगीन ने सन् ९७७ से ९९७ तक यहा शासन किया। इसके पश्चात् प्रसिद्ध आक्रमणकारी मुहम्मद गजनी का शासक हुआ, उस समय सामानी सम्राज्य एक प्रकार से छिन्न-भिन्न हो चुका था। मुहम्मद ने सबसे पहले गजनी के सुल्तान की उपाधि धारण की।

सुबुक्तगीन के समय से ही गजनी के राज्य का विस्तार होने लग गया था। मगर इस राज्य का चरम विकास महमूद गजनवी के शासन काल मे हुआ। मुहम्मद गजनवी ने पहले तो ईरान के सामानी साम्राज्य से स्वतन्त्र हो अपने को खुरासान और गजनी का स्वतन्त्र सुल्तान घोषित कर दिया। ये सब घटनाए सन् ९९७ से सन् १००० के बीच मे हुई।

अब उसका ध्यान भारतवर्ष की तरफ गया। उस समय अफगानिस्तान और भारत के बीच सीमान्त पर राजा 'जयपाल' राज्य करता था। मुहम्मद गजनवी ने १५ हजार घुडसवारो के साथ जयपाल पर आक्रमण कर के बुरी तरह से उसे पराजित किया और उसे परिवार सहित कैद कर लिया। मगर बाद मे दण्डस्वरूप ५० हाथी लेकर उसने जयपाल को छोड़ दिया। मगर जयपाल से यह अपमान बर्दाश्त नही हुआ और उसने चिता मे जल कर आत्म-हत्या कर ली। इ के पश्चात् मुहम्मद ने सन् १००८ मे 'आनन्दपाल' के नेतृत्व मे सयुक्त किये गये हिन्दुओ के आक्रमण को विफल किया।

इसके बाद उसने भारतवर्ष पर बारह मे अधिक बार भयङ्कर आक्रमण कर सारे देश को बुरी तरह लूटा, सोमनाथ

गटिंगन

पश्चिमी जर्मनी के भूतपूर्व प्रशिया प्रान्त का प्राचीन गर। जो लीन नदी के किनारे पर हनोवर से ६७ मील क्षिण मे रेल-मार्ग पर बसा हुआ है।

गटिंगन के विश्वविद्यालय का सारे ससार के अन्दर पना विशिष्ट स्थान है। इसके अतिरिक्त इस नगर मे जर्मन-ाहित्य का पूर्ण सग्रहालय भी बना हुआ है। यह नगर एक ौद्योगिक केन्द्र भी है।

गणगौर

राजस्थान और मध्यप्रदेश मे नारियो का एक सुप्रसिद्ध यौहार, जो चैत्र शुक्ला तृतीया के दिन मनाया जाता है।

यह त्योहार स्त्रियो के सौभाग्य की रक्षा के लिए गौरी या पार्वती की पूजा के रूप मे मनाया जाता है।

राजस्थान मे चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को लडकियां प्रात काल गीत गाते हुए घरो से निकलती हैं और होलिका-दहन की राख ले आती हैं। चैत्र कृष्ण प्रतिपदा से चैत्र कृष्ण सप्तमी तक वे होलिका की राख के पिण्डो की पूजा करती हैं। चैत्र कृष्ण अष्टमी को कुम्हार के यहाँ से मिट्टी लाकर गणगोर और ईसर की मूर्तियां बनाती हैं और मिट्टी के कुण्डे मे गेहूँ बोती हैं। फिर चैत्र शुक्ला तृतीया को ईसर गनगोर की पूजा करके नदी मे उनका विसर्जन करती हैं।

यह त्योहार सारे राजस्थान और मध्य प्रदेश के एक भाग मे बडे आनन्द और प्रेरणा के साथ मनाया जाता है। सब सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने सौभाग्य की रक्षा के लिये और कुमारी लड़किया सुयोग्य वर को प्राप्त करने की आकाक्षा से बढ़िया-बढ़िया रगीन वस्त्रो को पहन कर मधुर गानो को गाती हुई वसन्त ऋतु के वातावरण को और भी मादक बनाते हुए बडी उमग से ईसर और गणगौर की पूजा करती हैं। यह पर्व राजस्थान का एक महान् सास्कृतिक पर्व है।

गणगोर और ईसर की मूर्तियाँ भिन्न भिन्न स्थानो पर भिन्न-भिन्न प्रकार की बनायी जाती हैं। बीकानेर और जयपुर मे राज्य सरकार तथा सम्पत्तिशाली पुरुष लकडी की गणगोर बनाते हैं। जैसलमेर मे हाथी दांत की तथा जोधपुर मे चादी की गणगौर बनायी जाती है। साधारण घरों की स्त्रियां मिट्टी की गणगौर बनाती हैं।

राजस्थान मे गणगौर के त्यौहार प्र लडकियाँ सन्ध्या के बाद किसी मिट्टी के बर्तन मे बहुत से छेद गिरा कर उसमे दीपक जलाती हैं। घुडले की यह प्रथा एक ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर आधारित हैं। कहा जाता है कि जोधपुर रियासत के 'पीपाड' नामक नगर मे मीर घुडले खाँ नामक एक मुसमान सूबेदार था। उसने गणगौर की पूजा करने वाली कुछ लडकियो से छेड-छाड की। उसकी इस हरकत को देखकर जोधपुर के राठौर वीर 'सातल' ने उस पर हमला करके उसके शरीर पर अनेक घाव कर दिये, जिससे वह मर गया। इस बर्तन मे किये हुए अनेक छेद घुडले खाँ के घावो के प्रतीक हैं और उसके भीतर जलता हुआ दीपक उसकी काँपती हुई आत्मा का प्रतीक है। इसी युद्ध मे सातल की भी मृत्यु हो गयी थी। तभी से राठोडो मे ईसर निकालने की प्रथा बन्द हो गयी।

हाडो ले डूब्यो गणगौर

मध्यकाल मे अग्रेजी राज्य से पूर्व राजस्थान के राजा लोग गणगौर के त्योहार को राष्ट्रीय त्योहार की तरह मनाते थे और इस त्योहार को वीरता और शौर्य का प्रतीक समझते थे। उस युग मे किसी राज्य की गणगौर को अगर दूसरे राज्य वाले छीन कर ले जाते तो यह बडा अपमानजनक समझा जाता था।

एक बार जयपुर वालो ने बूँदीकोटा के हाडा राजवश की गणगौर को छीनने के लिए आक्रमण कर दिया। इस आकस्मिक आक्रमण से बचने का कोई उपाय न देख कर हाडा-नरेश गणगौर को लेकर चम्बल मे डूब गये। तभी से कोटा मे गणगौर का उत्सव बन्द हो गया और 'हाडो ले डूब्यो गणगौर' यह कहावत मशहूर हो गयी।

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान)

गणनाथ सेन

बगाल के एक सुप्रसिद्ध चिकित्सक, लेखक और विद्वान, जिनका जन्म सन् १८७७ मे काशी के अन्तर्गत और मृत्यु सन् १९३७ मे हुई। इनके पिता का नाम कविराज विश्वनाथ सेन था।

और मथुरा के मन्दिरों का विध्वंस कर के सारे देश में तबाही मचायी।

इस प्रकार महमूद गजनवी के शासनकाल में गजनी का साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत हो गया था। महमूद गजनवी के मरने के बाद यह साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

गंजी मोना गोतारी

जापानी भाषा का सबसे पहला उपन्यास। जिसकी रचना ग्यारहवीं सदी के प्रारम्भ में 'मुरासाकी शिकिबु' नामक प्रसिद्ध लेखक ने की।

गैंजी-मोनागोतारी जापानी भाषा का सम्भवतः सबसे पहला उपन्यास है जो जापानी भाषा की 'काना शैली' में लिखा गया है। इसमें राजकुमार 'गैंजी' के चित्रण की आड़ में हेइयन युग के जापानी राज दरबार का चित्र बड़ी सजीव भाषा में अंकित किया गया है। उस समय के जापानी समाज में स्त्री और पुरुषों को यौन सम्बन्धी जितनी आजादी थी इसकी झलक भी इस उपन्यास में साफ रूप से देखने को मिलती है।

गञ्जाम

उड़ीसा राज्य का एक जिला जिसका क्षेत्रफल १२११ वर्ग किलोमीटर है।

देखने में यह जिला त्रिकोण सा मालूम होता है। यह जिला बंगाल की खाड़ी पर स्थित है। और इसका विशेष हिस्सा उत्तर में फैली हुई पूर्वी घाट पहाड़ियों की चट्टानों से निर्मित है। इस जिले में बहने वाली नदियों में ऋषिकुल्या वंशधारा और लांगुली प्रधान हैं जो बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं।

इस जिले का प्रमुख नगर बरहामपुर है। बरहामपुर में है इंजीनियरिंग स्कूल रामकृष्ण संस्कृत कालेज खालीकोट कालेज इत्यादि शिक्षा संस्थाएँ बनी हुई हैं।

प्राचीनकाल में गञ्जाम 'कलिंगदेश' का एक भाग था परन्तु कभी-कभी वेंगी राज्य के शासक इसके दक्षिणी भाग को दबा बैठे थे। ई. सन् से २६ वर्ष पूर्व सम्राट् 'अशोक' ने कलिंग के साथ इस प्रदेश पर भी विजय प्राप्त की थी।

इसके पश्चात् यह प्रांत वेंगी के शासकों के हाथ में रहा। [illegible] की [illegible] पर अधिकार किया। [illegible] में चोल-राजाओं ने वेंगी और [illegible] हिस्से को जीता था। [illegible]

राजा 'राजेन्द्र' चोल की [illegible] महेन्द्र गिरि पर मिला है। इसकी [illegible] शताब्दी तक यह प्रान्त [illegible]

सन् १२०१ ई० में [illegible] के [illegible] ने गञ्जाम पर अधिकार किया। [illegible] 'कोल' के अधिकारी के द्वारा [illegible]

सन् १५७१ ई० में मुसलमानों को दे दिया। सन् १७६६ ई० में यह [illegible] में गया। मगर इसके बाद भी बहुत अशान्ति और अराजकता रही। सन् [illegible] के विद्रोह के कारण इस प्रान्त में विद्रोहियों और उनके लिये एक-एक कर [illegible] कुछ लोगों को फांसी और कुछ को 'कालापानी' दी। तब इस जिले में शान्ति स्थापित हुई।

इस जिले के जौगढ़ नामक स्थान में [illegible] शासन-काल का एक लेख मिला है। इसके [illegible] में बहुत से पुराने मन्दिर भी बने हैं। [illegible] नदी और [illegible] के [illegible] पड़ता है। श्री 'पूर्णद' का [illegible] का [illegible] देखने योग्य है।

गजेटियर

किसी भी प्रान्त या राज्य की भौगोलिक, पुरातत्व और रीति-रिवाज सम्बन्धी — जानकारी का विवरण देने वाला ग्रन्थ।

भारतवर्ष में 'गजेटियर' बनाने की प्रथा अंग्रेजों के समय में प्रारंभ हुई। बंबई, बंगाल, बिहार, प्रदेश इत्यादि सभी स्थानों की सरकारों ने [illegible] के गजेटियर तैयार करवाये। इन गजेटियरों से बाद के इतिहासकारों को बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री [illegible] होती है। भारत सरकार के अनुकरण पर बहुत से राज्यों ने भी अपने-अपने गजेटियर तैयार करवाये हैं।

था। क्योंकि इस ज्ञान के बिना वह अपना सामाजिक और दैनिक जीवन नही चला सकता था। प्रत्येक शरीर मे ईश्वर ने एक मुँह, दो आखे, पाच ऊँगलियाँ इत्यादि सख्या को सकेत करने वाली चीजें रख दी थी। जिनके आधार पर सख्या-भेद का प्रारम्भिक ज्ञान उमे स्वाभाविक रूप से हो जाता था।

जब मानव समाज मे लिखने की कला का आविष्कार हुआ तो वर्णलिपि की तरह सख्या लिपि की ओर भी मनुष्य का ध्यान गया और ससार के विभिन्न देशो मे ये सख्या लिपियाँ विभिन्न रूपो मे आविष्कृत की गई।

शून्य का आविष्कार

मगर जब तक मानवीय गणित-शास्त्र मे शून्य (०) का आविष्कार नही हुआ, तब तक मनुष्य के अङ्क गणित सम्बन्धी ज्ञान का अधिक विकास न हो सका। शून्य का आविष्कार गणित शास्त्र के इतिहास मे एक चमत्कारिक घटना है। इससे बडी से बडी सख्या की कल्पना और उसको आसानी से लिखने की पद्धति मनुष्य के हाथ लग गई। शून्य के आविष्कार से मनुष्य जाति का गणित ज्ञान अन्त से अनन्त की ओर बढ़ गया। एक शून्य लगाई दसगुना, फिर एक शून्य लगाई सौ गुना, उस पर फिर एक शून्य लगाई हजार गुना इस प्रकार शून्य के रूप मे गणित शास्त्र को एक महान् शक्ति की प्राप्ति हो गई।

शून्य का आविष्कार कब और कहा हुआ। इसके जवाब मे कहा जा सकता है कि इसका आविष्कार कब हुआ इसका तो कोई निश्चित प्रमाण नही है मगर इसका आविष्कार कहाँ हुआ इसके सम्बन्ध मे निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इसका आविष्कार भारतवर्ष मे हुआ। और यहा के गणित-शास्त्र मे इसका निर्द्वन्द्व उपयोग होने लगा।

भारतवर्ष

भारत के प्राचीन साहित्य मे छान्दोग्य-उपनिषद् के अन्तर्गत राशि विद्या का एक विज्ञान के रूप मे उल्लेख है, जिसका उच्च ज्ञान नारद ने सनत्कुमार से प्राप्त किया था। बाद मे यह विज्ञान गणित के रूप मे प्रसिद्ध हुआ।

एक प्राचीन मूलसूत्र का कहना है कि जिस प्रकार मोरो के सिर पर मुकुट होता है—जिस प्रकार सांपो के फण पर मणि होती है, उसी प्रकार सभी विज्ञानो के ऊपर गणित है। भारतीय गणित की सबसे बडी देन शून्य का आविष्कार है। शून्य की यह अङ्क प्रणाली भारतवर्ष के विद्वानो द्वारा अरबस्तान पहुँची। वहाँ पर खलीफा अलमामून के समय में इसका अरबी मे 'हिन्दसा' अको के नाम से अनुवाद हुआ और वहाँ से यह अक-प्रणाली यूरोप मे पहुँची। इसी से वहाँ के लोग इसे अरबी-अङ्क-प्रणाली कहते हैं। परन्तु अब यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका हैं कि यह अक प्रणाली अरबी-परम्परा मे दृष्टिगोचर होने के १००० वर्ष पूर्व सम्राट् अशोक की आज्ञाओ मे पायी जाती है।

ईसा की नवी सदी मे अरबस्तान मे खलीफा अल-मामून का शासन था। खलीफा अल-मामून बडे विद्या व्यासनी और ज्ञान की खोज मे दिलचस्पी रखने वाले खलीफा थे। इन्होने बैतूल ऊल-हिक्मा नाम से अरब मे एक ज्ञान सस्था की स्थापना कर रक्खी थी। इनके दरबार मे भारतवर्ष से ज्योतिष शास्त्र और गणित-शास्त्र का एक प्रकाण्ड पण्डित जिसका नाम कड था पहुँचा। जो अपने साथ भारतीय ज्योतिष और गणित के कुछ ग्रन्थ रखे हुए था। उसने खलीफा अल मामून की ज्ञान सस्था मे भारतीय गणित शास्त्र और शून्य की उपयोगिता को बताया। शून्य के इस महान् प्रभाव को देखकर अरब के गणित-शास्त्री और ज्योतिषी चमत्कृत हो गये। खलीफा-अल-मामून न अरबी गणितशास्त्र मे शून्य को ग्रहण करने और इन भारतीय ग्रन्थो का अरबी मे अनुवाद करने के आदेश दिये। तब वहा के प्रसिद्ध विद्वान अल-ख्वारेजमी ने इस ग्रन्थ का अनुवाद अल-सिन्द-हिन्द के नाम से किया। इसी ग्रन्थ के द्वारा यूरोप के लोगो ने भी गणित शास्त्र मे शून्य का प्रयोग सीखा और उसके बाद सारे ससार मे "शून्य" का प्रचार हो गया। फ्रान्स के सुप्रसिद्ध गणित शास्त्री लेप-लासने भारत को इस मौलिक खोज के लिए बधाई दी थी।

अङ्कगणित के इतिहास मे भारतवर्ष के अन्तर्गत आर्य्य भट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य्य, श्रीधराचार्य्य, भास्कराचार्य्य, गणेश, सूर्यदास, इत्यादि गणित-शास्त्रियो के नाम ससार भर मे प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इन महान् लेखको की विशेष खोजें बीज गणित, ज्यामिति और नक्षत्र गणना के सम्बन्ध मे है फिर भी अङ्कगणित के इतिहास मे भी इनकी उपलब्धियो का मूल्याकन कम नही किया जा सकता।

था। क्योकि इस ज्ञान के बिना वह अपना सामाजिक और दैनिक जीवन नही चला सकता था। प्रत्येक शरीर मे ईश्वर ने एक मुँह, दो आखे, पाच ऊँगलियाँ इत्यादि सख्या को सकेत करने वाली चीजे रख दी थी। जिनके आधार पर सख्या-भेद का प्रारम्भिक ज्ञान उसे स्वाभाविक रूप से हो जाता था।

जब मानव समाज मे लिखने की कला का आविष्कार हुआ तो वर्णलिपि की तरह सख्या लिपि की ओर भी मनुष्य का ध्यान गया और ससार के विभिन्न देशो मे ये सख्या लिपियाँ विभिन्न रूपो मे आविष्कृत की गईं।

शून्य का आविष्कार

मगर जब तक मानवीय गणित–शास्त्र मे शून्य (०) का आविष्कार नही हुआ, तब तक मनुष्य के अङ्क गणित सम्बन्धी ज्ञान का अधिक विकास न हो सका। शून्य का आविष्कार गणित शास्त्र के इतिहास मे एक चमत्कारिक घटना है। इससे वडी से वडी सख्या की कल्पना और उसको आसानी से लिखने की पद्धति मनुष्य के हाथ लग गई। शून्य के आविष्कार से मनुष्य जाति का गणित ज्ञान अन्त से अनन्त की ओर बढ़ गया। एक शून्य लगाई दसगुना, फिर एक शून्य लगाई सौ गुना, उस पर फिर एक शून्य लगाई हजार गुना इस प्रकार शून्य के रूप मे गणित शास्त्र को एक महान् शक्ति की प्राप्ति हो गई।

शून्य का आविष्कार कब और कहा हुआ। इसके जवाब मे कहा जा सकता है कि इसका आविष्कार कब हुआ इसका तो कोई निश्चित प्रमाण नही है मगर इसका आविष्कार कहाँ हुआ इसके सम्बन्ध मे निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इसका आविष्कार भारतवर्ष मे हुआ। और यहा के गणित-शास्त्र मे इसका निर्द्वन्द उपयोग होने लगा।

भारतवर्ष

भारत के प्राचीन साहित्य मे छान्दोग्य-उपनिषद् के अन्तर्गत राशि विद्या का एक विज्ञान के रूप मे उल्लेख है, जिसका उच्च ज्ञान नारद ने सनत्कुमार से प्राप्त किया था। बाद मे यह विज्ञान गणित के रूप मे प्रसिद्ध हुआ।

एक प्राचीन मूलसूत्र का कहना है कि जिस प्रकार मोरो के सिर पर मुकुट होता है—जिस प्रकार सापो के फण पर मणि होती है, उसी प्रकार सभी विज्ञानो के ऊपर गणित है। भारतीय गणित की सबसे बड़ी देन शून्य का आविष्कार है। शून्य की यह अङ्क प्रणाली भारतवर्ष के विद्वानो द्वारा अरबस्तान पहुँची। वहाँ पर खलीफा अलमामून के समय मे इसका अरबी मे 'हिन्दसा' अको के नाम से अनुवाद हुआ और वहाँ से यह अक-प्रणाली यूरोप मे पहुँची। इसी से वहाँ के लोग इसे अरबी-अङ्क-प्रणाली कहते हैं। परन्तु अब यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका हैं कि यह अक प्रणाली अरबी-परम्परा मे दृष्टिगोचर होने के १००० वर्ष पूर्व सम्राट् अशोक की आज्ञाओ मे पायी जाती है।

ईसा की नवी सदी मे अरबस्तान मे खलीफा अल-मामून का शासन था। खलीफा अल-मामून वडे विद्या व्यासनी और ज्ञान की खोज मे दिलचस्पी रखने वाले खलीफा थे। इन्होने बैतूल ऊल-हिक्मा नाम से अरब मे एक ज्ञान सस्था की स्थापना कर रक्खी थी। इनके दरबार मे भारतवर्ष से ज्योतिष शास्त्र और गणित-शास्त्र का एक प्रकाण्ड पण्डित जिसका नाम कड था पहुँचा। जो अपने साथ भारतीय ज्योतिष और गणित के कुछ ग्रन्थ रखे हुए था। उसने खलीफा-अल मामून की ज्ञान सस्था मे भारतीय गणित-शास्त्र और शून्य की उपयोगिता को बताया। शून्य के इस महान् प्रभाव को देखकर अरब के गणित-शास्त्री और ज्योतिषी चमत्कृत हो गये। खलीफा-अल-मामून ने अरबी गणितशास्त्र मे शून्य को ग्रहण करने और इन भारतीय ग्रन्थो का अरबी मे अनुवाद करने के आदेश दिये। तब वहा के प्रसिद्ध विद्वान अल-ख्वारेजमी ने इस ग्रन्थ का अनुवाद अल-सिन्द-हिन्द के नाम से किया। इसी ग्रन्थ के द्वारा यूरोप के लोगो ने भी गणित शास्त्र मे शून्य का प्रयोग सीखा और उसके बाद सारे ससार मे "शून्य" का प्रचार हो गया। फ्रान्स के सुप्रसिद्ध गणित शास्त्री लेप-लासने भारत को इस मौलिक खोज के लिए बधाई दी थी।

अङ्कगणित के इतिहास मे भारतवर्ष के अन्तर्गत आर्य्य भट्ट, बराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, महावीराचार्य्य, श्रीधराचार्य्य, भास्कराचार्य्य, गणेश, सूर्यदास, इत्यादि गणित-शास्त्रियो के नाम ससार भर मे प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इन महान् लेखको की विशेष खोजें बीज गणित, ज्यामिति और नक्षत्र गणना के सम्बन्ध मे है फिर भी अङ्कगणित के इतिहास मे भी इनकी उपलब्धियो का मूल्याकन कम नही किया जा सकता।

लिखने की कला से भी परिचित हो गये थे। और इनकी हुण्डियाँ ईरान और हिन्दुस्तान मे चलती थी।

बेबीलोनिया के सबसे प्रसिद्ध सम्राट् हम्मूरबी (ई० सन् से १६५० वर्ष पूर्व) के समय का एक स्कूल का खण्डहर अभी मिला है। जिसे इतिहासकार ससार की सबसे प्राचीन पाठशाला का भवन मानते हैं। इस खण्डहर की खुदाई मे से प्राचीन युग की लिखने की पट्टियाँ पाई गई हैं। इन पट्टियो से बेबीलोनिया के तत्कालीन गणित-ज्ञान का स्पष्ट परिचय मिलता है। एक पट्टी मे १ से ६० तक की सख्याओ के वर्ग और १ से ३२ तक की सख्याओ के घनफल दिये हुए हैं। इन प्रट्टियो मे ६० की सख्या को सख्या पद्धति का आधार माना गया है। इन पट्टियो मे भिन्न का भी प्रयोग दिखलाई पडता है।

ज्योतिष गणित के सम्बन्ध मे तथा सूर्य-सिद्धान्त के सम्बन्ध मे बेबीलोनिया बहुत पहले से जानकार हो गया था।

मिश्र

मिस्र की सभ्यता ससार की अत्यन्त प्राचीन सभ्यता है। इस सभ्यता मे भी गणितशास्त्र के ज्ञान का विकास बहुत प्राचीन समय से हो चुका था। ईसा से करीब दो हजार वर्ष पूर्व वहाँ लेखन कला का प्रचार हो चुका था और लिखने के लिए भोजपत्र की तरह एक वृक्ष से कागज बनाया जाता था। जिसे "पेपरी कहते थे। इसी पेपरी से अग्रेजी का "पेपर" शब्द निकला है। इस कागज पर जो ग्रन्थ लिखेजाते थे वे "पेपिरस" कहलाते थे। इस प्रकार के पेपिरसो मे रिहण्ड—पेपिरस और मास्को पेपिरस उपलब्ध हैं। जो ईसा से करीब १५ सदी पहले के लिखे हुए हैं। इन ग्रन्थो मे उस समय के मिस्र के गणित-शास्त्र पर काफी प्रकाश पडता है। रिहण्ड पेपिरस का पुराना नाम "अहमिस पेपिरस" था। इस पेपिरस मे ८५ प्रश्न हैं। जो विशेष कर व्यवहार गणित, पशुओ के भोजन और अन्न पर हैं। इन प्रश्नो से मालूम होता है कि मिस्र के गणितकार भिन्न के प्रयोग मे बडे दक्ष थे। इनका व्यापार सम्बन्धी गणित भी बहुत बढा चढा था। ईसा से १५०० वर्ष पूर्व बना हुआ मिस्र मे 'दरुल बहरी" नाम का एक मन्दिर है जो वहा की रानी "हताशु" ने बनाया था (इस मन्दिर की दीवारो पर बडी सख्याएँ चित्रित की हुई हैं। इससे मालूम होता है कि ये लोग सख्याएँ के प्रयोग मे उस समय काफी दक्ष हो चुके थे।

प्राचीन यूनान

यूनान की प्राचीन सभ्यता मे भी गणितशास्त्र का सर्वाङ्ग मुखी विकास हुआ था। ससार के बडे-बडे गणित शास्त्री यूनान ने पैदा हुए। और मिश्र के सिकन्दरिया नामक स्थान की ज्ञान-सस्था ने भी कई यूनानी गणित शास्त्रियो को पैदा किया। यूनान के सुप्रसिद्ध गणित शास्त्रियो मे पायथा गोरस, प्लेटो, इराटॉस्थेनीज (Eratosthenes) आर्किमेडीज (Archimedes) अपोलोनियस (Apollonius) निकोमेकस (Nicomacus) इत्यादि नाम उल्लेखनीय है।

पायथागोरस

पायथागोरस का जन्म ई० पूर्व सन् ५३२ मे हुआ था। यह व्यक्ति एक प्रसिद्ध दाशनिक और गणित शास्त्री था। वह दर्शन और गणित को एक ही वृक्ष की दो शाखा समझता था। अकगणित, रेखागणित, ज्योतिष और सगीत इन चार विद्याओ को वह ससार की श्रेष्ठ विद्याएँ मानता था। पायथागोरस के मत मे सख्याएँ सम (Even) और विषम (odd) ऐसे दो प्रकार की होती हैं। विषम सख्याएँ सीमा का निश्चय करती हैं और सम सख्या "असीम" की ओर सकेत करती हैं। ससीम और असीम की कल्पना से ही देश, काल और गति का ज्ञान होता है। पायथागोरस के मत मे ससार के अन्दर दस आधारभूत विरोधी तत्व हैं। (१) एक और अनेक (२) दाहिना और बाया (३) पुरुष और स्त्री (४) विराम और गति (५) उजेला और अन्धेरा (६) भला और बुरा (७) वर्ग और आयताकार (८) ऋजु और वक्र (९) सम और विषय (१०) ससीम और असीम। इन विरोधभासित तत्वो के मेल का नाम ही ससार है। पायथागोरस सम सख्याओं को मादा सख्या और विषम सख्या को नर सख्या कहता था।

गणित के अन्दर पायथागोरस के निकाले हुए प्रमेय पायथागोरस-प्रमेय के नाम से प्रसिद्ध हैं। पायथागोरस के स्वतत्र सिद्धान्तो के कारण उस युग मे उस पर बडे-बड़े अत्याचार हुए। उसे कई दफे इधर से उधर भागना पडा। उसके सभा भवनो मे आग लगायी गई और उसकी मृत्यु अत्यन्त दु खान्त हुई। मगर बाद मे किसी देवी के कहने पर

उसकी मृत्यु के पश्चात् वहाँ के लोगों ने उसका बड़ा आदर किया। उसकी मूर्ति बनाई गई और उसकी पूजा होने लगी। और वह अपने युग का सबसे बड़ा दार्शनिक और गणितज्ञ माना जाने लगा।

अफलातून (Plato)

अफलातून यूनान का सबसे बड़ा दार्शनिक राजनीतिज्ञ और समाजशास्त्री समझा जाता है मगर गणित शास्त्र में भी उसका योगदान बड़ा महत्वपूर्ण है। उसके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'रिपब्लिक' के आठवें भाग में गणित शास्त्र सम्बन्धी कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है। उसने गणित शास्त्र के सम्बन्ध में पाइथागोरस के द्वारा निकाले हुए कुछ सिद्धान्तों का खण्डन भी किया है। अफलातून के पश्चात् उसके शिष्य यूडोक्स मेनाक्रीटिस और अरिस्टोटल ने उसके गणित सम्बन्धी अ-वेषणों को आगे बढ़ाया।

इराटोस्थनीज (Eratosthenes)

यह सिकन्दरिया सम्प्रदाय का एक यूनानी गणितज्ञ था। इसका जन्म ई० पू० सन् २७६ में और मृत्यु ई० पू० १९४ में हुई, इसकी शिक्षा दीक्षा सिकन्दरिया की यूनान संस्था में हुई।

इराटोस्थिनीज गणितीय भूगोल का जन्मदाता माना जाता है। उसने शायद सबसे पहले पृथ्वी की परिधि और व्यास का नाप बतलाया। अभाज्य संख्याओं को निकालने की विधि 'सिव्ह ऑफ इरास्टोस्थिनीज (Sieve of Eratosthenes) कहलाती है। इरास्टोस्थिनीज अपने समय का महान् गणितज्ञ था।

आर्किमिडीस (Archimedes)

आर्किमीडीज भी सिकन्दरिया स्कूल का स्नातक था। इसने अपना सारा जीवन गणितशास्त्र की खोजों में लगा दिया। इसका जन्म ई० पू० सन् २८६ में और मृत्यु ई० पू० २१२ में हुई। आर्किमिडिज को गणितशास्त्र सम्बन्धी कई बातों के आविष्कार का श्रेय प्राप्त है। आर्किमिडिज ने ही चाँदी मिले हुए सोने को पानी में तौलकर असली सोने का वजन निकालने की पद्धति का आविष्कार किया था। आर्किमिडीज के महत्वपूर्ण कार्य ऐलामेंट्रिक्स के क्षेत्र में है। ज्या-

गणित के क्षेत्र में उसने [illegible] सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है। [illegible]

इसी प्रकार [illegible] अलख्वारिज्मी के प्रसिद्ध गणितज्ञ हुए [illegible]

यूरोप

यूरोप में मध्यकालीन [illegible] प्रमुख आचार्य 'बोथियस' [illegible] ७११ में और मृत्यु सन् ८०४ में हुई [illegible] जाता था। इसने अनुवादित और [illegible] ग्रन्थों की रचना की। बोथियस [illegible] के और उसकी ज्यामिती पुस्तक [illegible] आधारित थी।

बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के [illegible] लियोनार्डो फिबोनाची ([illegible] एक बहुत प्रसिद्ध गणितशास्त्री हुआ। [illegible] ११६ के [illegible] है। इसका पुस्तक [illegible] अबाकी बहुत प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में [illegible] लेखन-पद्धति पर भी एक अध्याय लिखा हुआ है [illegible] लगता है कि यह गणितशास्त्री हिन्दुओं की [illegible] पद्धति से प्रभावित था। अपने ग्रंथ में इसने [illegible] भिन्न-भिन्न विषयों पर प्रकाश डाला है। [illegible]

सन् १२१ में इटली में [illegible] नामक एक प्रसिद्ध गणितशास्त्री हुआ। [illegible] हिन्दू अङ्क पद्धति का बहुत प्रचार किया। [illegible]

लूका पोसियली (Luca pacioli) [illegible] सिलन संघ भी गणितशास्त्र के इतिहास में [illegible] इसका जन्म सन् १४४५ में और मृत्यु सन् १५०९ में [illegible] जाती है। इसका सुमा (Suma) नामक ग्रन्थ [illegible] गणित साहित्य में इसकी अनोखी देन है। इस [illegible] पूर्णांक गणित क्षेत्र के अनेकों आचार्यों के [illegible] किया गया है। इसके और भी कई अप्रकाशित और [illegible] ग्रन्थ हैं।

पुनर्जागरण युग में यूरोप में गणितशास्त्र का [illegible] सोलहवीं सदी के आरम्भ से हुआ। उनमें पहले [illegible] गिरोलैमो (Girolamo), और टैग्लियन्ते (Tagliente)

नामक दो गणितशास्त्रियो ने अंकगणित पर एक पुस्तक प्रकाशित की। जो उस युग मे बहुत लोकप्रिय हुई। इसके पश्चात् "लाफेसियो (Lazesio) नामक इटली के एक और गणितशास्त्री ने अङ्कगणित, बीजगणित और रेखा-गणित के कुछ सिद्धातो पर एक ग्रन्थ निकला। यह ग्रन्थ भी बहुत लोकप्रिय हुआ।

इन्ही दिनो फ्रान्स मे गणितशास्त्र के अन्तर्गत लियास नगर मे लियास (Lyons) नामक एक विशिष्ट सम्प्रदाय की स्थापना हुई, जिसमे कई बडे बडे गणितज्ञ पैदा हुए। इस लियान्स स्कूल से राची (Roche) पिडमाण्टोईस (Piedmontois) कस्वर्ट टॉनस्टॉन (Tonstall) इत्यादि बडे प्रसिद्ध गणितकार हुए।

इङ्गलैंड मे सोलह सदी मे "रावर्ट रेकार्ड" (Robert Record) नामक सुप्रसिद्ध गणितशास्त्री हुआ।

इसका जन्म सन् १५१० मे और मृत्यु १५५८ मे हुई। इसने गणित शास्त्र पर (१) ग्राउण्ड ऑफ आर्ट्स (२) केसिल ऑफ नॉलेज (३) पाथ वे टू नॉलेज और (४) व्हेट स्टोन ऑफ विट नामक चार ग्रन्थो का निर्माण किया। ग्राउण्ड ऑफ आर्ट्स मे अंकगणको और अङ्को के द्वारा कलक्यूलेशन करने की विधियाँ तथा व्यापार गणित के दूसरे विषयो का विवेचन किया गया है। पॉथ वे टू नॉलेज" मे प्रसिद्ध गणित कार "यूक्लिड" के रेखा गणितीय सिद्धान्तो की विवेचना की गई है। "व्हेट स्टोन ऑफ विट" मे बीज-गणित के सिद्धान्तो का विवेचन किया है। इसी ग्रन्थ मे सबसे पहले रेकार्ड ने समीकरण चिन्हका प्रयोग किया था जो आगे चलकर बहुत प्रचलित हो गया।

जॉन डी (John Dee) भी इङ्गलैंड का एक प्रसिद्ध गणित कार हुआ। इसका जन्म सन् १५२७ मे और मृत्यु सन् १६०८ मे हुई। उसने "यूक्लिड की जामेट्री का सब से पहले अंग्रेजी मे अनुवाद किया और यूक्लिड पर एक टीका की प्रकाशित की।

इसी प्रकार अर्फट का ग्रेमेटियम (Grammatcus) (सन् १४९६) जर्मनीका एडम रीज (Adam Riesuj) हॉलैण्ड का रेनियर (Gemma Frisuis of regnier) और साइमन स्टेविन्सन (Simon Stevinus) इत्यादि और भी अनेक बडे बडे गणितज्ञ हुए जिन्होने अपने ज्ञान से गणित शास्त्र को समृद्ध किया।

बीज-गणित

किसी अज्ञात वस्तु या राशि को, ज्ञात और कल्पित वस्तु के द्वारा प्रत्यक्ष मे लाने के गणित को बीज गणित कहते है। इस गणित मे अको को अक्षरो के द्वारा निरूपित किया जाता है। बीज गणित का मुख्य विषय समीकरणो का साधन है इसका आधार भूत प्रमेय यह है कि "प्रत्येक समीकरण का एक मूल अवश्य होता है।

बीज गणित को अंग्रेजी मे एलजबरा (Algebra) चीन मे तियेन यूयेन ('स्वर्गीय तत्व') जापान मे काइगेन-सी हो (अज्ञात का ज्ञान') इटली मे रेगोला दला-कोसा ('अज्ञात राशि) का नियम और जर्मनी में डी-कास अथवा "अज्ञात राशि कहते हैं।

भारतवर्ष मे इसका "बीज गणित" नामकरण सबसे पहले सन् ८६० मे 'पृथूदक स्वामी" ने किया। इसके पूर्व इसको "कुट्टक गणित, कहते थे।

अंग्रेजी का एलजबरा नाम बगदाद के "अल ख्वा-रिज्मी" नामक गणितशास्त्री की पुस्तक "अल-जब्र-वल-मुकाबला' का अपभ्रंश है। अलख्वारिज्मी की पुस्तक को यूरोप मे इतना महत्व मिला कि वहाँ पर इस शास्त्र का नाम ही उसके नाम पर रक्खा गया।

भारतवर्ष

बीज गणित का प्रारम्भ भी अंक गणित की तरह भारत वर्ष मे ही हुआ। इस बात के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। ऋग्वेद का काल जो कम से कम ईसा से पाँच हजार वर्ष पूर्व समझा जाता है, उस काल मे भी हमारे यहाँ यज्ञ होते थे और यज्ञो के हवन-कार्यो के लिये भिन्न आकार-प्रकार की वेदियाँ बनाई जाती थी। इन वेदियो का इतना महत्व था कि इनके रूप का निरूपण करने के लिये कई "शुल्व सूत्रो" की रचना की गई थी। इनमे "बोधायन" "कात्यायन" "वाराह" "मानव" "मैत्रायण" आदि ऋषियो के शुल्व-सूत्र अब भी उपलब्ध हैं। जिनमे इन वेदियो की कई प्रकार की रेखा-गणितीय रचनाएँ दी गई हैं। जिनके द्वारा बीज-गणित के समी करणो के हल निकलते हैं।

रामायण और महाकाव्य काल में नल नील के द्वारा रामेश्वरम् का पुल बांधा जाना या यज्ञों की वेदियों का बनाया जाना इत्यादि विषयों का ज्ञान पूर्ण उन्नति पर था। युद्ध में तरह-तरह की व्यूह-रचना करना इत्यादि कलाओं का विकास हो चुका था। इससे पता चलता है कि इन सब बातों की वैज्ञानिक जानकारी के लिये उस समय के लोगों को बीज-गणित का अच्छा ज्ञान था।

बुद्ध-काल में या मौर्य-साम्राज्य के अन्तर्गत कौटिल्य के अर्थशास्त्र से मालूम होता है कि उस समय गणित शास्त्र के ज्ञान का काफी विकास हो चुका था।

पेशावर जिले की मरदान नामक तहसील के "बक्षाली" नामक ग्राम में सन् १८८१ में एक टीले की खुदाई करते हुए भोजपत्र पर लिखी हुई हस्तलिपि की एक पुस्तक प्राप्त हुई है। जिसके बहुत से पृष्ठ तो नष्ट हो चुके हैं। केवल ७ पृष्ठ ऐसे बचे हैं जो किसी प्रकार पढ़े जा सकते हैं। इस पुस्तक में जो लिपि लिखी हुई है, उसका नाम उस समय के प्राचीन इतिहासकारों ने बक्षाली लिपि रख दिया है। यह पुस्तक इस समय ऑक्सफोर्ड के एक पुस्तकालय में सुरक्षित है।

यह पुस्तक सूत्रों में दी हुई है। इन सूत्रों में प्रत्येक प्रश्न के साथ उसकी स्थापना (प्रश्न का स्वरूप) उसके बाद 'करण' उस प्रश्न का हल और प्रत्यय या प्रश्न की उपपत्ति दी गई है।

इस ग्रन्थ में अंकगणित बीजगणित और रेखागणित तीनों तरह के प्रश्न दिये गये हैं। इसमें 'वर्गमूल'' 'एक घात समीकरण' (Linear Equations) वर्गसमीकरण' (Quadratic Equations) समानान्तर श्रेणियाँ (Arithmetical Progressions) मिश्र श्रेणियाँ (Compound Series) सोने चांदी सम्बन्धी गणित लाभहानि (Computations Relating to Gold) इत्यादि गणित की शाखाओं के प्रश्न दिये गये हैं।

इस पुस्तक के लिखे जाने का समय ईसा की तीसरी शताब्दी में माना जाता है और यह जिस लिपि में लिखी गई है उसे शारदा लिपि कहा जाता है।

इसके बाद भारतीय गणितशास्त्र के इतिहास में "आर्य भट्ट" "ब्रह्मगुप्त" महावीर और भास्कराचार्य का नाम आता है। इन महान् गणितज्ञों का परिचय इस ज्ञानकोश के

काम दे चुके हैं।
[illegible]
बीजगणित के वे सारे
[illegible] संसार
स्थान रखते हैं।

यूनान

प्राचीन यूनान के
"डायफैण्टस" का नाम
इस गणितशास्त्री का स्थान [illegible]
माना जाता है। इसकी लिखी हुई
Arithmetica" ([illegible])
(Polygonal Numbers)

डायफैण्टस की अरिथमेटिका [illegible]
एक ग्रंथ है। इस ग्रंथ में कई ऐसे
जिनके हल निकालना बड़े-बड़े गणितज्ञों
है। ऐसे कठिन प्रश्न "डायफैण्टाइन
(tine Equations) के नाम से ही
में प्रसिद्ध हो गये हैं।

[illegible] ने बीजगणित की
संशोधन किया। इस प्रकार यूनानी
महान् व्यक्ति गणितशास्त्र के इतिहास में
इसके कुछ समय पश्चात् "[illegible]"
नामक [illegible] का गणितकार भी इस
प्रसिद्ध हुआ।

बगदाद

बगदाद के प्रसिद्ध खलीफा
में "अल-ख्वारिज्मी" नामक मुस्लिम
शास्त्र के अपने अनुसंधानों के लिए प्रसिद्ध
विद्वान ने ज्योतिष और बीजगणित पर कई
की रचना की। बीजगणित पर उसका ग्रंथ,
मुकाबला' है जिसके नाम पर अलजेब्रा शब्द
की उत्पत्ति हुई है। ऐतिहासिक दृष्टि से
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अल-ख्वारिज्मी के बाद [illegible]) [illegible]
[illegible] सदी के अन्त में हुआ। [illegible]

सख्या पद्धति और ज्योतिषपर कुछ पुस्तके लिखी। अबू जाफर नामक एक विद्वान ने यूक्लिड की जॉमेट्री और ज्योतिष पर कुछ रचनाएँ की। इसका समय दसवी सदी के मध्य मे था।

अरबी-साहित्य का सबसे बडा गणितकार "अल-करसी" था। इसकी सबसे प्रसिद्ध रचना "फरवरी" है। जो उसने बीजगणित पर लिखी थी। यह ग्रन्थ बीजगणित के इतिहास मे बहुत भारी महत्व रखता है। इस ग्रन्थ मे बीजगणित की राशियाँ, मूल, एकघात समीकरण (Linear Equations) द्विघात समीकरण (Quadratic Equations) अनिर्णित समीकरण इत्यादि विषयो का समावेश किया गया है।

उमर-खैय्याम का नाम यद्यपि कविता के क्षेत्र मे बहुत अधिक प्रसिद्ध है। मगर गणित के क्षेत्र मे भी उसकी देन बहुमूल्य है। उसने बीजगणित पर एक ग्रंथ लिखा था, जिससे उसकी ख्याति सब दूर फैल गई। जिसके परिणामस्वरूप सुलतान मलिकशाह ने सन् १०७४ मे उमर-खैय्याम को अपने दरबार मे बुलाकर पचाग को शुद्ध करने का काम सौंप दिया।

यूरोप

फ्रास के अन्तर्गत बीजगणित पर गवेषणा करनेवाला लेखक जीन डी म्यूरिस (Jean-De-Muris) सन् १२६० के करीब हुआ। इसने अकगणित और ज्योतिष पर कुछ रचनाएँ की। इसने बीजगणित के समीकरणो का भी अध्ययन किया था। इसी प्रकार चौदहवी शताब्दी मे "निकोल ओरेसमे" (Nicole Oresme) नामक गणितकार भी प्रसिद्ध हुआ है।

सोलहवी सदी मे यूरोप के अन्तर्गत "जिरोलेमो कार्डन" (Girolamo Cardan) नामक गणितशास्त्री का नाम खूब प्रसिद्ध हुआ। इसने गणित और फलित ज्योतिष पर जो पुस्तकें लिखी, उनसे इसकी कीर्ति सारे यूरोप मे फैल गई। इसका समय सन् १५०१ से १५७६ तक रहा।

कार्डन के पश्चात् निकोल-टार्टेग्लिया (Nicolo Tartaglia) नामक लेखक भी गणित के इतिहास मे बडा प्रसिद्ध हुआ। यह भी इटली का रहने वाला था। इस लेखक ने आर्कीमिडीज के ग्रन्थो की टीका और यूक्लिड का इटालियन भाषा मे पहला अनुवाद तैय्यार किया। इसकी गनेरी (Gunnery) नामक गणितशास्त्र की रचना ने भी बहुत प्रसिद्धि पाई।

इसके बाद यूरोपीय गणितशास्त्र के इतिहास मे फ्रान्स के फ्रान्सोइस वीटा (Francois Vieta) का नाम चमकता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसका समय १५४० से १६०[illegible] तक था।

वीटा को आधुनिक बीजगणित का जन्मदाता कह सकते हैं। उसने सबसे पहले बीजगणित मे सख्याओ का निरूपण करने के लिए अक्षरो का प्रयोग किया। ज्ञातराशियो के लिए व्यञ्जनो का और अज्ञातराशियो के लिए स्वरो का।

वीटा के पश्चात् सत्रहवी सदी मे फ्रान्स के प्रसिद्ध गणितज्ञ पियरे-फर्मा (Pierre Fermat) का नाम प्रमुख रूप से आता है। इसने सख्याओ के गुणधर्मों पर बहुत अनुसन्धान किये। इन अनुसन्धानो के कारण यह आधुनिक सख्या-सिद्धान्त का जन्मदाता कहा जाता है। डायफ्रेण्टस के पश्चात् सख्या सिद्धान्त का इतना बडा जानकार दूसरा कोई नही हुआ।

इस के बाद "जॉन नेपियर" (John Napier) का नाम बीजगणित के क्षेत्र मे बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसका समय सन् १५५० से १६२७ तक था। सन् १६१४ मे इसकी प्रसिद्ध पुस्तक डिस्क्रिप्शियो (Discriptio) का प्रकाशन हुआ, जिसमे इसने लघु-गणको के आविष्कार का विवरण दिया था। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही ससार के तत्कालीन बडे-बडे गणितज्ञ आश्चर्य चकित हो गये। जो लघुगणक नेपियर ने आविष्कृत किये थे, वे आजकल के लघुगणक दशमलवो से भिन्न थे। सन् १६२४ मे नेपियर ने अपने एक सहयोगी के साथ मिलकर "अरिथमेटिका-लॉगरथिमिका" (Arithmetica Logarithmica) नामक पुस्तक प्रकाशित की। जिसमे १—३०००० और ८०००० से १००००० तक की सख्याओ के लघुगणक दिये हैं। नेपियर की एक पुस्तक 'रेब्डालाजिया' भी उसकी एक महानतम कृति है।

एडमण्ड गण्टर भी एक प्रसिद्ध अग्रेज गणितकार था। इसका जन्म सन् १५८१ मे और मृत्यु १६२६ मे हुई। इसके द्वारा आविष्कृत की हुई गण्टरचेन (Gunter Chain) सर्वेक्षण के काम मे उपयोगी है। वस्तुओ का उच्चत्व (Altitude) निकालने के लिए इसने गण्टर कॉडरेण्ट (Gunter Quadrant) का आविष्कार किया।

सकता। इसलिए भौतिक विज्ञान और खगोल विज्ञान के विकास के साथ-साथ गणित-शास्त्र के जामेट्री विभाग मे भी कई नयी-नयी शाखाओ का प्रादुर्भाव हो गया।

शुरू मे रेखागणित की "प्लेन जामेट्री" और सालिड जामेट्री दो शाखाएँ थी। और इस शास्त्र का प्रारम्भ भी सबसे पहले भारतवर्ष में यज्ञ की वेदियो के निर्माण का विवेचन करने वाले शुल्व-सूत्रो से हुआ।

जामेट्री अग्रेजी भाषा का शब्द है और यह शब्द जॉ और मीटर से बना है जिसका अर्थ पृथ्वी और माप होता है। इससे पता चलता है कि यूरोप मे यह गणित भूमि के नाप से प्रारम्भ हुआ।

पर भारत वर्ष मे जॉमेट्री का उपयोग यज्ञ की वेदियो के साथ-साथ ज्योतिषशास्त्र के विकास मे भी बहुत अधिक हुआ। जो आगे जाकर दूसरे देशो ने भी ग्रहण किया।

रेखागणित का एक सूत्र जो कि यूरोपीय परम्परा के अनुसार पायथागोरस के द्वारा निमित्त माना जाता था वह ऐसा ज्ञात होता है कि पायथागोरस से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व या ईसा से आठ सौ वर्ष पूर्व बोधायन ऋषि अपने शुल्वसूत्र मे हलकरचुके थे। यह प्रमेय इस प्रकार है "एक समकोण त्रिभुज के कर्ण का वर्ग अन्य दोनो भुजाओ के वर्ग के योगो के बराबर होता है। इससे यह बात साफ प्रकट होती है कि पायथागोरस उक्त प्रमेय का आविष्कर्त्ता नही था, उसने किसी भारतीय गणित के आधार पर ही उसकी रचना की थी।

मिस्र के अन्तर्गत बने हुए प्राचीन पिरामिडो को देखने से पता चलता है कि उस समय ईसा से पूर्व ३००० से लेकर २००० हजार तक के मिश्र के शिल्पकारो को जामेट्री का बहुत काफी ज्ञान था। ईसा से दो हजार वर्ष पूर्व मिश्र मे भूमि के नाप और वर्गीकरण का काम चालू था। जो बिना जॉमेट्री ज्ञान के सम्भव नही था।

प्राचीन यूनान के अन्तर्गत और विषयो के साथ-साथ जॉमेट्री गणित के क्षेत्र मे भी बडी बडी प्रतिभाएँ पैदा हुई। यूनान के गणितज्ञ जॉमेट्री के अन्दर बहुत गहरे घुस गये थे और अङ्कगणित और बीजगणित के प्रश्न भी जॉमेट्री तरीके से हल करते थे। यद्यपि यूनान से पहले ही मिश्र के निवासी जॉमेट्री की रूपरेखा से परिचित थे, पर इस विषय के ज्ञान का शास्त्रीय रूप मिश्र को भी यूनानी विद्वानो ने ही दिया। यूनान के इतिहास मे ईसा से पूर्व नौवी से सातवी शताब्दी तक का युग जॉमेट्री युग कहलाता है। इन दिनो के बने हुए मन्दिर, मिट्टी के बर्तन, जॉमेट्री के त्रिभुज, समभुज और वृत्तो से भरे हुए हैं।

ईसा से पूर्व सातवी सदी मे यूनान के अन्तर्गत "थेल्स" नामक एक गणितशास्त्री हुआ। इसने सूर्य-ग्रहण के सम्बन्ध मे एक भविष्यवाणी बतलाई थी। उसके सत्य निकल जाने के कारण इसका बडा नाम हो गया। इसने पहले पहल किसी आकृति की भिन्न भिन्न रेखाओ मे क्या सम्बन्ध है, इस प्रश्न को उठाकर जॉमेट्री के अन्तर्गत रेखागणित की नींव डाली।

थेल्स के बाद पायथागोरस इस विषय का प्रकाण्ड पडित हुआ। उसने ज्यामेट्री के सम्बन्ध मे कई प्रमेयो को सिद्ध किया और उनकी रचना की विधि का आविष्कार किया। इसी प्रकार प्राचीन यूनान मे हिपाक्रेटस (Hippocrates) टॉलेमी आर्काइटस (Archytas)(४२८-३४३ ई०पू०) थीटिटस (ई० पूर्व ३७५) अफलातून, अरस्तू इत्यादि कई गणितज्ञ हुए जिन्होने ज्यामेट्री के क्षेत्र मे कई अनुसन्धान किये।

यूक्लिड

मगर सारे ससार मे जॉमेट्री के क्षेत्र मे "यूक्लिड" ने जो नाम कमाया, उसका मुकाबिला कोई नही कर सकता। इसका समय ईसा से तीन शताब्दी पूर्व था। और इसने अलेकजेण्ड्रिया में टॉलेमी के राज्यकाल मे एक स्कूल की स्थापना की थी। यूक्लिड का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ जिसने उसके नाम को गणितशास्त्र के इतिहास मे अमर कर दिया "एलीमेण्ट्स" (Elements) था। आधुनिक युग में सन् १८८२ से लेकर सन् १९६० ई० तक इस ग्रन्थ के करीब एक हजार सस्करण छप चुके हैं। इसके अन्य ग्रथो में डेटा (Data) स्यूडेरिया (Pseudaria) पोरिज्म्स (Porisms) और सरफेस लोकी (Surface Loci) विशेष प्रसिद्ध हैं।

यूक्लिड के पश्चात् अपोलोनियस का नाम भी यूनानी गणितशास्त्र के इतिहास मे बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ कॉनिक्स (Conics) है जो आठ भागो में विभक्त है। उसके और भी कई ग्रन्थ थे मगर [illegible] हो

गणित और बीजगणित तथा पचाङ्ग विपय पर भी पुस्तके लिखी जो बहुत लोकप्रिय हुई और जिनके कारण इसका नाम सारे यूरोप मे प्रसिद्ध हो गया ।

सत्रहवी सदी के प्रारम्भ मे इटाली मे कैवोलिरी (Bonaventura Cavalıerı) नामक प्रसिद्ध गणितकार हुआ, जिसका जन्म सन् १५९८ मे और मृत्यु १६४७ मे हुई । सन् १६३५ मे इसने रेखागणित मे Pııncıp'e cf Indıvısıbles (आविभाज्यो के सिद्धान्त) नामक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की । इस ग्रन्थ मे उमने वतलाया कि प्रत्येक रेखा मे अनन्त विन्दु, प्रत्येक समतल मे अनेक रेखाएँ और प्रत्येक ठोस मे अनन्त समतल होते हैं। यद्यपि उसके इस सिद्धात की उस समय काफी आलोचना हुई । मगर उसने इन सव आलोचनाओ के उत्तर में एक पुस्तक लिखकर इस सिद्धान्त को सुव्यवस्थित रूप दे दिया । उसने अपनी इसी नवीन विधि से कैपलर के द्वारा उठाये हुए कई प्रश्नो को हल किया । कैविलरी ने इस ग्रन्थ के सिवा त्रिकोणमिति, ज्योतिष इत्यदि पर भी कई पुस्तकें लिखी ।

वैरोमीटर नामक प्रसिद्ध यत्र के आविष्कारक टोरिसेलि (Torrıcellı) का जन्म भी सन् १६०८ मे इटली के फेञ्जानगर मे हुआ था । यह सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलिओ का शिष्य था । रेखागणित मे इसके द्वारा किये हुए अनुसन्वानो का भी इटाली में बड़ा आदर हुआ ।

फ्रास के 'रेनी डकार्टे' का नाम भी रेखागणित के इतिहास मे उल्लेखनीय है । इसका जन्म सन् १५९६ मे और मृत्यु १६५० मे हुई । इस गणितकार ने निर्देशक जॉमेट्री (Coordınate) की नीव डाली ।

फ्रान्स के गणितशास्त्रियो मे पॉस्कल का नाम भी बहुत प्रसिद्ध है । इसका जन्म सन् १६२३ मे और मृत्यु सन् १६६२ में हुई । इसने यूक्लीड के कई साध्यों को अपने स्वतन्त्र ढग से सिद्ध किया था । इसके साध्य 'पास्कलप्रमेय' के नाम से प्रसिद्ध हैं । पॉस्कल ने अपने इसी प्रमेय से ४०० उपप्रमेय निकाले थे ।

इनके अतिरिक्त राबर्ट सिमसन (१६१७-१७६८) किंग डन क्लीफोर्ड (१८४५-१८८९) के नामक अग्रेज गणितज्ञ भी उल्लेखनीय हैं ।

फ्रास के प्रसिद्ध गणितज्ञ माजे (१७४६-१८१८) को वर्णनात्मक जोमेट्री का जन्मदाता माना जाता है । वर्णनात्मक जोमेट्री पर इसने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की ।

इसके साथ ही जर्मनी के महान् गणितकार फ्रेडरिक गाउस (१७७७ १८५५) का नाम आता है । यह एक मजदूर का पुत्र था । सन् १८०१ मे सख्या सिद्धान्त पर इसका प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रकाशित हुआ । जॉमेट्री के क्षेत्र मे इसके अनुसन्धान इतने महत्वपूर्ण थे कि उनको वजह से यह आधुनिक युग के तीन महान् गणितकारो मे से एक माना जाता है और लेपलॉस तथा लॅग्राज के साथ इसकी गणना की जाती है ।

स्विट्जरलैण्ड का 'जेकव-स्टेनर' भी जॉमेट्री-गणित का एक महान् अनुसन्धानकर्त्ता माना जाता है । इसका जन्म सन् १७९६ मे और मृत्यु सन् १८६३ मे हुई । सन् १८३४ मे वर्लिन विश्व-विद्यालय मे इसके लिए जॉमेट्री की एक नई गद्दी स्थापित की गई । इसने जॉमेट्री पर कई उच्चकोटि के ग्रन्थो की रचना की ।

जॉन वोलिये हगरी का एक महान् गणितकार था । इसका जन्म सन् १८०२ मे और मृत्यु सन् १८६० मे हुई ।

जॉन वोलिये और रूस के गणित-शास्त्री लोवाच्युस्की (१७९३-१८५६) दोनो ही यूक्लिड की जॉमेट्री के विरोधी थे । उनके मत से यूक्लिड की जॉमेट्री हमे वास्तविकता तक नही पहुँचाती, केवल उस वास्तविकता की एक झलकमात्र दिखला देती है । यूक्लिडी जॉमेट्री उनकी सार्विक जॉमेट्री की ही एक सीमा स्थिति है । इन दोनो गणितज्ञो ने अपने अनुसन्धान स्वतन्त्र रूप से निकाले ।

इस प्रकार हजारो वर्ष से मानव-बुद्धि की आच मे तपता हुआ गणितशास्त्र का यह प्रमुख अग आज इस विकसित अवस्था को पहुँचा है ।

त्रिकोणमिति

त्रिकोणमिति या ट्रिग्नामिट्री भी गणित शास्त्र की एक मुख्य शाखा है । इस शाखा से त्रिभुजो की भुजाओ और

कल्क्युलेशन या कलन और फलन-सिद्धान्त

अंग्रेजी के 'कल्क्युलेशन' शब्द का मतलब है गणना, जोड़ना, घटाना और उसका फलन निकालना--कल्क्युलेशन मे ये सब भाव आते हैं। वैसे साधारण दृष्टि से देखने मे यह वस्तु बहुत साधारण दिखाई पड़ती है, मगर आजकल के युग मे गणित की इस शाखा का रूप बहुत ही विस्तृत हो गया है।

ज्वार-भाटे के सिद्धन्त की गणना, सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण की गणना, आकाशीय नक्षत्रो की गणना आदि सब विषयो का समावेश इसमे होता है।

गणित की इस शाखा ने इस युग मे बहुत अधिक महत्व प्राप्त कर लिया है। प्राचीन युग मे गणित की यह शाखा रेखागणित और बीजगणित से ही सम्बन्धित थी, मगर मध्य और आधुनिक युग मे इस शाखा ने अपना एक स्वतन्त्र रूप धारण कर लिया है। मध्य युग के अन्तर्गत इस शाखा के इतिहास मे 'क्रिश्चियन हाइजेन्स' का नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म सन् १६२९ मे और मृत्यु सन् १६९५ ई० मे हुई। कल्क्युलेशन के क्षेत्र मे इनका कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता है।

इसी प्रकार फ्रास के 'मिचेलरोल' 'आइजक बेरो' (१६-३० से १६७७) 'आइजक न्यूटन' 'लिबनीज (१६४६ से १७१६) इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओ और इनके निकाले हुए सिद्धान्तो से गणित की इस कल्क्यु-लेशन-शाखा का बहुत विकास हुआ।

इसके पश्चात् आधुनिक युग मे स्विट्जरलैंड के बरनोली-परिवार के 'जैकब' नामक गणितकार के अनुसन्धान कल्क्यु-लेशन सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुत महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

इसी प्रकार जेकब के भाई 'जान' और 'निकोलस' ने भी इस क्षेत्र के अदर अत्यन्त महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये। जॉन के छोटे पुत्र 'डेनियल' (Danial) (१७०० से १७८२) ने गणितीकृत्यो के विषय, कलन, अवकलन, समीकरण और सम्भाव्यता पर अपने महत्वपूर्ण अनुसन्धान किये। इसको पेरिस की परिषद् से १० बार पुरस्कार प्राप्त हुए।

बर्नोली परिवार की तरह इटली के 'रिकेटी' परिवार का जेकब फ्रासिस-रिकेटी' भी एक प्रसिद्ध गणितकार हुआ, जिसका समय सन् १६७६ से १७५४ तक था।

इसी प्रकार पेरिस का 'जॉन-बैप्टिस्ट-कैरो' (मृत्यु सन् १७६५) 'पीयर्स-साइमन लेप्लास' (१७४९ से १८२७) 'जोसेफ फूरियर' (१७६८ से १८३०) कार्ल-फ्रेडरिक-गाउस' (जर्मनी) (१७७७ से १८५५) 'आगस्ट लियोपोल्ड-क्रेले (जर्मनी) (१७८० से १८२५) 'आगस्टीन-लुई कोची' (फ्रास) (१७८९ से १८५७) 'जैकब जेकोबी' (जर्मनी) (१८०४ से १८५१) 'विलियम रॉवेन हेमिल्टन' (आयर्लैण्ड) १८०५ से १८६५), थियोडोर-विस्ट्रास' १८१५ से १८९७) 'नील्स-हेन-रिक -आरवेल्स' (१८०२ से १८२९) 'जेम्स-जोसेफ सिल्वेस्टर (१८१४ से १८९७) (इङ्गलैंड) 'आर्थर-केली' इगलैंड) (१८२१ से १८९५) 'जॉर्ज फ्रेडरिक बर्नरहार्ड-रिमान' (१८२६ से १८६६) 'फिलिप-कैंटर' (१८४५ से १९१८) 'हेनरी-पायन-केरे' (१८५४ से १९१२) इत्यादि महान लेखको ने गणित की इस कल्क्युलेशन-शाखा को अपने अनु-सन्धानो से समृद्ध करके इसको इतना विशालरूप दे दिया।

(डॉ० ब्रजमोहन—गणित का इतिहास दत्त और सिंह—भारतीय गणित का इतिहास)

गणतन्त्र और गणराज्य

भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक राज्य प्रणालियो मे से एक प्रणाली। जिसका इतिहास बहुत पुराना है। और जिस पर ससार के विभिन्न देशो मे मनुष्यने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रयोग किये हैं।

गणतन्त्र राज्य प्रणाली प्रजातन्त्र प्रणाली का ही एक पूर्व रूप है। प्राचीन युग मे जब मनुष्य कबीलो के रूप मे था छोटे-छोटे जनपदो के रूप मे रहता था तब वह अपने कबीलो या जनपदो की सुव्यवस्था के लिये एक सरदार को चुनते थे। यह सरदार, कही पर खाकान (मध्य एशिया) कही पर राजा (भारत) कही पर कौन्सल (रोम) और कही पर इम्परेटर कहते थे।

यह लोग प्रजा की बनाई हुई समिति-जिसका नाम कही पर समिति, कही पर कुरीलताई, और कही पर सीनेट होता था-की सलाह से शासन का काम किया करते थे।

फिर भी इस चुनाव पद्धति मे प्रजातन्त्र के विकसित तत्व नही थे। विशेषकर सरदार या राजा उसी व्यक्ति को चुना जाता था जो कुलीन हो, जो स्वय बीर या बीरो की सन्तान हो, जो साधारण जन समाज से ज्ञान और विवेक मे आगे

नष्ट हुआ हो। इसी लिए महान् तत्ववेत्ता अरस्तू ने कुलीन-तन्त्र या गणतंत्र को अरिस्टोक्रेसी (Aristocracy) और प्रजातन्त्र को डिमाक्रेसी (Democracy) की संज्ञा दी है।

गणतन्त्र राज्यपद्धति का भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्रकार से विकास हुआ।

भारत

भारतवर्ष में वैसे वैदिक काल में भी गणतन्त्र पद्धति का किसी रूप में विकास हो चुका था और समिति तथा विदथ नामक संस्थाएं चुने हुए राजा के कार्यों का नियन्त्रण करती थी। फिर भी गणतन्त्र पद्धतिका पूर्ण विकास महाभारत काल के पश्चात् स्थापित हुए सोलह जनपदों में हमें देखने को मिलता है।

ये सोलह जनपद १—अंग २—मगध ३—काशी ४—कोशल ५—वज्जि ६—मल्ल ७—चेदि ८—वत्स ९—कुरु, १०—पांचाल ११—मत्स्य १२—शूरसेन १३—अस्सक १४—अवन्ति, १५—गन्धार और १६—कम्बोज थे।

गणतन्त्र के इस युग में वैदिक राज्यसंस्था के कई अंगों में परिवर्तन हो गया था। इस काल में श्रेणी तथा निगम इन दो नवीन संस्थाओं का उदय हो गया था जो पहले नहीं थी।

गणतन्त्र प्रणाली के इन गणराज्यों में आपस में बराबर संघर्ष चलते रहते थे। और हरएक गणराज्य अपने को सर्व श्रेष्ठ राज्य बनाने की महत्वाकांक्षा में दूसरे गणराज्यों को नष्ट करने की प्रवृत्ति रखता था।

इस कारण सोलह महाजनपदों की यह स्थिति अधिक समय तक नहीं बनी रही। वज्जि और मगध एक दूसरे के पड़ोसी थे। इन दोनोंके बीच लगातार मुठभेड़ें होती रहती थीं। अन्त में एक बार मगध ने अंग पर आक्रमण करके उसे जीत लिया। इसी प्रकार ई पू ६५५ में कोशल जनपद की बढ़ती हुई शक्ति काशी जनपद को हड़प गई। और अन्त में इन सभी महाजनपदों का अस्तित्व मगध के विशाल साम्राज्य में समा गया और ई पू ३२४ में सम्राट चन्द्रगुप्त विशाल मगध साम्राज्य की स्थापना करने में समर्थ हुआ।

यूनानी गणतन्त्र

यूनान के प्राचीन इतिहास में भी गणतन्त्र-राज्य पद्धति पर बहुत प्रयोग हुए। मिनोअन सभ्यता की समाप्ति के बाद यूनान में कई [illegible] राज्यों में एथेन्स और [illegible] राज्य के और [illegible] [illegible] राज्यों में शासन की [illegible] [illegible] नागरिकों की एक [illegible] नाम "एक्लीसिया" रखा गया था।

स्पार्टा के [illegible] [illegible] और इस परिषद् पर [illegible] संस्था थी जिसे 'एफोर' कहा जाता था। [illegible] दो राजा होते थे, [illegible]

प्राचीन [illegible] राज्यों के बीच भी आपस में [illegible] ईरान के द्वारा किये हुए [illegible] राज्यों की स्थिति [illegible] ईरानी युद्धों के पश्चात् यूनान के [illegible] स्पार्टा इस संघ में शामिल नहीं हुआ। [illegible] से ई पू० ४०४ तक एथेन्स और स्पार्टा [illegible] हुई जिसमें स्पार्टा ने एथेन्स को [illegible]

[illegible] एथेन्स में [illegible] एथेन्स के [illegible] हुआ। [illegible] युग था। [illegible] स्वाधीन, [illegible] संस्कृति, [illegible] सर्वतोमुखी उन्नति हुई।

[illegible] के नाम पर [illegible] (Tyrants) [illegible] हाथ में चली गई। [illegible]

इस प्रकार यूनान मे भी गणतन्त्र व्यवस्था अधिक स्थायी नही रही और थोडे ही समय के पश्चात् मक्दुनिया के राजा फिलिप ने यूनान पर आक्रमण करके उसे अपने राज्य मे मिला लिया'।

रोमन गणतन्त्र

रोम के अन्तर्गत ई० पू० ६२४ मे राज्यतन्त्र प्रणाली का अन्त होकर गणतन्त्र या कुलीनतन्त्र राजव्यवस्था का प्रारम्भ हुआ। उस समय रोम की जनता मे दो दल प्रधान थे। एक दल का नाम 'पैट्रीशियन' था जिसे हम कुलीनवर्ग कह सकते है, और दूसरे दल का नाम 'प्लेबियन' था जिसे हम जनता का साधारण वर्ग कह सकते हैं। इन दोनो दलो मे हमेशा सघर्ष चलता रहता था। राज्य के तमाम ऊँचे पदो पर पैट्रीशियन लोगो का अधिकार था। वहाँ की राज्यसभा 'सीनेट' के सदस्य पैट्रीशियन होते थे। वहाँ के सर्वोच्च अधिकारी 'कौन्सिल' भी इन्ही मे से चुने जाते थे। प्लेबियन लोगो का काम सेना मे भरती होकर युद्ध करना और शान्ति के समय खेती करना और पैट्रीशियन लोगो की गुलामी करना था। प्लेबियन लोग पैट्रीशियल लोगो से जमीन का लगान चुकाने के लिए कर्ज लेते थे तो उस समय के नियम के अनुसार उन्हे कर्ज अदा होने तक साहूकार का दास होकर रहना पडता था और ये साहूकार उन पर मनमाना अत्याचार करते थे।

प्लेबियन लोग युद्ध मे जीत कर लूट का माल लेकर आते थे तो पैट्रीशियन लोग उस सारे माल को आपस मे बाँट लेते थे और उन्हे अगूठा बता दिया जाता था।

इस प्रकार एक ओर घर की यह फूट रोम को बरबाद कर रही थी। दूसरी ओर आसपास के दूसरे राज्य इट्रस्कन, सबैन आदि रोम पर आक्रमण करके उसे कमजोर बना रहे थे।

इस प्रकार गणतन्त्र पद्धतिका आरम्भ होजाने पर भी रोम के अन्दर शान्ति और स्मृद्धिका आविर्भाव नही हुआ। पर बाद मे पैट्रीशियन और प्लेबियन लोगो के पारस्परिक सघर्ष के फल स्वरूप धीरे-धीरे प्लेबियन लोगो को 'ट्रिब्यून' चुनने के तथा दूसरे भी बहुत से अधिकार मिले। और गाल, साम्नाइट तथा कार्थेज लोगो के साथ होने वाले युद्धो मे विजय प्राप्त होने पर रोम को शान्ति और स्मृद्धि भी प्राप्त हुई।

मगर शान्ति और स्मृद्धि प्राप्त होते ही रोमन लोगो मे विलास और ऐय्याशी की भावनाएँ प्रबल हो उठीं। उन्होने ग्रीक लोगो के वैभव और विलास का अनुकरण करना प्रारम्भ किया। पैट्रीशियन और प्लेबियन लोगो का भेद तो ई० पू० ४८० मे मिट चुका था। मगर अब उसकी जगह समाज मे 'ऑप्टिमेट' [धनवान] और 'ऑब्सिक्यूरी' [गरीब] ये दो भेद प्रमुख हो गये। इसी समय शासन की सारी शक्ति कौंसल और ट्रिब्यून के हाथ से निकल कर सिनेट के हाथ मे आ गई।

यह सिनेट एक प्रकार से धनवान लोगो की ही थी। टाइबीरियस नामक एक देशभक्त व्यक्ति ने गरीबो के अधिकारो की रक्षा के लिए तथा धनी लोगो का जमीन पर से एकाधिकार हटाने के लिए सीनेट मे लिमिनियन नामक बिल मे सशोधन करने का प्रस्ताव रखा। इस पर वहाँ का धनीवर्ग इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने टाइबीरियस को जुपिटर देवता के मन्दिर के सामने मरवा डाला।

इस प्रकार करीब ६०० वर्षो तक रोम मे, गणतन्त्र या कुलीनतन्त्र रहा मगर इन शताब्दियो मे रोम के अन्दर स्थायी शान्ति न रही, कभी बाहरी आक्रमणोसे और कभी घरेलू झगडोसे रोम हमेशा त्रस्तरहा। अन्तमे 'जूलियस सीजर'ने अपनी विलक्षण प्रतिभा और शक्ति से अपने प्रतिद्वन्दी पाम्पे, सुल्ला, इत्यादि व्यक्तियो को हराकर रोम के शासन की सारी सत्ता अपने हाथ मे ले ली। उसको निरकुश सत्ता के मार्ग पर जाते देख कर ब्रूटस नामक व्यक्ति ने उसकी हत्या कर डाली। मगर उसके बाद उसके उत्तराधिकारी ऑगस्टस सीजर ने अपने सब प्रतिद्वन्दियो को परास्त कर धीरे-धीरे विशाल रोम साम्राज्य की नीव डाली। ऑगस्टस सीजर के शासनकाल मे रोम ने जो शान्ति, जो सुव्यवस्था, जो वैभव और जो विकास देखा वह इसके पहले कभी नही देखा था।

मध्य-एशिया

मध्य-एशिया के कबीलाई गणतन्त्रो का इतिहास अत्यन्त करुणाजनक घटनाओ से भरा हुआ है। वहाँ के इतिहास मे शको, हूणो, तुर्को, मङ्गोलो इत्यादि कई बडे बडे कबीलो के द्वारा स्थापित विशाल राज्यो का वर्णन हमे पढने को मिलता है। सुनहरी कबीला, सफेद कबीला, मगोल कबीला इत्यादि कई कबीले इतिहास के परदे पर आते हैं। कबीले के लोग शासन के लिए 'खाकानो' का चुनाव करतेथे। इस खाकान

पद के लिए वहाँ पर जितना रक्तपात हुआ है उसका कोई हिसाब नहीं। भाई ने भाई की, पिता ने पुत्र की, बेटे ने बाप की किस प्रकार हत्याएँ की हैं, इसका अत्यन्त करुण इतिहास है। ऐसा मालूम होता है जैसे 'हत्या' और 'कत्ल' यहाँ का आम नारा हो गया था।

ईसा के पूर्व छठी शताब्दी में अखामनी राजवंश ने ईरान में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की। इस साम्राज्य ने कोई दो तीन शताब्दियों तक सारे मध्य-एशिया में सुव्यवस्थित शासन किया। यही वह समय कहा जा सकता है जब मध्य-एशिया के इतिहास में शान्ति सुव्यवस्था वैभव और विकास का युग प्रवर्तमान रहा।

सिकन्दर महान् के आक्रमण ने अखामनी-साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसके बाद फिर कबीलाशाही ने जोर पकड़ा। ईरान में फिर पार्थियन और सासानी साम्राज्यों की स्थापना हुई और वहाँ पर फिर शान्ति और सुव्यवस्था कायम हुई मगर उसके बाहर सारे मध्य-एशिया में वैसी ही अराजकता रही। उसके बाद मंगोलों के भयंकर आक्रमणों ने सारे एशिया को रौंद डाला। मङ्गोल-आक्रमणों के बाद भी कहीं कबीलाशाही और कहीं वंश-परम्परागत राज्य-सत्ता का उदय हुआ मगर बहुत समय तक वहाँ शासन में स्थिरता नहीं आई।

इङ्गलैंड

इंग्लैण्ड में राज्य-तन्त्र की जड़ काट देने के लिए सन् १६४६ में क्रामवेल के नेतृत्व में भारी क्रान्ति हुई और राजा चार्ल्स का सिर काट कर क्रामवेल के नेतृत्व में प्रजातन्त्र की स्थापना की गई, मगर थोड़े ही समय में वह प्रजातन्त्र सैनिक-शासन में परिवर्तित हो गया और केवल ग्यारह वर्ष के पश्चात् ही सन् १६६ में इंग्लैण्ड की प्रजा को फिर से राजतन्त्र की स्थापना करनी पड़ी। हालांकि धीरे-धीरे वह राजतन्त्र पार्लमेंट के द्वारा नियंत्रित कर दिया गया।

फ्रांस

अठारवीं सदी में फ्रान्स की जनता ने भी अनियन्त्रित राज्य-तन्त्र के खिलाफ जबर्दस्त क्रांति करके सम्राट् सोलहवें लुई को मौत की सजा दे दी। मगर उसके बाद फ्रांस में रक्तपात का जो भीषण ताण्डव हुआ उससे इतिहास के पृष्ठ लाल हो गये और अन्त में 'नैपोलियन' के साम्राज्य के सम्मुख फ्रांस को नतमस्तक होना पड़ा।

इस प्रकार [illegible] कहा जा सकता है कि [illegible] करने के लिए मानव-जाति ने और संसार के कई देशों में [illegible] व्यवस्था हुई। मगर [illegible] ने उनकी महत्वाकांक्षा-पूर्ति ने [illegible] सफल नहीं होने दिया। राज्यों ने जब साम्राज्य के सम्मुख, सिकन्दर के सम्मुख रोम [illegible], सम्मुख, फ्रान्स की क्रांति ने नैपोलियन [illegible] टेक दिये। और सब जनता के [illegible] बने।

इसी लिए प्लेटो ने अपने [illegible] 'रिपब्लिक' ग्रन्थ में इस प्रजातन्त्र की [illegible] 'अरस्तू' ने अपने 'पॉलिटिक्स' नामक ग्रन्थ में [illegible] समर्थन करते हुए भी लिखा है कि—

"फिर भी यह प्रश्न बना रहता है कि सर्वोच्च शक्ति किस व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के हाथ में होनी चाहिए? सार्वभौम शक्ति जनसाधारण के हाथ में हो, धनिकों के हाथ में हो, कुलीनों के हाथ में हो या श्रेष्ठ व्यक्ति के हाथ में हो? प्रत्येक पक्ष के व्यक्तियों की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ हैं। सभी विकल्पों के ऊपर कानून की कठिनाइयों से खाली नहीं है। पर सब मन्थन के बाद इसी निर्णय पर पहुँचा [illegible] शक्ति जनता के हाथ में होना चाहिये। कुछ के हाथ में नहीं। यह सिद्धान्त भी [illegible] है फिर भी इसमें सत्य का अंश है।"

पर इसके साथ ही अरस्तू यह भी [illegible] 'यह सिद्धान्त हर अवस्था में लागू [illegible] छिपी हुई शक्तियों में [illegible] एक भले-बुरे का निर्णय करने की क्षमता है—वह [illegible] सकता। जिस राज्य में सर्वसाधारण के अन्दर [illegible] की बुद्धि और राजनैतिक चेतना का [illegible] है, [illegible] सिद्धान्त लागू हो सकता है। और जहाँ [illegible] वहाँ भी राज्य के सर्वोच्च पद [illegible]

जाना चाहिये जो जीवन के प्रारम्भ से ही उच्च शिक्षा, दिव्य सस्कार और उन्मुक्त वातावरण मे पले तथा विकसित हुए हो। जनसाधारण को तो केवल शासन-नीति निर्द्धारित करने, अधिकारियो और न्यायाधीशो का चुनाव करने और उनके कार्यों की जाँच करने का अधिकार होना चाहिए।"

इस प्रकार मनुष्य जाति अपने इतिहास के सक्रमण मे, राज्यतन्त्र, अनियन्त्रित राजतन्त्र, नियन्त्रित राज्यतत्र, कुलीन-तत्र या गणतत्र, प्रजातत्र इत्यादि कईप्रकार की राज्य-प्रणालियो का परीक्षण करती आई है। इन सब पद्धतियो के मीठे और कड़ुवे अनुभवो को उसने चखा है। उसने राज्यतत्र-प्रणाली मे रामराज्य, मौर्य्यराज्य, गुप्तराज्य, एलिजावेथ के राज्य, आगस्टस सीजर के राज्य, हानवश [चीन] का राज्य, अकबर का राज्य इत्यादि अनेकानेक उत्तम राजतत्रो को भी देखा है, जिसमे उसने सुख, समृद्धि और वैभव की बसरी वजाई है और इसी राज्यतत्र में उसने हूण-राजा मिहिरगुल का शासन, तैमूर लङ्ग का शासन और नादिरशाह का शासन, औरङ्गजेब का शासन, रूस के जारो का, फ्रास के लुइयो का, जर्मनी के कैसरो का और भारत के पठान शासको के अत्याचारपूर्ण शासन भी देखे हैं जिसमे कभी भी उसकी जान-माल सुरक्षित नही रहे हैं। गणतत्र शासन प्रणाली मे भी उसने लिच्छवी, शिशुनाग इत्यादि कई अच्छे शासनो को भी देखा है और तीस आतता-इयो के उस शासन को भी देखा है जिसने सुकरात के समान महान पुरुष की हत्या की थी। उसने नियत्रित राज्यसत्ता मे इग्लैण्ड का सर्वतोमुखी विकास और प्रजातत्र पद्धति मे अमे-रिका का महान् विकास भी देखा है।

और आज वह फिर इतिहास के सारे ज्ञान को साथ लेकर अपने विस्तृत ज्ञानके साथ प्रजातत्र पद्धति का परीक्षण कर रही है। सारी दुनिया मे इस समय प्रजातत्रीय शासन की एक जोरदार लहर आ रही है। कई देशो मे इस पद्धति के परीक्षण असफल भी हो गये हैं और कई देशो मे यह पद्धति सफलता पूर्वक आगे भी बढ रही है। आगे जाकर इसके क्या परिणाम होगे—यह तो आगे का इतिहास ही बतलायेगा।

मगर वास्तविक तथ्य यह है कि किसी भी राज्य पद्धति की सफलता का रहस्य वहा की जनता की मनोभावनाओ मे छिपा रहता है। कोई भी राज्य-पद्धति स्वय में अच्छी या बुरी नही होती, जनता की मनोभावनाओ के अनुसार ही उसका रूप बनता है। अगर जनता की मनोभावनाएँ व्यापक दैवी सम्पद्से परिपूर्ण हो, अगर उसकी भावनाओमे स्वार्थ की अपेक्षा त्याग की, विलास और वैभव की जगह बलिदान की और अनाचार की जगह नैतिकता की भावनाएँ परिपूर्ण हो तो, राज्य-प्रणाली का रूप कोई भी हो, वह समाज मे दैवी-सम्पद् का योगक्षेम कर शान्ति और समृद्धि को बनाये रक्खेगी। राज्य तत्र के अन्तर्गत भी वह मौर्य्य साम्राज्य, गुप्त साम्राज्य, सीजर साम्राज्य और अकबर साम्राज्य को उत्पन्न करती रहेगी।

इसके विपरीत यदि जनता मे आसुरी-सम्पदा, स्वार्थ, कर्तव्यहीनता, भ्रष्टाचार, सत्ताकी होड और पडोसीको मारकर अपना भला करने की भावनाएँ समष्टिगत हुई तो राज्य-प्रणाली का नाम और रूप कितना ही अच्छा या आकर्षक क्यो न हो वह समाज मे शान्ति और समृद्धि का सचार नही कर सकती। इतिहास के पृष्ठ इस बात के साक्षी है।

फिर भी इसमे सदेह नहीं कि अनियन्त्रित राजसत्ता की अपेक्षा गणतत्र प्रणाली मे और प्रजातत्र प्रणाली मे जनता के विकास के साधन अधिक रहते हे।

गढ़वाल

हिमालय पहाड के मध्य मे स्थित, उत्तर प्रदेश की कुमाऊँ कमिश्नरी का एक जिला। जो उत्तर पूर्व में तिब्बत से घिरा हुआ है।

यह जिला पहाडी है। इस जिले मे हिमालय की बडी-बडी चोटियाँ उपस्थित हैं। इन चोटियो मे नन्दा देवी' (२५६४५) 'कामत' (२५४७७) 'बद्रीनाथ' (२३२१०) 'केदारनाथ' (२२८५३) 'त्रिशूल' (२३३८२) इत्यादि चोटियाँ उल्लेखनीय हैं।

हिंदुओ के परम पवित्र तीर्थस्थान जैसे बद्रीनाथ, जोशी-मठ, केदारनाथ, पाण्डुकेश्वर इत्यादि इसी क्षेत्र मे अवस्थित हैं।

इस प्रदेश का पुराना प्रामाणिक इतिहास प्राप्त नही होता। पर वहाँ पर प्रचलित किंवदन्तियो के अनुसार ऐसा पता लगता है कि प्राचीन काल मे ब्रह्मपुर का कत्यूरी राज-

अज्ञात कुलशीला थी और एक आम के बगीचे मे मिली थी। इस लिए इसका नाम आम्रपाली रक्खा गया। और युवावस्था होने पर इसे नगरवधू बनाकर नृत्य, सगीत और वाद्य की कला मे प्रवीण किया गया प्रवीण होकर वह बडे-बडे सामन्तो और राज पुरुषो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने लगी। इतिहास की कल्पना है कि स्वय मगध के नरेश श्रेणिक बिम्बसार उसके प्रेम मे गुथे हुये थे। उस समय सगीत, रूप और यौवन के क्षेत्र मे उसका मुकाबला भारतवर्ष मे कहीं भी न था। उसकी आंखो मे मदिरा का दरिया लहराता था और उसकी हँसी मे सगीत के सारे स्वर एक साथ बज उठते थे। दूर दूर के बडे बडे राजा और राजपुरुष उसकी कृपाकटाक्षो का इतिजार करते थे।

इतनी शान-शौकत, वैभव और सुख के होते हुए भी उसका श्रेष्ठ व्यक्तित्व जैसे इन बातो के प्रति विद्रोह करता रहता था और किसी अलक्ष्य अभाव को वह हमेशा महसूस करती रहती थी।

इतने मे ही तथागत भगवान् बुद्ध का वैशाली मे आगमन हुआ। और वे आम्रपाली के आम के बगीचे मे ठहरे। यह सुन कर आम्रपाली बडे श्रद्धा पूर्ण हृदय से तथागत को दर्शनो को चली। तथागत को देखते ही उसे जैसे भान हुआ कि उसे उसकी अलक्ष इष्टवस्तु एकाएक मिल गई है। उसने बडी श्रद्धा से भगवान् बुद्ध को सघ सहित भोजन के लिए अपने घर पधारने का न्योता दिया। भगवान् बुद्ध तो उसके अन्तरग की भावनाओ को समझ रहे थे। उन्होने मौन रह कर आम्रपाली के निमत्रण को स्वीकार कर लिया।

लिच्छवि राजवश के लोग भी अपने सुवर्ण रथों पर सवार होकर तथागत के दर्शनो को जा रहे थे। जब उन्होने देखा कि अम्बपाली का रथ गर्वोन्नत भाव से उनके पहियो से पहिया टकराते हुए वापस लौट रहा है, तब उन्होने पूछा कि-'क्या बात है ? तू लिच्छवियो के रथ के बराबर अपना रथ कैसे चला रही है।'

अम्बपाली ने कहा — 'आर्य पुत्रो! तथागत ने मेरा भोजन का निमत्रण जो स्वीकार कर लिया है,'

लिच्छवियो ने कहा—"अम्बपाली! तू एक लाख स्वर्णमुद्रा लेकर यह निमत्रण हमे दे दे।"

अम्बपाली ने कहा—"आर्य पुत्रो! यदि आप मुझे सारे वैशाली का राज्य भी दे दें तो भी मैं यह निमत्रण नही बेचूगी।"

तब उन्होने निराश होकर कहा—'आज हमे अम्बपाली ने हरा दिया।

दूसरे दिन समस्त सघ-सहित तथागत ने आम्रपाली के घर भोजन किया। उसके घरपर उन्होने उसको धर्म की देशना दी। अम्बपाली ने अत्यत प्रभावित होकर अपना आम का बगीचा भिक्षु-सघ के लिए तथागत को दान मे दिया और उसने स्वय तथागत से प्रव्रज्या ग्रहण की। उसके बाद वह थेरी (भिक्षुणी) हो गयी। उसकी वाणी थेरी गाथामे विद्यमान है।

सालवती

अम्बपाली को देखकर मगध-सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने भी अपने यहाँ सालवती नामक एक अत्यन्त रूपवती कन्या को मगध की नगरवधू बनाया था। (ई० पू० छठी सदी) सालवत्ती भी अत्यत रूपवती और नृत्य सगीत की कला मे प्रवीण थी। मगर वह बहुत थोडी आयु मे ही गर्भवती हो गई थी। यह सोचकर कि सन्तान होने की खबर सुनकर राजपुरुषो का आकर्षण उसके प्रति कम हो जावेगा, उसने अपने सद्यप्रसूत पुत्र को चुपचाप कूडे के ढेर पर फिकवा दिया।

इस सद्यप्रसूत बच्चे पर बिम्बसार के पुत्र अभय कुमार की दृष्टि पडी और उन्होने उसका पालन किया। सालवती का, अभयकुमार के द्वारा जिलाया हुआ यही पुत्र आगे जाकर 'जीवक' के नाम से आयुर्वेद के इतिहास मे प्रसिद्ध हुआ।

कोसा

अम्बपालिका के पश्चात् ई० पूर्व चौथी शताब्दी मे नन्दराजवश के नवे राजा घनानन्द के समय मे 'कोसा' नामक राजनर्तकी बहुत प्रसिद्ध हुई। इसने अपने गुरु से 'सूचिका' नामक नृत्य को सिद्ध किया था। इस नृत्य मे मूँगो के ढेर मे सूइयाँ खडी करके उन सूइयो पर कमल के फूल रखकर उन फूलो पर नृत्य की सिद्धि की जाती थी। यह नृत्य अम्बपालिका भी सिद्ध नही कर सकी थी। मगर कोसा ने उसे सिद्ध कर लिया था।

इस कोसा ने जैन-धर्म के सुप्रसिद्ध आचार्य स्थूलभद्र को दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व बारह बरस तक अपने रूप,

प्रेम कला और संगीत के वातावरण में फँसाये रखा। स्थूलभद्र मगधराज के प्रसिद्ध मंत्री शकटार के पुत्र थे और जन्म से ही वैराग्यमूलक भावनाएँ होने के कारण शकटार के लाख प्रयत्न करने पर भी इन्होंने विवाह कर गृहस्थ बनना स्वीकार नहीं किया।

मगर एक दिन वसन्तोत्सव के समय कोशा के नृत्य और संगीत को देखकर वे मुग्ध हो गये और उसकी प्रणयप्रार्थना को स्वीकार कर बारह वर्ष तक उसके साथ रहे। उसके पश्चात् उन्होंने जैन-दीक्षा ग्रहण की और कुछ वर्षों पश्चात् कोशा ने भी इनसे दीक्षा ग्रहण करली।

इसी प्रकार मृच्छकटिक में वर्णित वसन्तसेना भी गणिका होते हुए महान् गुणों से विभूषित थी। बौद्धजातकों में काशी की अड्ढकासी नामक गणिका की बहुत प्रशंसा की गई है। ईसा की पाँचवीं सदी के स्यामीलक कवि ने काशी की पराक्रमिका नामक गणिका की और आठवीं सदी में कश्मीर के दामोदर गुप्त ने अपने ग्रन्थ में काशी की मालती' नामक गणिका की बहुत प्रशंसा की है।

मुसलमानी काल में भी कई स्थानों पर वेश्याओं का बड़ा प्रभाव रहा। दक्षिण के सुल्तान मुहम्मद कुली कुतुब शाह (१५८) का 'भागमती नामक एक हिन्दू वेश्या से गहरा प्रेम था। उसके प्रेम की स्मृति में उसने 'गोलकुण्डा' से कुछ दूरी पर 'भाग नगर' नामक एक नगर बसाया जो इस समय हैदराबाद के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी प्रकार कहा जाता है कि बीजापुर में गोल-गुम्बज नामक भव्य इमारत का निर्माण करवानेवाले मुहम्मद आदिल-शाह का 'रम्भा' नामक एक गणिका से प्रेम था। जब उसकी अमर स्मृति गोल गुम्बज बनकर तैयार हो गया तब वे रम्भा को साथ लेकर उसको देखने गये तो उसकी पूछी हुई योजनाओं की परीक्षा करने के लिए उन्होंने कुछ दूरी से रम्भा से पूछा 'जानेमन! क्या तुम मुझे सच्चे दिल से प्यार करती हो?' रम्भा ने जवाब में कहा— 'मैं अपने प्राणों से भी ज्यादा आपसे मोहब्बत करती हूँ।' तब आदिलशाह ने कहा कि 'अगर तुम्हारी मुहब्बत सच्ची है तो तुम इस गोलार पर से छलांग लगा जाओ।' सुनते ही रम्भा ने आव देखा न ताव उसी समय उस गुम्बज से छलांग लगाकर मर गई।

इसी प्रकार हीरा बाई नामक वेश्या के साथ औरंगजेब का प्रेम-इतिहास प्रसिद्ध है।

यूनान

ई० पू० पाँचवीं सदी [illegible]

समय यहाँ का गणिकाओं [illegible] था। दुनिया के इतिहास में [illegible] गणिकाओं को इतना आदर [illegible] इस काल में हुआ।

इस काल में यहाँ [illegible] कम जानकारी जाने लगी। [illegible] होती थी। उस काल में बड़े-बड़े राजपुरुष, दार्शनिक इन गणिकाओं के [illegible] सुकरात के समान महापुरुष भी [illegible] यहाँ की विदुषी गणिकाओं की [illegible] उन्होंने अपनी रचनाओं में [illegible] के प्रति अपनी श्रद्धांजलि भी अर्पण की है।

तत्कालीन एथेन्स के सुप्रसिद्ध लेखक 'पेरिक्लीज' का 'एस्पेसिया' [illegible] गहरा प्रेम था। एस्पेसिया उस युग में साथ ही विद्वत्ता में भी [illegible] की कई रचनाओं में भी [illegible]

इस समय एथेन्स का [illegible] पाकर [illegible], विज्ञान और [illegible] में प्रवेश कर गया था। [illegible] वचन बन गये थे और बड़े-बड़े दार्शनिक, [illegible] और राजनेताओं से वे घिरी रहती थीं। [illegible]

[illegible]

ऐसे ही युग में [illegible] नगर की [illegible] नामक गणिका ने कीर्ति प्राप्त करने के [illegible] अपना कला-मन्दिर स्थापित किया। [illegible] सौन्दर्य को इतने और महान [illegible] थी जिससे उसका सौन्दर्य और भी [illegible]

यूनान का [illegible] नवयुवक [illegible] पर मुग्ध हो गया। उसका [illegible] बड़े-बड़े रईस उसके चरणों पर [illegible] करने लगे। [illegible] में [illegible] हो गई।

गणेशशंकर विद्यार्थी

भारत वर्ष के एक सुप्रसिद्ध देशभक्त हिन्दी पत्रकार। प्रताप पत्र के सस्थापक। जो कानपुर मे सन् ११३१ मे होने वाले हिंदू मुसलिम दङ्गे मे शहीद हो गये।

गणेश शङ्कर विद्यार्थी का जन्म सन् १८६० में इलाहाबाद के अन्तर्गत अपने ननिहाल मे हुआ था। इनके पिता का नाम मुन्शी जयनारायण और माता का नाम गोमती देवी था। बचपन से ही इनके सस्कार देशभक्ति पूर्ण हो गये थे। इन्होंने कानपुर से "प्रताप" नामक एक साप्ताहिक पत्र का हिंदी भाषा मे प्रकाशन प्रारम्भ किया। "प्रताप" सम्भवत हिंदी का पहला साप्ताहिक था जिसने अग्रेजी सल्तनत की आलोचना मे उग्रभाषा का प्रयोग प्रारम्भ किया था। इसलिए इस पत्र को हिंदी मे लगभग वही दर्जा प्राप्त हो गया जो मराठी भाषा मे "केसरी" को प्राप्त था। गांधीजी के असहयोग आदोलन के समय मे इसका दैनिक सस्करण भी प्रारम्भ हो गया।

उक्त पत्रकारिता के साथ गणेश शंकर विद्यार्थी मे देश-भक्ति भी कूट कूट कर भरी हुई थी। इसलिए क्रातिकारी दल के अनेकों सदस्य भी—जो सर पर कफन बाध कर अग्रेजी सरकार के खिलाफ बगावत करने को उतारू थे—प्रताप कार्यालय मे शरण पाते थे। सरदार भगतसिंह, चद्रशेखर आजाद इत्यादि अनेको क्रातिकारी विद्यार्थीजी पर अटूट श्रद्धा रखते थे।

विशुद्ध राष्ट्रीय भावना से पूर्ण होने के कारण विद्यार्थीजी हिंदू मुसलिम एकता मे विश्वास रखते थे और हिंदू-मुसलमानो के बीच होने वाले साप्रदायिक उपद्रवो को देख कर उन्हें हार्दिक वेदना होती थी।

दैवयोग से सन् १९३१ के मार्च महीने मे उन्हीं के नगर कानपुर मे हिन्दू-मुसलिम दङ्गा बडे भयङ्कर रूप से प्रारम्भ होगया। देखते-देखते उपद्रव कारियो ने बीसो मन्दिर और कई मस्जिदो को नष्ट कर दिया। इस दङ्गे मे चार दिनोतक कानपुर मे भयङ्कर नर सहार हुआ। जिसमे करीब ५०० व्यक्ति मारे गये और हजारो घायल हुए।

ऐसे विकट समय—उस भयङ्कर नर सहार के समय जब प्रतिष्ठित और राष्ट्रीयता का दम भरने वाले व्यक्ति अपने-अपने घरो मे छिप कर बैठे हुए थे, विद्यार्थीजीकी आत्मा इस घटना से तडप उठी और वे इस जलती हुई आग को बुझाने के लिए घर से बाहर निकल पडे। उनके घर के लोगो ने और उनके इष्ट मित्रो ने इन खू खार और हत्यारे लोगो के बीच उन्हे जाने से बहुत रोका। मगर उन्होने किसीकी न सुनी और एक हिन्दू और एक मुसलमान स्वयसेवक को साथ लेकर उस साम्प्रदायिक उन्मादको शात करने के लिए घरसे निकल पड़े।

प्रारम्भ मे उन्होंने "पटकापुर" "बङ्गाली मुहाल" इत्यादि हिंदू मुहल्लो मे जाकर उन मुहल्लों मे फसे हुए कई मुसलमानो को सुरक्षित स्थानो पर भिजवाया। और उसके बाद मुसलमानी मुहल्लो मे फसे हुए हिंदुओ को बचाने के लिए वे मुसलमानी मुहल्लो मे जाने को तैयार हुए। उस समय फिर उन्हें लोगो ने धर्मान्ध मुसलमानो के बीच मे जाने से रोका मगर उन्होने किसी की न सुनी।

शुरू-शुरू मे उन्होने मिश्री बाजार और मछली बाजार मे फसे हुए हिंदुओ को सुरक्षित स्थानो मे भिजवाया। उसके बाद वे "चौबे गोला" नामक मुहल्ले मे गये जो खू खार मुसलमानो का मुहल्ला था। वहा जातेही वहा के धर्मान्ध मुसलमानो ने इन पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। एकाध बार तो उस मुसलमान स्वयसेवक के समझाने से वे लोग रुक गये। मगर अन्त मे भीड ने इनको चारो ओर से घेर लिया। ऐसे समय मे एक मुसलमान सज्जन ने उनकी जान बचाने के इरादे से उन्हें एक गली मे खीच कर ले जाने का प्रयत्न किया। मगर उसी समय विद्यार्थीजी ने चिल्लाकर कहा कि "क्यो खीचते हो मुझे ? मैं मेदान से भागना नही चाहता। अगर मेरे मरने से ही इन लोगो की प्यास शात होती है तो अच्छा है कि मैं कर्तव्य पालन करते हुए यही पर बलिदान दे दू।"

मगर उन खू खार पशुओ ने उनके वचनो का और उनके जीवन का कोई मूल्य नही समझा और उनपर आक्रमण करके उन्हे भयङ्कर रूप से घायल कर दिया। चौथे दिन २७ मार्च को उनका 'शव' अत्यत क्षत-विक्षत अवस्था मे अस्पताल के अदर बरामद हुआ।

इस प्रकार देश की एक महान आत्मा का साम्प्रदायिक उन्माद की वेदी पर बलिदान हो गया।

गणेश कवि

काशी के महाराजा उदित नारायण सिंह के एक दरबारी कवि जो सन् १७६१ ई० से १८५१ ई० तक विद्यमान थे।

गणेश कवि' नरहरि बन्दीजन के वंश में 'लालकवि' के पौत्र और 'गुलाबकवि' के पुत्र थे। ये काशिराज महाराज उदितनारायण सिंह के दरबारी कवि थे और महाराज ईश्वरीप्रसादनारायण सिंह के समय तक जीवित थे। इन्होंने तीन ग्रन्थों की रचना की। वाल्मीकि रामायण श्लोकार्थ-प्रकाश प्रद्युम्न-विजय नाटक और हनुमतपचीसी।

प्रद्युम्न विजय नाटक समग्र पद्यबद्ध है और अनेक प्रकार के छन्दों में ७ अंकों के अन्दर समाप्त हुआ है। इसमें दैत्यों के वज्रनाभपुर नामक नगर में 'प्रद्युम्न' के जाने और 'प्रभावती' से गान्धर्व विवाह करने की कथा का वर्णन है। काव्य और नाटक की दृष्टि से इस नाटक को सफल नहीं कहा जा सकता।

गणेशदत्त (गोस्वामी)

पञ्जाब के विख्यात सन्यासी और सनातन धर्म महामण्डल की पञ्जाब प्रतिनिधि सभा के प्रधान मन्त्री।

गोस्वामी गणेशदत्त हिन्दू हिन्दी और सनातन धर्म की उत्तम सेवा के लिए सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध रहे। स[illegible] सनातन धर्ममहासभा की इन्होंने केवल पञ्जाब में [illegible] शाखाएँ स्थापित कीं। स्वामी गणेशदत्त की संगठन शक्ति बड़ी अद्भुत थी। वे बड़े मधुर वक्ता और विद्वान् थे।

पं० मदनमोहन मालवीय और सेठ जुगलकिशोर बिड़ला के साथ इनका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। इन्होंने अपनी तपस्या कुटी उत्तर काशी में गंगा के मार्ग पर बनाई था और अक्सर वहीं रहते थे। इसके सिवाय दिल्ली के 'लक्ष्मीनारायण मन्दिर' के बनी हुई कृत्रिम गुफाओं में भी ये कभी-कभी रहा करते थे।

गणेशप्रसाद (डॉक्टर)

भारतवर्ष के एक सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ जिनका जन्म सन् १८७६ ई० में बलिया के अन्तर्गत और मृत्यु सन् १९३५ ई० में हुई।

डा० गणेशप्रसाद [illegible] प्रसिद्ध व्यक्ति हुये। सन् [illegible] युनिवर्सिटी से गणित शास्त्र [illegible] की। इसके बाद गणित-शास्त्र [illegible] के लिए ये सन् १९०१ ई० [illegible] और जर्मनी की गटिंजन् युनिवर्सिटी [illegible]

सन् १९०४ ई० में वहाँ से आकर [illegible] ये उत्तर प्रदेश [illegible] में गणित के प्रोफेसर रहे। सन् [illegible] बनारस में सेंट्रल हिन्दू कॉलेज [illegible] और १९२१ ई० से सन् १९३५ ई० [illegible] युनिवर्सिटी में शुद्ध गणित के हार्डिंज [illegible]

डा० गणेशप्रसाद ने गणित-शास्त्र पर [illegible] तीस पत्र और ११ पुस्तकें लिखीं। [illegible] दी कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ मैटर ऐण्ड [illegible] ईस्ट' नामक व्याख्यान बहुत प्रसिद्ध है।

सन् १९३५ ई० में आप आ० [illegible] विद्यालय के अन्तर्गत एक बैठक में [illegible] मस्तिष्क से रक्तस्राव होने के कारण [illegible] हो गया।

डा० गणेशप्रसाद के शिष्यों में [illegible] बी० एन० प्रसाद ने गणित के क्षेत्र में [illegible] की। डा० गणेशप्रसाद के प्रोत्साहन से डा० [illegible] के क्षेत्र में भारतीय पर [illegible] वेनिस्का की विशेषता [illegible] गवेषणा प्रारम्भ की। [illegible] ही संसार के प्रतिभाशाली [illegible] आकर्षित हो गया। [illegible] उनको पद्मभूषण की उपाधि से [illegible]

इस प्रकार डा० गणेशप्रसाद [illegible] अपने पीछे भी एक महत्त्वपूर्ण [illegible]

गणेशशंकर विद्यार्थी

भारत वर्ष के एक सुप्रसिद्ध देशभक्त हिन्दी पत्रकार। प्रताप पत्र के संस्थापक। जो कानपुर मे सन् ११३१ मे होने वाले हिंदू मुसलिम दङ्गे मे शहीद हो गये।

गणेश शङ्कर विद्यार्थी का जन्म सन् १८९० में इलाहाबाद के अन्तर्गत अपने ननिहाल मे हुआ था। इनके पिता का नाम मुन्शी जयनारायण और माता का नाम गोमती देवी था। बचपन से ही इनके संस्कार देशभक्ति पूर्ण हो गये थे। इन्होने कानपुर से "प्रताप" नामक एक साप्ताहिक पत्र का हिंदी भाषा मे प्रकाशन प्रारम्भ किया। "प्रताप" सम्भवत हिंदी का पहला साप्ताहिक था जिसने अंग्रेजी सल्तनत की आलोचना मे उग्रभाषा का प्रयोग प्रारम्भ किया था। इसलिए इस पत्र को हिंदी मे लगभग वही दर्जा प्राप्त हो गया जो मराठी भाषा मे "केसरी" को प्राप्त था। गांधीजी के असहयोग आंदोलन के समय मे इसका दैनिक संस्करण भी प्रारम्भ हो गया।

उक्त पत्रकारिता के साथ गणेश शंकर विद्यार्थी मे देशभक्ति भी कूट कूट कर भरी हुई थी। इसलिए क्रांतिकारी दल के अनेकों सदस्य भी—जो सर पर कफन बांध कर अंग्रेजी सरकार के खिलाफ बगावत करने को उतारू थे—प्रताप कार्यालय मे शरण पाते थे। सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद इत्यादि अनेको क्रांतिकारी विद्यार्थीजी पर अटूट श्रद्धा रखते थे।

विशुद्ध राष्ट्रीय भावना से पूर्ण होने के कारण विद्यार्थीजी हिंदू मुसलिम एकता मे विश्वास रखते थे और हिंदू-मुसलमानो के बीच होने वाले सांप्रदायिक उपद्रवो को देख कर उन्हे हार्दिक वेदना होती थी।

दैवयोग से सन् १९३१ के मार्च महीने मे उन्ही के नगर कानपुर मे हिन्दू मुसलिम दङ्गा बडे भयङ्कर रूप से प्रारम्भ होगया। देखते-देखते उपद्रव कारियो ने बीसो मन्दिर और कई मस्जिदो को नष्ट कर दिया। इस दङ्गे मे चार दिनोतक कानपुर मे भयङ्कर नर संहार हुआ। जिसमे करीब ५०० व्यक्ति मारे गये और हजारो घायल हुए।

ऐसे विकट समय—उस भयङ्कर नर संहार के समय जब प्रतिष्ठित और राष्ट्रीयता का दम भरने वाले व्यक्ति अपने-अपने घरो मे छिप कर बैठे हुए थे, विद्यार्थीजीकी आत्मा इस घटना से तडप उठी और वे इस जलती हुई आग को बुझाने के लिए घर से बाहर निकल पडे। उनके घर के लोगो ने और उनके इष्ट मित्रो ने इन खूंखार और हत्यारे लोगो के बीच उन्हे जाने से बहुत रोका। मगर उन्होने किसीकी न सुनी और एक हिन्दू और एक मुसलमान स्वयसेवक को साथ लेकर उस साम्प्रदायिक उन्मादको शांत करने के लिए घरसे निकल पडे।

प्रारम्भ मे उन्होंने "पटकापुर" "बङ्गाली मुहाल" इत्यादि हिंदू मुहल्लो मे जाकर उन मुहल्लो मे फसे हुए कई मुसलमानो को सुरक्षित स्थानो पर भिजवाया। और उसके बाद मुसलमानी मुहल्लो मे फसे हुए हिंदुओ को बचाने के लिए वे मुसलमानी मुहल्लो मे जाने को तैयार हुए। उस समय फिर उन्हे लोगो ने धर्मान्ध मुसलमानो के बीच मे जाने से रोका मगर उन्होने किसी की न सुनी।

शुरू-शुरू मे उन्होने मिश्री बाजार और मछली बाजार मे फसे हुए हिंदुओ को सुरक्षित स्थानो मे भिजवाया। उसके बाद वे "चौबे गोला" नामक मुहल्ले मे गये जो खूंखार मुसलमानो का मुहल्ला था। वहा जातेही वहा के धर्मान्ध मुसलमानो ने इन पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। एकाध बार तो उस मुसलमान स्वयसेवक के समझाने से वे लोग रुक गये। मगर अन्त मे भीड ने इनको चारो ओर से घेर लिया। ऐसे समय मे एक मुसलमान सज्जन ने उनकी जान बचाने के इरादे से उन्हें एक गली मे खींच कर ले जाने का प्रयत्न किया। मगर उसी समय विद्यार्थीजी ने चिल्लाकर कहा कि "क्यो खींचते हो मुझे? मैं मैदान से भागना नही चाहता। अगर मेरे मरने से ही इन लोगो की प्यास शांत होती है तो अच्छा है कि मैं कर्तव्य पालन करते हुए यही पर बलिदान दे दूं।"

मगर उन खूंखार पशुओ ने उनके वचनो का और उनके जीवन का कोई मूल्य नही समझा और उनपर आक्रमण करके उन्हे भयङ्कर रूप से घायल कर दिया। चौथे दिन २७ मार्च को उनका 'शव' अत्यंत क्षत-विक्षत अवस्था मे अस्पताल के अंदर बरामद हुआ।

इस प्रकार देश की एक महान आत्मा का साम्प्रदायिक उन्माद की वेदी पर बलिदान हो गया।

—

गणेशोत्सव

महाराष्ट्र में मनाया जाने वाला एक सुप्रसिद्ध सार्वजनिक और राष्ट्रीय त्यौहार। जिसके आधुनिक रूप का प्रारंभ सन् १८९२ ई० में हुआ।

वैसे तो 'गणेशोत्सव' या गणपति के जन्म दिन को मनाने की प्रथा प्रायः सारे भारतवर्ष में बहुत प्राचीन समय से है, पर महाराष्ट्र में यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित रही है। पेशवाओं के राज्यकाल में पूना के शनिवार-वाड़े में पेशवा-सरकार की ओर से लगातार १० दिनों तक यह उत्सव धूमधाम से मनाया जाता था। इस अवसर पर हर नगर, गाँव और मुहल्लों में कीर्तन भजन और नाटकों की बड़ी धूम रहती थी। अनन्त चतुर्दशी के दिन एक विशाल जलूस निकाला जाता था जिसमें नगर के सभी गणपतियों की मूर्तियाँ सम्मिलित होती थीं और उन्हें जल में विसर्जित किया जाता था।

सन् १८९२ ई० में सरदार कृष्णाजी काशीनाथ उर्फ नानाजी खासगी वालों ने श्री घोटवड़ेकर और श्री भाऊ रंगारी के सहयोग से इस उत्सव को सार्वजनिक रूप दिया। उसके बाद लोकमान्य 'तिलक' ने इस उत्सव को राष्ट्रीय रूप देने में बड़ी दिलचस्पी से काम लिया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से युवकों में आचार-विचार को नष्ट होते देखकर तथा उनको अपनी संस्कृति के प्रति उदासीन होते देख कर उन्हें बड़ा दुःख होता था। इसलिये युवकों का ध्यान राष्ट्रीय गौरव और संस्कृति की ओर झुकाने के लिये लोकमान्य ने इस महोत्सव को सबसे उपयुक्त समझा।

उन्होंने सन् १८९४ ई० में स्वयं अपने यहाँ गणपति की प्रतिमा की स्थापना की और 'गणाना त्वा गणपति हवा महे' को दृष्टिगत रखते हुए स्वातन्त्र्य-देवता की तरह गणपति का पूजन प्रारंभ किया और इस उत्सव को भाद्रपद शुक्ला प्रतिपदा से लेकर अनन्त चतुर्दशी तक मनाने की प्रथा का प्रारंभ किया। इस त्यौहार को उन्होंने एक राष्ट्रीय मेले का रूप दिया। इस अवसर पर जगह-जगह के कथाकार कीर्तनकार, धर्मप्रचारक और राष्ट्रीय भावनाओं के विद्वान् आकर अपना प्रचार करते थे। कुछ वर्षों में गणेशोत्सव का यह राष्ट्रीय स्वरूप सारे महाराष्ट्र में, विदर्भ में और मध्य भारत के उन हिस्सों में जहाँ महाराष्ट्रियों की बहुत रहती है—पूर्ण रूप से व्यक्त हो गया, और सन् १९ [illegible] से सन् १९१० ई० तक इस उत्सव [illegible] लोकमान्य तिलक स्वयं [illegible] चार, पाँच-पाँच व्याख्यान [illegible] आहूत करते [illegible] 'मराठी' नाटक पर [illegible]

[illegible] की जनता में एक [illegible] था जिससे अंग्रेजी सरकार [illegible] था और इसलिए उसने इस उत्सव [illegible] प्रारंभ किया।

सन् १९०८ ई० में जब लोकमान्य [illegible] गये तब सरकार ने इस उत्सव के [illegible] अवसर मिला। इस उत्सव में [illegible] झूठे-सच्चे केस चलाकर [illegible] शुरू किया।

उत्सव में [illegible] बोलने पर प्रतिबन्ध लगा [illegible] से सरकार परस्त लोगों ने इस उत्सव को भड़काकर मुसलमानों को इस उत्सव के [illegible] कोशिश की मगर मुसलमानों पर [illegible] नहीं हुआ।

फिर भी इन कारणों से इस उत्सव में [illegible] आ गयी और जब तक लोकमान्य जेल में [illegible] शिथिलता बनी रही।

सन् १९१४ ई० में लोकमान्य तिलक के छूटने [illegible] इस उत्सव में फिर से जान आ गयी और [illegible] अधिक व्यापक हो गया और सन् १९२० [illegible] लोकमान्य जीवित रहे इस उत्सव ने महाराष्ट्र [illegible] सामाजिक और राजनैतिक जागृति में अपूर्व [illegible] मगर लोकमान्य की मृत्यु के पश्चात् इस उत्सव [illegible] नष्ट हो गयी और इस पावन पर्व पर [illegible] को गान्धीजी का [illegible] पर जवाहरलाल [illegible] कहीं पर सिनेमाओं का रूप दिया जाने लगा। [illegible] फिर भी बहुत से विचारशील लोग ऐसे हैं, जिन्होंने [illegible] उत्सव की मौलिकता को बनाये रखा है और यह [illegible] अभी भी हमारी राष्ट्रीय जागृति के एक ऐतिहासिक [illegible] की तरह हमारे सामने विद्यमान है।

गणपति शास्त्री

संस्कृत के महान् नाटककार 'भास' के तेरह लुप्त नाटको की खोज करने वाले, गणपति शास्त्री ।

वर्तमान बीसवी शताब्दी के पहले दशक तक महाकवि 'भास' का नाम इतिहासकारो के लिए रहस्य पूर्ण बना रहा । क्योकि सस्कृत के कई प्राचीन ग्रन्थकारो ने अपनी रचनाओ मे 'भास' का उल्लेख बडे आदर के साथ किया हैं। मगर उनकी कोई रचना अभी तक उपलब्ध नही थी।

सन् १९०९ मे गणपति शास्त्री ने कुमारी अन्तरीप से लगभग बीस मील दूर पद्मनाभपुर के निकट एक प्राचीन ग्रामपति के घर से ताड पत्र पर लिखी हुई तेरह नाटको की पाण्डुलिपियो की खोज की, और इन नाटको को उन्हो ने भास की रचनाओ के रूप मे प्रकाशित करवाया ।

इन नाटको के प्रकाशित होते ही इतिहासकारो मे हलचल मच गई। वार्नेट, थॉमस, विण्टर्निल इत्यादि कई अग्रेज लेखको ने भी इस वाद-विवाद मे भाग लेकर कि ये भास की कृतियाँ हैं या नही, इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये । फिर भी अब यह बात एक तरह से स्वीकृत कर ली गई हैं कि ये भास की ही कृतियाँ हैं।

गणेशदत्त शर्मा (इन्द्र)

मध्य प्रदेश के एक सुप्रसिद्ध प्राचीन साहित्यसेवी, लेखक पत्रकार और कवि । जिनका जन्म सन् १८९४ ई० मे दीपावली के दिन गुना-मध्यभारत मे हुआ था। इसके बाद उनका परिवार आगर (मालवा) मे आकर बस गया ।

प० गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र" को बचपन से ही लिखने-पढ़ने का शौक लग गया था। अठारह वर्ष की आयुसे ही ये हिन्दी के कई पत्रपत्रिकाओ मे लेख-कविता और गल्प लिखने लग गये थे। आर्य-समाजी विचार धारा के होने के कारण इन को कई वर्षों तक ग्वालियर राज्य और जनता का कोपभाजन होना पडा। एक बार ग्यालिअर रियासत ने इनको राज्य से बहिष्कृत भी कर दिया था, मगर फिर इनके सत्याग्रह करने पर वापस इनको आगर मे बसने की इजाजत दी गयी ।

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत इनकी गणना द्विवेदी-युग के लेखकों मे होती है। प० गणेशदत्त शर्मा उन लेखको मे से है, जिन्हो ने भयकर आर्थिक सकटो के बीच रूखा-सूखा खाकर भी अपने सरस्वती-मन्दिर के दीपक को ज्वलन्त बनाये रखा । इन्होने कई भिन्न भिन्न विषयो अपनी रचनाएँ की। सन्तान-शास्त्र, दीर्घायु, स्त्रियो के व्यायाम, स्वप्नदोष-रक्षक, ग्राम-सुधार इत्यादि रचनाएँ इन्हो ने स्वास्थ्य विषय पर की । इसके अतिरिक्त गुजराती-हिन्दी-कोश, योगासन, व्यवहारिक सभ्यता, यशवन्त राव होल्कर इत्यादि और भी आप की कई महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं ।

साहित्य-सृजन के अतिरिक्त पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी इन्होने कुछ पत्र-पत्रिकाओ का सम्पादन किया । जिनमे हिन्दी सर्वस्व, चन्द्रप्रभा, गौडहितकारी आदि मुख्य हैं। प० गणेश दत्त शर्मा का हिन्दी, सस्कृत, उर्दू, अग्रेजी, मराठी, बगला, गुजराती इत्यादि कई भाषाओ पर अच्छा अधिकार है ।

प० गणेशदत्त शर्मा को भिन्न-भिन्न सस्थाओ से 'विद्यावाचस्पति' 'काव्यकला निधि' और 'धर्मवीर' की उपाधियाँ प्राप्त हुई है ।

गदूनोफ (रूसीजार)

रूस के जार 'इवान चतुर्थ' के पश्चात् 'जार फ्योदर' के के समय मे उसका एक प्रभावशाली सरदार और उसके बाद रूस का जार। जिसका शासन सन् १५९८ ई० से प्रारम्भ हुआ।

बोरिस गदूनोफ बायर वश का था। इसकी बहिन 'ईरीना' का विवाह जार-फ्योदर के साथ होने से इसका प्रभाव बहुत अधिक बढ गया था।

सन् १५९८ ई० मे जार-फ्योदर के मरने के साथ ही रूस का प्राचीन रूरिक राजवश समाप्त हो गया। तब उसके बाद वहाँ की 'जेम्सकी-सबोर' नाम की राष्ट्रीय परिषद ने सन् १५९८ ई० में बैठक करके 'बोरिस गदूनोफ' को नया जार चुना ।

बोरिस गदूनोफ बडा योग्य और गुणी पुरुष था। मगर इसके शासन मे आने के कुछ ही समय पश्चात् सन् १६०१ ई० मे रूसमे ३ वर्षका भारी अकाल पडा। अतिवृष्टि और पाले के पडने से सारी फसल बरबाद हो गयी। लोग भूख के मारे घास और भोजपत्र की छाल खाने लगे। गाँव के गाँव उजड़ गये। मास्को की सडकें बिना

गणपति शास्त्री

संस्कृत के महान् नाटककार 'भास' के तेरह लुप्त नाटको की खोज करने वाले, गणपति शास्त्री ।

वर्तमान बीसवी शताब्दी के पहले दशक तक महाकवि 'भास' का नाम इतिहासकारो के लिए रहस्य पूर्ण बना रहा । क्योकि सस्कृत के कई प्राचीन ग्रन्थकारो ने अपनी रचनाओ मे 'भास' का उल्लेख बडे आदर के साथ किया हैं । मगर उनकी कोई रचना अभी तक उपलब्ध नही थी ।

सन् १९०९ मे गणपति शास्त्री ने कुमारी अन्तरीप से लगभग बीस मील दूर पद्मनाभपुर के निकट एक प्राचीन ग्रामपति के घर से ताड पत्र पर लिखी हुई तेरह नाटको की पाण्डुलिपियो की खोज की, और इन नाटको को इन्हो ने भास की रचनाओ के रूप मे प्रकाशित करवाया ।

इन नाटको के प्रकाशित होते ही इतिहासकारो मे हल-चल मच गई । बार्नेट, थॉमस, विण्टर्निल इत्यादि कई अग्रेज लेखको ने भी इस वाद-विवाद मे भाग लेकर कि ये भास की कृतियाँ हैं या नही, इस विषय पर अपने विचार प्रकट किये । फिर भी अब यह बात एक तरह से स्वीकृत कर ली गई हैं कि ये भास की ही कृतियाँ हैं ।

गणेशदत्त शर्मा (इन्द्र)

मध्य प्रदेश के एक सुप्रसिद्ध प्राचीन साहित्यसेवी, लेखक पत्रकार और कवि । जिनका जन्म सन् १८९४ ई० मे दीपावली के दिन गुना मध्यभारत मे हुआ था । इसके बाद उनका परिवार आगर (मालवा) मे आकर बस गया ।

प० गणेशदत्त शर्मा "इन्द्र" को बचपन से ही लिखने-पढ़ने का शौक लग गया था । अठारह वर्ष की आयुसे ही ये हिन्दी के कई पत्रपत्रिकाओ में लेख-कविता और गल्प लिखने लग गये थे । आर्य-समाजी विचार धारा के होने के कारण इन को कई वर्षों तक ग्वालियर राज्य और जनता का कोपभाजन होना पडा । एक बार ग्वालिअर रियासत ने इनको राज्य से बहिष्कृत भी कर दिया था, मगर फिर इनके सत्याग्रह करने पर वापस इनको आगर मे बसने की इजाजत दी गयी ।

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत इनकी गणना द्विवेदी-युग के लेखकों मे होती है । प० गणेशदत्त शर्मा उन लेखको मे से है, जिन्हो ने भयकर आर्थिक सकटो के बीच रूखा-सूखा खाकर भी अपने सरस्वती-मन्दिर के दीपक को ज्वलन्त बनाये रखा । इन्होने कई भिन्न भिन्न विषयो अपनी रचनाएँ की । सन्तान-शास्त्र, दीर्घायु, स्त्रियो के व्यायाम, स्वप्नदोष-रक्षक, ग्राम-सुधार इत्यादि रचनाएँ इन्हो ने स्वास्थ्य विषय पर की । इसके अतिरिक्त गुजराती-हिन्दी-कोश, योगासन, व्यवहारिक सभ्यता, यशवन्त राव होल्कर इत्यादि और भी आप की कई महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं ।

साहित्य-सृजन के अतिरिक्त पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी इन्होने कुछ पत्र-पत्रिकाओ का सम्पादन किया । जिनमे हिन्दी सर्वस्व, चन्द्रप्रभा, गौडहितकारी आदि मुख्य हैं । प० गणेश दत्त शर्मा का हिन्दी, सस्कृत, उर्दू, अग्रेजी, मराठी, बगला, गुजराती इत्यादि कई भाषाओ पर अच्छा अधिकार है ।

प० गणेशदत्त शर्मा को भिन्न-भिन्न सस्थाओ से 'विद्या-वाचस्पति' 'काव्यकला निधि' और 'धर्मबीर' की उपाधियाँ प्राप्त हुई हैं ।

गदूनोफ (रूसीजार)

रूस के जार 'इवान चतुर्थ' के पश्चात् 'जार फ्योदर' के के समय मे उसका एक प्रभावशाली सरदार और उसके बाद रूस का जार । जिसका शासन सन् १५९८ ई० से प्रारम्भ हुआ ।

बोरिस गदूनोफ बायर वश का था । इसकी बहिन 'ईरीना' का विवाह जार-फ्योदर के साथ होने से इसका प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था ।

सन् १५९८ ई० मे जार-फ्योदर के मरने के साथ ही रूस का प्राचीन रूरिक राजवश समाप्त हो गया । तब उसके बाद वहाँ की 'जेम्सकी-सबोर' नाम की राष्ट्रीय परिषद ने सन् १५९८ ई० में बैठक करके 'बोरिस गदूनोफ' को नया जार चुना ।

बोरिस गदूनोफ बडा योग्य और गुणी पुरुष था । मगर इसके शासन मे आने के कुछ ही समय पश्चात् सन् १६०१ ई० मे रूसमे ३ वर्षका भारी अकाल पडा । अतिवृष्टि और पाले के पडने से सारी फसल बरबाद हो गयी । लोग भूख के मारे घास और भोजपत्र की छाल खाने लगे । गाँव के गाँव उजड़ गये । मास्को की सड़के बिना

शास्त्र जैसे दुरुह विषयो का वर्णन भी कई स्थानो पर सुन्दर कविता मे कर उन विषयो को आकर्षक बना दिया गया है।

फिर भी सस्कृत का गद्य-साहित्य अपनी प्रौढता, सुन्दरता और भावो की अभिव्यञ्जना के लिए ससार का एक उत्कृष्ट गद्य साहित्य है।

सस्कृत गद्य साहित्य को काल विभाग के अनुसार हम तीन भागो मे विभक्त कर सकते हैं। (१) पूर्ववर्ती उपनिषद्-युग जिसमे ब्राह्मण ग्रन्थो, उपनिषद् ग्रथो और दशन ग्रथो का समावेश होता है (२) मध्ययुग जिसमे दण्डी, सुबन्धु, बाण इत्यादि महान् ग्रन्थकारो की रचनाओ का समावेश होता हैं और (३) उत्तरयुग जिसमे बाण के बाद लिखे हुए गद्य साहित्य का समावेश होता है।

पूर्ववर्त्ती युग मे कृष्ण यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रथ, उपनिषद् ग्रन्थ और दर्शन ग्रथो के द्वारा सस्कृत गद्य के विकास की परम्परा प्रारम्भ हुई। यद्यपि उस समय का बहुत सा साहित्य समय के भीपण प्रहारो से नष्ट हो चुका है, फिर भी जो कुछ शेष है उसी से हमे उस काल की सस्कृत गद्य परम्परा का परिचय मिलता है।

मगर सस्कृत गद्य परम्परा को सुव्यवस्थित और सुन्दर रूप सुप्रसिद्ध वैय्याकरणी महर्षि पाणिनी के द्वारा व्याकरण के महान् ग्रथ "अष्टाध्यायी" की रचना के पश्चात् प्राप्त हुआ।

सस्कृत गद्य की भाषागत परम्परा एव साहित्य के क्षेत्र मे पाणिनी व्याकरण ने एक नवीन युग की स्थापना की। यह युग लौकिक सस्कृत का युग कहा जाता है। कई लोगो का यह भी कथन है कि उस समय की लौकिक भाषा जब पाणिनी व्याकरण के द्वारा सुसस्कृत की गई तब उसका नाम सस्कृत पडा। पाणिनी का समय ई० पू० ४८० से ई० पू० ४१० के बीच किसी समय समझा जाता है।

इसके पश्चात् गुप्तकालीन शिलालेखो, रुद्रदामन के गिरनार का शिलालेख तथा और भी कई अभिलेखो से उस समय के सस्कृत गद्य की स्थिति का पता चलता है।

दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र मे शास्त्रीय गद्य की अवतारणा करने वालो मे 'शम्बर स्वामी' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनका सस्कृत गद्य मे 'धर्म मीमासा भाष्य' दर्शन शास्त्र का बहुत उत्कृष्ट ग्रथ है। शबर स्वामी का समय सन् चार सौ इसवी के लगभग माना जाता है। शबर स्वामी के पश्चात् दार्शनिक गद्यकी रचना करने वालोम जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य का नाम आता है जिन्होने 'ब्रह्मसूत्र' 'गीता' तथा 'उपनिषदो' के भाष्य किये थे। ९वी शताब्दी के अन्त मे सुप्रसिद्ध नैयायिक पडित 'जयन्त भट्ट' ने अपने न्याय-मञ्जरी ग्रन्थ के द्वारा सस्कृत-गद्य का एक परिष्कृत रूप उपस्थित किया।

सस्कृत गद्य का एक सुललित रूप हमे पञ्चतन्त्र के अन्दर दिखाई पडता है। पञ्चतन्त्र का समय ईसवी पूर्व दूसरी शताब्दी से ईसा की दूसरी शताब्दी तक के बीच किसी समय माना जाता है। पचतन्त्र की शैली सीधी, शक्तिशाली, प्रवाहपूर्ण और अत्यधिक अलकारो के बोझ से बची हुई है।

दण्डी

मगर सस्कृत गद्य का चरम विकास और उसका साँचे मे ढला हुआ स्वरूप हमे 'दण्डी' की रचनाओ मे मिलता है। दण्डी का समय ईसा की छठी सदी के आसपास समझा जाता है।

आचार्य दण्डी सस्कृत के प्रथम गद्यकार माने जाते हैं। हाँलाकि इनके पहले भी सस्कृत साहित्य मे गद्य की परम्परा कायम थी। पर गद्य का वह वैभवशाली रूप, जिसके कारण सस्कृत भाषा को आगे बढ़ने का अवसर मिला हमे दण्डी, सुबन्धु और बाण की रचनाओ मे देखने को मिलता है दण्डी की रचनाओ मे 'दशकुमार-चरित' और 'काव्यादर्श' उल्लेखनीय हैं। दण्डी अपनी रचनाओ मे कलात्मकता की अपेक्षा प्रामणिकता तथा विशुद्धतावाद की अपेक्षा वास्तविकतावाद को अधिक पसन्द करते थे।

आचार्य दण्डी के बाद सस्कृत के गद्यक्षेत्र मे सुबन्धु का नाम आता है। इनका समय ईसा की छठी और सातवी सदी के बीच समझा जाता है। इनकी रचना 'वासवदत्ता' सस्कृत-साहित्य मे बहुत प्रसिद्ध है। दण्डी यदि मनुष्य के व्यस्त और स्वाभाविक जीवन की ओर अग्रसर हुए तो सुबन्धु अलकृत काव्य के प्रभाव के सर्वथा वशीभूत हो गये। इनका गद्य लम्बे लम्बे और अलकारो से बोझिल वाक्यो से भरा पडा हुआ है। वासवदत्ता के प्रेम की पीडा का वर्णन करते हुए एक दूत राजकुमार से इस प्रकार कहता है—'आप के लिए इस कन्या के हृदय मे जो पीडा है, उसका वर्णन करने म युगो का समय लगेगा। और उसके लिए आकाश को कागज, समुद्र को दावात, शेषनाग को वक्ता और ब्रह्मा को लेखक बनाना होगा।'

बिछाई हुई लाशों से पट गयीं । गडूनोफ के हुक्म से अन्न के सरकारी भण्डार खोलकर अकालग्रस्तों में बांटे गये मगर उससे भी पूरा न पड़ा । तब भूखे किसानों और मजदूरों ने अपनी टुकड़ियाँ बना कर जमींदारों और व्यापारियों को लूटना शुरू किया । सन् १६ ३ ई में खालोप-कसनोप के नेतृत्व में विद्रोही किसानों की एक बहुत बड़ी टुकड़ी ने मास्को में जाकर ज़ार की सेना से एक भयंकर लड़ाई की । जिसमें ज़ार का राज्यपाल 'ईवान-बसमानोफ' मारा गया । पर अन्तमें रूसी सेना ने उस विद्रोह को दबा दिया और पकड़े हुए विद्रोहियों को मास्को की सड़कों के किनारे के वृक्षों पर फाँसी पर लटका दिया ।

रूस की इस कठिन स्थिति का फायदा पोलैण्ड के राजा 'सीगिसमन्द तृतीय' ने उठाना चाहा । उसने एक व्यक्ति को ज़ार ईवान का पुत्र 'दिमित्रि' बतलाकर उसे रूसी राजगद्दी का वारिस बनाने का समर्थन किया । पोप ने भी दिमित्रि का समर्थन किया ।

इस प्रकार इस दिमित्रि को सब लोगों का समर्थन प्राप्त होने लगा । जिसके लिए यह खबर उड़ गयी थी कि सन् १५९१ ई में वह 'उगलिच' नामक नगर में मर गया । पोलैंड वालों ने कहा कि उस समय वह मरा नहीं था बल्कि पोलैंड भाग गया था ।

पोलैण्ड के राजगुरुओं ने दिमित्रि के प्रकट होने का बड़ा स्वागत किया । पोलैंड के राजा सीगीसमन्द ने सन् १६०४ ई० में राजधानी 'क्रैको' में उसका स्वागत किया । अन्त में सब तैयारी कर लेने के बाद सन् १६ ४ ई की शरद ऋतु में ४ पोल-सेना और बहुत से रूसी कज्जाकों के साथ दिमित्रि ने रूस के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ किया । अकाल के मारे हुए बहुत से भगोड़े किसान और गडूनोफ के शासन से असन्तुष्ट बहुत से सैनिक भी दिमित्रि के झंडे के नीचे एकत्रित हो गये । फिर भी सन् १६ ५ ई में गडूनोफ की सेना ने दिमित्रि की सेना को हरा दिया । मगर उसके बाद ही गडूनोफ की सेना में भी भारी विद्रोह हो गया और उसी अवस्था में अप्रैल सन् १६ ५ ई में गडूनोफ की मृत्यु हो गयी ।

गडूनोफ के शासनकाल में ही सबसे पहले साइबेरिया में जा कर रूस के लोगों ने व्यापार होना शुरू किया । साइबेरिया से मिलने वाली समूर-जानवर की खालें सोने के भाव में बिकती थीं । साथ ही वहाँ के जंगली लोगों को पकड़ कर उन्हें गुलामों की मंडी में बेच देने से भी अच्छी आमदनी हो जाती थी । इसलिए रूसी प्रवासियों का उधर आकर्षित होना स्वाभाविक था ।

ज़ार गडूनोफ के शासन-काल में एक बड़ा सैनिक अभियान साइबेरिया भेजा गया । तभी से साइबेरिया में रूसी लोगों के उपनिवेश और बड़े-बड़े नगर बनना प्रारम्भ हो गये ।—(मध्य-एशिया का इतिहास)

गद्य-साहित्य

मनुष्य की साधारण बोलचाल की भाषा को व्याकरण के अनुशासन में बाँधकर जो साहित्यिक भाषा तैयार की जाती है, उसी को 'गद्य' कहते हैं ।

मानव समाज के अन्तर्गत बोल-चाल की भाषा के रूप में सबसे पहले पद्य का जन्म हुआ । मगर जब भावनाओं के आवेग से मानवीय ज्ञान ने साहित्य का रूप ग्रहण किया तो उस साहित्य में पहले पद्य या कविता का और उसके बाद गद्य-साहित्य का निर्माण हुआ । संसार के प्रायः सभी देशों के साहित्य में यह क्रम इसी रूप में पाया जाता है ।

गद्य-साहित्य के साधारणतया दो विभाग होते हैं । एक में कहानियों और उपन्यासों का समावेश रहता है और दूसरे में इतिहास दर्शनशास्त्र निबन्ध पत्रकार कला इत्यादि का स्थान रहता है ।

कहानी और उपन्यासों का विवेचन इस ग्रन्थ में उपन्यास साहित्य और कहानी-साहित्य के शीर्षकों में किया जा चुका है । इस स्थान पर हम गद्य के दूसरे विभागों से संबंधित गद्य साहित्य का वर्णन करेंगे ।

संस्कृत गद्य-साहित्य

संस्कृत साहित्य में काव्य के मुकाबिले में गद्य-साहित्य का क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटा है । इसका कारण यह है कि भारतीय संस्कृति में सौन्दर्योपासना और रस अभिव्यक्ति की भावना हमेशा से व्याप्त रही है और सौन्दर्य और रस की अभिव्यक्ति के लिए गद्य की अपेक्षा पद्य अधिक कारगर होता है । फिर संस्कृत साहित्य में दर्शन शास्त्र ज्योतिष और गणित

रियो की पूर्व जननी थी। इसमें शब्दो का जितना ज्ञान और व्याख्या जान्सन ने प्रस्तुत की उतनी उसके पहले अग्रेजी साहित्य मे कही भी न थी।

अठारहवीं सदी मे ही 'गोल्डस्मिथ' ने अपने 'सिटीजन ऑफ दी वर्ल्ड' नामक निबन्ध-सग्रह से अग्रेजी गद्य को समृद्ध किया। इस सदी का सबसे बडा गद्य लेखक और वक्ता 'एडमण्ड वर्क' हुआ। जिसकी जोशपूर्ण वक्तृताओ से इगलैण्ड की पार्लमेट थर्राती थी। भारत के गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिग्ज के खिलाफ चलनेवाले केस मे एडमण्ड वर्क की वक्तृताएँ अग्रेजी साहित्य की अमर वस्तु है। इसके अतिरिक्त भी इसने अग्रेजी गद्य में कई रचनाएँ की, जो अपनी प्रवाहपूर्ण अग्रेजी के कारण खूब प्रसिद्ध हुई।

इसी प्रकार इस सदी मे 'विलियम कूपर' 'टॉमसग्रे' जेम्स मैकफर्सन इत्यादि लेखक भी उल्लेखनीय हुए हैं।

उन्नीसवी सदी मे अग्रेजी गद्य के अन्तर्गत 'कौलरिज' का नाम अत्यन्त उल्लेखनीय है। सन् १८१७ मे 'बायोग्रेफिया लिटरेरिया' नामक रचना के द्वारा उसने अग्रेजी गद्य मे समालोचना की एक सुघड परम्परा कायम की और आलोचना क्षेत्र मे एक नवीन शब्दावली को कायम किया। उसकी दार्शनिक विचारधारा ने अग्रेजी के चिन्तन को बहुत प्रेरणा दी।

इसी सदी मे चार्ल्स लैम्ब के द्वारा 'ऐसेज आफ एलिया' और 'लास्ट एसेज' नामक अग्रेजी गद्य की अमर कृतियो का सृजन हुआ। इसके अतिरिक्त 'विलियम हैलेट' 'डी० क्विन्सी विलियम कॉवेट, 'चार्ल्स डारविन' इत्यादि लेखक भी अग्रेजी गद्य मे प्रसिद्ध हुए। इसी सदी मे कई पत्र-पत्रिकाओ का भी प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिनके द्वारा अग्रेजी गद्य मे एक नवीन धारा प्रवाहित हो चली।

मेकाले, कारलाइल और मैथ्यूआर्नल्ड—इस सदी के अत्यन्त प्रभावशाली लेखक हुए। कठिन शब्दावलियो और अलङ्कारो से जडी हुई होने पर भी मेकाले की भाषा उसके विस्तृत ज्ञान के कारण अत्यन्त प्रवाहपूर्ण साबित हुई। उसकी 'हिस्ट्री ऑफ इग्लैण्ड' वहुत प्रसिद्ध हुई। कारलाइल की 'ऑन हीरोज एण्ड हीरो वर्शिप' 'पास्ट एण्ड प्रेभेण्ट' इत्यादि कृतियाँ अग्रेजी साहित्य मे बहु लोकप्रिय हुई। मैथ्यू आर्निल्ड ने अग्रेजी के समालोचना साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की। जॉन रस्किन ने अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो की नवीन व्याख्या की। उसकी 'माडर्न पेण्टर्स' 'दी स्टोन ऑफ वेनिस' और 'एन टू दिस लॉस्ट' नामक रचनाएँ अग्रेजी-साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

बीसवी सदी मे तो अग्रेजी गद्य ने बहुत विशाल रूप धारण कर लिया और सैकडो लेखको ने इसको अपनी रचनाएँ भेट की। उन सबके नामोल्लेख करना यहाँ सम्भव नही है। इन लेखको मे 'चेस्टरटन' 'बैलाक' 'बीरबोहम' 'लायड जार्ज' 'चर्चिल' और 'स्ट्रेची' के नाम गिनाये जा सकते हैं।

इटालियन गद्य का विकास

चौदहवी सदी इटालियन-भाषा के विकास की सर्वोत्तम शताब्दी मानी जाती है। इस शताब्दी के पहले इटालीके विद्वान विशेष करके लैटिन-भाषा मे ही अपनी रचनाए करते थे। इस सदी के पहले तेरहवी सदी मे सिर्फ सुप्रसिद्ध इटालियन यात्री मार्को-पोलो के प्रसिद्ध यात्रा विवरण का फ्रेन्च भाषा से किया हुआ इटालियन अनुवाद इटालियन गद्य का महत्व पूर्ण उदाहरण था।

चौदहवी सदी मे इटालियन साहित्य का प्रधान केन्द्र फ्लोरेन्स वन गया। इस सदी के अन्तर्गत "वोकाचो"' नामक विद्वान ने इटालियन गद्य मे एक नवीन धारा को प्रवाहित कर उसे सुसगठित रूप दिया। उसका लिखा हुआ "देकामारन" नामक ग्रन्थ आज भी इटालियन साहित्य की एक बहुमूल्य निधि समझा जाता है।

पन्द्रहवी सदी के अन्त और सोलहवी सदी के प्रारम्भ में 'पिएट्रो बैम्बो' नामक एक प्रसिद्ध लेखक हुआ। जिसने इटालियन भाषा मे शुद्ध शैलीवाद की परम्परा का प्रारम्भ कर इटालियन भाषा को सकीर्ण और बोझिल बनाने का प्रयत्न किया। इसने वेनिस के इतिहास पर, नेपल्स के इतिहास पर तथा यूरोपीय इतिहास पर कई ग्रन्थो की रचना की।

इसी काल मे सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ 'मैकियाविली' हुआ। उसने भी अपनी राजनैनिक और ऐतिहासिक रचनाओ मे बैम्बो की इसी क्लिष्ट शैली का अनुगमन किया। 'जार्जियो वासारी' ने इसी काल में कलाकारो के जीवन-चरित्र पर एक ग्रन्थ की रचना की तथा वेनवेनूटो सेलानी (Ben-venuto-cellini) ने अपनी आत्मकथा लिखकर इटालियन गद्य को

हुआ। इसने यहूदी दर्शन, यहूदी कानून और यहूदी धर्मशास्त्र को लिपिबद्ध करवा कर उसे शास्त्रीय रूप दिया। यह लिपिबद्ध साहित्य 'मिश्ना' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह 'मिश्ना' यहूदी कानून व्यवस्था का प्रामाणिक सकलन है। इसके पश्चात् इस 'मिश्ना' साहित्य को अलग-अलग छ विभागो मे बाँट दिया गया। पहला विभाग कृषि से सबधित था। इसे 'जिराएन' कहा गया। त्यौहारो से सम्बन्धित दूसरा विभाग 'मोएद्' नाम से प्रसिद्ध हुआ। समाज मे स्त्रियोकी स्थिति का निरूपण करने वाला विभाग 'नशीन' कहलाया। कानून के सभी अङ्गो की व्याख्या वाले विभाग को विभाग 'नजीकिन' नाम दिया गया। और यज्ञ-बलिदान से सम्बधित 'कोदशिम' तथा आचार-शास्त्र का विभाग 'तोहरोथ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इसी मिश्ना साहित्य से इब्रानी-गद्य का प्रारम्भ होता है। इस मिश्ना साहित्य पर वाद-विवाद करने और इसमे समय समय पर सशोधन करने के लिये 'कल्ला' नामक एक सभा बनाई हुई थी। इस सभा मे जो विचारो का आदान-प्रदान होता था, उसका सग्रह कर लिया जाता था। यह सग्रह 'बेबिलोनीयन तालमुद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ईसाकी दूसरी शताब्दी मे बेबिलोनिया के 'सुरा' 'नेहाद्रिया' तथा 'पुम्पेडिटा' नामक स्थानो पर यहूदियो ने अपनी ज्ञान शोधक-सस्थाओ की स्थापना की। इन सस्थाओ के द्वारा भी इब्रानी-गद्य के विकास मे बडी सहायता मिली।

ईसाकी छठी शताब्दी मे इब्रानी साहित्य मे 'साडिया-बेन जोसेफ' नामक एक सर्वतोमुखी प्रतिभा का विद्वान हुआ। इसने इब्रानी भाषा के अन्दर एक कोष का निर्माण कर उसके विकास को एक नया मोड दिया। इसने इब्रानी गद्य के लिए एक व्याकरण का निर्माण करके इब्रानी गद्य को व्यवस्थित रूप दिया। इसने 'एमुनोथ वे डेओथ' नामक ग्रन्थ लिखकर यहूदी दर्शनशास्त्र की नीव डाली।

इसके पश्चात् ग्यारहवी और बारहवी सदी मे 'जूडा हलेवी', 'ममोनाइड्स' और 'बहया' नामक तीन लेखको ने अपनी रचनाओ से इब्रानी गद्य को स्मृद्ध किया। मनुष्य के कर्तव्यो का विश्लेषण करने वाला 'बहया' का ग्रन्थ इब्रानी-साहित्यमे बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसके इब्रानी भाषा मे सैकडो सस्करण हुए। और विश्व की कई भाषाओ मे इसके अनुवाद भी हुए।

इसी शताब्दी मे 'अब्राहम इब्न-इजरा' हुआ। जो इब्रानी भाषा का प्रकाण्ड पण्डित था और जिसने ज्योतिष, विज्ञान, व्याकरण, दर्शन-सभी विषयो पर अपनी रचनाएँ प्रस्तुतकर इब्रानी गद्य को एक नवीन दिशा दी।

इसी युग मे 'मैमोनोडाइज' नामक प्रसिद्ध इब्रानी विद्वान हुआ। यह सर्वतोमुखी प्रतिभा का धनी महान् विद्वान था। उसने यहूदियो के ग्रन्थ 'तालमुद' को एक व्यवस्थित रूप देकर 'मिश्ने-टोरा' की रचना की। उसने अपनी रचनाओ से यहूदी कानून मे भी बहुत सुधार किया। इसी युग मे यात्रावर्णन और भूगोल पर बेञ्जामिन नामक लेखक ने अपना ग्रन्थ लिखा और 'जोसेफ इब्न-जबरा' ने भी आनन्द के स्वरूप पर 'सेफेर शआशुइमे' नामक ग्रन्थ की रचना की।

तेरहवी शताब्दी मे स्पेन पर मुसलमानो शासन समाप्त होकर फर्डिनण्ड और इजाबेला का ईसाई-शासन प्रारम्भ हुआ और उन लोगोने यहूदियो पर भयानक अत्याचार प्रारम्भ किये जिसके फलस्वरूप यहूदी विद्वानो को वहाँ से भागना पडा।

इसी शताब्दी मे 'मोजिजन्दी-लिओन' नामक विद्वान ने ईसाई अत्याचारो के खिलाफ 'जोहार' नामक एक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ के नाम पर ही यहूदियो मे एक ईसाई विरोधी आन्दोलन चल गया जिसमे अन्य गैर ईसाई लोग भी शामिल हो गये। इस आन्दोलन ने इब्रानी साहित्य के अन्तर्गत बडे प्रेरणादायक साहित्यका निर्माण किया।

मगर अन्त मे ईसाइयो के शासन मे यहूदी-सम्प्रदाय कही भी एक स्थान पर नही ठहर सका और करीब तीन शताब्दियो तक वे लोग इधर-उधर मारे मारे फिरते रहे।

अठारहवी सदी मे फिर इब्रानी-साहित्य मे नये जीवन का सचार हुआ। जिसका प्रारम्भ 'लुजाटो' (१७०७-१७४७) ने किया। इसने तर्कशास्त्र और आचरशास्त्र पर कई रचनाएँ की।

१८ वी शताब्दी मे इब्रानी साहित्य मे 'हस्कला' नामक एक आन्दोलना चला। जिसका नेतृत्व 'मेण्डेलस्सोन' (१७२९-१७८६) नामक दार्शनिक ने किया। इस आन्दो-

अल खराज" तथा 'निजाममुलमुल्क' की रचनाओं ने अरबी गद्य को बहुत स्मृद्धि किया।

इसी प्रकार धर्मशास्त्र के क्षेत्र मे 'अल-मावर्दी' का नाम बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसका ग्रन्थ 'अल-अहकाम अल सुलतानिया' इस्लामी आचरण शास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ समझा जाता है। इसी क्षेत्र मे 'अल-बुखारी' 'अल-मातुरीदी' 'अल नसफी' अल शहरस्तानी इत्यादि विद्वान बहुत प्रसिद्ध एहु। जिन्होने अपने धर्मशास्त्रीय ग्रन्थो के द्वारा अरबी गद्य साहित्य को स्मृद्धि किया।

इसी सदी मे अरबी गद्य में कथा कहानियो की भी खूब रचना हुई। फारसी ग्रन्थ 'हजार अफसाने' का अनुवाद अल जहशियसि' ने किया जो आगे जाकर 'अरेबियन नाइट्स' के नाम से ससार मे प्रसिद्ध हुआ। इसी काल मे सुप्रसिद्ध 'अलिफलैला' की हजार रातो की कहानियो की रचना हुई जो आगे जाकर सारे ससार मे प्रसिद्ध हो गई।

इसी सदी में 'अल हाकम' (सन् ८७०) और अल-बलाजरी (८९२) नामक इतिहासकारो ने 'फतूह-मिस्र' और 'फतूह अल-बुल्दान' नामक इतिहास ग्रन्थो की रचना अरबी गद्य मे की। 'अल-तबरी' (८३८-९२३) और 'अल-मसूदी' (९५६) ने भी अपनी रचनाओ से अरबी इतिहास को स्मृद्धि किया।

अरबी गद्य मे समालोचना साहित्य और भाषा विज्ञान के क्षेत्र मे 'अलग्रामिदी' (९८७) अबू-तम्माम (८४६) 'अल-बहतरी (८९७) इत्यादि लेखको के नाम उल्लेखनीय है।

इसी युग मे ईरान और अरब मे सूफी या रहस्यवादी मत का का प्रचार हुआ। सूफी मत ने ईरान और अरब की सभ्यता को बहुत प्रभावित किया। और इसके कारण इस्लाम की कट्टरता मे बहुत कुछ कमी आ गई।

यद्यपि सूफी सम्प्रदाय के विद्वानो ने अपनी अधिकतर रचनाएँ कविता मे की। फिर भी कई विद्वानो ने अपनी रचनाओ से अरबी गद्य को भी प्रभावित किया।

ईसा की चौदहवी सदी मे स्पेन पर ईसाई राजा फर्डिनण्ड का अधिकार हो जाने पर उसने ईसाई-धर्म के जोश मे इस्लामी धर्म के सारे साहित्य को जला दिया। बहुत थोडे ग्रथ उसकी इस आसुरी लिप्सा से बच पाये। उधर सोलहवी सदी के प्रारम्भ मे उसमानी तुर्क लोगो ने ममलूक सुलतानो को पराजित कर दिया जिससे अरबी गद्य का विकास एक दम रुक गया।

उसके पश्चात् उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ मे मिश्र, ईरान और अरब मे पत्र पत्रिकाओ की परम्परा का प्रारम्भ हुआ और इन पत्र पत्रिकाओ ने अरबी गद्य के विकास मे बडी सहायता पहुचाई। सन् १८७५ में सलीम कला नामक विद्वान ने मिश्र के सुप्रसिद्ध पत्र 'अल-अहराम' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसीके आसपास 'सलीम सरकीस' (१८६९-१९२६) ने 'अल-मुसीर' नामक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया। 'फरह अन्तून' (१८७२-१९१४) नामक पत्रकार ने 'जामिया अल उसमानिया' और रशीद रिजा (१८६५-१९३५) ने 'अल-मीनार' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

इन्ही दिनो मिश्र पर ब्रिटिश सत्ता कायम हो जाने से (१८८२) तथा लेबनान के टर्की से स्वतन्त्र हो जाने के परिणाम स्वरूप अरबी साहित्य ने एक नया मोड पकडा। अब इस साहित्य पर अग्रेजी और फ्रेंच भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पडने लगा। इसका गद्य, इसके उपन्यास और नाटक सभी इस प्रभाव से प्रभावित होने लगे। कई फ्रेंच और अग्रेजी के उपन्यासो और नाटको का अरबी भाषा मे अनुवाद होने लगा। इस समय मे 'याकूब सर्रुफी' नामक विद्वान् (१८५२-१९२७) ने अरबी गद्य मे एक नई और सुघड शैली को जन्म देकर अरबी गद्य को एक नवीन मोड दिया। उसने अपनी शैली से यह सिद्ध कर दिया कि विज्ञान, दर्शन इत्यादि दुरूह और अरोचक विषयो को भी सुन्दर गद्य की शैली मे किस प्रकार रोचक बनाया जा सकता है।

प्राचीन यूनान का गद्य साहित्य

प्राचीन यूनान के अन्दर ईसा की छठी शताब्दी पूर्व से गद्य-साहित्य का प्रारम्भ हुआ। एथेन्स मे ग्रीक गद्य साहित्य का विशेष रूप से विकास हुआ। इस विकास मे सबसे महत्त्वपूर्ण योग 'अफलातून' (प्लेटो) (४२७-३४७ ई० पू०) ईसा क्रेटीज (ई० पू० ४३६-३३८) डिमास्थेनीज (३८४-३२२ ई० पू०) अरस्तू इत्यादि लेखको ने अपनी राजनैतिक और दार्शनिक रचनाओ के रूप मे दिया। अफलातून की रिपब्लिक, लॉज इत्यादि रचनाएँ तथा अरस्तू के 'पॉलिटिक्स' नामक ग्रथ ने ग्रीक साहित्य को अमर कर दिया।

तब से इब्रानी साहित्य को नया जीवन प्राप्त हुआ। इसी सदी में इब्रानी साहित्य में कई पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुई। इन पत्र पत्रिकाओं में 'मिफ्तखिरम' नामक पत्रिका का नाम उल्लेखनीय है जिसने करीब २० वर्षों तक इब्रानी साहित्य को समृद्ध किया।

इसी सदी में आस्ट्रिया और गैलीशिया के यहूदियों में भी 'हसकला आन्दोलन' का तेजी से प्रसार हुआ। गैलीशिया में यहूदियों के इतिहास पर भी कई ग्रन्थों की रचना हुई। इन लेखकों मे 'सालेमन-बूदा' 'नहमान क्रोकमाल' (१७८५–१८४०) 'डैविड लुजाटो (१८००–१८६५) इत्यादि लेखकों के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

उन्नीसवीं सदी में इब्रानी गद्य का काफी विकास हुआ। इस शताब्दी में कई इब्रानी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। इतिहास के क्षेत्र में भी कई प्रौढ़ रचनाएं अस्तित्व में आई। समालोचना साहित्य में भी बहुत वृद्धि हुई। उपन्यास और कहानियाँ भी खूब लिखी गई। इतिहासकारों में 'कलमन-शुलमन (१८१९-९९) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिसने सारे विश्व-इतिहास पर अपने ग्रन्थ की रचना की। समालोचना के क्षेत्र में 'जेकब पर्सेर्ग (१८४०–१९११) और अब्राहम-कोबनेर (१८४२-१९ १) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। और भी अनेक विद्वानों ने इस सदी में इब्रानी साहित्य को सुसंस्कृत किया।

अरबी गद्य

अरबी भाषा के अन्तर्गत वैसे पद्य के रूप में कोई स्वतन्त्र साहित्य नहीं है। पर ज्योतिष विज्ञान कानून राजनीति दर्शन शास्त्र इत्यादि सभी विषय गद्य के अन्तर्गत ही लिखे गये हैं।

वैसे ईस्लाम के सबसे पवित्र ग्रन्थ कुरआन शरीफ की रचना भी विशेष रूप से गद्य में ही हुई मगर यह गद्य तुकांत शैली में होने से पद्य की तरह ही मालूम होता है। इसकी रचना वही है जो तत्कालीन लोगों में मक्का में बोली जाती थी। कुरान की शैली के अनुकरण पर ही अरबी गद्य का विकास हुआ।

फिर भी अरबी गद्य को विधिवत रूप अब्बासी खलीफा अल-मंसूर (मृ ७७५) के समय में मिलना प्रारम्भ हुआ जब कि प्रसिद्ध भारतीय यात्री [illegible] ने भारतीय गणित ज्योतिष सम्बन्धी [illegible] की। ज्योतिष विज्ञान अरबी साहित्य में से

सन् ७७० ई० में गणित और ज्योतिष विज्ञान के [illegible] 'सिन्द-हिन्द' के नाम से [illegible], भारतीय ग्रन्थों का [illegible] ने अरबी ज्योतिष शास्त्र प्रारम्भ कर दिया। जिससे बाद यूरोपीय देश भी प्रभावित हुए।

इसके कुछ वर्षों बाद ख़लीफा मामून ने ज्ञान के प्रचार के [illegible] ऐकेडेमी की स्थापना की। इस ऐकेडेमी में [illegible] भाषाओं के अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों के [illegible] किये जाने लगे। इसी समय में [illegible] और इन्न [illegible] की भी रचना हुई। संस्कृत के पंचतन्त्र नामक ग्रन्थ की 'कलील वा दिम्न' नाम से किया गया।

इसी युग मे अबू-हनीफा ने [illegible] इब्नमलाह ने 'कानून-नजिमी' के नाम कानूनशास्त्री के नाम से और इब्नहम्बल ने के नाम से इस्लामी कानून की चार [illegible] किया और इन कानून व्यवस्थाओं पर [illegible]

ईसा की नवीं और दसवीं सदी में कुरान की कई व्याख्याओं पर ग्रंथ लिखे गये। ज्योतिषी ने समुद्र में उसके बाद [illegible] निकमाह अरबी गद्य में किया। जो जिसमें चार ग्रन्थों का अनुवाद [illegible]

ज्योतिष-विज्ञान में अरबी भाषा के [illegible] इन ज्योतिषियों में सभी इब्न यूनुस नामक बहुत प्रसिद्ध है। स्पेन के [illegible] ज्योतिष ज्ञान का बहुत विकास हुआ। के द्वारा सन् १ ०० में टोलेडो के ज्योतिष सम्बन्धी नाम 'टोलेडो-चार्ट' से हुआ।

राजनीति के क्षेत्र में 'अबू-यूसुफ' ने [illegible]

इतिहास के और 'ली-ची' शाखा के अन्तर्गत धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र के कई ग्रन्थो की रचना हुई।

चीएन (१४५ ६७ ई० पू०) नामक इतिहासकार उस काल के इतिहासकारो मे बडा प्रसिद्ध हुआ। उसने 'शिह ची' नामक चीन का एक बृहद् इतिहास १३० खण्डो मे लिखा। जो आगे के इतिहासकारो के लिए आधार-स्तम्भ साबित हुआ। इसी युग मे 'पान-पियाऊ' (ई० सन् ३-४५) 'पान-कू' नामक लेखक और पान-चाओ नामक महिला ने भी इतिहास-लेखन मे बडी ख्याति पाई।

राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत इसी युग मे राज्य मन्त्री 'चिया-यी' (Chia-yi) ने 'हिसन सू' नामक राजनीतिक ग्रन्थ की रचना कर राजनीतिशास्त्र मे एक नवीन युग का श्रीगणेश किया। इसी प्रकार दर्शनशास्त्र के क्षेत्र मे 'लिऊ-आन' 'टुग चुग शू' विशेष प्रसिद्ध हुए। इसके कुछ समय पश्चात् ई० सन् १२० मे चीनी-भाषा का पहला शब्दकोश प्रकाशित हुआ। इसी समय वाग चुग नामक लेखक ने साहित्यिक आलोचनाशास्त्र के क्षेत्र मे एक नवीन प्रणाली का प्रारम्भ किया।

ईसा की तीसरी शताब्दी मे हान-साम्राज्य तीन राज्यो मे बट गया। इस काल का इतिहास चेन शाऊ (सन् २३३-२९७) नामक इतिहासकार ने 'सान-कुओ-चो' के नाम से लिखा। इसमे उसने इतिहास के प्रत्येक पात्र के चरित्र का विश्लेषण बडी खूबी से किया है।

सन् ६१८ से ९०६ तक चीन मे सुप्रसिद्ध ताग-राजवश का साम्राज्य रहा। इस युग मे भी चीनी साहित्य को फलने-फूलने का काफी अवसर मिला। ताग-युग मे 'प-इन टी' नामक एक विशिष्ट गद्य-शैली का चीन मे प्रचार था जो गद्य-काव्य की तरह बोली जाती थी। फिर भी इसे विशुद्ध गद्य की शैली नही कहा जा सकता। विशुद्ध गद्य-शैली का निर्माण ईसा की आठवी शताब्दी मे हान-यू (७६८-८२४) और टुसुग युआन (७७३ ८१९) नामक लेखक ने प्रचलित की। इन लेखको ने कई निबन्ध-ग्रथो की रचना कर चीनी-गद्य में एक नवीन और शक्तिशाली गद्य-प्रणाली का प्रारम्भ किया। इसी युग मे ल्यू-चिह-ची (६६१-७१२) नामक सर्वतोमुखी प्रतिभा का महान् विद्वान हुआ। जिसने ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र और गणित शास्त्र पर कई ग्रन्थो की रचना की। 'ली-चुन-फेग' (६०२-६७०) भी उस युग का महान् ज्योतिषी और गणितकार था, जिसने इन विषयो पर कई ग्रथो की रचना की और नक्षत्रो की पहचान के लिए एक यन्त्र का भी आविष्कार किया।

सन् ९०६ मे ताग राजवश का अन्त हो गया। कुछ वर्षों की अव्यवस्था के पश्चात् सन् ९६० मे सुग राजवश का चीन मे आधिपत्य हुआ। सुग राजवश के शासनकाल मे चीनी साहित्य का बहुत विकास हुआ। इस युग मे चीनी भाषा मे कई विश्व-कोषो और ऐतिहासिक ग्रथो की रचना हुई। इसी युग मे ठप्पो के द्वारा मुद्रण करने की कला का आविष्कार हुआ और इसी युग मे कम्पास का तथा सख्या जोडने वाली मशीन का भी आविष्कार हुआ।

इस युग मे वाग-आन-शिह (१०२१-१०८६) ओयाग हिस्यू (११००-११७२) और मा टुआन-लिन नामक लेखक बहुत प्रसिद्ध हुए। ओयाग-हिस्यू ने तागराजवश के एक प्रामाणिक इतिहास को रचना की। और मा टुआन-लिन ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'वेन हिसियेन ताग काओ' की रचना कर चीन के सर्वतोमुखी सामाजिक जीवन के इतिहास पर प्रकाश डाला। इसी प्रकार इस युग मे और भी कई साहित्यकारो ने चीनी गद्य को बडा समृद्ध किया।

सुङ्ग राजवश की समाप्ति के पश्चात् मगोल राजवश के कुबलाई खाँ का शासन 'युआन-राजवश' के नाम से प्रारम्भ हुआ। इस राजवश के शासनकाल मे चीनी गद्य मे उपन्यासो का बहुत विकास हुआ।

युआन-राजवश का अन्त करके सन् १३६८ मे मिग राजवश ने अपने शासन का प्रारम्भ किया। इस युग मे सन् १४०३ के अन्दर चीन के कई विद्वानो ने एक विशाल विश्व-कोष का सग्रह किया। इसी समय मे 'युङ्ग-लो-ट टिएका' नामक एक और विश्वकोष की रचना हुई। जिसमे २२,८०० चीनी ग्रथो की सूची थी। आज भी यह विश्वकोष प्राचीन ज्ञान के सम्बन्ध मे सब से बडा कोष माना जाता है।

मिग राजवशका नाश करके सन् १६४४मे चिग राजवश का शासन प्रारम्भ हुआ। इस राजवश का सम्राट् काग-सी बडा ज्ञान-प्रेमी था। इसके शासनकाल मे चीनी भाषा के सबसे महत्वपूर्ण विश्व कोष 'टू-सू-ट्सी-चेङ्ग' की रचना हुई।

यूनानी लोगों की स्वतन्त्रता के कारण भी यहाँ के कला को बहुत प्रोत्साहन मिला। एथेन्स की 'थोरिटो' वस्तुत: के साहित्य में इतिहास के प्रकार प्रसिद्ध है। यूनान के वक्ताओं में 'कोरेक्स' 'टिसियस' 'लिसियस' एण्टिफोन 'पेरिक्लीज' इत्यादि वक्ताओं के नाम उल्लेखनीय हैं।

इतिहास के क्षेत्र में यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस (ई० पू ४८४-४२५) संसार के इतिहास साहित्य का जनक माना जाता है। इसीने सबसे पहले संसार का भ्रमण करके वैज्ञानिक ढङ्ग से इतिहास लिखने की प्रणाली का प्रारम्भ किया। इसीका समकालीन 'थ्यूसीडाइडस' भी एक महान् इतिहासकार हुआ। इसका ऐतिहासिक विशेषण निष्पक्ष विवेचना और घटनाओं का आलोचनात्मक लेखन भी बड़ा अद्भुत था। इसी परम्परा में 'जेनोफोन' 'इफोरस' और 'थ्योपाम्पस' नामक लेखक भी हुए।

ईसा के पूर्व की तीसरी और दूसरी शताब्दी का युग यूनानी साहित्य में 'हेलेनिक युग' कहलाता है। इस युग में इतिहास और दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत ग्रीक कला का बहुत विकास हुआ। इसी युग में प्लेटो के अनुगमन पर स्टोइक दर्शनशास्त्र पर कई रचनाएँ लिखी गईं। इस युग का प्रधान दार्शनिक (एपीक्यूरियस था जिसने एपीक्यूरियन दर्शनशास्त्र की नींव डाली जो किसी हद तक नास्तिकता का समर्थक था। इस युग में 'पोलिबियस' (ई पू २ १-१२) नामक इतिहासकार बहुत प्रसिद्ध हुआ। इसने तत्कालीन इतिहास-लेखन में एक नवीन वैज्ञानिक परम्परा का प्रारम्भ किया।

इसके पश्चात् ग्रीस रोमन-साम्राज्य के अधिकार में चला गया। रोमन अधिकार में भी यहाँ की साहित्यिक जागृति जीवित रही। इस युग में दो लेखक बहुत प्रसिद्ध हुए। (१) प्लूटार्क (ई सन् ४६-१२७) और लूसियन (ई० सन् १२ १८)। प्लूटार्क ने ग्रीस और रोम के महापुरुषों की प्रभावपूर्ण और तुलनात्मक जीवनियाँ कई भागों में लिखीं जो आज भी प्रमाण-भूत मानी जाती हैं।

चीनी गद्य-साहित्य

गद्य-साहित्य के क्षेत्र में चीन का इतिहास शायद सबसे प्राचीन है। ईसा से करीब २००० वर्ष पूर्व सम्राट् हुआंग-टी के शासनकाल में उसकी राजसभा के लेखक [illegible] ने चीनी लिपि का आविष्कार किया जो चित्र-लिपि के रूप में थी और अन्त के तीन सौ [illegible] साहित्य को लिपिबद्ध करने [illegible]

इसके पश्चात् [illegible] पढ़ाई के लिए स्कूल खोले [illegible] हुआ। जिससे पढ़ाई के [illegible]

इसके पश्चात् ईसा [illegible] शताब्दी पूर्व का चीनी-साहित्य [illegible] उत्पत्ति का एक [illegible] कन्फ्यूशस (ई० पू० ५५१ ४७८) [illegible] ५०० से ४२० तक) [illegible] और [illegible] (ई० पू० [illegible] दार्शनिक हुए। इन सभी दार्शनिकों ने [illegible] राजनीति के क्षेत्र में अपनी [illegible] को बहुत प्रभुत्व दिया।

ई० पू० ११० में [illegible] का प्रधान मंत्री बड़ा [illegible] [illegible] की परम्परा का प्रारम्भ [illegible] लिखने में रचनाएँ कर [illegible] प्रारम्भ किया। राजनीति-शास्त्र में (ई पू २११) [illegible] जिसने अपने राजनैतिक सिद्धान्तों के द्वारा [illegible] प्रारम्भ किया।

इसके पश्चात् ई पू १२ [illegible] आया। इस वंश [illegible] दर्शन शास्त्र का महान् शत्रु था। दार्शनिकों को [illegible] जला दिया। आग में झोंक दिया। कन्फ्यूशस के [illegible] उसकी कृतियों को बड़ी कठिनाई से उनकी रक्षा की। साहित्य और राजनीति [illegible] गई।

ई० पू २ ६ में [illegible] राजवंश की [illegible] चीन में हान-राजवंश की स्थापना हुई।

हान-राजवंश का समय चीनी-साहित्य के स्वर्ण-युग कहा जाता है। इस युग में [illegible] और पद्य में प्रचुर रचनाएँ कर चीनी-साहित्य की [illegible] किया। इस युग में साहित्य की [illegible]

इतिहास के और 'ली-ची' शाखा के अन्तर्गत धर्मशास्त्र और आचारशास्त्र के कई ग्रन्थो की रचना हुई।

चीएन (१४५ ६७ ई० पू०) नामक इतिहासकार उस काल के इतिहासकारो मे बडा प्रसिद्ध हुआ। उसने 'शिह ची' नामक चीन का एक बृहद् इतिहास १३० खण्डो मे लिखा। जो आगे के इतिहासकारो के लिए आधार-स्तम्भ साबित हुआ। इसी युग मे 'पान-पियाऊ' (ई० सन् ३-४५) 'पान-कू' नामक लेखक और पान-चाओ नामक महिला ने भी इतिहास-लेखन मे बडी ख्याति पाई।

राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत इसी युग म राज्य मत्री 'चिया-यी' (chia-yi) ने 'हिसन शू' नामक राजनीतिक ग्रन्थ की रचना कर राजनीतिशास्त्र मे एक नवीन युग का श्रीगणेश किया। इसी प्रकार दर्शनशास्त्र के क्षेत्र मे 'लिऊ-आन' 'टु ग चु ग शू' विशेष प्रसिद्ध हुए। इसके कुछ समय पश्चात् ई० सन् १२० मे चीनी-भाषा का पहला शब्दकोश प्रकाशित हुआ। इसी समय वाग-चु ग नामक लेखक ने साहित्यिक आलोचनाशास्त्र के क्षेत्र मे एक नवीन प्रणाली का प्रारम्भ किया।

ईसा की तीसरी शताब्दी मे हान-साम्राज्य तीन राज्यो म बट गया। इस काल का इतिहास चेन शाऊ (सन् २३३-२९७) नामक इतिहासकार ने 'सान-कुओ-ची' के नाम से लिखा। इसमे उसने इतिहास के प्रत्येक पात्र के चरित्र का विश्लेषण बडी खूबी से किया है।

सन् ६१८ से ९०६ तक चीन मे सुप्रसिद्ध ताग-राजवश का साम्राज्य रहा। इस युग मे भी चीनी साहित्य को फलने-फूलने का काफी अवसर मिला। ताग-युग मे 'प इन टी' नामक एक विशिष्ट गद्य-शैली का चीन मे प्रचार था जो गद्य-काव्य की तरह बोली जाती थी। फिर भी इसे विशुद्ध गद्य की शैली नही कहा जा सकता। विशुद्ध गद्य-शैली का निर्माण ईसा की आठवी शताब्दी मे हान-यू (७६८-८२४) और ट्सुग-युआन (७७३-८१९) नामक लेखक ने प्रचलित की। इन लेखको ने कई निबन्ध-ग्रथो की रचना कर चीनी-गद्य मे एक नवीन और शक्तिशाली गद्य-प्रणाली का प्रारम्भ किया। इसी युग मे ल्यू-चिह-ची (६६१-७१२) नामक सर्वतोमुखी प्रतिभा का महान् विद्वान हुआ। जिसने ज्योतिष, चिकित्सा-शास्त्र और गणित शास्त्र पर कई ग्रन्थो की रचना की। 'ली-चुन-फेग' (६०२-६७०) भी उस युग का महान् ज्योतिषी और गणितकार था, जिसने इन विषयो पर कई ग्रथो की रचना की और नक्षत्रो की पहचान के लिए एक यन्त्र का भी आविष्कार किया।

सन् ९०६ मे ताग राजवश का अन्त हो गया। कुछ वर्षों की अव्यवस्था के पश्चात् सन् ९६० मे सुग राजवश का चीन मे आधिपत्य हुआ। सुग राजवश के शासनकाल मे चीनी साहित्य का बहुत विकास हुआ। इस युग मे चीनी भाषा मे कई विश्व-कोषो और ऐतिहासिक ग्रथो की रचना हुई। इसी युग मे ठप्पो के द्वारा मुद्रण करने की कला का आविष्कार हुआ और इसी युग मे कम्पास का तथा सख्या जोडने वाली मशीन का भी आविष्कार हुआ।

इस युग मे वाग-आन-शिह (१०२१-१०८६) ओयाग हिस्यू (११००-११७२) और मा टुआन-लिन नामक लेखक बहुत प्रसिद्ध हुए। ओयाग-हिस्यू ने तागराजवश के एक प्रामाणिक इतिहास को रचना की। और मा टुआन-लिन ने अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'वेन हिसियेन ताग काओ' की रचना कर चीन के सर्वतोमुखी सामाजिक जीवन के इतिहास पर प्रकाश डाला। इसी प्रकार इस युग मे और भी कई साहित्यकारो ने चीनी गद्य को बडा समृद्ध किया।

सुङ्ग राजवश की समाप्ति के पश्चात् मगोल राजवश के कुबलाई खां का शासन 'युआन-राजवश' के नाम से प्रारम्भ हुआ। इस राजवश के शासनकाल मे चीनी गद्य मे उपन्यासो का बहुत विकास हुआ।

युआन-राजवश का अन्त करके सन् १३६८ मे मिग राज वश ने अपने शासन का प्रारम्भ किया। इस युग मे सन् १४०३ के अन्दर चीन के कई विद्वानो ने एक विशाल विश्व-कोष का सग्रह किया। इसी समय मे 'युङ्ग-लोन्ट टिएका' नामक एक और विश्वकोष की रचना हुई। जिसमे २२,८०० चीनी ग्रथो की सूची थी। आज भी यह विश्वकोष प्राचीन ज्ञान के सम्बन्ध मे सब से बडा कोष माना जाता है।

मिग राजवशका नाश करके सन् १६४४मे चिंग राजवश का शासन प्रारम्भ हुआ। इस राजवश का सम्राट् काग-सी बडा ज्ञान-प्रेमी था। इसके शासनकाल में चीनी भाषा के सबसे महत्वपूर्ण विश्व कोष 'टू-सू-ट्सी-चेङ्ग' की रचना हुई।

को दो-दो सौ पृष्ठों के १६२८ खण्डों में समाप्त हुआ। यह विश्व-कोष हजारों चित्रों से सुसज्जित है। इसी प्रकार इस काल में चीन के २४ राजवंशों का इतिहास ७७१ खण्डों में प्रकाशित हुआ।

इस युग के प्रसिद्ध गद्य लेखकों में हुआंग-तांग-शी (१६१ -६५) कू-येन-वू (१६१३-१६८२) युआन-मेई (१७१६ ९८) विशेष प्रसिद्ध हुए। हुआंग-तांग शी ने अपने ग्रंथ में चीन की कुछ दार्शनिक विचारधाराओं का विश्लेषण किया। कू-येन-वू ने इतिहास भूगोल पुरातत्व इत्यादि अनेक विषयों पर अनेक ग्रंथों की रचना की। युआन मेई ने भी कविताओं के अतिरिक्त कई विषयों पर गद्य में निबन्ध लिखे।

इसके बाद चीनी गद्य का इतिहास एक लम्बी छलांग लगा कर बीसवीं सदी में फिर एक नया रूप ग्रहण करता है। इसी युग में चीनी राजनीति में डॉ सनयात सेन ने एक नये जीवन की प्रतिष्ठा कर दी। विदेशियों के खिलाफ उनके आन्दोलन ने सारे चीन की आत्मा को झकझोर दिया। चीनी साहित्य भी जन-आन्दोलन की इस लहर से नहीं बच पाया। 'पाई-हुआ' नामक एक नवीन आन्दोलन का सन् १९१७ में डॉ 'हु-शिह' और प्रो चेन-तु शिउ ने श्रीगणेश किया। इस आन्दोलनने क्लासिकल साहित्यके विरुद्ध जन-बोली के साहित्य का समर्थन किया। इस आन्दोलन ने चीनी गद्य को एक नया मोड़ दे दिया। जिससे एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। इस युग के महान् लेखकोंमें लो को सुकिन हु-शिह, लिन युतांग नामक लेखक विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। लु-शिन-लो चीन का गोर्की माना जाता है। लो-शो ने चीनी गद्य को सुन्दर रूप देने में बड़ी सफलता प्राप्त की। उसने कई विदेशी भाषाओं के ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद कर चीनी साहित्य को बहुत समृद्ध किया। लिन-युतांग भी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का विद्वान था। उसकी कई रचनाओं ने पाश्चात्य देशों में बड़ी ख्याति प्राप्त की।

जापानी गद्य-साहित्य

जापानी गद्य साहित्य का आरम्भ वस्तुतः उस समय से माना जाता है जब जापानी साम्राज्य की राजधानी सन् ७१० में 'नारा' के अन्तर्गत स्थापित हुई। इस युग में अर्थात् सन्

७१२ में 'कोजिकी'
रचना हुई। सन्
'निहोन्शोकी' के नाम से
लेखकों ने ग्रन्थ लिखा।
एक ऐतिहासिक ग्रंथ
सबसे पहला [illegible] है।
पर चीनी भाषा का

नौवीं सदी में [illegible]
चीनी भाषा के इस प्रभाव
जापान स्वतन्त्र रूप से विकसित

ग्यारहवीं सदी में
'गेंजी मोनोगातारी' के नाम से
उपन्यास लिखा। जिसमें तत्कालीन
दरबार और वहाँ की प्रेम-सम्बन्धी
प्राञ्जल भाषा में चित्रण किया है।
समाज में बहुत लोकप्रिय हुआ और
में से कई ने इसकी शैली का अनुकरण
'सेई-शोनागोन' नामक
'माकूरानो सोशी' नामक दरबारी
वाला एक पुस्तक लिखी।

बारहवीं सदी के कामाकुरा युग
का विशेष रूप से प्रचार हुआ। इस युग में
में कई महत्वपूर्ण धर्मग्रन्थों और कहानियों

चौदहवीं सदी के अन्त से सत्रहवीं
का युग जापानी इतिहास में 'मुरोमाची'
प्रसिद्ध है। इस युग में 'जिनकोशोतोकि'
लेखक ने प्राचीनकाल से लेकर तेरहवीं
जापानी इतिहास, उसके राजनीतिक
यह ग्रंथ जापानी इतिहास के ऊपर अच्छा
डालता है। इसी युग में एक अन्य लेखक ने
एक इतिहास ग्रन्थ की रचना की, जिसमें
जापानी गद्य में बारहवीं सदी से
के युद्धों का और देश की
गया है।

सोलहवी सदी के अन्त मे गृहयुद्धो और अराजक स्थिति का अन्त होकर जापान मे एक सुसगठित सरकार का आविर्भाव हुआ और उसकी राजधानी वर्तमान 'टोकियो' मे जिसका पुराना नाम 'इदो' था स्थापित हुई।

इदो युग मे जापान के लोगो का ध्यान चीनी साहित्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। मगर यह अधिक समय तक नही टिका और कुछ ही समय मे उसके विरुद्ध और जापानी-साहित्य के पक्ष मे एक प्रवल आन्दोलन उठ खडा हुआ।

सन् १६५७ मे 'तोकुगावा मित्सकुनी' (१६२८ १७००) नामक महान् लेखक ने 'दाई निहोन-शी' के नाम से एक विशाल जापानी इतिहास चीनी भाषा मे लिखा। इसी प्रकार 'मोतूरी नोरिनागा' (१७३०-१८०१) नामक प्रसिद्ध इतिहासकार ने 'कोजिकोदेन' नामक प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ ४९ खण्डो मे लिखा जो सन् १७९८ में समाप्त हुआ। इसी युग मे 'ईवारा सैकाकू' (१६४२-१६९३) ने मनुष्य के यौन-सम्बन्धी आनन्द का चित्रण करने वाले कई उपन्यासो की रचना की। जिनमे कामुक स्त्री और पुरुषो का नग्न और स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

उन्नीसवी सदीमे जापानी साहित्य पर पश्चिमीय साहित्य का बडा जोरदार प्रभाव पडना प्रारम्भ हुआ। कई सुप्रसिद्ध पश्चिमीय लेखको की कृतियो का जापानी भाषा मे अनुवाद होना प्रारम्भ हुआ। इस कारण जापानी गद्य मे भी ससार के सब देशो की तरह एक युगान्तर होना प्रारम्भ हुआ। इसी युग मे जापानी भाषा मे कई पत्र-पत्रिकाओ का भी प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। जिसमे जापानी गद्य बडा समृद्ध हुआ। समालोचना विज्ञान की भी इस युग मे काफी उन्नति हुई। 'टसुबोची-शीयो' नामक लेखक ने 'शोसेत्सु सिंजई' नामक ग्रन्थ उपन्यास की कला पर लिखा।

इसी युग मे 'हिगुची इचियो' नामक लेखिका का 'ताके कुरावे' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ, जो जापानी साहित्य मे वडा लोकप्रिय हो गया। इसी युग मे जापानी-साहित्य मे यथार्थवाद की जगह प्रगतिवाद का प्रारम्भ हुआ। इन रचनाओ मे मनुष्य की यौन समस्याओ का खुले रूप से चित्रण होने लगा। प्रगतिवाद के लेखको मे 'सीमाजकी तोसोन' (१८७२) 'कोसुगी तेनाई' (१८६५) इत्यादि लेखको के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रगतिवाद के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द करने वाला लेखक 'मात्सुमे सोसेकी' (१८६७ १९१६) हुआ। इसने साहित्य मे एक नवीन आन्दोलन का श्रीगणेश किया। इस आन्दोलन मे मनुष्य के अवकाश के समय के उपयोग का महत्व वतलाया गया। यदि मनुष्य अपनी अवकाश के समय का ठीक से उपयोग करने लगे तो उसका जीवन कितना आनन्दपूर्ण हो सकता है—इसकी विवेचना उसने अपने उपन्यासो मे की। उसकी कृतियो का जापानी साहित्य मे वडा आदर हुआ।

इसी युग मे 'किकुची कान' 'कूमे मासाओ' इत्यादि उपन्यासकार भी बडे प्रसिद्ध हुए।

बीसवीं सदी मे जापान मे जनवादी-साहित्य की तरफ लोगो का ध्यान गया।

फ्रेञ्च गद्य-साहित्य

फ्रेञ्च गद्य का प्रारम्भ अनुमानत ईसा की तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भ से माना जाता है, जब कि राजा 'आर्थर' से सम्बन्ध रखने वाली कुछ कथाएँ गद्य मे लिखी गई। इसी परम्परा मे 'हाई बुक ऑफ ग्रेल' नामक ग्रंथ की रचना हुई।

मगर फ्रेंच साहित्य के गद्य ने अपना वास्तविक और सुसगठित रूप सोलहवी सदी मे प्राप्त किया। जब 'राबले' 'काल्विन' और 'मौण्टेग्नी' नामक विद्वानों ने अपनी लेखनी के चमत्कारो से फ्रेञ्च-साहित्य को समृद्ध किया। 'रावले' की गणना विश्व के महान् साहित्यकारो मे की जाती है। उसके औपन्यासिक ग्रन्थ 'गार्गान्तुआ एण्ड पाताग्रुएल' मे उस समय फ्रास की समाज स्थिति का निरूपण अत्यन्त सजीव शैली मे किया गया है।

कालविन का विशेष परिचर्या 'कालविन' नाम के साथ (इस ग्रन्थ के तीसरे खण्ड मे देखें) चर्च का विरोधी और प्रोटेस्टैण्ट धर्म का अनुयायी एक प्रसिद्ध दार्शनिक था। अपने विचारो के प्रतिपादन मे उसने फ्रेञ्च गद्य की एक नवीन और सुवोध शैली का प्रचलन प्रारम्भ किया। इस शैली के अन्तर्गत थोडे शब्दो मे गहरे अर्थ और भावो की व्यञ्जना होती थी।

सत्रहवीं सदी में चौदहवें लुई के राज्यकाल में फ्रेंच एकेडमी की स्थापना हुई। इस एकेडेमी के द्वारा साहित्य के प्रत्येक अङ्ग को बहुत स्फूर्ति मिली। गद्य-साहित्य का इस सदी में बहुत अधिक विकास हुआ। इस युग के महान् गद्यकारों में ला बियेर, डेकार्ट और पस्कल के नाम नक्षत्रों की तरह चमक रहे हैं।

ला-बियेर ने सन् १६८८ में 'कारक्तें' नामक अपनी रचना से फ्रेंच गद्य में एक नवीन युगान्तर कर दिया। इसके पश्चात् 'रोशफूकोल्ड' नामक लेखक ने अपने 'मॉक्सिम' के द्वारा तथा 'मैडम-डी-सेविने' नामक लेखिका ने अपने पत्रोंकी परम्परा से फ्रेंच गद्य को समृद्ध किया।

डेकार्ट और पस्कल दोनों दार्शनिक विचारधारा के चिन्तक थे। डेकार्ट तो अत्याधुनिक ख्याति का दार्शनिक माना जाता है। इन्होंने अपने विचारों को सुव्यवस्थ करने के लिए जिस शैली का प्रयोग किया वह फ्रेंच गद्य के क्षेत्र में एक महान् शैली साबित हुई। इसने फ्रेंच गद्य की एक नवीन मंजिल निर्माण की। इसी सदी में 'ब्वालो' नामक प्रसिद्ध विद्वान् ने भी दर्शन-शास्त्र और साहित्य के अन्तुलन समीक्षाशास्त्र के क्षेत्र में एक नवीन शैली को जन्म दिया।

पस्कल एक वैज्ञानिक और गणितशास्त्री था। इसने विज्ञान के कठ विषयों को अपनी ललित गद्यशैली में सरल बनाकर फ्रेंच गद्य में एक नवीन मार्ग की स्थापना की।

अठारहवीं सदी फ्रेंच साहित्य के अन्तर्गत नवजीवन का सन्देश लेकर आई थी। इस सदी में फ्रेंच साहित्य की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। इस सदी में यूरोपीय जनता के दिलों में जमी हुई अन्ध धार्मिक विश्वासों की मोटी तहें धड़ाधड़ टूट रही थी और विज्ञान तर्कशास्त्र का चारों तरफ बोलबाला हो रहा था। इसी धूमधाम में फ्रेंच-गद्य में भी एक नई धारा का प्रवाह प्रारम्भ हो रहा था और इस प्रवाह को पैदा करने वालों में 'रिवर कार्लेन 'वाल्टेयर रूसो और दिदरो के नाम सबसे आगे थे।

रिवर कार्लेन ने सन् १६१७ में अपने सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक कोष का प्रकाशन कर जन सत्ता के विरुद्ध क्रान्ति की एक लहर पैदा की और उसके साथ ही 'वाल्टेयर' ने अपने लेखों [illegible] और पैम्फ्लेटों के द्वारा एक ओर धार्मिक विश्वासों को [illegible] किया तो दूसरी ओर फ्रेंच गद्य में नये प्राण फूँक दिये। "रूसो" द्वारा [illegible] का [illegible] अपने विचारों के [illegible] स्थापना की। [illegible] राज्य के अनेक विरोधों पर [illegible]

सन् १७११ से १७८१ तक [illegible] कई दूसरे विद्वानों के [illegible] से एक [illegible] रचना की। इस कोश [illegible] किया और सभी लेखकों के लिए [illegible] किया का काम किया। इसी प्रकार [illegible] वैज्ञानिक ग्रन्थों की रचना की।

उन्नीसवीं सदी में तो फ्रेंच गद्य [illegible] हो गया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं के और [illegible] के क्षेत्र में [illegible] गद्य को एक [illegible] [illegible] में होने वाले लेखकों का [illegible] [illegible]) और कहानी के क्षेत्र में हम कहानी साहित्य के अन्तर्गत ([illegible] कर चुके हैं। दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में [illegible] नामक विश्व-विख्यात दार्शनिक हुआ। 'काम्ट' नामके अन्तर्गत इस ग्रन्थ के [illegible] चुका है। 'रेनां' नामक विद्वान ने भी बड़े सुमधुर गद्य में अपनी रचनाएँ [illegible] साहित्य के क्षेत्र में 'सेंटब्यूव' [illegible] बड़ा समालोचक माना जाता है। टेन और 'मिशले' ने अपनी रचनाएँ [illegible]

बीसवीं सदी फ्रेंच-साहित्य में [illegible] सदी मानी जाती है। इस सदी में फ्रेंच [illegible] का बोलबाला रहा और 'अनातोल फ्रांस' के [illegible] कारों ने अपनी विश्व विख्यात कृतियों से अलंकृत किया। इस सदी के विचारकों और 'बर्गसाँ' का नाम बहुत प्रसिद्ध है। [illegible] विचारक 'रोम्यांरोलां' भी फ्रेंच साहित्य की [illegible] है जिसने अपने विचारों से [illegible] इसी प्रकार 'मार्सेल प्रूस्त' [illegible] [illegible] इत्यादि लेखक भी इस सदी में फ्रेंच साहित्य के रूप में प्रकट हुए।

रूसी गद्य-साहित्य

रूसी राजकुलो का प्रारम्भ नीपर नदी के तट पर खीव, स्मोलेन्स्का, नवगोरद इत्यादि क्षेत्रो मे हुआ।

वारहवी सदी मे इस राजवश मे "ईगर" नामक एक अत्यन्त प्रतापी सरदार हुआ। इसने कई युद्धो मे बडी सफलताएँ प्राप्त की थी। इस राजा के चरित को कहानी के रूप मे लिखा गया चरित ही रूसी गद्य का पहला ग्रन्थ है। यह गद्य काव्य के रूप मे लिखा गया है। इसकी भाषा बडी तेजस्वी और भावपूर्ण है।

पन्द्रहवी सदी मे रूस का प्रसिद्ध यात्री अफनासी सन् १४६६ मे बहमनी मुसलमानो के समय भारतवर्ष आया था उसने अपना यात्रा-वर्णन 'खोजेनिया जात्रिमोर्या' के नाम से लिखा था। यह ग्रथ भी रूसी गद्य का एक प्राचीन उदाहरण हैं।

सन् १५६३ मे इवान-भयानक के शासन काल मे रूस मे पहला छापाखाना खुला और सन् १५६४ मे वहा पर पहली पुस्तक छपी।

अठारहवी सदी मे रूस के जार पीटर महान् के शासन मे रूस की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। जिससे वहाँ के साहित्य को भी बडा बल मिला। इस सदी मे 'मिखाइल लोमोनोसोव' नामक एक सर्वतोमुखी प्रतिभा का महान् विद्वान् हुआ। इसीके प्रयत्नो से सन् १७५५ मे मास्को युनिवर्सिटी की स्थापना हुई। मास्को युनिवर्सिटी के आङ्गन में अभी भी इस महान् लेखक की आदमकद मूर्ति खडी हुई है। इसके प्रयत्नो से समग्र रूसी साहित्य और गद्य को प्रेरणा मिली।

सन् १७६० मे "रादिशचेव" नामक लेखक के द्वारा मास्को सेण्ट पीटर्स वर्ग यात्रा पर एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। जिसमें उस समय के रूसी मजदूरो और गुलामो का करुण चित्र खीचा गया है। इस रचना के फल स्वरूप लेखक को देश निकाला हुआ और अन्त मे आत्महत्या करके मरना पडा।

मगर रूसी गद्य साहित्य को सुव्यवस्थित और सुगठित रूप जार एलेक्झेण्डर प्रथम के समय मे महान् लेखक कारामिजन (१७६६-१८२६) ने दिया। उसने सन् १८०२ मे "मास्को-जर्नल" नामक एक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। और उसके पश्चात् उसने वारह वडे-वडे खण्डो मे रूस का विशाल इतिहास लिख कर तैयार किया। इस इतिहास लेखन मे उसने सुललित रूसी गद्य की एक परिमार्जित नवीन शैली का प्रयोग किया। इस ग्रन्थ ने रूसी गद्य को एक परिमार्जित रूप दिया। इससे रूस का समग्र इतिहास सिनेमा फिल्म की तरह जनता के सामने आ गया।

अठारहवी सदी के अन्त और उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ का युग रूसी साहित्य मे "पुश्किन युग" के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग मे रूसी साहित्य का सर्वतोमुखी विकास हुआ। कविता और उपन्यास के क्षेत्र मे जहाँ महाकवि पुश्किन, क्रिलोव, लेरमेन्तोव इत्यदि ने रूसी साहित्य को अपनी अपूर्व प्रतिभा से स्मृद्ध किया। वहा गद्य के क्षेत्र को निकोलस-गोगोल, बेलिन्स्की, हेर्जेन आदि विद्वानो ने अपने रचना चातुर्य्य से प्रकाशित किया।

निकोलस गोगोल (१८०९-५२) पुश्किन का समकालीन और उसी की प्रेरणा से साहित्य क्षेत्र मे आगे आनावाला साहित्यकार था। उसने उपन्यास और नाटक दोनो ही क्षेत्रो मे अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। इसकी रचनाओ ने रूसी जनमानस को झकझोर करके रख दिया। अपने नाटक मे नौकर शाही के कृत्यो की कटु आलोचना करने के कारण उसे रूस छोड कर रोम मे जाकर वसना पडा।

उन्नीसवी सदी मे रूसी गद्य के महान् निर्माता 'तुर्गनेव' (१८१८-१८८३) और 'टालस्टाय' थे। रूसी कविता के क्षेत्र मे जिस प्रकार पुश्किन अमर है उसी प्रकार रूसी गद्य के क्षेत्र मे तुर्गनेव अमर है। उसके कई उपन्यासो और कहानियो ने उसे न केवल रूस मे प्रत्युत सारे यूरोप का महान् कलाकार घोषित कर दिया है।

इसी युग मे रूस मे अराजकवादी और निहलिस्ट विचार धाराओ का प्रारम्भ हुआ। इन विचारधाराओ के नेता वाकुनिन, प्रिन्स क्रोपाट्किन, काल्कोव, हेरनिशेव्हस्की इत्यादि लेखको ने भी अपनी-अपनी रचनाओ के द्वारा रूसी गद्य मे एक परम्परा का सूत्रपात किया।

'व्लाडिमिर सोलोनोव' (१८५३-१९००) नामक विद्वान् ने इन्ही दिनो समालोचना के क्षेत्र मे एक नवीन परिपाटी की स्थापना की। इसी सदी मे महान् लेखक शेड्रिन (१८२६-१८८९) हुआ। तीखे व्यङ्गो के द्वारा समाज के अन्तरङ्ग का परदा फाश करने मे यह लेखक वेजोड था।

करीब दस बारह महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की जो उसकी प्रतिभा के महान् प्रतीक हैं। इस समय उपलब्ध उसके ७०० पत्र उसके सुललित गद्य का परिचय देते हैं।

इसके पश्चात् ऑगस्टस सीजर के प्रतापी युग मे रोमन-गद्य-साहित्य मे "लिवि" (ई० पू० ५९ से ई० सन् १७ तक) का नाम उल्लेखनीय है। उसका लिखा हुआ विशाल इतिहास उसकी महान् प्रतिभा का द्योतक है।

ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी लैटिन साहित्य मे रजत युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस शताब्दी मे रोम मे कई बडे बडे इतिहासकार हुए। जिन्हो ने अपनी रचनाओ से लैटिन गद्य का अभूतपूर्व विकास किया। कार्निलस टॅक्टिटस नामक इतिहासकार जिसका, जन्म ई०सन् ५५ मे और मृत्यु ई० सन् ११८ मे हुई, उस युग का प्रसिद्ध इतिहासकार था। उसने 'एनाल्स एण्ड हिस्ट्री' नामक ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ उस युग का पहला ग्रन्थ है जिसमे प्रत्येक घटना और व्यक्ति का विश्लेषणात्मक ढग से विवेचन किया गया है।

सूक्टोनियम उस युग का दूसरा इतिहासकार है जिसका जन्म ई० सन् ७५ मे और मृत्यु सन् १६० मे हुई। यह तत्कालीन रोमन सम्राट् हैड्रियन का सेक्रेटरी था और इसने रोमन सम्राटो के जीवन चरित्र थर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की।

मगर इस काल का सबसे बडा इतिहासकार 'प्लाइनी' हुआ। उसने भी विश्व इतिहास पर बहुत कुछ लिखा। उसके द्वारा लिखे हुए ३६८ पत्र इस समय उपलब्ध है जिनमे बड़े प्राञ्जल गद्य मे रोम की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डाला गया हैं।

क्विण्टिलियन भी इस युग का एक प्रधान लेखक था उसका जन्म ई० सन् ३५ मे और मृत्यु सन् १०० मे हुई। वक्तृत्व कला या ओरेटरी और समालोचना शास्त्रपर इसने एक वृहत् ग्रन्थ की रचना की जो लैटिन साहित्य की एक अक्षय सम्पत्ति है।

इस युग मे 'सेटायर' या व्यङ्ग साहित्य पर भी कई अद्भुत और सुन्दर रचनाएँ हुई। इस क्षेत्र के लेखको मे पर्सियस और जुवेनाल (सन् ५५-१३०) के नाम विशेष अग्रणी है।

ईसा की तीसरी सदी मे रोम के अन्दर ईसाई धर्म का प्रवेश हुआ। उसके पश्चात् लैटिन गद्य पर भी ईसाई धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से गिरने लगा। कई बडे-बड़े ईसाई सन्तो ने लैटिन गद्य में अपनी रचनाएँ कर उसको एक नया प्रवाह प्रदान किया। इन ईसाई सतों मे सेण्ट जेरोम, सेट ऑगस्टाइन सेण्ट एम्ब्रोस, सेंट वेनिडिक्ट, सेण्ट ईसिदोर और ग्रेगरी महान् के नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध। इन सन्तो और लेखको ने प्राचीन देवपूजा के विरुद्ध और ईसाई धर्म के समर्थन मे आचार शास्त्र, नीति शास्त्र, प्रवचन तथा बाइबिल पर सैकडो रचनाएँ करके लैटिन गद्य को ऊँचाई की चोटी पर पहुचा दिया। सेण्ट वेनिडिक्ट के प्रयत्न से ईसाई गिरजो मे ज्ञान-शोध का कार्य प्रारम्भ हुआ और कई गिरजो ने तो ज्ञानपीठो का रूप धारण कर लिया। सेण्ट ईसिदोर ने 'एतमालोगी' के नाम से एक विश्वकोष की रचना कर लैटिन साहित्य को एक नवीन मोड दे दिया।

रोम के अतिरिक्त यूरोप के अन्य देशो मे भी ईसाई प्रचारको के प्रयत्नो से लैटिन साहित्य को गति मिल रही थी इग्लैण्ड के बीड (६७३ ७३५) नामक विद्वान ने इङ्गलैंड के धार्मिक इतिहास पर एक ग्रन्थ लिखा जो उस समय की लैटिन गद्य शैली का एक प्रखर उदाहरण है। सम्राट् शार्ल-मेन के शिक्षामत्री 'अल्कुइन' ने भी कई रचनाएँ बनाकर लैटिन गद्य का स्मृद्ध किया।

तेरहवी शताब्दी मे सेण्ट टॉमसाएक्विनस नामक महान् दार्शनिक ने अपनी रचनाओ से दर्शन शास्त्र के क्षेत्र मे एक नवीन मापदण्ड की स्थापना की। उसकी प्रसिद्ध वृत्ति 'सूमा थियोलॉजिका' ईसाई दर्शन शास्त्र की एक महान् कृति है। इस दार्शनिक कृति के माध्यम से उसने लैटिन भाषा को दार्शनिक विवेचन के सुदर गद्य का रूप दे दिया।

इन्ही शताब्दियो मे यूरोप के अन्तर्गत प्रत्येक देश मे अपनी अपनी जन भाषाओ का उदय हो रहा था। जिससे लैटिन का प्रभाव धीरे-धीरे कम हो रहा था। फिर भी धर्म शास्त्र और दर्शन शास्त्र की सर्वमान्य भाषा वहुत समय तक यही रही। रेनेन्सा या पुनर्जागरण भी शताब्दियो मे टॉमस केम्पिस, पेट्रार्क, सर एजक न्यूटन, वेकन इत्यादि ने भी अपनी बहुत सी रचनाएँ लैटिन मे की।

कठिन से कठिन विषय को भी ऐसे सरल रूप मे रखदिया जाय कि साधारण विद्यार्थी भी उसे भलीभांति समझ जाय।

'सरस्वती' पत्रिका के द्वारा प० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी गद्य और पद्य के अन्दर कई प्रभावशाली लेखको को तैयार किया।

इसी युग मे बा० बालमुकुन्द गुप्त का नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनका जन्म सन् १८६५ ई० और मृत्यु सन् १९०७ ई० मे हुई। ये कलकत्ते के 'भारत मित्र' नामक पत्र के प्रधान सम्पादक थे। इनकी भाषा बडी चलतीहुई, सजीव और विनोद पूर्ण होती थी। हिन्दी गद्य के सम्बन्ध मे प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ इनकी बडी प्रतिद्वन्दिता चलती थी। द्विवेदी युग के लेखको मे प माधव प्रसाद मिश्र, प० गोविन्द नारायण मिश्र, बाबू श्यामसुन्दरदास, प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प० माखनलाल चर्तुवेदी, प० अम्बिका प्रसाद' गणेशदत्त शर्मा इन्द्र' श्री नाथूराम 'प्रेमी' रूपनारायण पाण्डेय, हिन्दीभूषण बाबू शिवपूजन सहाय श्री सुख सम्पत्तिराय भडारी इत्यादि लेखको के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस युग मे प० नाथूराम प्रेमी ने हिन्दी ग्रथ रत्नाकर नाम की प्रसिद्ध प्रकाशन सस्था की स्थापना की और उसके द्वारा ससार के प्रसिद्ध विद्वानो की कृत्तियो का प्राञ्जल हिंदी गद्य में अनुवाद करवा कर प्रकाशित किया।

द्विवेदी–युग मे समालोचना के क्षेत्र मे भी हिन्दी गद्य ने बहुत प्रगति की। स्वय द्विवेदी जी बहुत अच्छे समालोचक थे।

इसी युग मे मिश्र बन्धुओने मिश्र-बन्धु-विनोद नामक विशाल ग्रन्थ की रचना करके हिन्दी के समस्त प्राचीन कवियो के इतिहास और उनकी कविताओ की समालोचना करने का विस्तृत प्रयत्न किया। इनका दूसरा ग्रन्थ 'हिन्दी-नवरत्न' भी समालोचना-साहित्य का एक अच्छा ग्रन्थ है जिसमे हिन्दी के तुलसी दास, सूरदास, बिहारी इत्यादि नौ महान् कवियो की कविताओ की विस्तृत आलोचना की है।

प० पद्मसिंह शर्मा भी इस युग के अच्छे समालोचक थे। इन्होने 'बिहारी सत सई' के ऊपर बडी सुन्दर और सरल टीका और समालोचना की है। लाला भगवान दीन 'दीन' की 'बिहारी बोधिनी' भी बिहारी की कविताओ पर एक सुन्दर प्रयास है। प० कृष्णबिहारी मिश्र के द्वारा लिखा हुआ 'देव और बिहारो नामक ग्रन्थ भी हिन्दी के समालोचना-क्षेत्र मे अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् प० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का एक तुलनात्मक और आलोचनात्मक विशाल इतिहास लिखकर हिन्दी-गद्य-साहित्य को समृद्ध करने मे अपना महत्व पूर्ण योग दान दिया है।

बाबू श्यामसुदर दास द्वारा लिखित 'साहित्या लोचन' भी इस युग का बहुत सुदर प्रयास है।

द्विवेदी-युग मे प्रयाग मे बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रयास से हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना हुई। इस सस्था ने सारे भारत वर्ष मे खासकर दक्षिण प्रान्तो मे हिन्दी के प्रचार का महत्व पूर्ण कार्य सम्पादन किया। इस संस्था के प्रकाशनो ने और इसकी परीक्षाओ ने हिन्दी साहित्य के विकास मे अपना महत्व पूर्ण योग दान अर्पित किया।

प्रेमचन्द-युग

द्विवेदी युग के पश्चात् हिन्दी-गद्य-साहित्य के तीसरे युग को हम प्रेमचन्द-युग कह सकते हैं। इस युग मे हिन्दी-गद्य के क्षेत्र मे प्रेमचन्द के उपन्यासो और कहानियो ने जो एक नया मोड़ दिया, वह किसी भी साहित्य के लिये गौरव की वस्तु हो सकता है। प्रेमचन्द के युग मे हिन्दी-साहित्य के विकास मे श्री जेनेन्द्र कुमार, बाबू प्रतापनारायण श्री वास्तव, बाबू वृन्दावन लाल वर्मा, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बाबू जयशकर प्रसाद, बिश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, भगवती प्रसाद बाजेपेयी, वासुदेव शरण अग्रवाल, डा० भगवतशरण उपाध्याय इत्यादि ने हिन्दी गद्य को अपनी प्राञ्जल रचनाओ से बहुत समृद्ध किया।

प्रेमचन्द युग के पश्चात् हिन्दी के गद्य साहित्य मे एक नवीन यूग का प्रादुर्भाव हुआ। जिसे 'प्रगतिवाद' का युग कहा जा सकता है। इस युग मे उपन्यास और कहानियो के क्षेत्र मे एक नवीन धारा का प्रादुर्भाव हुआ जिसका सक्षिप्त वर्णन 'कविता साहित्य' शीर्षक में इस ग्रन्थ के तीसरे खण्ड अन्तर्गत कर चुके हैं।

गुजराती-गद्य-साहित्य

गुजराती को गद्य साहित्य का प्रारम्भ वैसे ईसा की १४वी शताब्दी से हो गया था। इस शताब्दी मे जैन मुनि

हिन्दी-गद्य-साहित्य

हिन्दी गद्य-साहित्य का प्रारम्भ कब से हुआ यह विचारणीय है। आधुनिक हिन्दी का विकास होने के पहले हिन्दी ब्रजभाषा के रूप में थी और ब्रजभाषामें गद्य-साहित्यका प्रारंभ १६वीं शताब्दी से माना जाता है। उस समय के कुछ गोरख पन्थी ग्रंथ पाये गये हैं, जिनका निर्माणकाल सन् १३५० ई के आसपास का है।

इसके पश्चात् १७वीं सदी में वल्लभसम्प्रदाय की चौरासी वैष्णवों की वार्ता तथा दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता नामक गद्य-ग्रन्थों की रचना हुई। इसी शताब्दी में 'नाभा दास के द्वारा लिखा हुआ अष्टयाम' और वैकुंठमणि शुक्ल के द्वारा लिखा हुआ 'अगहन महात्म्य नामक ग्रंथ भी उपलब्ध है।

इसके पश्चात् १६वी सदीमे कलकत्ता फोर्ट विलियम कालेज के जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू के गद्य की पुस्तकें तैयार करवाने का अलग'अलग प्रबन्ध किया। इस प्रबन्ध में प लल्लूलाल ने 'प्रेम'सागर की और पं सदल मिश्र ने 'नासिकेतो पाख्यान' की रचना की। इसके साथ ही मु सदासुख लाल नियाज और इंशाअल्ला खाँ हुए। इंशाअल्ला की 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी गद्य के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है।

इसके पश्चात् १६वीं शताब्दी में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दने उर्दू मिश्रित हिंदी गद्य को एक सुव्यवस्थित रूप दिया। इनकी रचनाओं में 'मानव धर्मसार 'इतिहास तिमिर नाशक तथा राजा भोज का सपना इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु युग

मगर हिन्दी गद्य का वास्तविक इतिहास निर्माण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के हाथों से हुआ। इनका जन्म सन् १८५ ई में और मृत्यु सन् १८८५ ई में हुई। इस महान् व्यक्ति ने अपनी छोटी सी उम्र में हिन्दी-साहित्य को परिष्कृत रूप देकर जो सेवाएँ की हैं, वे हिन्दी साहित्य के इतिहास में हमेशा अमर रहेंगी।

राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह ने जो कुछ लिया था, वह एक प्रकार से प्रस्ताव के रूप में था मगर हिन्दी गद्य को स्थिर रूप प्रदान करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' को ही दिया जा सकता है।

भाषा के स्वरूप में स्थिरता आजाने के पश्चात् हिन्दी-गद्य-साहित्य का तेजी से विकास होने लगा। और हिन्दी-साहित्य में कई पत्र-पत्रिकाएँ, नाटक और अनुवाद प्रकाशित होना शुरू हुए। स्वयं भारतेन्दु ने कई मौलिक नाटकों की और अनुवादित पुस्तकों की रचना करके उन्हें प्रकाशित किया और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका बाला बोधिनी इत्यादि पत्रिकाओं का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया।

'हिन्दी गद्य—साहित्य का यह युग 'भारतेन्दु युग के नाम से प्रसिद्ध है। इस युग के अन्य कलाकारों में प प्रताप नारायण मिश्र (१८५६ १८६४) बालकृष्ण भट्ट (१८४४ १६१४) प० बद्रीनारायण चौधरी (१८५५ १६२२) लाला श्री निवासदास ठा जगमोहन सिंह, प अम्बिकादत्त व्यास प० राधाचरण गोस्वामी राधाकृष्ण दास कार्तिक प्रसाद खत्री इत्यादि साहित्य कारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी-गद्य-साहित्य के विकास में बा श्यामसुन्दर दास' प रामनारायण मिश्र और ठा शिवकुमारसिंह का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने सन् १८६३ में काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा' की स्थापना कर हिन्दी के विकास का एक नया मार्ग खोल दिया। हिन्दी-गद्य के विकास में काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा की सेवाओं का मूल्यांकन बहुत अधिक है। जिसने हिन्दी के अनेक दुर्लभ और अलभ्य ग्रन्थों का प्रकाशन करके हिन्दी साहित्य के उत्थान में बहुत बड़ा काम किया।

द्विवेदी-युग

भारतेन्दु—युग के पश्चात् हिन्दी-गद्य साहित्य के विकास में दूसरा प्रभावशाली युग प महावीरप्रसाद द्विवेदी ने प्रारंभ किया। जो द्विवेदी-युग के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य पं महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म सन् १८७० ई और मृत्यु सन् १६३८ ई में हुई।

सन् १६ ३ ई० में उन्होंने सरस्वती' मासिक पत्रिका के सम्पादन का भार अपने ऊपर लिया। तब से उन्होंने अपना सारा जीवन हिन्दी—गद्य के विकास में लगाया। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी लेखक की सफलता इसी बात में मानते थे कि

लिया था और इस मासिकपत्र के द्वारा गुजराती गद्य साहित्य मे सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया।

आचार्य 'ध्रुव' के पश्चात् हरगोविददास, छोटालाल भट्ट, कमला शकर त्रिवेदी' डायाभाई देरासरी, दीवान वहादुर कृष्णलाल जवेरी, नानालाल दलपतराम इत्यादि महान लेखकों ने अपनो महत्वपूर्ण रचनाओ से गुजराती-गद्य को समृद्ध किया। इसके साथ ही गुजरात के क्षेत्र मे विश्व-साहित्य को अमर कर देनेवाले महात्मा गाधी का नाम आता है। इन्होने अपने लेखो, आत्म कथा, विभिन्न विषयो की अनेक पुस्तको और 'नवजीवन' नामक साप्ताहिक पत्र के द्वारा गुजराती गद्य को एक नया मोड देकर उसे अत्यत सरल, सुवोध और प्रभाव युक्त वना दिया।

गुजराती गद्य के इतिहासमे कन्हैयालाल माणकलाल मुशी का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक महान् साहित्यकार की तरह इन्होने अपनी रचनाओ से गुजराती-गद्य के हर एक अग को परिपुष्ट किया। एक महान् विचारक की तरह मुशी का भी जीवन और साहित्य के विषय मे एक विशिष्ट दृष्टिकोण है, जिसको उन्होने अपने कई लेखो और साहित्य ससद मे दिये गये भाषणो में प्रकट किया है। गुजराती-साहित्य के विषय मे उनके मूल सूत्र उनके लिखे हुए 'गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर' नामक ग्रथ मे दिये गये है।

सन् १९३५ई० मे वम्बई विश्वविद्यालयने 'बी०ए० आनर्स' के पाठ्यक्रम मे गुजराती को स्थान प्रदान किया। इस घटना ने भी गुजराती गद्य के विकास को वहुत बडी प्रेरणा दी और इस प्रेरणा के फल स्वरूप गुजराती-साहित्य के वहुत से लेखको के बिखरे हुए निवधो को एकत्रितकरके प्रकाशित किया गया। इन लेखको में श्री रमणलाल देसाई, विश्वनाथ भट्ट, विजयराम वैद्य, विष्णुप्रसाद त्रिपाठी, नवलराम त्रिवेदी,काका कालेलकर, मोहनलाल दवे, जवेरचद मेधाणी, केशवलाल कामदार, खट्टूभाई उमर वाडिया, चैतन्यवाला मजूमदार, अनन्तराम रावल, मनसुखलाल जवेरी, प्रेमशकर भट्ट, श्री सुदरम्, उमा, शकर जोशी, अम्वालाल जानी, हीरालाल पारेख इत्यादि लेखको के सन् १९३० ई० के वाद प्रकाशित निवधो को ग्रथो के रूप में एकत्रित कर प्रकाशिन किया गया।

इन निबध-ग्रथो के प्रकाशनो से गुजराती गद्य को एक महान सम्पदा प्राप्त हुई। इस कार्य मे अहमदाबाद की गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी ने काफो योग दिया। इस सोसायटी का आधुनिक नाम गुजरात-विद्या सभा है।

इसी प्रकार गुजराती-साहित्य के सुप्रसिद्ध साहित्य सेवी भिक्षु अखंडानद ने 'सस्तु साहित्य मडल' नामक प्रकाशन सस्था के द्वारा भिन्न-भिन्न विषयो की अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर उन्हे सस्ते मूल्य मे जनता में वितारित कर गुजराती-गद्य-साहित्य की अमूल्य सेवा की है।

वङ्गला-गद्य-साहित्य

वङ्गला के साहित्यिक गद्य का विकास १८वी शताब्दी के चौथे चरण से प्रारम्भ हुआ जव कि एन० बी० हॉल हेड द्वारा लिखित वङ्गाली-ग्रामर का सन् १७७८ ई० मे प्रकाशन हुआ।

सन् १८०० मे कलकत्ते मे फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई और सन् १८०१ ई० मे 'राम-राम वसु' का "प्रतापदित्य-चरित्र" वगाली गद्य मे प्रकाशित हुआ। सन् १८०८ ई० मे मृत्युञ्जय विद्यालङ्कार के द्वारा लिखित राजा वली नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। जिसे वगला-भाषा का पहला इतिहास ग्रन्थ कहा जा सकता है।

सन् १८१५ ई० के पश्चात् एक ओर राजाराम मोहन राय के प्रयत्न से हिन्दू-धर्म का नवीन साँचे मे ढला हुआ, धर्म की नवीन व्याख्याओ को प्रस्तुत करनेवाला साहित्य प्रकाशित हो रहा था और दूसरी ओर श्री रामपुर की ईसाई मिशनरी ने ईसाई धर्म के प्रचारार्थ अप्रैल सन् १८१८ ई० से नाना प्रकार के ज्ञानोपयोगी निबन्धों से युक्त 'दिग्दर्शन' नामक मासिक पत्र प्रकाशित करना प्रारम्भ किया।

इसके पश्चात् सन् १८२१ ई० मे 'सम्वाद-कौमुदी' और सन् १८२२ ई० मे भवानी चरण बन्धोपाध्याय के सम्पादनमे 'समाचार-चन्द्रिका' नामक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसने वगालो गद्य को समृद्ध करने का प्रयत्न किया।

सन् १८३१ ई० मे बगला के प्रसिद्ध पत्रकार ईश्वरचन्द्र गुप्त ने 'सम्वाद-प्रभाकर' नामक पत्र निकाल कर बगला-पत्रकारिता और गद्यके क्षेत्रमे एक नवीन युगका प्रारम्भ किया।

इसके पश्चात् एक ओर महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने 'तत्व वोधिनी पत्रिका निकाल कर ब्रह्म-समाज का प्रचार करना

सुन्दर सूरि शीलांक सूरि इत्यादि कई जैनाचार्यों ने कई ग्रन्थों का निर्माण करके गुजराती गद्य का प्रारम्भ कर दिया था। और उसके बाद ईसा की १९ वीं सदी के प्रारम्भ में कई पादरियों ने 'बाइबिल तथा दूसरे धार्मिक ग्रन्थों का गुजराती-गद्य अनुवाद करवा के उनका प्रचार किया था मगर उनका लक्ष्य साहित्य की उन्नति नहीं केवल धर्म-प्रचार था।

गुजराती-गद्य को सब से पहले साहित्यिक रूप देने का श्रेय 'नर्मदा-शङ्कर' को है। इनका जन्म सन् १८३३ में और मृत्यु सन् १८८६ ई० में हुई थी। इन्होंने गुजराती गद्य के अन्तर्गत सबसे पहले 'राज्य-रंग' नामक विश्व के एक विशाल इतिहास की रचना की। जिसमें मिस्र मेसोपोटेमिया खाल्डिया ईरान तथा रोम के कई प्रसिद्ध वीरों का इतिहास दिया गया है। इस इतिहास से गुजराती गद्य की एक गम्भीर शैली का प्रादुर्भाव हुआ। इनका दूसरा ग्रन्थ धर्म विचार था। इसमें यह शैली और भी परिपक्व हुई है। नर्मदाशंकर की गद्य शैली अत्यन्त सरल स्वाभाविक और प्रवाहयुक्त थी।

नर्मदाशंकर ने सन् १८६ ई से १८६८ ई० तक कठोर परिश्रम करके 'नर्मकोष' अथवा गुजराती-शब्दार्थ-संग्रह नामक प्रसिद्ध कोश को प्रकाशित किया। उस समय तक इस प्रकार का कोई कोष गुजराती साहित्य में नहीं था। इससे गुजराती साहित्य की एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति हुई।

नर्मदा शंकर के पश्चात् गुजराती गद्य-साहित्य में नवल राम का नाम चमकता हुआ नजर आता है। इन्होंने अपनी प्रतिभा से गुजराती गद्य को एक नवीन रूप दिया। नवलराम नर्मदाशङ्कर के समकालीन थे और एक ही स्थान के रहने वाले थे। इन्होंने नर्मदाशङ्कर की जो जीवन कथा लिखी वह इनकी गद्य-शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। नवलराम की साहित्य विषयक विशेष ख्याति उनके लिखे हुए विवेचनों से हुई। इन विवेचनों के द्वारा गुजराती के पद्य-साहित्य को अच्छा निखार मिला।

इसी समय गुजराती गद्य का विकास दो भिन्न भिन्न शैलियों में विभक्त हो गया। एक शैली हिन्दू-गुजराती और दूसरी शैली पारसी-गुजराती के नाम से प्रसिद्ध हुई। हिन्दू गुजराती शैली में संस्कृत और प्राकृत के शब्दों की अधिकता रहती थी और पारसी गुजराती शैली में फारसी शब्दों की बहुलता रहती थी। नर्मदाशङ्कर, दलपतराम नवलराम इत्यादि हिन्दू-लेखकों ने गुजराती-गद्य की जिस शैली को अपनाया वह शैली हिन्दू-गुजराती के नाम से प्रसिद्ध हुई और गुजराती गद्य की जिस शैली को पारसी लोगों ने अपनाया वह पारसी गुजराती कहलायी। इन दोनों शैलियों के बीच पत्र-पत्रिकाओं में आक्षेप-विक्षेप भी होने लगे।

नवलराम के पश्चात् हिन्दू-लेखकों ने गुजराती-गद्य को संस्कृत के कठिन शब्दों से और अलङ्कारों के बोझ से लादना शुरू किया। दूसरी ओर पारसी लेखकों ने फारसी गद्य की शैली को अपनाया।

मगर संस्कृतमयी इस गुजराती-गद्य की शैली का प्रबल विरोध करके रावबहादुर हरगोविन्द कांटावाला ने शुद्ध और सरल गुजराती शैली के निर्माण का जोरदार प्रयत्न किया।

इसी समय गुजराती में गोवर्धनराम त्रिपाठी का सुप्रसिद्ध उपन्यास (१८८७-१९ १) 'सरस्वतीचन्द्र' प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ ने भी गुजराती गद्य-साहित्य को एक नया मोड़ दिया। सरस्वतीचन्द्र तथा अन्य गुजराती उपन्यासों का वर्णन हम उपन्यास-साहित्य शीर्षक के अन्तर्गत इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में दे चुके हैं।

गुजराती के गद्य-साहित्य को पुष्ट करने में निबन्ध लेखकों ने भी बहुत बड़ा योग दिया। गुजराती-भाषा का पहला निबन्ध सन् १८५१ ई में नर्मदाशंकर के द्वारा 'मण्डली मलवाथी थता लाभ' विषय पर लिखा गया। उसके बाद मासिक पत्रों में और दैनिक पत्रों में निबन्ध-लेखन की धूम मच गयी। इस क्षेत्र में आनन्दशङ्कर ध्रुव का नाम गुजराती साहित्य में नक्षत्र की भांति जगमगाता है। इनका जन्म सन् १८६९ ई में और मृत्यु सन् १९४१ में हुई।

आनन्दशङ्कर ध्रुव ने पूर्व और पश्चिम दोनों विवेचन शैलियों का समन्वय करके गुजराती गद्य में महत्वपूर्ण प्रयत्न किया। वे स्वयं पौर्वात्य और पाश्चात्य विचारधाराओं से भूषित थे। गुजरात में इनकी करुणा संस्कृति का उत्तम रूप में पुनरुत्थान करने वाले आचार्य की तरह इनकी है। आनन्द शङ्कर 'ध्रुव' एक समर्थ विचारक और गम्भीर दार्शनिक थे। इन्होंने 'वसन्त' नामक एक मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ

किया था और इस मासिकपत्र के द्वारा गुजराती गद्य साहित्य मे सन्तुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया।

आचार्य 'ध्रुव' के पश्चात् हरगोविंददास, छोटालाल भट्ट, कमला शकर त्रिवेदी' डायाभाई देरासरी, दीवान बहादुर कृष्णलाल जवेरी, नानालाल दलपतराम इत्यादि महान लेखकों ने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओ से गुजराती-गद्य को समृद्ध किया। इसके साथ ही गुजरात के क्षेत्र मे विश्व-साहित्य को अमर कर देनेवाले महात्मा गाधी का नाम आता है। इन्होंने अपने लेखो, आत्म कथा, विभिन्न विषयो की अनेक पुस्तको और 'नवजीवन' नामक साप्ताहिक पत्र के द्वारा गुजराती गद्य को एक नया मोड देकर उसे अत्यत सरल, सुबोध और प्रभाव युक्त बना दिया।

गुजराती गद्य के इतिहासमे कन्हैयालाल माणकलाल मुशी का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक महान् साहित्यकार की तरह इन्होंने अपनी रचनाओ से गुजराती-गद्य के हर एक अग को परिपुष्ट किया। एक महान् विचारक की तरह मुशी का भी जीवन और साहित्य के विषय मे एक विशिष्ट दृष्टिकोण है, जिसको इन्होंने अपने कई लेखो और साहित्य ससद मे दिये गये भाषणों मे प्रकट किया है। गुजराती साहित्य के विषय में इनके मूल-सूत्र उनके लिखे हुए 'गुजरात एण्ड इट्स लिटरेचर' नामक ग्रथ मे दिये गये हैं।

सन् १९३५ई० मे बम्बई विश्वविद्यालयने 'बी०ए० आनर्स के पाठ्यक्रम मे गुजराती को स्थान प्रदान किया। इस घटना ने भी गुजराती गद्य के विकास को बहुत बडी प्रेरणा दी और इस प्रेरणा के फल स्वरूप गुजराती-साहित्य के बहुत लेखकों के बिखरे हुए निबधो को एकत्रितकरके प्रकाशित किया गया। इन लेखकों में श्री रमणलाल देसाई, विश्वनाथ भट्ट विजयराम वैद्य, विष्णुप्रसाद त्रिपाठी, नवलराम त्रिवेदी, काका कालेलकर, मोहनलाल दवे, जवेरचद मेघाणी, [illegible] दार, खट्टूभाई उमर वाडिया, चैतन्यबाला मजमुदार, [illegible] रावल, मनसुखलाल जवेरी, प्रेमशकर भट्ट, [illegible] शकर जोशी, अम्बालाल जानी, [illegible] लेखकों के सन् १९३० ई० के [illegible] थो के रूप मे सकलित कर [illegible]

इन निबन्ध ग्रथो से [illegible] महान सम्पदा प्राप्त [illegible]

गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी ने [illegible] सोसायटी का आधुनिक नाम गुजरात-विद्या [illegible] है।

इसी प्रकार गुजराती-साहित्य के सुप्रसिद्ध [illegible] भिक्षु अखंडानद ने 'सस्तु साहित्य मडल' नामक [illegible] सस्था के द्वारा भिन्न-भिन्न विषयो की अनेक पुस्तकें प्रकाशित कर उन्हे सस्ते मूल्य मे जनता में वितरित कर गुजराती-गद्य-साहित्य की अमूल्य सेवा की है।

बङ्गला-गद्य-साहित्य

बङ्गला के साहित्यिक गद्य का विकास १८वी शताब्दी के चौथे चरण से प्रारम्भ हुआ जब कि एन० बी० हॉलहेड द्वारा लिखित बङ्गाली ग्रामर का सन् १७७८ ई० में प्रकाशन हुआ।

सन् १८०० मे कलकत्ते मे फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई और सन् १८०१ ई० मे 'राम-राम बसु' का "प्रतापदित्य-चरित्र" बगाली गद्य मे प्रकाशित हुआ। सन् १८०८ ई० मे मृत्युञ्जय विद्यालङ्कार के द्वारा लिखित [illegible] वली नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। [illegible] का पहला इतिहास ग्रन्थ कहा जा [illegible]

प्रारम्भ किया और दूसरी ओर सन् १८७२ ई० में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने 'बंग-दर्शन' नामक पत्र निकाल कर ब्रह्म समाज का विरोध करना प्रारम्भ किया।

मगर बंगाली गद्य में नवयुग का संचार रवीन्द्र बाबू की 'साधना' नामक पत्रिका का प्रकाशन से प्रारम्भ हुआ। साधना को नवयुग की प्रेरक पत्रिका माना जाता है। इस पत्रिका के द्वारा कई ऐसे लेखक तैयार हुए, जिन्होंने भिन्न भिन्न विषयों पर निबन्ध लिख कर बंगला गद्य में नई प्राण प्रतिष्ठा की। इन निबन्ध लेखकों में रवीन्द्र नाथ के भतीजे बलेन्द्रनाथ ठाकुर, रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, यादेशचन्द्र राय विद्यानिधि, बलरामन्द राय, अक्षयकुमार मैत्रेय इत्यादि लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन निबन्ध लेखकों ने दर्शन शास्त्र विज्ञान कला की आलोचना इत्यादि विषयों पर बहुत काफी लिखा।

१९वीं शताब्दी के अन्त और २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाली गद्य में एक सर्वतोमुखी बाढ़ आई। इतिहास दर्शन विज्ञान कला निबन्ध इत्यादि सभी क्षेत्रों में बहुत तेजी से विकास हुआ। उपन्यास और कहानियों के क्षेत्र में शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय बंकिम बाबू, प्रभात कुमार मुखोपाध्याय रवीन्द्र नाथ टैगोर हुए। जिनका विवेचन 'उपन्यास साहित्य' के शीर्षक में हम इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में कर चुके हैं। इतिहास के क्षेत्र में रमेशचन्द्र दत्त राखलदास बनर्जी इत्यादि लेखकों ने भारत के प्राचीन इतिहास पर कई इतिहास ग्रन्थों की और कई ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की। दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में गुरुदास बनर्जी का 'ज्ञान और कर्म' नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय है। निबन्धों के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने राजा और प्रजा साहित्य शिक्षा समाज इत्यादि भिन्न भिन्न विषयों पर सैकड़ों सुन्दर और गम्भीर निबन्धों की रचना की। हास्य रस के क्षेत्र में भी राजशेखर बसु ने जो हिन्दी में परशुराम के नाम से प्रसिद्ध हैं अपनी रचनाओं से योग दिया निबन्ध के क्षेत्र में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और प्रमथ चौधरी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रकार अनेकानेक लेखकों के सतत उद्योग से बंगला साहित्य का गद्य इतनी उन्नत अवस्था को प्राप्त हुआ है।

मराठी-गद्य-साहित्य

मराठी के आधुनिक गद्य-साहित्य का प्रारंभ वैसे साधारणतया सन् १८०८ ई० से प्रारंभ होता है। गद्य के इस प्रारंभिक युग को 'अनुवाद-युग' कहते हैं। इस युग में अंग्रेजी और संस्कृत के कई उपयोगी ग्रन्थों का मराठी भाषा में अनुवाद हुआ। इस युग के लेखकों में लोकहितवादी कृष्णशास्त्री विष्णुबुवा ब्रह्मचारी मोरेश्वर कृष्ण शास्त्री राजवाड़े इत्यादि लेखकों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी समय बम्बई युनिवर्सिटी के स्थापित होने से मराठी गद्य के विकास में बड़ी उत्तेजना मिली। इसी युग में सुप्रसिद्ध विद्वान और न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानाडे और डा० भाण्डारकर के समान प्रकाण्ड पण्डित उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने लेखों व्याख्यानों और इतिहास की खोजों से मराठी गद्य को बहुत समृद्ध किया।

मगर मराठी गद्य का वास्तविक इतिहास सन् १८८० ई० से प्रारम्भ होता है, जब विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने मराठी-साहित्य में निबन्धमाला का प्रकाशन प्रारम्भ किया और इसके द्वारा सात वर्षों तक सैकड़ों निबन्ध प्रकाशित कर के मराठी-साहित्य को समृद्ध किया।

श्री चिपलूणकर आधुनिक मराठी गद्य-साहित्य के जनक कहे जाते हैं। एडीसन और मैकाले की निबन्ध-शैली की छटा उनके साहित्य में विपुल मात्रा में पायी जाती है। साहित्य का निबन्ध-अंग इन्हीं की लेखनी से परिपुष्ट और प्रभावपूर्ण हुआ। वे एक स्वतन्त्र विचारक थे। उनके लेखों से मराठी क्षेत्र में देश प्रेम और स्वाधीनता की लहरें उठने लगीं।

इस लहर का उत्थान लोकमान्य तिलक और श्री आगरकर के द्वारा हुआ। मराठी गद्य में समाज-सुधार की भावनाओं के प्रचार के नाते श्री आगरकर का नाम अमर रहेगा। उनका साहित्य निर्भयता न्याय और तर्क-संपत्ति की दृष्टि से परिपूर्ण है।

लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' पत्र के प्रकाशन द्वारा मराठी-गद्य साहित्य में एक युगान्तर उत्पन्न कर दिया। मराठी-गद्य में लिखा हुआ उनका 'गीता रहस्य' नामक महान् ग्रन्थ मराठी गद्य साहित्य की ओर से विश्वसाहित्य को दी हुई एक अनुपम भेंट है।

लोकमान्य तिलक के पश्चात् उनके सहयोगी नरसिंह

चिन्तामणि केलकर ने मराठी गद्य-साहित्य को ऊँचा उठाने मे वडा महत्वपूर्ण योग दिया। इन्होंने साहित्य, इतिहास, जीवनी, निबंध, उपन्यास इत्यादि अनेकानेक विषयो पर अत्यन्त प्रौढ कृतियो का निर्माण किया। इनका लिखा हुआ लोकमान्य तिलक का एक विशाल जीवन-चरित्र हजार-हजार पृष्ठो के तीन खण्डोंमे समाप्त हुआ है। जो मराठी साहित्य की एक अमूल्य निधि है। इनका लिखाहुआ 'मराठा और अंग्रेज' नामक ग्रन्थ मराठो के इतिहास को एक नवीन दृष्टिकोण के साथ पेश करता है। इनके सम्पादन मे 'केसरी' पत्र ने भी मराठी गद्य की अभूतपूर्व सेवा की है।

इसी प्रकार उपन्यासो के क्षेत्र मे सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हरिनारायण आप्टे, वामन मल्हार जोशी, इतिहास और दर्शन शास्त्र के क्षेत्र मे डा० पाण्डुरंग वामन काणे, अन्ना साहब कर्वे इत्यादि महान् लेखको ने अपनी रचनाओ से मराठी-गद्य के समृद्ध करने मे बहुत वडा योग दिया।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

वाचस्पति गैरोला—संस्कृत साहित्य का इतिहास
कृष्ण चैतन्य— " "
डॉ० भगवद् शरण उपाध्याय—विश्व-साहित्य की रूपरेखा
रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास
डॉ० सत्येन्द्र—बंगला साहित्य का इतिहास
कृष्णलाल मोहनलाल—गुजराती साहित्य

गन्धकुटी

बौद्ध और जैन धर्म में तथागत या अर्हन्तो के बैठने के लिए जो स्थान होता है, उसको 'गन्धकुटी' कहते हैं।

जैन-परम्पराओ के अनुसार जब तीर्थकरो को कैवल्य की प्राप्ति होती है तब उनके उपदेश को श्रवण करने के लिए एक विशाल 'समवशरण' सभा का आयोजन किया जाता है। इस सभा मे देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि सभी प्राणियो के बैठने की अलग अलग व्यवस्था होती है। अर्हन्तो के मुख से जो दिव्यध्वनि उच्चारित होती है, उसे सब प्राणी अपनी-अपनी भाषा मे समझ लेते हैं।

समवशरण के केन्द्र मे उच्च स्थान पर अर्हन्तो के बैठने के लिए जो स्थान बनाया जाता है—उसे गन्धकुटी कहते हैं। यह गन्धकुटी अगुरु, चन्दन इत्यादि सुगन्धमय पदार्थों की धूप से सुगन्धित रहती थी। तीर्थङ्कर ऋषभदेव के समय मे गन्ध-कुटी की लम्बाई ६०० दण्ड, चौडाई ६०० दण्ड और ऊँचाई ९०० दण्ड थी। मगर यह लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई हर एक तीर्थंकर के समय मे कम होती गयी। और अन्त मे तीर्थ-कर महावीर के समय मे गधकुटी की लम्बाई-चौडाई ५०-५० दण्ड और ऊँचाई ७५ दण्ड रह गयी।

जैनियो की तरह बौद्ध-ग्रंथो मे भी तथागत के बैठने के स्थान को 'गन्धकुटी' या 'मूलगध कुटी' के नाम से ही अभि-हित किया गया है। सारनाथ की उपदेश सभा मे भगवान् बुद्ध के बैठने का स्थान गन्धकुटी मे ही था।

गन्दन

मध्य एशिया के जुङ्गर-साम्राज्य का एक प्रभावशाली शासक। जिसका समय सन् १६७१ से १६९७ ई० तक रहा।

'जुङ्गर' कलमक–जाति की एक शाखा का नाम था। कलमक मंगोल-जाति की एक शाखा थी और मंगोलो मे 'तारबुत' के नाम से प्रसिद्ध थी।

सन् १५८२ ई० से सन् १७५७ तक इस जाति का मध्य एशिया के काफी बडे भूभाग पर साम्राज्य रहा।

गल्दन इसी जुगर–साम्राज्य का चौथा शासक था। शुरू मे यह बौद्ध भिक्षु बनकर तिब्बत मे अध्ययन करने के लिये चला गया था। वहा से वापस लौटकर इसने अपने भाई सेत-सेन खान को हराया और स्वयं खान की गद्दी पर बैठा।

सन् १६७८ मे गल्दन ने पूर्वी तुर्किस्तान को जीत कर यारकन्द मे खोजा 'अप्पक्' को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त कर दिया। तब से लेकर सन् १७५५ ई० तक एक बार फिर पूर्वी तुर्किस्तान की प्राचीन बौद्ध भूमि फिर से कलमक-बौद्धो के हाथ मे आकर जूंगर-साम्राज्य का अग बन गई। इसी समय गल्दन ने तुर्फान और खामिल को भी जीत लिया और 'बुश्तू खान' (बोधिसत्व राजा) की उपाधि धारण की। जिसे अब तक चंगेज खाँ को सन्तानें ही धारण करती थी। इस समय गल्दन का राज्य उत्तर मे 'केरूलोन' नदी से दक्षिण मे 'कोकोनोर' सरोवर तक और पूर्व मे खलखा-मङ्गोलो की सीमा से पश्चिम मे कजाको की सीमा तक फैला हुआ था।

इस समय तुंगरों और खलखा-मंगोलों के बीच संघर्ष चल रहा था। रूस तुंगरों के पक्ष में था और चीन खलखा मङ्गोलों का समर्थन कर रहा था।

अतीव सन् १६९६ ई. में एक बहुत बड़ी चीनी सेना ने गल्दन के विरुद्ध अभियान किया। इस अभियान में गल्दन की रानी गोली की शिकार हुई। गल्दन अपनी लड़कियों और एक लड़के के साथ पश्चिम की ओर भाग चला और असफल कार्यों से निराश होकर ४ जून सन् १६९७ ई. को उसने आत्महत्या कर ली।

गल्दन एक बहुत बहादुर और योग्य सरदार था। उसके शत्रु भी उसकी योग्यता के कायल थे। चीन के सम्राट कांग-ही ने लिखा था—

'गल्दन एक बड़ा ही दुर्धर्ष शत्रु था। उसने समरकन्द, बुखारा, किरमिज, तराज, काशगर, तुरफान, कुरफान और हामिस को मुसलमानों से जीत लिया और बारह सौ से अधिक नगरों पर कब्जा कर लिया। जो बतलाता है कि उसकी बाहें कितनी लम्बी थीं। खालों कबीलों के सरदारों ने स्वयं ही अपने एक लाख जवानों को जमा करके उसका विरोध किया। उन्हें तितर-बितर करने के लिए गल्दन के वास्ते एक वर्ष पर्याप्त था।' (म. ए. इतिहास)

गफ (लार्ड गफ)

सन् १८४१ ई. में भारत स्थित अंग्रेजी सेनाओं का प्रधान सेनापति जिसका जन्म सन् १७७९ ई. में तथा मृत्यु सन् १८६९ ई. में हुई।

लार्ड गफ' आयरलैंड का रहने वाला था। सन् १८३७ ई. में वह भारत आया और मैसूर में सेनापति बना दिया गया। इसके पश्चात् जब चीन के साथ भारत सरकार का युद्ध चला तब इसको चीन के मोर्चे पर भेजा गया। सन् १८४२ ई. में नानकिंग की सन्धि हो जाने पर वह वहाँ से वापस आ गया। सन् १८४३ ई. में वह समस्त भारत की अंग्रेजी सेना का प्रधान सेनापति बना दिया गया।

इसी वर्ष महाराजपुर में उसने मराठा सेना को एक करारी पराजय दी। सन् १८४५ ई. में सिक्खों के साथ की लड़ाई में सोबरावं में उसने सिक्खों को बुरी तरह पराजित किया। जिसके परिणाम-स्वरूप सिक्खों को लाहौर के अन्तर्गत अंग्रेजों से एक अपमानपूर्ण सन्धि करने को मजबूर होना पड़ा। इस विजय के उपलक्ष में पार्लमेंट ने उसे 'अर्ल' की उपाधि प्रदान की।

सन् १८४९ ई. में गुजरात (पंजाब) के युद्ध में इसने सिक्खों को एक करारी पराजय दी। उसके बाद यह इंगलैण्ड चला गया। वहाँ पर सन् १८६२ ई. में वह 'फील्ड-मार्शल' बना दिया गया और सन् १८६९ ई. में इसकी मृत्यु हो गयी।

गया

भारतवर्ष के बिहार राज्य में पटना से ५५ मील दक्षिण फल्गु नदी के किनारे पर बसा हुआ एक प्राचीन नगर। जिसकी जनसंख्या १ लाख ५१ हजार १०५ है। गया नगर दो भागों में विभक्त है। एक पुराना गया और दूसरा साहबगञ्ज। पुराने नगर में 'विष्णुपाद' का सुप्रसिद्ध मन्दिर और दूसरे कई पवित्र स्थान बने हुए हैं। इस क्षेत्र में विशेष रूप से गया वाल पण्डे ही रहते हैं।

साहबगञ्ज क्षेत्र में बाजार, न्यायालय औषधालय चिकित्सा-घर, पुस्तकालय सर्किट हाउस इत्यादि बने हुए हैं।

हिन्दुओं के धार्मिक तीर्थों के अन्तर्गत गया नगर का बहुत बड़ा महत्त्व है। महाभारत भागवत और पुराणों में इस क्षेत्र की पवित्रता के लिए बहुत कुछ लिखा गया है। वायु पुराण के अन्तर्गत गया-माहात्म्य नाम से एक स्वतन्त्र अध्याय है। उसमें गया की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए लिखा है—

'प्राचीन काल में गयासुर नामक एक बड़ा बलशाली और तपस्वी असुर था। वह विष्णु का परम भक्त था। एक बार 'कोलाहल पर्वत' पर पहुँच कर उसने विष्णु की कठोर तपस्या करना प्रारम्भ किया। उसकी तपस्या को देख कर देवता लोग घबराये। और वे ब्रह्मा के पास पहुँचे। इन सब ने विचार करके विष्णु के साथ कोलाहल पर्वत पर जाकर गयासुर से वर माँगने को कहा। उसने कहा कि यदि आप वर देना चाहते हैं कि ऐसा वर दीजिये कि मेरा शरीर ब्राह्मण तीर्थ जिस देवता योगी, सन्यासी कर्मी धर्मी सभी के शरीर से अधिक पवित्र हो जाय। और जिसको मैं छू दूं वही सीधा बैकुण्ठ

को चला जाय । विष्णु 'तथास्तु !' कह कर देवताओं के साथ वापस चले गये । उसके बाद सभी जीवधारी गयासुर के शरीर को छू छू कर सीधे वैकुण्ठ जाने लगे । सारे विश्व में अव्यवस्था मच गयी । यमराज की यमपुरी खाली हो गयी । तब यमराज भगे हुए विष्णुके पास पहुँचे । तब विष्णुने सबके साथ जाकर गयासुर का शरीर यज्ञ के लिए माँगा । गयासुर ने यज्ञ के लिए अपना शरीर दे दिया । उसके शरीर पर ही यज्ञ किया गया । ब्रह्मा के आदेश से यम ने 'धर्मशिला' ले जाकर उसे असुर के शरीर पर रख दिया और उसके शरीर को निश्चेष्ट बनाने के लिए देवता उस शिला पर चढ कर कूदने लगे । लेकिन फिर भी वह निश्चेष्ट नही हुआ । तब विष्णु उस शिला पर खडे हुए, तब वह निश्चेष्ट हुआ । उस समय उसने कहा कि अगर आप पहले ही मुझसे कह देते तो मैं निश्चेष्ट हो जाता । तब विष्णु ने प्रसन्न होकर उससे बर माँगने को कहा । गयासुर ने कहा कि आप ऐसा वर दें कि चन्द्र, सूर्य और पृथ्वी के रहने तक सब देवता इस शिला पर वास करें । मेरे नाम पर यह स्थान एक पुण्यक्षेत्र बने और यह तीर्थ सब तीर्थो मे श्रेष्ठ माना जाय ।

तभी से गया का यह क्षेत्र और इसकी यह शिला बहुत पवित्र मानी जाती है । भारत के विभिन्न प्रान्तो से असख्य तीर्थ यात्री प्रति वर्ष गया मे पितरो का श्राद्ध और तर्पण करने के लिए आते हैं । यहाँ यात्री को ४५ स्थानो पर पिंड दान करना पडता है । मगर आजकल कुछ लोग ५ या ३ ही स्थानों पर पिण्डदान करते है । ठोस चट्टान पर बना हुआ 'विष्णुपाद' का मन्दिर गया मे सब से बडा है । कहा जाता हैं कि देवी अहिल्याबाई होलकर ने पुराने मन्दिर के स्थान पर यह नया मन्दिर बनवाया था । गयावाल पण्डे ही इस मन्दिर के मोरूसी पुजारी हैं ।

हिन्दुओ के अतिरिक्त बौद्ध लोगो का भी यह स्थान बहुत बड़ा तीथ रहा है । भगवान बुद्ध को यही पर बोधिसत्व की प्राप्ति हुई थी । गया के समीप ही 'अरूबेला' नामक ग्राममे पीपल के एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ होकर उन्होने बोधिसत्व की प्राप्ति की । अरूवेला मे वहाँ के ग्रामपति की पत्नी 'सुजाता' का आहार लेकर बुद्ध ने अपना कई दिन का उपवास भग किया था और उसी समय वे इस परिणाम पर पहुँचे थे कि काया को उपवास इत्यादि उग्र तपश्चर्या से कष्ट पहुँचा कर कोई भी व्यक्ति मुक्त नही हो सकता । मुक्ति के लिए मध्यम मार्ग ही श्रेयस्कर है ।

सम्राट् अशोक अपने शासन के १० वे वर्ष मे इस पवित्र स्थान की यात्रा को गये थे । और उन्होने यहाँ पर एक विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया था ।

चौथी सदी मे चीनी यात्री फाहियान ने और सातवी सदी के हुएनसाग ने अपने यात्रा विवरण में इस मन्दिर का उल्लेख किया है । वर्तमान मन्दिर उसके काफी समय के बाद बना है । इसकी ऊँचाई १६० फुट और चोडाई ६० फुट है ।

छठी शती मे सिंघल के नरेश ने गया के बौद्ध मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था । ऐसा उल्लेख 'महावश' मे पाया जाता है ।

जिस बोधिवृक्षके नीचे भगवान बुद्धको बोधिसत्व की प्राप्ति हुई थी उस वृक्ष की एक शाखा, सम्राट् अशोक की पुत्री 'सघमित्रा' ने ले जाकर लङ्का के अनुराधापुर नामक नगर मे बौद्धधर्म की स्मृति के रूप मे लगाई थी । वह वृक्ष अभी भी वहाँ पर मोजूद है और उस वृक्ष की एक डाली वहाँ से लाकर वर्तमान सारनाथ के उत्थान के कुछ वर्ष पूर्व यहाँ पर आरोपित की गयी थी ।

(वसु–विश्वकोष – ना० प्र० वि० कोष)

गयादीन दूबे

सन् १८५७ ई० की जन-क्रान्ति मे कानपुर के समीप फतेहपुर शहर के एक क्रान्तिकारी, जिनका जन्म सन् १८०७ ई० के करीब हुआ ।

बाबा गयादीन दूबे फतेहपुर नगर के ३ मील पश्चिम 'कोराई' नामक ग्राम के एक प्रतिष्ठित और दबग व्यक्ति थे । इनके पास घोडे और बहेलियो की एक छोटी सी सेना थी ।

४ जून सन् १८५७ ई० को कानपुर मे विद्रोह भड़कने की खबर जब फतेहपुर पहुँची तो वहाँ के सिपाहियों ने भी ६ जून को विद्रोह कर दिया । उस समय वहाँ के जज 'राबर्ट-टकर' नामक एक अग्रेज थे । उनका बगला वर्तमान फतेहपुर कचहरी के सामने था । ७ जून को इलाहाबाद की फौज ने भी बगावत कर दी और ८ जून को खागा मे दरियाव सिंह की सेना ने अग्रेजो का सामना किया । ऐसे भयकर

वातावरण न बना रहने पर 'टकर' ८ जून को कुदाई गये और उन्होंने बाबा गयादीन से शरण माँगी। बाबा गयादीन ने हरिनाथ सिंह की सेना के साथ अंग्रेजों को परास्त किया था। और वे अंगरेजों के कट्टर दुश्मन थे। फिर भी उन्होंने शरणागत 'टकर' को रक्षा का आश्वासन दिया और उन्हें वापस अपने कस्बे में भेज दिया।

मगर ऐसा कहा जाता है कि गयादीन अपने आश्वासन की रक्षा न कर सके और ६ जून को विद्रोही सैनिकों ने 'टकर' के बंगले को घेर लिया। टकर ने अपनी रक्षा का उपाय न देख कर आत्महत्या कर ली। मगर इसके पहले उसने अपने बक्से की छत पर पेंसिल से लिख दिया कि—'गयादीन दूबे ने मेरे साथ विश्वासघात किया है।

१२ जुलाई को मेजर 'रेनाड' और 'हेवलाक' १४ सौ गोरे, ९ सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और ८ तोप लेकर फतेहपुर पहुँचे और 'टकर' के लिखे हुए शब्दों को देखकर रातोंरात कोराई पर धावा बोलने का निश्चय किया।

यह देखकर गयादीन अपने ५ सौ सम्बन्धियों को लेकर वहाँ से भाग निकले और गंगा पार कर रामपुर पहुँचे। और वहाँ से थरूर गाँव के राजा के यहाँ शरण ली मगर एक धोबी ने इनकी सूचना अंग्रेजों को दे दी। वहाँ से उनको गिरफ्तार करके फतेहपुर की जेल में रखा गया।

उधर हेवलाक ने उनके निवास प्रासाद को तोपों से उड़ा कर धूल में मिला दिया और घर का सारा सामान गाड़ियों पर लादकर फतेहपुर भेजा गया। कहा जाता है कि १७ दिन तक यह सामान ढोया गया। कुछ दिनों के बाद बाबा को फाँसी का आदेश दिया गया। मगर फाँसी देने के पहले ही बाबा गयादीन की जेल में मृत्यु हो गयी।

(साप्ताहिक हिन्दुस्तान ८।१२।६०)

गयासुद्दीन (१)

बंगाल के सुल्तान सिकन्दर शाह के लड़के जो सन् ११६० ई० में बंगाल की गद्दी पर बैठे।

गयासुद्दीन के पिता 'सिकन्दर शाह' की दो बेगमें थीं। एक बेगम से १७ लड़के हुए और दूसरी से एक गयासुद्दीन अकेले थे। गयासुद्दीन के धैर्य और प्रतिभा को देखकर उनकी सौतेली माँ हमेशा उनके विरुद्ध उनके पिता के कान भरती रहती थी। यह रंग-ढंग देखकर गयासुद्दीनने स्वयं आगे बढ़कर, एक फौज इकट्ठी करके विद्रोह कर दिया। इस लड़ाई में सिकन्दर शाह मारे गये और सन् ११६७ ई० में गयासुद्दीन बंगाल के शासक हुए।

गयासुद्दीन ने अपने ७ वर्ष के शासन में अपनी न्याय प्रियता उदारता और विद्या प्रेम का काफी परिचय दिया। पढ़ने लिखने का इनको बहुत शौक था और ये कभी-कभी कविता भी करते थे। (वसु विश्वकोष)

गयासुद्दीन (२)

बंगाल के एक सूबेदार, जिनका समय सन् ११७८ से सन् ११९४ ई० तक रहा।

गयासुद्दीन मध्य एशिया के गोर-राज्य में मध्यम दल वंश में पैदा हुए थे। वहाँ से ये हिन्दुस्तान आये और सन् ११७८ ई० में सम्राट अलामेश ने इन्हें बंगाल का सूबेदार बनाया। मगर कुछ समय पश्चात् ही इन्होंने दिल्ली की मातहती छोड़कर अपने आपको स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। और सन् ११८९ ई० में अपने नाम का रुपया चलाया। इन्होंने कई स्कूल मसजिदें आदि इमारतों का निर्माण करवाया। लोगों को बाढ़ संकट से बचाने के लिए नदियों पर बाँध भी बनवाये। और आसाम तिरहुत त्रिपुरा तथा उड़ीसा के कुछ हिस्से को जीत कर वहाँ के राजाओं से खिराज वसूल किया।

दिल्ली को नजराना न भेजने के कारण सम्राट अलामश फौज के साथ बंगाल पर चढ़ आये। तब गयासुद्दीन ने डरकर बहुत जुरमाना देकर बादशाह की सब शर्तें मंजूर करके सुलह कर ली।

मगर बादशाह के वापस जाते ही इन्होंने पुनः विद्रोह कर दिया। तब उस विद्रोह को दबाने के लिए बादशाह ने पुनः फौज भेजी और सन् ११९४ ई० में ये मार डाले गये।

गयासुद्दीन 'खिलजी'

गुजरात के एक सूबेदार, जो सन् ११९४ ई० में गुजरात की गद्दी पर बैठे। जब ये वृद्ध हो गये तब इनका बड़ा पुत्र नासिर उद्दीन अपने छोटे भाई शुजात खाँ को मार कर सन्

१५०० ई० मे गद्दी पर बैठा। कुछ समय पश्चात् इसने अपने पिता को भी जहर देकर मार डाला।

गयासुद्दीन 'बलबन'

दिल्ली के एक मुसलमान बादशाह, जो सन् १२६६ ई० को फरवरी के महीने मे दिल्ली के तख्त पर बैठे।

गयासुद्दीन बलबन को एक गुलाम के रूप मे सम्राट् अल्तमश ने खरीदा था। और शुरू मे इन्हे बाज उडाने की नौकरी पर रखा था। मगर उस समय इनका एक भाई किसी बडे ओहदे का ओहदेदार था। उसकी वजह से यह शीघ्र ही पञ्जाब के हाकिम बना दिये गये।

सुल्ताना 'रजिया' के समय मे इन्होने विद्रोहियो का साथ दिया था। इससे लडाई मे हारने पर यह पकड लिए गये, मगर कुछ ही दिनो बाद कैदखाने से भागकर इन्होने 'बहराम' को मदद की। बहराम के बादशाह होने पर यह 'रेवाडी' के हाकिम बना दिये गये।

जब सन् १२४६ ई० मे अल्तमश के लडके नासिरुद्दीन बादशाह हुए, तब इनका सितारा चमक उठा और सन् १२६६ ई० के फरवरी महीने मे नासिरुद्दीन के मरने पर अपना नाम 'बलबन' रख कर के दिल्ली के तख्त पर बैठे।

इस व्यक्ति ने हिन्दुओ के प्रति कई जिहाद किये। असख्य काफिरो को मारा, कितनो ही को मुसलमान बनाया, मन्दिरो और मूर्तियो को तोडा और खूब लूटमार की। उसने अल्तमश के ४० समसी गुलाम सरदारो के दल का दमन किया जो उस समय बलबन का भीषण प्रतिद्वन्दी बना हुआ था।

सन् १२६६ ई० म बलबन की मृत्यु हो गयी और उसके बाद ही राज्य मे घोर अराजकता छा गयी।

गयासुद्दीन 'तुगलक'

दिल्ली मे तुगलक वश की स्थापना करने वाला एक तुगलक सरदार, जिसने सन् १३२१ ई० मे दिल्ली के तख्त पर बैठ कर तुगलक-वश की स्थापना की।

सन् १३२० ई० में कुतुबुद्दीन मुबारक शाह की खुसरो के द्वारा हत्या होने पर खिलजी वश का अन्त हो गया। उसके बाद खुसरो के अत्याचारो से तग आकर सरदारो ने उसकी हत्या कर डाली। और उसकी जगह गाजी मलिक को सन् १३२१ ई० मे गयासुद्दीन तुगलक शाह के नाम से गद्दी पर बिठाया।

गयासुद्दीन का बाप सम्राट् 'बलबन' का एक गुलाम था और उसकी माँ एक जाटनी थी। गाजी तुगलक का जन्म भारत मे हुआ था। इसलिए वह दूसरे शासको की तरह धर्मान्ध और क्रूर नही था। उसकी शासन-पद्धति भी व्यवस्थित थी। थोडे ही समय में उसने अपने आन्तरिक शासन को व्यवस्थित कर लिया। और आये दिन मगोलो के होनेवाले आक्रमणो से रक्षा का भी प्रबन्ध कर लिया था। कई हिंदुओ को भी उसने ऊँचे-ऊँचे पदो पर नियुक्त किया था। पाटन के सेठ समरशाह पर उसकी बडी कृपा थी।

उसने अपने पुत्र जूना खाँ को दक्षिण-विजय के लिए भेजा। बारगल की पहली लडाई मे तो जूना खाँ बुरी तरह से हार गया, मगर दूसरी बार उसने काकातीय-राज्य का अन्त करके बारङ्गल और बीदर पर कब्जा कर लिया।

उस समय गयासुद्दीन सुल्तान बङ्गाल के उत्तराधिकार की समस्या को हल करने गये थे। उनके लौटने के पूर्व ही जूना खाँ दिल्ली पहुँच गया और सुल्तान का स्वागत करने के लिए दिल्ली से बाहर लकडी का एक सुन्दर मण्डप बनवाया।

सुल्तान जब अपने पुत्र महमूद के साथ उस भवन मे सो रहे थे तो जूना खाँ ने उस मण्डप को गिरवा दिया। सुल्तान तथा उसके पुत्र उसमे दब कर मर गये।

कहा जाता है कि मुसलमान फकीर निजामुद्दीन औलिया का भी इस षडयन्त्र में हाथ था। जब सुल्तान बङ्गाल से लौट रहे थे, तो मार्ग से उन्होने निजामुद्दीन औलिया को एक पत्र में लिखा था कि—'चाहे आप दिल्ली मे रहें, चाहे मैं रहूँ मगर दोनो एक साथ नही रह सकते।'

इसके जवाब मे निजामुद्दीन ने लिखा था कि—'घबराते क्यो हो, दिल्ली अभी बहुत दूर है।' और सचमुच वह दिल्ली को अपने जीवन मे नही देख सके।

गयासुद्दीन सुल्तान ने दिल्ली के निकट ही तुगलकाबाद नामक एक मजबूत किला बनवाया था और उसी किले मे अपना मकबरा भी अपने जीते जी बनवा लिया था। सन् १३२५ ई० मे मृत्यु के पश्चात् उसे इसी मकबरे में दफनाया गया।

गयासुद्दीन गोरी

मध्य एशिया के गोर प्रदेश का सुल्तान गयासुद्दीन गोरी जिसका शासन सन् ११७३ ई. से सन् १२०३ ई० तक रहा।

सल्जुकी तुर्कों के मशहूर सम्राट 'सिंजर' की मृत्यु सन् ११५६ ई० में हो जाने के बाद सल्जुकी-साम्राज्य बिखरने लगा। इसका फायदा गोर के सरदार गयासुद्दीन और शहाबुद्दीन ने उठाया। गोर में अपना स्वतन्त्र राज्य घोषित कर गयासुद्दीन वहाँ की गद्दी पर बैठा और उसका भाई शहाबुद्दीन गोरी उसका प्रधान सेनापति बना।

सन् ११७३ ई. में गजनी को जीत कर शहाबुद्दीन को वहाँ का शासक बना दिया। इसके बाद गयासुद्दीन ने बामियान तुखारिस्तान कुगनान, हिरात तथा दूसरी पहाड़ी पर कब्जा करके अपने चचा 'मसूद' को इस सारे प्रदेश का शासक बना दिया। इस समय गोरियों का राज्य पूरब में मध्य और विआस तक और पश्चिम में हिरात और खुरासान तक पहुँच गया था।

कुछ समय तक यह राजवंश मुसलिम एशिया के पूर्वी भाग का एक स्वतन्त्र और सबल राजवंश हो गया था। मध्य एशिया के अन्तर्गत इस समय गोरी राजवंश कराखिताई और ख्वारेज्मशाह—ये तीनों शक्तियाँ सबसे बड़ी हो गयी थीं।

गयासुद्दीन के समय में ही शहाबुद्दीन गोरी ने भारतवर्ष पर आक्रमण करना शुरू कर दिया था। मुल्तान और सिन्ध के जीतने के बाद सन् ११७८ ई. में उसने गुजरात पर हमला किया। मगर वहाँ से उसे पराजित होकर वापस लौटना पड़ा। सन् ११९१ ई. दिल्ली के समीप 'तराइन' के मैदान में पृथ्वीराज चौहान के साथ उसका ऐतिहासिक युद्ध हुआ जिसमें उसकी करारी हार हुई और वह पृथ्वीराज के हाथों पकड़ा गया। बहुत अनुनय-विनय करने पर पृथ्वीराज ने उसे छोड़ दिया।

उसके बाद सन् ११९२ ई. में एक बड़ी सेना के साथ उसने दिल्ली पर फिर आक्रमण किया। इस बार उसने पृथ्वीराज को परास्त करके उसे पकड़ लिया और फिर मार डाला।

इसके पश्चात् उसने अजमेर पर भी कब्जा कर लिया और दिल्ली में अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को राज्यपाल बना कर 'इस्लामी-सल्तनत' की नींव डाल दी।

चंगेज खाँ के मशहूर आक्रमण के पश्चात् मध्य एशिया का शक्तिशाली गोरी-राज्य समाप्त हो गया। किन्तु इस वंश ने भारतवर्ष में जिस जबर्दस्त इस्लामी शक्ति की नींव डाली, वह कई सदियों तक चलती रही और उसने भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग पर अपना स्थायी प्रभाव डाला।

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

हिन्दी के एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि जिनका जन्म सन् १८८३ में हुआ।

प० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' हिन्दी के बड़े भावुक और सरल हृदय कवि हैं। ये पुरानी और नई दोनों चाल की कविताएँ लिखते हैं। इनकी राष्ट्रीय कविताएं 'त्रिशूल' के नाम से और साहित्यिक कविताएं 'सनेही' के नाम से छपती थीं। उर्दू भाषा में भी इनकी कविताएं अच्छी होती थीं। इनकी काव्य-पुस्तकों में कुसुमांजली, प्रेमपचीसी, त्रिशूलतरंग इत्यादि पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। सन् १९२१ से प्रारम्भ होने वाले स्वाधीनता-आन्दोलन के युग में इनकी राष्ट्रीय कविताओं की बड़ी धूम थी। सनेही जी के सम्पादन में एक 'सुकवि' नाम का काव्यमय मासिक पत्र भी निकलता था।

गरबा–नृत्य

गुजरात प्रान्त का एक सुप्रसिद्ध लोकनृत्य जो विशेषकर नवरात्र तथा अन्य सांस्कृतिक उत्सवों के समय गुजरात में अभिनीत होता है।

जिस प्रकार केरल अपने कथाकली नृत्य के लिये मणिपुर अपने मणिपुरी नृत्य के लिये तथा पंजाब अपने भांगड़ा नृत्य के लिए प्रसिद्ध है। उसी प्रकार गुजरात को भी अपने गरबा नृत्य का गौरव है।

गरबा-नृत्य के अन्तर्गत भी दूसरे नृत्यों की तरह राधा और कृष्ण के अमर प्रेम की कहानी प्रदर्शित की जाती है। नृत्य के प्रारम्भ में राधा और कृष्ण के मिलन और विरह के भावों को प्रदर्शित किया जाता है। राधा गोपियों के साथ नृत्य करती हुई मन की व्यथा का प्रदर्शन करती है और कृष्ण के आते ही प्रेम के आवेग में उनके साथ रासनृत्य करने लगती है। राधा और कृष्ण का यही प्रेम भाव गुजरात के

घरो मे पति पाली के मिलन विछोह, देवर भाभी के रसीले संवादो के रूप मे गरबा नृत्य के अन्दर मुखरित हो जाता है।

गुजराती वालाएँ रास के डण्डो पर समूहबद्ध नृत्य करती हुई—

"मेहन्दी बायी मालवेमें, एनो रग गयो गुजरात" के मन-मोहक सगीत के साथ सारे वातावरण को मधुमय बना देती है। देवर-भाभी के हाथो पर मेहदी का रग न देख कर उससे कारण पूछता है तो भाभी जवाव देती है—

हाथ रगी ने करू श्रू रे देवरिया
ऐने जोनारो छे परदेशरे।

हे देवरिया हाथ रचा के क्या करू, इनको देखने वाला तो परदेश मे है।

इसी प्रकार कृष्ण के मुरली नाद को सुनकर गुजराती वालाए "मुरली क्यारे बगाडी" की धुन मे अत्यन्त मनो-मोहक नृत्य करती हैं।

इसी प्रकार और भी भिन्न-प्रकार के प्रेम, मिलन वियोग और क्रोध के भावो का इस नृत्य के द्वारा वडा सुन्दर अभिनय किया जाता है।

गर्दे—लक्ष्मण नारायण

हिन्दी भाषा के एक सुप्रसिद्ध सम्पादक, वक्ता और लेखक जिनका जन्म १८८९ काशी मे हुआ था।

श्री लक्ष्मणनारायण गर्दे हिन्दी-पत्रकारिता के क्षेत्र मे बहुत पुराने और सफल सम्पादक रहे। सन् १९१९ मे जब भारतीय पत्रकार कला अपनी शैशव अवस्था मे थी। लक्ष्मण नारायण गर्दे हिन्दी के सुप्रसिद्ध और प्राचीन पत्र दैनिक भारत मित्र के प्रधान सम्पादक रहे।

सन् १९२४ मे गर्देजी आर० एल० बर्म्मन के द्वारा प्रकाशित 'श्रीकृष्ण-सन्देश' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक हुए। उस जमाने में "श्रीकृष्ण सन्देश" एक उच्चस्तरीय पत्र था।

पत्रकारिता के अतिरिक्त प० लक्ष्मण नारायण गर्दे कई साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक, सस्थाओं में भी उच्च पदो पर आसीन रहे। काशी की "राष्ट्रकवि परिषद् नामक सस्था से भी इनका वहुत अधिक सम्बन्ध था।

पं० लक्ष्मण नारायण गर्दे का धार्मिक जीवन भी वहुत महत्वपूर्ण रहा। उनके प्रवचन वहुत उच्चकोटि के होते थे। महामना मालवीय जी इनके प्रवचनो को वडे आग्रह के साथ सुनते थे। अपने देहान्त के कुछ समय पूर्व उन्होने प० लक्ष्मणनारायण गर्दे को बुला कर उनका प्रवचन करवाया था। उस प्रवचन को सुनकर मालवीयजी की आंखोंसे आसुओ की धारा वह चली थी।

राष्ट्रपति राधाकृष्णन उस समय वनारस विश्वविद्यालय के उपकुल पति थे। लक्ष्मण नारायण गर्दे से 'गीता" के दार्शनिक महत्व पर वे विचार विनिमय करते रहते थे, गर्देजी की विद्वता से वे प्रभावित थे।

गरहार्ट (चार्ल-फ्रेडारिक)

एक फ्रेंच रसायन-शास्त्री। जिनका जन्म सन् १८१६ ई० मे 'स्ट्रासवर्ग' नामक स्थान पर हुआ और मृत्यु सन् १८५६ ई० मे हुई।

सन् १८४४ ई० मे पेरिस-विश्वविद्यालय से, इन्होने रसायन-शास्त्र मे 'डाक्टरेट' की उपाधि प्राप्त की। सन् १८५२ ई० मे इन्होने सबमे पहले 'एसिड ऐन हाइड्रा-इड' को तैयार किया। इसके पहले सन् १८३८ ई० मे इन्होंने 'कार्बोनिक' यौगिको की रेडिकल थ्योरी को पुनर्जीवित करके रेसीडियुअल थ्योरी (Residual Theory) की स्थापना की।

कार्बोनिक रसायन के विकास मे इनके अनुसन्धान बडे महत्वपूर्ण थे।

गरीबदास (१)

पूर्वी पञ्जाब मे 'गरीब-पन्थ' के प्रवर्तक। जिनका जन्म सन् १७१७ ई० मे रोहतक जिले की झज्झर तहसील के 'छुडानी' नामक ग्राम में हुआ था और वही पर सन् १७७८ ई० मे इनका देहान्त हो गया।

गरीबदास जाट जाति के थे। ऐसा कहा जाता है कि

सिर्फ १२ वर्ष की उम्र में स्वप्न में इन्हें कबीर साहब के दर्शन हुए और तभी से ये उनको अपना गुरु मानने लगे।

गरीबदास की बानी १६ अंगों में विभाजित है और उसमें साखियों पदों अथवा, रेखता झूलना इत्यादि अनेक प्रकार के छन्दों में उनके भावों को बतलाया गया है। गरीबदास ने परमात्मा को सत्पुरुष का नाम दिया है। और उसका परिचय निराकार निर्विशेष निर्लेप और निर्गुण कहके दिया है और बतलाया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह उससे भिन्न नहीं। भिन्नता का अनुभव केवल भ्रान्ति के कारण होता है। कहते हैं—

सर्वे की सुरत सब सील की कोट है।
अजब अस्थली रचा अपार है रे!
दास 'गरीब' वह अमर बिज आप है—
एक ही फूल-फल डार है रे!

अपने सद्गुरु की प्रशंसा करते हुए वह कहते हैं—
ऐसा सत् गुरु हमें मिला तेज पुंज का अंग।
झिलमिल नूर-जहूर है रूप-रेख नहिं रङ्ग॥

गरीबदास (२)

सुप्रसिद्ध सन्त दादू दयाल के पुत्र और शिष्य जिनका जन्म सन् १५७५ ई० में हुआ।

२८ वर्ष की अवस्था में ये महात्मा दादूदयाल की गद्दी पर बैठे। ये एक महात्मा होने के साथ ही कुशल कवि गायक और वीणाकार भी थे। इनकी प्रशंसा 'राघोदास' ने भी अपनी भक्तमाल में की है। इनकी स्मृति में 'नरेना' के अन्तर्गत एक 'गरीब-सागर' तालाब भी बना हुआ है। इनकी साखियों की संख्या २१ हजार बतलाई जाती है मगर इस समय बहुत ही थोड़ी साखियाँ उपलब्ध हैं।

गरीबदास के समय में उनके पन्थ की विशेष तरक्की नहीं हुई। क्योंकि इनमें संगठन शक्ति की कमी थी। जिसके कारण उनके पन्थ की प्रगति में शिथिलता आने लग गयी थी। यह देखकर उन्होंने पन्थ की गद्दी को छोड़ दिया और अपने छोटे भाई मिस्कीनदास को उसका उत्तराधिकारी बना दिया।

सन् १६३६ ई० में इनका देहान्त हो गया।

गरुड़ पुराण

महर्षि वेदव्यास रचित १८ पुराणों में से १७ वां प्रसिद्ध पुराण जिसको भगवान् विष्णु ने गरुड़ से कहा था।

इस पुराण में १६ हजार श्लोक हैं, और यह पूर्वखण्ड और उत्तर खण्ड (प्रेतकल्प) नामक दो विभागों में विभक्त है। पूर्वखण्ड में पुराणोपक्रम सूर्यादि पूजाविधि दीक्षा-विधि नव-व्यूहार्चन विधि वैष्णव पूजा-विधान योगाध्याय-विष्णुसहस्र नाम कीर्तन मृत्युञ्जय-पूजन मालामंत्र शिव पूजा त्रैलोक्य-मोहन-श्रीधरार्चन चक्रार्चन देव-पूजा, सन्ध्योपासित दुर्गार्चन वास्तुकला मूर्तिप्रतिष्ठा प्रासाद योग दान-धर्म प्रायश्चित-विधि, नरकों का वर्णन सूर्य-व्यूह, ज्योतिष सामुद्रिक, नवरत्न परीक्षा तीर्थ-माहात्म्य गया-माहात्म्य, मन्वन्तराख्यान पित्राख्यान श्राद्ध-कर्म वर्णाश्रम धर्म ग्रहयज्ञ विनायक-पूजा आगम-वर्णन प्रेतशौच सूर्य और चन्द्र वंशों की वंशावलियां अवतार-वर्णन रामायण हरिवंश भारतोपाख्यान आयुर्वेद वर्णन तथा व्याकरण छन्द सदाचार, ब्रह्मामृत वेदान्त सांख्य-सिद्धान्त और गीतासार का वर्णन किया हुआ है।

इस प्रकार इस विभाग में इतिहास धर्मशास्त्र दर्शनशास्त्र, योग शास्त्र ज्योतिष सामुद्रिक रत्नपरीक्षा इत्यादि सभी प्रकार के शास्त्रों का समावेश हो गया है।

उत्तरखण्ड अर्थात् प्रेतकल्प में धर्म की उत्पत्ति जीव का नाना योनियों में भ्रमण का वर्णन और्ध्वदैहिकदानादि का वर्णन वृषोत्सर्ग कर्म-विपाक यमलोक और ब्रह्माण्ड की स्थिति सृष्टि बीज और प्रलय-काल का वर्णन किया गया है।

गरोठ

मध्य प्रदेश के मन्दसौर जिले की एक तहसील। जो पहले इन्दौर-राज्य के रामपुरा-भानपुरा जिले में पड़ता था और इस जिले का प्रमुख स्थान था।

गरोठ पहले इन्दौर राज्य में रामपुर, भानपुर जिले का एक प्रधान राजकीय केन्द्र था। १६ वीं शताब्दी में यह रामपुरा के चन्द्रावती के अधिकार में था। उसके बाद यह जयपुर के अधिकार में गया और जयपुर से यह होल्कर के अधिकार में आया।

इस स्थान पर सन् १८०४ ई० मे अँग्रेज सेनापति कर्नल 'मानसून' और 'यशवन्त राव' होल्कर के बीच मे भयकर लडाई हुई थी। जिसमे कर्नल मानसून को यशवन्त राव ने बुरी तरह से हराया था और 'हिंगलाज गढ' का किला वापस ले लिया। इस लडाई मे मानसून के सैकडो आदमी मारे गये और उसके सामान को लूट लिया गया।

मानसून के इस पराजय से यशवन्त राव की सैनिक कीर्ति बहुत बढ गयी थी। मगर उसके बाद दूसरी लडाई मे यशवन्त राव की पराजय हो गयी और सन् १८११ ई० मे भानपुरा स्थान पर उनका स्वर्गवास हो गया।

गरोठ के समीप ही 'चन्दवासा' नामक ग्राम मे धर्म राजेश्वर का पहाड मे 'खोदा हुआ' एक बहुत सुदर मदिर बना हुआ है जिसके सम्बध मे ऐसी किम्वदती है कि यह मदिर भीम के द्वारा बनाया हुआ है।

गलित-कुष्ठ (Leprorsy)

मानव-शरीर मे लगनेवाली एक भयकर व्याधि–जिसमे मनुष्य के शरीर का एक-एक अग गलकर झडने लगता है। और उसका सारा शरीर पीबमय और बदबूदार हो जाता है।

मानवीय रोगो के इतिहास मे जितनी भयकर, गन्दी और दु खदायी बीमारी गलित कुष्ठ की समझी जाती है उतनी दूसरी कोई भी नहीं। ससार के सब देशो मे इस बीमारी के सम्बन्ध में अनेकों प्रकार के विश्वास प्रचलित हैं। इस बीमारी से ग्रसित व्यक्तियों को पूर्वजन्म का घोर पापी समझा जाता है और ऐसे लोग समाज से ही नही मानवीय सहानुभूति के दायरे से भी बाहर समझे जाते हैं।

प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से मालूम होता है कि ईसा के जन्म से करीब पन्द्रह सौ वर्ष पहले मिश्र से सारे कोढियो को जलावतन कर दिये गये थे।

कई सदियो तक यूरोप मे भी कोढ़ियो को शहरो मे कदम रखने की मनाई थी। उन्हें काले चोगे पहन कर, लकडी से खट्-खट् की आवाज करते हुए चलना पडता था। ताकि लोग पहले ही से दूर हो जाय। दिन मे शहर पनाह से बाहर एक टीले पर उनका भोजन रख दिया जाता था। जिसे उठाने के लिए वे केवल रात के समय जा सकते थे।

चीनी इतिहास मे अठारहवी सदी के एक मडारिन अफसर का जिक्र मिलता है जिसने दावत के बहाने एक स्थान पर सब कोढियो को इकट्ठा कर उस मकान मे आग लगवायी थी जिससे सब कोढी वही पर जलकर राख हो गये। थोडे लोग जिन्होने भागने की कोशिश की वे सिपाहियो की गोलियो से भून दिये गये।

आजकल के युग मे कोढियो पर कोई अत्याचार तो नही होता। मगर इस रोग के सम्बन्ध मे प्रचलित अन्ध विश्वास अब भी जारी है। इस समय ससार मे कोढ-ग्रस्त लोगो की सख्या एक करोड चालीस लाख है। दूसरे तमाम रोगो ने मिलकर इतने लोगो को अपग नही बनाया जितने अकेले इस रोग ने।

कुष्ठ रोगियो की सेवा मे ईसाई मशीनरीयोने बडा महत्व पूर्ण भाग अदा किया है।

भारत वर्ष में महात्मा गाधी ने भी इस रोग से पीडित रोगियो की सेवा के सम्बध मे बहुत दिलचस्पी ली। उन्होने परचुरे शास्त्री नामक साबरमती आश्रम के एक सहयोगी को गलित कुष्ठ की बीमारी होजाने पर वर्धा मे स्वय अपने आश्रम मे रखा, और स्वय अपने हाथो से उनकी मालिश वगैरह उपचार करते थे।

इसी परम्परा मे १ अगस्ट सन् १९५१ के दिन बाबा राघवदास ने गोरखपुर मे कुष्ठ सेवाश्रम की स्थापना की। यह सस्था तब से अभी तक कुष्ठ सेवा के क्षेत्र मे अपना कार्य कर रही है।

लगभग इन्ही दिनो सेवाग्राम वर्धा मे डॉ० वाडे करने 'गाँधी-स्मारक कुष्ठ प्रतिष्ठान' के नाम से कुष्ठ रोगियो के लिए एक आश्रम की स्थापना की। इस प्रतिष्ठान ने कुष्ठ रोग की नवीन आविष्कृत दवा 'सल्फोन' की सहायता से कुष्ठसेवा के क्षेत्र मे नवीन सफलता प्राप्त की। अब कुछ खास तरह के छूत किस्म के कुष्ठ को छोडकर शेष रोगियो को इस चिकित्सा के द्वारा बस्ती मे रखकर ही रोग मुक्त कर दिया जाता है।

सन् १९५८ मे गाँधी कुष्ठ प्रतिष्ठान द्वारा ईजाद इस प्रणाली की प्रशसा टोकियो (जापान) मे हुई अन्तर्राष्ट्रीय कुष्ठ काग्रेस मे की गई। और वहा भी इस प्रणाली को अपनालिया गया। इसी से प्रभावित होकर जापान के एशियायी कुष्ठ

मिशन ने बीस लाख रुपये की लागत से आगरा में एक कुष्ठ केन्द्र की स्थापना की। इस केन्द्र में गांधी कुष्ठ प्रतिष्ठान की प्रणाली पर ही कुष्ठ सेवा का काम चलाया जा रहा है। भारत सरकार भी कुष्ठ उन्मूलन के राष्ट्रीय कार्य-क्रम के अन्तर्गत कई राज्यों में अग्रगामी योजनाएं चला रही है। जिससे भारत के १६ लाख कुष्ठ रोगियों को राहत मिल सके।

डा० पालब्रेंड की कुष्ठ-सेवा

कुष्ठरोग की चिकित्सा के अन्तर्गत इंग्लैण्ड के डा० पालब्रेंड ने भारत के वैल्लोर अस्पताल में बड़ी सफलता प्राप्त की है। वे सन् १९४७ में वैल्लोर आये व अगले वर्ष उनकी पत्नी मार्गरेट भी आ पहुंची। मार्गरेट भी एक सर्जन महिला हैं।

पालब्रेंड और मार्गरेट आज के चिकित्सा जगत् के सबसे अनोखे दम्पतियों में हैं। पालब्रेंड ने हजारों कोढ़ियों को पुन: अपने हाथों का उपयोग करने के योग्य बनाया है और मार्गरेट ने हजारों कोढ़ियों को अन्धेपनके खतरे से उबारा है।

वैल्लोर में आते ही उन्होंने कोढ़ के सम्बन्ध में अपनी खोजें चालू कर दी। शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि अभी तक चिकित्सा जगत् में कोढ़ के सम्बन्ध में जो धारणाएं हैं वे सब पुरानी और मध्य युगीन हैं।

वैसे यह बात काफी समय से ज्ञात थी कि तपेदिक की तरह कोढ़ के भी कीटाणु होते हैं। उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में हैनरिक हेन्सन नामक चिकित्सा शास्त्री ने इस बात का पता लगाया था कि तपेदिक की तरह कोढ़ के कीटाणु भी गांठे उत्पन्न कर देते हैं जो मटर के दाने से लेकर बेर के बराबर होती हैं। और ये मुँह पर गालों पर, हथेलियों पर, और पांवों पर निकलती हैं। और इन्हीं से ग्रसित अङ्ग गलना शुरू हो जाते हैं।

लेकिन कोढ़ आक्रांत कोषों के सम्बन्ध में अब तक बहुत कम अनुसंधान किये गये थे। क्या कुष्ठग्रस्त अवयवों के कोषों और स्वस्थ कोषों में कोई अन्तर होता है। क्या अवयवों के गलने में कुष्ठ के कीटाणु सीधे कारण बनते हैं। डा० ब्रैंड की खोज से यह एक आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि स्वस्थ कोष और कुष्ठ-आक्रान्त कोष में कोई अंतर नहीं होता। हां इतना जरूर होता है कि कुष्ठ के कीटाणु स्नायुओं के सिरों को बेकार बना देते हैं जिससे वे संज्ञा-शून्य हो जाते हैं। लेकिन कोषों में कोई विकृति नहीं होती।

इस जानकारी के प्राप्त होने पर उन्होंने कोढ़ियों के हाथों की रक्षा के लिये विशेष इन्तजाम बनाये और इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाने लगा कि जरा जखम पर तुरंत मरहम पट्टी करदी जाय। जिससे व्रण न बनने पाये।

इसका फल बड़ा चमत्कार पूर्ण हुआ। नये घावों की संख्या घट गयी। कोढ़ियों की काम करने की शक्ति भी बढ़ी। और चिकित्सा को एक सही मार्ग मिल गया।

साथ ही डा० पालब्रेंड ने अपना मुख्यकाम अर्थात् हाथों का पुनर्निर्माण, सिकुड़ी हुई हड्डियों का सीधी करना और मांस पेशियों को सक्रिय बनाना जारी रक्खा।

कोढ़ की एक अति भयङ्कर और प्रसिद्ध निशानी है नाक का धस जाना। खोज करते करते वे इस परिणाम पर पहुँचे कि कोढ़ के कीटाणुओं के असर से नाक की श्लेष्मिक झिल्ली (म्यूकस मैम्ब्रेन) सिकुड़ जाती है और उस झिल्ली से जुड़ी हुई नाक की कच्ची हड्डी भीतर खिंचजाती है। वास्तव में नाक नष्ट नहीं होती वह खोपड़ी में घुस जाती है। तब डा० पालब्रेंड ने ऑपरेशन के द्वारा नाक को भीतर से ऊपर उठाने का प्रयोग प्रारम्भ किया। बड़ा कठिन प्रयोग था पर अब तो संसार के कई अस्पतालों में इस ऑपरेशन के द्वारा कोढ़ के रोगियों की नाक ठीक की जाने लगी है।

इसके बाद आँख का नम्बर आता है। कोढ़ जब बहुत बढ़ जाता है तब रोगी को अंधा भी कर देता है। लेकिन डॉ० पाल ब्रैंड इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अंधापन कोढ़ का आनुषंगिक परिणाम है। उनकी यह धारणा हुई कि विटामिन "ए" की कमी से मोतियाबिंद होता है जो इलाज न होने पर रोगी को अंधा कर देता है। इसलिए उन्होंने कोढ़ियों के भोजन में विटामिन "ए" की मात्रा बढ़ा दी। जिससे मोतियाबिन्द के नये केस होना कम हो गये। पुराने मोतियाबिंद वाले रोगियों का ऑपरेशन किया जाने लगा।

पालब्रेंड की पत्नी सफल मार्गरेट मोतियाबिंद के ऑपरेशन में सिद्ध हस्त हैं। वे मोतियाबिन्द के एक एक दिन में सौ सौ ऑपरेशन तक कर डालती हैं। जब कि यूरोप और अमेरिका में दिन भर में दस या बारह ऑपरेशन काफी समझे जाते हैं। लेकिन वैल्लोर सर्जनों के सामने हजारों रोगी

अंधे पन से त्राण पाने के लिये कतार बाध कर खडे रहते है, इसलिये ऑपरेशन की ऐसी विधियाँ अपनायी गई हैं जिनके द्वारा जल्दी से जल्दी काम हो सके।

इस प्रकार डॉ० पालब्रेड और उनकी सर्जन पत्नी मार्गरेट दोनो हजारो कोढ़ियो के निराश जीवन में आशा का प्रकाश पैदा करने के उद्योग में अपना जीवन लगा रक्खा है।

(नारमन कजिंस–कादम्बिनी)

गवर्नर-जनरल

ब्रिटिश शासन के उपनिवेशो के अतर्गत सम्राट् का प्रतिनिधित्व करने वाला एक उच्च स्तरीय पद जिसे गवर्नर-जनरल कहते थे।

ब्रिटिश-साम्राज्य का विस्तार जब ससार के दूसरे-दूसरे देशो मे होने लगा। तो वहाँ की व्यवस्था करने के लिये विशेष विधान की रचना करनी पडी। शुरू-शुरू मे 'ईस्ट-इण्डिया कम्पनी' ने बगाल, मदरास तथा बगाल मे शासन-व्यवस्था के लिए गवर्नरो की नियुक्ति की। मगर जब शासन का विस्तार अधिक हो गया, तब उसकी व्यवेस्था के लिये एक केन्द्रीय शक्ति की आवश्यकता महसूस हुई।

सन् १७७३ ई० मे 'रेग्यूलेटिंग एक्ट' पास कर के इग्लैंड की पार्लियामेट ने इस केन्द्रीय शक्ति के लिये गवर्नर जनरल पद की व्यवस्था की और उसी वर्ष 'वारेन-हेस्टिंग्स, को पहला गवर्नर-जनरल बनाया गया। और उसकी सहायता के लिए एक कमेटी का सगठन किया गया। इसके बाद जो-जो कठिनाइयाँ सामने आती गयी त्यों-त्यो इस एक्ट मे सुधार करने के लिये सन् १७८१ ई० और सन् १७८६ ई० मे नये एक्ट (कानून) बनाए गये।

सन् १८५८ ई० मे महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा के द्वारा भारतवर्ष का शासन अपने हाथ मे ले लिया। उसके बाद गवर्नर-जनरल को 'वाइस राय' की उपाधि प्राप्त हुई और 'लार्ड कैनिंग' को भारत वर्ष का पहला वायस राय और गवर्नर-जनरल बनाया गया। अब गवर्नर-जनरल का पद भारत के शासक के रूप मे और वायसराय का पद इङ्गलैंड के सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप को उद्घोषित करता था।

सन् १९०९ ई, १९१९ और १९३५ ई० मे पास किए गये भारतीय एक्टो के द्वारा सम्पूर्ण शासन का अधिकार गवर्नर-जनरल के हाथो मे रखा गया था। इस प्रकार भारत का गवर्नर-जनरल एक ऐसी अनियन्त्रित सर्वोच्च सत्ता का अधिकारी था, जो शायद रूस के जार के सिवाय और किसी को भी प्राप्त नही थी।

भारत वर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के आखिरी गवर्नर-जेनरल और वायसराय लार्ड माउट बेटन थे।

ग्वालियर

वर्त्तमान मे मध्य प्रदेश राज्य के गिर्द जिले का प्रधान शहर। उसके पहले मध्य भारत का एक प्रसिद्ध राज्य। इसके उत्तर मे चम्बल नदी और आगरा, दक्षिण मे विदिशा और भोपाल, पूर्व मे झासी जिला और विन्ध्य प्रदेश और पश्चिम मे झालावाड और कोटा राज्य पडता था।

गवालियर का इतिहास बहुत प्राचीन है। इस नगरी ने प्रकृति के कई उत्थान और पतन तथा वैभव और नाश के दृश्य देखे है।

इस समय जिस शहर को गवालियर कहते है वह वस्तुत तीन भागो मे बटा हुआ है। जिसमे एक भाग को लश्कर कहते है जिसका निर्माण दौलत राव शिन्दे की फौजी छावनी के रूप मे हुआ था। दूसरा भाग मुरार है जो अगरेजो की सैनिक छावनी के रूप मे प्रयोग किया गया था और तीसरा भाग प्राचीन गवालियर और उसका किला है जो अनेक ऐतिहासिक घटनाओ के साथ सम्बद्ध है।

गवालियर के किले का निर्माण कब हुआ इसके सम्बन्ध मे कोई मजबूत ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नही है। प्राचीन काल मे खङ्गराय नामक एक कवि हुआ है। उसने अपनी पुस्तक मे गवालियर किले की स्थापना और उसके राजाओ की वशावली का परिचय दिया है। मगर उसमे ऐतिहासिक तथ्यो की अपेक्षा कल्पनासम्भूत घटनाएँ अधिक दिखाई पडती हैं।

फिर भी इतना कहा जा सकता है इस प्रान्त का वास्तविक इतिहास कछवाहा और प्रतिहार राजवश के समय से ही प्रारम्भ होता है। कछवाहो और प्रतिहारो के पहले इस क्षेत्र में ग्वालियर की अपेक्षा

विदिशा (भेलसा) का विशेष महत्व था और ग्वालियर विदिशा के अन्तर्गत समझा जाता था।

खड्गराय के कथनानुसार कछवाहा वंशी कुन्तलपुरी के राजा सूर्यसेन को कुष्ठ रोग हो रहा था। एक दिन वे गोप गिरि (ग्वालियर का पुराना नाम गोपगिरि था) के जंगल में शिकार के लिए गये। वहां पर उन्हें जोर की प्यास लगी। पानी की तलाश में वे 'ग्वालिपा' नामक एक साधु की गुफा में पहुंचे। उस साधु ने अपने कमण्डल में से ठण्डा जल निकाल कर उन्हें पिलाया। उस जल के पीते ही वे कुष्ठ रोग से मुक्त हो गये। यह देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उस साधु से कुछ सेवा बतलाने की प्रार्थना की। तब साधु ने कहा कि अगर तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो इस पास वाले तालाब को अधिक विस्तृत करवा कर यहां पर एक मजबूत दुर्ग बनवा दो। तब राजा ने वहां एक मजबूत दुर्ग का निर्माण करवाया और उस दुर्ग का नाम उन्हीं महात्मा 'ग्वालिपा' के नाम पर 'ग्वालियर' रखा। और उस तालाब का नाम राजा के नाम पर 'सूर्य-कुण्ड' रखा गया।

आठवीं और नवीं सदी में जब कन्नौज पर परम प्रतापी प्रतिहार राजवंश का शासन स्थापित हुआ तो प्रतिहार राजा मिहिर भोज ने मालवा और ग्वालियर को भी जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। मगर ऐसा मालूम होता है कि प्रतीहारों के जीतने के पहले भी ग्वालियर पर कछवाहों का अधिकार था। क्योंकि मिहिरभोज के शिलालेखों से मालूम होता है कि उसने ग्वालियर का राज्य कछवाहों से छीना था। इससे खड्गसेन कवि की यह बात भी सही हो जाती है कि ई० सन् २७५ में जिस सूर्यसेन ने ग्वालियर दुर्ग का निर्माण करवाया था वह भी कछवाहा था।

कछवाहा राजवंश

कछवाहा राजवंश के कई शिलालेख इस समय उपलब्ध हैं। उनमें से दो विशेष महत्वपूर्ण हैं। एक ग्वालियर के सास बहू के मन्दिर से मिला है और दूसरा ग्वालियर से ७६ मील की दूरी पर दूब कुण्ड के जैन मन्दिर से मिला है।

इन शिलालेखों से मालूम होता है कि कछवाहों का राज्य पूर्व में ग्वालियर राज्य के नरवर नामक स्थान पर था जो प्राचीनकाल में 'निषध' देश के नाम से प्रसिद्ध था।

इस राजवंश में वज्रदामन नामक राजा हुआ जिसने कन्नौज के प्रतिहार राजा विजयपाल प्रतिहार को हराकर ई० सन् ९७७ के लगभग ग्वालियर में अपना राज्य स्थापित किया। इस शिलालेख में उसने अपने को 'महाराजाधिराज' लिखा है। इससे मालूम होता है कि उस समय वह स्वतंत्र रहा होगा। बाद में सम्भव है उसे बुंदेलखण्ड के चंदेलों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा होगा। क्योंकि अलबेरूनी ने अपने विवरण में ग्वालियर और कालिंजर के किलों पर चंदेलों के अधिकार होने की बात लिखी है। वज्रदामन का पुत्र मंगलराज और मंगलराज का पुत्र कीर्तिराज हुआ। कीर्तिराज के समय में ही सन् १ २७ में महमूद गजनवी ने ग्वालियर पर आक्रमण किया मगर कीर्तिराज ने गजनवी को १ हाथी भेंट करके सुलह कर ली।

कीर्तिराज के पश्चात् क्रम से मूलदेव देवपाल पद्मपाल और महीपाल ग्वालियर की गद्दी पर बैठे। मूलदेव का दूसरा नाम त्रैलोक्य मल्ल और देवपाल का दूसरा नाम अपराजित था।

ग्वालियर के किले में जो सास बहू का सुंदर मंदिर बना हुआ है वह इसी देवपाल के पुत्र पद्मपाल ने बनवाना प्रारंभ किया और उसके पुत्र महीपाल ने जिसका नाम भुवनैक मल्ल भी था इस मंदिर को पूरा करवाया और सारा वृतांत शिलालेख में खुदवा कर उस मंदिर में लगा दिया। यह मंदिर भगवान विष्णु का है और सन ११ ८ में इसका निर्माण पूरा हुआ।

ग्वालियर गजेटियर में यह भी उल्लेख है कि सन ११२९ में कन्नौज के प्रतिहारों ने यह किला कछवाहों से छीन लिया। मगर प्रतिहार राजा मिहिरभोज के शिलालेख से तो यह पता लगता है कि उसने नवीं शताब्दी में ही ग्वालियर का किला कछवाहों से छीन लिया था और उसके बाद कछवाहा राजा वज्रदामन ने वापस उसे प्रतिहारों से जीता था। सन् ११२९ तक तो कन्नौज का प्रतीहार राजवंश एक प्रकार समाप्त ही हो गया था और कन्नौज पर गहरवालों का झण्डा फहराने लगा था। यह हो सकता है कि प्रतिहारों की किसी दूसरी शाखा ने इसे कछवाहों से छीन लिया हो।

इस लिए सन ११९६ में जब मुहम्मद गोरी का ग्वालियर पर आक्रमण हुआ उस समय ग्वालियर पर राज्य करने

वाला 'सोलख' नामक राजा कछवाहा या प्रतिहार बश का होना चाहिए।

जो हो, मुहम्मद गौरी के आक्रमण के पश्चात् यह किला कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथ मे चला गया।

इसके पश्चात् सन् १२९८ तक गह किला मुसलयानो के अधिकार मे रहा। बादमे तैमूर के आक्रमण के समय इस किले पर तोमर राजवश के राजा बीरसिंह देव ने अधिकार कर लिया।

तोमर–राजवंश

वीरसिंह देव के पश्चात् तोमर राजवश मे वीरमदेव, ढोलासहाय, गणपति देव और डूगर सिंह राजा हुए। इस समय मे तोमर राजबश का प्रताप बहुत बढ़ गया था। राजा डूंगर सिंह ने ३० वर्ष राज्य किया। इनके समय मे यहाँ पर वास्तु कला का बहुत विकास हुआ। डूगर सिंह ने गवालियर किले के भीतर उसकी दीवारो पर कई विशाल जिन मूर्तियो की खुदाई करवाई थी। यहाँ पर बनी हुई आदि नाथ की प्रतिमा जो लगभग ५० फुट ऊची है मूर्ति निर्माण का यह कार्य्य करीब ३३ वर्षो मे पुरा हुआ। डूगर सिंह के पुत्र कीर्ति सिंह ने इसे पूरा किया। डूगर सिंह के बाद उनके पुत्र कीर्ति सिंह या किरण राय, उनके बाद कल्याण मल राजा हुए।

डूगर सिंह का जैन धर्म पर बड़ा विश्वास था और इन्हो ने कई जैन कलाकृतियों का निर्माण करवाया।

सन् १४८६ मे कल्याण मल के पुत्र मानसिंह ने गवालियर का शासनभार सम्हाला। राजा मान सिंह गवालियर के इतिहास मे बडे प्रतापी हुए। इनके समय मे गवालियर राज्य अपने वैभव की चरम सीमापर था और यह नगर इन्ही के समय मे सगीतकला का प्रसिद्ध केन्द्र बना।

मृगनयनी

कहा जाता है कि एक दिन शिकार पर जाते हुए मानसिंह ने अनुपम सुन्दरी गूजर कन्या मृगनयनी को देखा और उसके अनुपम सौन्दर्य को देखकर वे उस पर मुग्ध हो गये और उसके सामने उन्होने विबाह का प्रस्ताव रक्खा। मृगनयनी ने उत्तर दिया कि महाराज ! पहले मेरे लिए एक महल बनवाइये और मेरे गाँव के पास जो नदी निकलती है उसके पानी को उस महल मे पहुचाने का प्रबन्ध करें, तब मैं आपकी रानी बनूंगी।' महाराज मानसिंह ने तब उसके लिए एक महल बनवाया जो आज भी "गूजरी महल" के नाम से प्रसिद्ध है।

रानी होने के बाद मृगनयनी ने गवालियर मे सगीत का सुप्रसिद्ध विद्यालय स्थापित किया। जो सारे भारतवर्ष मे प्रसिद्ध हुआ। तभी से गवालियर सगीत विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र हो गया। अबुल फजल ने अपने आईने अकबरी नामक ग्रथ मे भारत के छत्तीस कीर्त्तिवान सगीत कलाकारो के नाम गिनाये हैं। उनमे से पन्द्रह ने गवालियर के सगीत विद्यालय मे शिक्षा ग्रहण की थी। सुप्रसिद्ध सगीतकार तानसेन भी इसी विद्यालय के स्नातक थे। तभी से सगीत कला मे "गवालियर स्कूल" प्रसिद्ध हुआ जो अभी तक प्रसिद्ध है।

तोमर राजाओ के समय मे गवालियर की बहुत उन्नति हुई। खेती की उन्नति के लिए उन्होने कई तलावो का निर्माण करवाया। वास्तुकला और शिल्पशास्त्र के भी वे बडे शौकीन थे। गवालियर के किले मे उन्होने मान मन्दिर नामक एक सुन्दर पत्थर के महल का निर्माण करवाया। जिसके शिल्प नैपुण्य की प्रशसा मुगलसम्राट् बाबर और अबुल फजल ने मुक्त कण्ठ से की है। इतिहासकार फजल अली ने लिखा है कि "मान सिंह के समान राजा बिरले ही होते हैं। उनके समय मे गवालियर वासी उन्नति के शिखर पर पहुच गये थे।"

सन् १५२५ मे तोमर राजवश का अन्त हुआ और उसके बाद यह किला इब्राहीम लोदी को अधिकार मे और उसके बाद मुगल बादशाहो के अधिकार मे गया।

मुगल बादशाहो के समय मे गवालियर का किला शाही कारागार बना दिया गया। मुगलसम्राट् जिस राजा या अफसर को खतरनाक समझते उसे इस किले मे भेज देते थे। बडे-बडे प्रसिद्ध लोग यहाँ पर कैदी बनाकर रक्खे गये। औरगजेब ने अपने भाई मुराद को भी कैद करके यही पर रक्खा था। जो भी इस किले मे आया वह जीतेजी वापस नही लौटा। सिर्फ सिक्खो के गुरु हरगोविन्द सिंह ही ऐसे थे जो इस किले से जीवित वापस लौटे।

शिन्दे-राजवंश

मुगल साम्राज्य के पतनोन्मुख होने पर यह किला मराठो के हाथ मे आया। राणोजी सबसे पहले शिन्दे सरदार थे जो इस स्थान पर आये मगर उन्होंने अपनी राजधानी उज्जैन मे बनाई। उसके बाद महादजी शिन्दे ने पानीपत के युद्ध के पश्चात् मध्यभारत मे अपनी सत्ता जमाने के उद्देश्य से गवालियर पर अधिकार किया। सन् १७७७ ई० मे पेशवा ने गवालियर शिंदे परिवार को सौप दिया।

सन् १७६४ में दौलतराव सिन्दे ग्वालियर की गद्दी पर आये।

दौलतराव सिंदे एक वीर और कुशल सेना संचालक थे मगर इनकी राजनैतिक बुद्धि बहुत अस्थिर थी। इन्होंने अपनी सेना को फरासीसी सेनाध्यक्षों के द्वारा सुशिक्षित करवाया था और अगर ये होलकर तथा दूसरी मराठा शक्तियों को संगठित करके अंग्रेजों को विरुद्ध संयुक्तमोर्चा बनाते तो निश्चय इन्हें सफलता प्राप्त होती। मगर इन्होंने कभी होलकरके विरुद्ध अंग्रेजों की और कभी अंग्रेजों के विरुद्ध होलकर की मदद करके अपने पक्ष को बहुत कमजोर कर लिया। परिणामस्वरूप अंग्रेज सेनापति आर्थर वलेस्ली ने और उसके बाद जनरल लैक ने इनकी सेनाओं को बुरी तरह से परास्त किया। इसके बाद और भी कई लड़ाइयाँ हुईं। जिनके कारण असीरगढ़ का किला और ग्वालियर का किला इनके हाथ से निकल गया और इन्हें अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। सन् १८२७ में दौलतराव की मृत्यु हो गई। दौलतराव के बाद जनकोजी और उनके बाद जयाजी राव (बाजीराव) ग्वालियर की गद्दी पर बैठे।

सन् १८५७ में सिपाही-विद्रोह के समय एकबार फिर ग्वालियर सामने आया। सिपाही विद्रोह के समय ग्वालियर की सेनाओं ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत कर दी और सन् १८५८ में जब तांतिया टोपे वहाँ पहुँचे तो सेनाओं ने बलपूर्वक बाजीराव को गद्दी से हटा दिया। तब बाजीराव और उनके मंत्री दिनकर राव वहाँ से भाग कर आगरा चले गये। मगर सन् १८५८ में अंग्रेज सेनापति सर ह्यूरोज ने ग्वालियर पर फिर से अधिकारकर जयाजीराव या बाजीराव को फिर ग्वालियर की गद्दीपर प्रतिष्ठित किया और उनकी राज्य भक्ति से खुश होकर उन्हें दत्तक लेने का अधिकार और K. G C B तथा K. G C S I की उपाधियाँ प्रदान की।

सन् १८८६ में जयाजी राव का स्वर्गवास होने पर महाराज माधवराव सिंदे गद्दीपर आये। सन् १८९४ में इन्हें राजकीय अधिकार प्राप्त हुए।

महाराज माधवराव सिंदे एक कुशल और अनुभवी शासक थे। ग्वालियर पर इन्होंने एक लम्बे समय तक शासन किया। और रियासत की उन्नति के लिए तथा कृषि की उन्नति के लिए अनेक प्रयत्न किये। इन्होंने 'दरबार-पॉलिसी' के नाम से एक ग्रंथ का कई भागों में निर्माण किया था। जिसमें शासन के तरीकों और प्रजा की उन्नति के उपायों का बड़ा विशद विवेचन है। कोई भी प्रजाजन अपनी शिकायतों के लिए इनसे मिल सकता था और लिखकर देने पर वे तत्काल उसकी जाँच करते थे।

महाराजा माधवराव की स्मृतियों में अमर स्मृति उनके द्वारा निर्माण किया हुआ 'शिवपुरी' का शहर है। इस शहर को अनेक सरोवरोंके निर्माण द्वारा इन्होंने अत्यंत सुंदर बना दिया है। महाराजा माधवराव के समय में ही ग्वालियर लाइट रेलवे का निर्माण हुआ। जो ग्वालियर शहर को भिण्ड शिवपुरी इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण स्थानों से जोड़ती है।

माधवराव के पश्चात् उनके पुत्र जयाजी राव ग्वालियर की गद्दी पर बैठे। इन्हीं के समय में ग्वालियर का अब भारत में विलीनीकरण हुआ।

ग्वालियर का किला और दर्शनीय स्थान

ग्वालियर का किला अपनी मजबूती सामरिक महत्व तथा ऐतिहासिक और पुरातत्व की दृष्टि से भारतवर्ष के सब दुर्गों में बेजोड़ है। वैसे कालिंजर, असीरगढ़ और मांडवगढ़ के दुर्ग भी अभेद्य गिने जाते हैं। किन्तु उन किलों में ज्यादा दिन तक घेरा रहने से पानी का अभाव हो जाता है, मगर ग्वालियर के दुर्ग में पानी का अभाव नहीं होता। यह किला उत्तर से दक्षिण एक मील व. फर्लांग लम्बा ३ फुट ऊँचा और ६ से २८ फुट तक चौड़ी बालुका पत्थर की पहाड़ी पर बना हुआ है।

ग्वालियर के इस किले में विभिन्न कालों के बने हुए छह महल आठ तालाब और छः ऐतिहासिक मंदिर हैं। ये इमारतें मध्यभारत में प्राचीन राजपूत काल की कलाओं के विकास का उदाहरण पेश करती हैं।

(१) तेली का मंदिर जिसका पुराना नाम तैलंगाना मंदिर था आर्य और द्राविड़ शैलियों के सम्मिश्रण से बना हुआ है।

(२) सास-बहू का मंदिर राजपूत स्थापत्य कला का एक बहुत सुन्दर नमूना है।

(३) पहाड़ी से नीचे उतरने पर ग्वालियर की

जामा मसजिद और मुहम्मद गौस का मकबरा मुगल भवन-निर्माण कला का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(४) मान मदिर—मगर गवालियर किले की सबसे बढ़िया शान राजा मानसिंह के द्वारा निर्मित मान-मदिर मे दिखलाई पड़ती है। जिसमें भारतीय वास्तुकला का चरम विकास देखने को मिलता है। सम्राट् बाबर और अबुलफजल जैसे व्यक्ति ने इसकी कारीगरी की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की थी।

(५) गूजरी महल मानसिंह की गूजरी रानी मृगमयनी के लिए बना हुआ महल। यह भी प्राचीन भारतीय वस्तुकला का सुन्दर नमूना है।

गवालियर दुर्ग मे प्रवेश करने के लिए छह विशाल तोरण द्वारो को पार करके जाना पड़ता हैं। दुर्ग के सबसे नीचे के फाटक का नाम आलम गिरि है जिसका निर्माण सन् १६६० मे औरङ्गजेब के सेनापति मोतमिद खाँ ने बादशाह के नाम पर करवाया था।

राजा कल्याणमल के भाई बादल राय ने बादल द्वार के नाम से दूसरा द्वार बनवाया जो बाद मे हिन्दोलपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

तीसरा भैरो द्वार किसी कछवाहा राजा भैरोसिह ने बनवाया था जो बाद मे बांसोरपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

चौथा गणेशपुर द्वार सन् १४२४ से १४५४ के बीच राजा डूगरसिंहने बनवाया था। इस द्वारके बाहर एक तालाब बना हुआ है। इसके अन्दर गुवालिया सिद्ध का मन्दिर था। जो बाद मे मसजिद बना दी गई।

पाचवा लक्ष्मणपुर द्वार कछवाहा राजा वज्रदामन ने अपने पिता लक्ष्मण की स्मृति में बनवाया था।

छठा हथियापुर द्वार का निर्माण राजा मानसिह ने करवाया था। इस द्वार पर हाथी की एक विशाल मूर्ति बनी हुई थी जिस पर राजा मानसिह बैठे थे। इस हस्ती मूर्त्ति के कारण इस द्वार का नाम हथियापुर पडा। इस मूर्ति को शायद मोतमिद खाँ ने तुड़वा दिया।

गवालियर नगर की वर्त्तमान आबादी लश्कर और मुरार समेत ३५००८७ है। राज्य पुनर्गठन आयोग ने सन् १९५६ मे इस प्रदेश का एक जिला बना दिया इस जिले का नाम 'गिर्द' रखा गया।

गलेशियस

रोमन चर्च के एक बिशप जो बाद मे पोप प्रथम गलेशियस के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका समय ई० सन् ५०२ के आसपास था।

उस समय रोम के पश्चिमीय साम्राज्य की स्थिति बडी छिन्न भिन्न हो रही थी। सन् ४४७ का वर्ष रोमन साम्राज्य के पतन का वर्ष समझा जाता है। इसी वर्ष गाथ जाति का सरदार ओडेसर पश्चिमी रोम सम्राट् को गद्दी से हटाकर पूर्वी रोम-सम्राट् के नाममात्र के सरक्षण मे वहा का शासन करने लग गया था। चारो ओर अराजकता के दृश्य थे। ऐसे समय मे रोमन चर्च की धर्म सस्था ने अपना स्वतत्र अस्तित्व स्थापित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया।

इसके पहले ही पूर्वीय रोम के तृतीय वैलेण्टाइन सम्राट् ने सन् ४४५ मे एक आदेश के द्वारा रोमन चर्च के बिशप को सर्वोपरि धर्म्माचार्य्य घोषित कर दिया था और दूसरे सब चर्चों के धर्माचार्य्यों को उसके कानून और आज्ञाओ को मानने के लिये बाध्य कर दिया था।

सन् ५०२ मे पहली बार रोम मे चर्च की एक सभा ने बैठकर यह निश्चय किया कि चर्च के सम्बन्ध मे दिये हुए ओडेसर सम्राट् के कुछ आदेश अवैध और अमान्य हैं। क्योकि किसी राजकीय अधिकारी को धर्म के मामले मे हस्तक्षेप करने का अधिकार नही है।

रोम के बिशप ने जो बाद मे पोप गलेशियस प्रथम के नाम से प्रसिद्ध हुआ, बतलाया कि "ईश्वर ने ससार मे अधिकार की दो तलवारे दी हैं। एक राजा के हाथ मे, दूसरी पोप के हाथ मे, एक धर्म के हाथ में, दूसरी राज्य के हाथ में। मगर इन दोनो मे राज्य के अधिकार से धर्म का अधिकार अधिक है। क्योकि धर्माचार्य्य ईश्वर के सम्मुख सम्राट् के कार्यों का भी उत्तरदायी है। जब धर्म और राष्ट्र मे झगडा हो तब धर्माधिकारी का फैसला ही सर्वोपरि समझा जावेगा।

इस प्रकार पोप गलेशियस प्रथम के समय मे रोमनचर्च की सत्ता का विस्तार हुआ। और यह सस्था राज्य सस्था से भी उच्च मानी जाने लगी।

गहड़वाल-राजवंश

कन्नौज और बनारस का एक सुप्रसिद्ध और प्रतापी राजवंश जिसने ई० सन् १ ८ ई० से सन् ११९४ ई० तक राज्य किया।

गाहड़वाल-राजवंश राष्ट्रकूटों की एक उपशाखा मानी जाती है। किन्तु यह प्रश्न विवाद-ग्रस्त है। इतिहासकार 'हॉर्नेल' ने इण्डियन ऐंटीक्वेरी जिल्द १-१४ में इस विषय की चर्चा करते हुए लिखा है—

'गहड़वालों के राठौर होने के सम्बन्ध में दो-तीन कारणों से सन्देह उत्पन्न होता है। पहला कारण यह है कि गहड़वालों का गोत्र काश्यप है और राठौरों का गोत्र गौतम है। दूसरा कारण यह है कि इन दोनों कुलों में परस्पर विवाह सम्बन्ध होते हैं और तीसरा कारण यह है कि दूसरे राजपूत गहड़वालों को शुद्ध कुल का नहीं मानते। इन कारणों से गहड़वालों के राठौर होने में शङ्का उत्पन्न होती है।

इसके विपरीत जोधपुर के राठौर अपने को कन्नौज के गहड़वालों का वंशज बतलाते हैं। उनकी धारणा के अनुसार राठौरों का मूल पुरुष 'सीहाजी' जो कि पहले-पहल मारवाड़ में आया जयचन्द के भाई का पौत्र था। दूसरी बात यह है कि जोधपुर के राठौर अपने को सूर्यवंशी बतलाते हैं और गहड़वालों के राजवंश की स्थापना करने वाले 'चन्द्रदेव' के पुराने शिला लेख में भी गाहड़वालों को सूर्यवंशी बतलाया गया है।

इसलिए जोधपुर के राठौरों की कथाओं के आधार पर बहुत से इतिहासकार कन्नौज के गहड़वालों और जोधपुर के राठौरों को एक ही वंश का मानते हैं। साथ ही दक्षिण भारत में राज्य करने वाले राष्ट्रकूटों से कन्नौज और जोधपुर के राठौरों को भिन्न मानते हैं। क्यों कि दक्षिण के राष्ट्रकूटों के शिलालेखों में उन्होंने अपने को 'सात्यकि' के वंश में उत्पन्न चन्द्रवंशी क्षत्रिय लिखा है। जब कि जोधपुर के राठौर और कन्नौज के गहड़वाल अपने को सूर्यवंशी मानते हैं। फिर भी कुछ प्रमाण ऐसे हैं जिनसे मालूम पड़ता है कि गाहड़वाल लोग दक्षिण से ही उत्तर में आये। जोधपुरवालों की धारणा है कि राठौरों के कुल देवी की मूर्ति जोधपुर का एक राजा दक्षिण से लाया था। उस देवी का नाम 'नागणेची' है। यह शब्द भी मराठी भाषा का है।

एक प्रमाण यह भी दिया जाता है कि नयचन्द्र सूरि ने जयचन्द्र की जीवनी पर 'रम्भा-मञ्जरी' नाम की जो नाटिका लिखी वह नाटिका प्राकृत-मराठी में लिखी हुई है। और इसके अन्दर एक पद्य मराठी-भाषा में भी है। इससे अनुमान होता है कि नयचन्द्रसूरि दक्षिण के जनाचार्य रहे होंगे। और जयचन्द्र के दरबार में और भी दक्षिण के कवि रहे होंगे। और दक्षिण से इस वंश का सम्बन्ध रहा होगा।

इन सब अनुमानों के आधार पर कई इतिहासकार दक्षिण के राष्ट्रकूटों और उत्तर के गाहड़वालों को एक ही कुल की दो शाखा समझते हैं।

जो भी हो इस वंश के मिले हुए शिलालेखों से मालूम होता है कि 'महियल' गाहड़वाल के पौत्र चन्द्रदेव ने अपने बाहुबल से कान्यकुब्ज का राज्य प्राप्त किया और नरपति गजपति और गिरिपतिनृपति को जीतकर पाञ्चालराज को पराजित किया। इस लेख का समय सन् १ ९१ ई० से १ ९९ ई० तक है।

इस प्रकार चन्द्र ने कन्नौज का राज्य हस्तगत कर देश को तुर्कों के त्रास से मुक्त किया। और एक सुदृढ़ राज्य की स्थापना कर काशी कान्यकुब्ज उत्तर कोशल तथा इन्द्रस्थान को अपने अधीन कर लिया। उसने तुर्कों से हिन्दू-तीर्थों की रक्षा करके उनको दिया जानेवाला 'तुरुष्क-दण्ड' बन्द कर दिया। उसने विद्वान् ब्राह्मणों को कई तुला दान दिये।

मतलब यह कि चन्द्रदेव केवल एक महान् विजेता ही नहीं था वरन् अत्यन्त धर्मनिष्ठ हिन्दू भी था। और उसकी कन्नौज-विजय को देश को मुसलमानों के त्रास से मुक्त करने के लिए हिन्दुओं का प्रथम धार्मिक प्रयत्न ही मानना चाहिए। उसने कन्नौज को जीत कर तथा वहाँ सुदृढ़ राज्य की स्थापना कर हिन्दू राज्य की नींव ऐसी मजबूत कर दी कि हिन्दू-भारत की आयु सौ वर्ष अधिक बढ़ गयी।

चंद्रदेव की मृत्यु सन् ११ १ ई० में हुई। उसके पश्चात् उसका पुत्र मदनपाल गद्दी पर आरूढ़ हुआ। इसके समय में मसूद बादशाह ने कन्नौज पर आक्रमण करके उसे लूटा।

मदनचंद्र के बाद उसका पुत्र गोविन्दचंद्र गद्दी पर बैठा। यह गहड़वाल राजवंश का सबसे प्रतापी राजा था। इसने सन् १११४ ई० से सन् ११५५ ई० तक राज्य किया। इसके समय के शिलालेखों में लिखा गया है कि—इसने नव स्थापित

राज्य को अपने बाहुबल से इस प्रकार स्थिर कर दिया मानो रस्सो से जकड दिया हो।'

मतलब यह कि गोविंदचद्र ने अपना राज्य चारो दिशाओ मे फैलाया और वङ्ग, आंध्र तथा चेदि के राज्य की सीमाओ को बहुत सकुचित कर 'नरपति, हयपति, गजपति, राज्य विजेता' का विरुद उसने पहले पहल ग्रहण किया। बनारस के आस पास के कई गाव उसने दान दिये। और ये सब दानपत्र बनारस से जारी किये गये थे। बनारस के पास एक स्थान पर २१ ताम्रलेख इकट्ठे मिले हैं। उनमें १४ गोविंदचद्र के हैं। इनका समय सन् १११४ ई० से लेकर सन् ११५४ ई० तक है। इन्हे कील-हार्न ने 'एपी ग्राफिक इडिया' जिल्द ४ मे छपाया था।

इन लेखो से यह भी मालूम होता है कि गोविन्दचन्द्र ने बनारस मे भी अपनी राजधानी स्थापित की थी। मुसलमानी इतिहासकारों ने इन्हे बनारस का राजा लिखा है। इससे कई इतिहासकारो का यह अनुमान हैं कि गहरवाल राजाओ की प्रधान राजधानी बनारस में ही रही होगी।

गोविन्दचद्र को एक ओर पूर्व मे गौड राजाओ से और दूसरी ओर पश्चिम मे लाहौर के मुसलमानो से युद्ध करने पडे। गोविंदचद्र की युवराज अवस्था के दान-पत्र मे मुसलमानो के साथ हुए इस युद्ध का सरल और अतिशयोक्ति-रहित वर्णन है। लिखा है—

"गौड-राज्य के दुर्निवार हाथियो के गण्डस्थलो को फोडने के कारण भयङ्कर दिशाई देने वाले तथा अपने असम युद्ध के द्वारा 'हम्मीद' को शत्रुता त्याग के लिए विवश कर देने वाले गोविंदचद्र ने अपने सदा घूमते रहने वाले घोडों की टापरूपी राजमुद्रा से अकित पृथ्वी का राज्य सम्पादित किया।"

इस लेख से ऐसा मालूम होता है कि गोविंदचद्र के पास घुडसवारो की एक बहुत बडी सेना रहती थी और उसी सेना के बल पर उसने लाहौर के मुसलमानो (हमीद) और बङ्गाल के राजाओं को पराजित किया।

गोविंदचद्र एक कुशल विजेता होने के साथ सुघड राजनीतिज्ञ भी था। बङ्गाल के पाल-राजाओ की कन्या कुमारदेवी से विवाह कर उसने कुछ समय के लिए पाल-राजाओं के साथ होने वाले विग्रह को शान्त कर दिया। इसी प्रकार चेदि, चन्देल, चोल और कश्मीर के राजाओ से भी उसने धीरे-धीरे मैत्री-सम्बन्ध कायम किये।

राजनीतिज्ञ और कुशल सेनापति होने के साथ साथ गोविंदचद्र विद्वान् भी था और अपने दरबार मे विद्वानो को खुले दिल से सम्मान और आश्रय भी देता था। कहा जाता है कि उसके युद्ध-सचिव लक्ष्मीधर ने धर्मशास्त्र और व्यवहार विधि पर 'व्यवहार-कलाद्रुम' नामक महत्वपूर्ण ग्रथ की रचना की थी। सन् ११५४ ई० में गोविंदचद्र की मृत्यु हुई।

गोविंदचद्र के बाद उसका पुत्र विजयचद्र उसकी गद्दी पर बैठा। यह भी एक शक्तिशाली और योग्य राजा था। सन् ११६८ ई० के उसके लेख मे मुशलमानो के साथ किये गये इसके युद्ध का वर्णन है, जिसमे इसने मुसलमानो को गहरी हार दी।

विजयचद्र के पश्चात् उसका पुत्र जयचद्र ३ जून सन् ११७० ई० को गद्दी पर बैठा। राजा जयचद्र भी एक प्रतापी राजा था। मगर अजमेर के चौहानो से उसके सम्बन्ध शुरू से ही बिगड गये और 'चन्द' के पृथ्वीराज रासो के अनुसार पृथ्वीराज चौहान जयचन्द्र की पुत्री 'संयोगिता' को स्वयबर-सभा के बीच से जबर्दस्ती हर कर ले गया। इसी प्रकार दिल्ली के सिंहासन के लिए कन्नौज के गहडवालो और अजमेर के चौहानो की प्रतिस्पर्धा चलती रही। जिसके फलस्वरूप ऐसा कहा जाता है कि 'जयचन्द' 'मुहम्मदगोरी' को पृथ्वीराज के विरुद्ध उभाड कर लाया। पहले युद्ध मे तो पृथ्वीराज ने मुहम्मद गोरी को पराजित कर दिया, मगर दूसरे युद्ध मे पृथ्वीराज मारा गया और उसके एक साल बाद ही सन् ११९३ ई० मे गोरी ने कन्नौज पर भी आक्रमण कर दिया और उस भयङ्कर युद्ध मे जयचन्द अपने हाथी के समेत गङ्गाजी मे डूब कर मर गया। और इस प्रकार इस प्रसिद्ध राजबश का अन्त हो गया। और जयचन्द के वशज भाग कर मारवाड चले गये। और वहाँ उन्होने राठौर वश की स्थापना की।

ग्रंथ साहिब (आदि ग्रन्थ)

सिक्खो का अत्यन्त पूज्य और धार्मिक महान् आदिग्रथ। जिसमे सिक्ख मत के सस्थापक गुरु नानक देवने समय-समय पर जो अनेक पदो और साखियो की रचना की थी, उनके साथ दूसरे सिख-गुरुओ की रचनाएँ और उनके अतिरिक्त

कबीर साहब नामदेव इत्यादि अनेक महान् पुरुषों की रचनाओं को मिलाकर गुरु अर्जुनदेव ने एक विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया जिसको गुरु ग्रन्थ-साहिब कहते हैं।

इस ग्रन्थ के लिए अर्जुनदेव ने अपने पुरुषों की अपनी रचनाओं का संग्रह करवाया। इसके उपरान्त उन्होंने भिन्न भिन्न मतों के भक्तों के अनुयायियों को आमन्त्रित करके उनसे अपने-अपने श्रेष्ठ भजनों को बुलवाया तथा उनमें से अपने संग्रह में उन पदों को स्थान दिया जो सिद्धान्त की दृष्टि से अपने पुरुषों की रचनाओं से मेल खाते थे।

पदों का चुनाव समाप्त हो जाने पर गुरु अर्जुनदेव ने सन् १६०४ ई० के भादों महीने की प्रतिपदा को इसे सम्पूर्ण करवा कर 'भाई बुड्ढा' के संरक्षण में अर्पित कर दिया।

आदिग्रन्थ में ६२ पद सन्त नामदेव के रचे हुए हैं और करीब सवा दो सौ पद और ढाई सौ श्लोक या साखियाँ कबीर साहब की बनाई हुई हैं। इसके अतिरिक्त सूफी सन्त शेख फरीद, भक्त धन्ना इत्यादि और भी कई सन्तों की साखियों को इसमें संग्रह किया गया है। इस महान् ग्रंथ में सिक्ख सम्प्रदाय के आचार-विचार, रहन-सहन और धर्म सिद्धांतों का पदों और साखियों के द्वारा बड़ा विशद विवेचन किया गया है। सिक्ख समाजमें यह ग्रंथ वेदोंकी तरह पूजनीय है और प्रायः सभी गुरुद्वारों में पूज्य भावियम की तरह रखा जाता है।

ग्रहण (सूर्य-चन्द्र ग्रहण)

चन्द्र और सूर्य को गणित ज्योतिष के द्वारा निर्धारित किसी विशेष पूर्णिमा या अमावस्या को लगने वाला ग्रहण। यह ग्रहण चन्द्रमा को पूर्णिमा की रात्रि में और सूर्य को अमावस्या के दिनमें लगा करता है।

भारत की पौराणिक परम्परा के अनुसार जिस समय समुद्र मन्थन के पश्चात् अमृत प्राप्त हुआ और वह सब देवताओं को पिलाया गया उस समय राहु नामक एक असुर ने भी देवता का रूपग्रहण करके उस अमृत को पी लिया। सूर्य और चंद्रमा ने असुर को पहचान कर उसका भेद बतला दिया। जब विष्णु को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने चक्र सुदर्शन का प्रहार करके उस असुर का सिर धड़ से अलग कर दिया। मगर अमृतपान से अमरत्व प्राप्त हो जाने के कारण सिर से धड़ अलग होजाने पर भी वह असुर मरा नहीं और उसका सिर राहु के नाम से और धड़ केतु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यही दोनों अशुभ ग्रहों के रूप में ग्रहों की गणना में आये।

यही राहु और केतु सूर्य और चन्द्रमा के दुश्मन हो जाते हैं और समय समय पर सूर्य और चंद्रमा को ग्रसते रहते हैं। जिस समय राहु के द्वारा सूर्य पर आक्रमण होता है उसी समय सूर्य ग्रहण और चंद्रमा पर आक्रमण होने पर चन्द्र ग्रहण होता है। सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के इस कथानक के कारण ग्रहण के समय सारा हिन्दू समाज सूतक का पालन करता है। भजन कीर्तन होते हैं। और मुक्ति होने पर लाखों मनुष्य बड़े बड़े तीर्थ स्थानों में स्नान करके उस सूतक से मुक्ति प्राप्त करते हैं।

मगर आधुनिक विज्ञान ने इन सारी पौराणिक धारणाओं को असत्य साबित करके बतलाया है कि जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाता है तब चन्द्रमा की छाया सूर्य पर पड़ने से पृथ्वी पर सूर्य ग्रहण दिखलाई पड़ता है। चन्द्र ग्रहण में चन्द्रमा उस छाया में से गुजरता है जो अंतरिक्ष में पृथ्वी के कारण पड़ती है। सूर्य के बजाय चन्द्रमा के ग्रहण अधिक होते हैं और करीब आधी पृथ्वी के लोग उन्हें देख सकते हैं। सूर्यग्रहण पृथ्वी के केवल १४० मील में दिखलाई पड़ता है।

मगर इन वैज्ञानिक शोधों के पूर्व ग्रहण सारी पृथ्वी में भय और आतङ्क का कारण समझे जाते थे और इस भय के कारण मानवीय इतिहास में कई बड़ी बड़ी घटनाएँ घटित हुई हैं।

सन् ६७१ की सात दिसम्बर को इस्लामी खलीफा जिसका फल के खलीफा म्याविया (Moawiyah) ने इस्लाम का तीर्थस्थान मदीना से उठा कर दमिश्क लेजाने का निश्चय किया था और चाहा था कि पयम्बर की छड़ी और मंच को मदीना से हटा कर दमिश्क ले जाएँ। इसके लिए उसने आदेश भी जारी कर दिये थे मगर उसी दिन कारवाई के ठीक मौके पर पूर्ण सूर्य ग्रहण हो गया। एकाएक इतना अन्धेरा छा गया कि तारे दिखाई देने लगे। जिससे सब लोग बेतरह डर गये। सबने यही समझा कि म्याविया के इस कार्यवाही से खुदा नाराज हो गया है, और उसने दुनिया से सूरज को

छीन लिया है। फलस्वरूप पैगम्बर के छडी और आसन ज्यो के त्यो वही बने रहे।

चन्द्रग्रहण के इतिहास मे एक दूसरी घटना भी बहुत मनोरञ्जक है। कोलम्बस जब नई दुनिया की खोज मे निकला था तब जमेंका मे पहुँच कर एकाएक बीमार पड गया। उसकी बीमारी दस हफ्तो तक चली। इस समय मे उनकी सारी खाद्य सामग्री समाप्त हो गयी और वहाँ के आदिवासियो ने उन लोगो को खाद्य सामग्री देने से इन्कार कर दिया। कोलम्बस अपने साथ कुछ ज्योतिष की पुस्तके भी ले गया था और उनसे उसको पता था कि २९ फरवरी १५०४ को चन्द्रमा का ग्रहण लगने वाला है। तब उसने वहाँ के आदिवासियो को डराते हुए कहा कि "हम लोग ईश्वर के दूत हैं और यदि तुम लोग हमे खाने को नही दोगे तो मैं ईश्वर के पास खबर भेजूँगा कि धरती के लोग हमे खाना नही देते हैं इसलिए इन लोगो से धरती का चाद छीन लिया जाय।"

यह सुनकर आदिवासियो ने कोलम्बस का बहुत मजाक उडाया, मगर जब सचमुच ही रात को उन्होने देखा कि चन्द्रमा पूरी तरह ग्रस लिया गया है तब हाहाकार करने लगे। और कोलम्बस के पास जाकर माफी मागने लगे और उन्हे खूब खाने को दिया। तब कोलम्बस ने कहा कि अच्छा घबराओ नही मैंने ईश्वर को सन्देश भेज दिया है, कल तुम्हारा चन्द्रमा वापस आजावेगा।

प्रसिद्ध विजेता सिकन्दर महान् भी ग्रहण के फल पर पूर्ण विश्वास करता था। ई० सन् से पूर्व ३३१ मे बीस सितम्बर को जो चन्द्र ग्रहण हुआ था, उसको सिकन्दर के ज्योतिषियो ने सिकन्दर के लिए बड़ा शुभ बतलाया था और उसके ठीक ११ दिन बाद सिकन्दर ने आरबेला के युद्ध मे ईरान् के सम्राट् दारा तृतीय को भारी पराजय देकर अपना साम्राज्य कायम किया था।

ग्रहण की गणना का ज्ञान बहुत प्राचीन काल से भारत, मिस्र, यूनान और बेबिलोनिया को था। मगर बेबिलोनिया के निवासी इस सम्बन्ध मे बहुत आगे बढ गये थे। ईसा से करीब तीन हजार वर्ष पहले उन्होने "सैरास" नामक युग का आविष्कार कर लिया था। यह युग २२३ चन्द्र मास या १८ वर्ष ११ दिन का होता था। ऐसे एक युग के ग्रहण, दूसरे युग मे ठीक उसी दिन और उसी समय दिखलाई पडते हैं।

भारतीय ज्योतिष मे भी सूर्य्य-सिद्धान्त (जिसका समय ईसा से पाच छ शताब्दी पूर्व माना जाता है।) और उसके पहले भी लोगो को सूर्य्यग्रहण और चन्द्रग्रहण की भविष्यवाणियाँ करने का पूरा पूरा ज्ञान था। और इन ग्रहणो का ससार के भविष्य पर और भिन्न २ राशियो के भविष्य पर क्या असर पडेगा, इसका भी हिसाब लगाने का उनको ज्ञान था।

सूर्य्यग्रहण को नङ्गी आखो से देखने से मनुष्य के अन्धा हो जाने का भय रहता है इसका जिक्र ईसा से पूर्व चौथी शताब्दी मे यूनान के दार्शनिक अफलातून ने किया था। २० जुलाई १९६३ को भारत सरकार ने भी इस विषय की चेतावनी देते हुए जनता सूचित किया था कि दस सेकण्ड से अधिक समय तक सूर्य्यग्रहण को नङ्गी आँखो से देखने पर आँखो मे स्थायी विकार उत्पन्न हो सकता है।

गॉग-विंसेण्टवान

हॉलैण्ड का सुप्रसिद्ध चित्रकार। जिसका जन्म सन् १८५३ मे और मृत्यु १८९० मे आत्महत्या के द्वारा हुई।

गॉग यूरोप मे आधुनिक चित्रकला का जनक समझा जाता है। सन् १८८० मे वह चित्रकला का अध्ययन करने के लिए ब्रुसेल्स गया। और सन् १८८५ मे उसने एण्टवर्प की ऐकेडेमी मे चित्रकला की शिक्षा ली। उसके बाद वह पेरिस मे अपने भाई थेरो के पास रहा। थेरो भी एक चित्रकार था गॉग ने जापानी चित्रकला तथा डेलाकाओ और मोतेचोली की कृतियो का भी अध्ययन किया। उसके बाद वह प्रसिद्ध चित्रकार "सुरा" के साथ मिलकर काम करने लगा। कुछ ही दिनो मे मस्तिष्क पर अधिक बोझ पडने से उसे पागलपन के दौरे आने लगे। मगर उस स्थिति मे भी वह चित्रकला का अपना काम करता रहा। मगर अन्त मे सन् १८९० मे पागलपन के एक दौरे मे वह आत्महत्या करके मर गया। उसका सारा जीवन अत्यन्त दुखान्त और निराशापूर्ण रहा। न उसे किसी नारी का प्रेम प्राप्त हुआ और न उसके जीतेजी किसी ने उसकी कला की कदर की।

मगर उसके मरने के बाद उसकी कला की सारे यूरोप मे भारी इज्जत हुई। उसके चित्रो की कई प्रदर्शनियाँ हुई। चित्रकला के क्षेत्र मे आज उसके चित्र प्रमाणभूत माने जाते हैं।

गागरौन

राजस्थान के झालावाड़ जिले का एक गाँव और किला जो पहले कोटा राज्य के झालावाड़ जिले में पड़ता था।

गागरौन झालरापाटन से उत्तर पूर्व लगभग ढाई मील की दूरी पर काली सिंध और आऊ नदियों के संगम पर बसा हुआ है। गागरौन का किला एक मजबूत किला है। ऐसा कहा जाता है कि उसे डोड राजपूतों ने बनाया था। बारहवीं सदी के अन्त तक उस पर उन्हीं का अधिकार रहा। उसके बाद यह किला खींची चौहानों के अधिकार में गया। सन् १३०० में खींची राजपूतों ने अपने राजा जैतसिंह के नेतृत्व में अलाउद्दीन खिलजी की सेना का सफलता पूर्वक अवरोध किया था। उसके बाद शायद यह किला मालवा के मुसलमान शासक के अधिकार में चला गया। सन् १४२८ में राजा अचलदास खींची ने इस पर अधिकार किया।

अचलदास खींची का विवाह मेवाड़ के राणा कुम्भा की बहन 'लाला' के साथ हुआ था। अचलदास के भाई का नाम 'पीपाजी' था जो भारतवर्ष के एक प्रसिद्ध संत थे। कहा जाता है कि पीपाजी को १२ रानियाँ थीं। बड़ी रानी का नाम सीता था। संत अवस्था में वे काली सिंध और आऊ नदी के संगम पर एक गुफा में रहते थे। उक्त स्थान पर अभी भी किसी पर्व पर मेला लगता है।

सन् १५१९ में मुहम्मद खिलजी ने आक्रमण करके इस किले पर अधिकार किया। मगर थोड़े ही दिन के बाद मेवाड़ के राणा संग्राम सिंह ने मुहम्मद को हरा कर इस किले पर अधिकार किया और सन् १५३१ तक यह किला उनके अधिकार में रहा। उसके बाद यह मुगलों के अधिकार में गया। अठारहवीं सदी तक यह मुगलों के अधिकार में रहा। उसके पश्चात् यह किला दिल्ली के बादशाह ने कोटा के महाराव भीमसिंह को जागीर में दे दिया। और जालिम सिंह ने इस किले को और मजबूत बना दिया।

गागरौनका गाँव किले से लगा है। दोनों के बीच में एक मजबूत दीवार खड़ी है और चट्टानों में गहरी खाई खुदी हुई है। आने जाने के लिए पत्थर का एक पुल बना है।

गागरौन के तोते बड़े प्रसिद्ध होते हैं। यह सिखाने से बहुत अच्छी बोलने लगते हैं। पहले गागरौन में कोटा महाराज की टकसाल थी।

गाङ्गेयदेव—विक्रमादित्य

महाकोशल के कलचुरी राजवंश का एक सुप्रसिद्ध नरेश। जिसका राज्यकाल सन् १०१५ से १०४१ तक रहा।

कलचुरी-वंश में गांगेयदेव विक्रमादित्य अत्यन्त प्रतापी नरेश थे। उनके पिता कोकल्लदेव द्वितीय के समय में कलचुरी-राज्य की स्थिति कुछ कमजोर हो गयी थी। मगर गांगेयदेव ने उस स्थिति को समाप्त कर अपने राज्य को काफी मजबूत कर दिया था। कन्नौज के प्रतिहारों की बिगड़ी हुई दशा से लाभ उठा कर उसने उनके विस्तृत प्रदेशों को जीत लिया।

इसके बाद उसने चामुण्डा से 'विकसित अथवा तैलंगना को भी जीत लिया। उसके बाद उसने पूर्व की ओर अपनी दृष्टि डाली और उत्कल तथा दक्षिण कोशल के राजाओं को हरा कर उनसे बहुत धन वसूल किया। मगध के राजा नयपाल को भी उसने परास्त किया। इसके बाद उसने कलिंग राजाओं पर भी विजय प्राप्त की। इस प्रकार उसने अपने साम्राज्य का बहुत बड़ा विस्तार किया। अपने राज्य का विस्तार करके उसने "विक्रमादित्य"की बिरुद ग्रहण किया। उसने सोने चाँदी और ताँबे की कई मुद्राएँ चलवाई थीं उनमें से अभी कई मिलती हैं। इन मुद्राओं पर एक ओर गांगेयदेव की और दूसरी ओर लक्ष्मी की मूर्ति है। इन मुद्राओं के अनुकरण पर बाद के कई पड़ोसी राजाओं ने तथा मुहम्मद गोरी तक ने अपनी मुद्राएँ चलवाईं। गांगेयदेव का एक लेख सन् १०३७ ई० का लिखा हुआ मिला है जिसे कीलहार्न ने ऐपी ग्राफिया इंडिका में प्रकट किया है।

सन् १०३३ ई० में जब 'नियाल्तगीन' ने बनारस पर आक्रमण किया उस समय बनारस पर गांगेयदेव का शासन था। गांगेयदेव की लड़ाई धार के परमार राजा भोज से भी हुई थी मगर इस लड़ाई में गांगेयदेव को पराजय का सामना करना पड़ा। फिर भी गांगेयदेव इतना कीर्तिशाली था कि प्रसिद्ध इतिहासकार 'अलबेरूनी' ने भी अपने ग्रंथ में इसका उल्लेख किया है।

वृद्धावस्था में गांगेयदेव ने प्रयाग में रहना प्रारम्भ किया और वहीं पर १२ जनवरी सन् १०४१ ई० को उसका देहान्त हुआ। बेदि के एक लेख में ऐसा कहा गया है कि उसके साथ उसकी १०० रानियाँ सती हुईं।

गाजियाबाद

उत्तर रेलवे की दिल्ली मुगलसराय लाइन पर दिल्ली नगर से १० मील की दूरी पर बसा हुआ मेरठ जिले का एक नगर जिसकी जनसंख्या ७०४३८ है।

इस नगर की स्थापना दक्षिणी भारत के शासक 'आसफ जाह' के पुत्र गाजी उद्दीन ने सन् १७८० ई० मे गाजिउद्दीन नगर नाम से की थी और यहाँ पर एक विशाल सराय बनवायी थी। उस समय इस नगर का नाम गाजीउद्दीन नगर रखा गया था जो बाद मे गाजियाबाद हो गया।

सन् १८५७ ई० मे सिपाही विद्रोह के समय यह नगर विद्रोही कार्य कर्त्ताओ का एक प्रमुख केन्द्र बन गया था।

रेलवे की स्थापना के बाद इस नगर की विशेष तरक्की हुई और यह नगर व्यापार की एक प्रमुख मडी और उद्योग धन्धो का केन्द्र बन गया।

यहाँ पर दुग्धेश्वर नाथ का मन्दिर बहुत प्रसिद्ध है। इस मन्दिर का निर्माण १७ वी सदी के अन्त मे हुआ था। यहाँ पर ६ मस्जिदे भी हैं।

गाजी-उद्दीन खाँ (फिरोज जंग)

सम्राट् औरगजेब की सेना का एक विश्वसनीय सेनापति जो सबसे पहले ७० सवारो के ऊपर मनसबदार नियुक्त हुआ। बाद मे इसकी बहुत तरक्की हुई। सन् १७१० ई० मे इसकी मृत्यु हुई।

गाजीउद्दीन खाँ औरगजेब का एक विश्वस्त सेनाधिपति था। इसने जोधपुर मे दुर्गादास के द्वारा किए हुए विद्रोह को चतुराई के साथ दबाया और 'जूनेर' के उपद्रवियो का दमन किया। इससे खुश होकर बादशाह औरगजेब ने इसे गाजी उद्दीन खाँ की उपाधि प्रदान की, जबकि इसका असली नाम 'शहाबुद्दीन' था।

छत्रपति सभाजी से युद्ध करके इसने 'राहिडी-दुर्ग' पर विजय प्राप्त की और इसके उपलक्ष मे उसे 'फिरोज जग' की उपाधि प्राप्त हुई। इसने इब्राहिम गढ़ को जीत कर उसका नाम 'फिरोजगढ़' रखा। इसी के प्रयास से अदोनी दुर्ग की रियासत बादशाही राज्य मे मिली और बादशाह ने इसे सिन्धिया के साथ लडाई करके इसने 'दे... विजय प्राप्त की और सिन्धिया का मालवा ... किया।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् बहादुर शाह ने ... गुजरात का सूबेदार बनाया। वही अहमदाबाद ... १७१० मे इसकी मृत्यु हुई। इसकी लाश को दि... जाकर दफनाया गया।

गाजी-उद्दीन हैदर

अवध के सुप्रसिद्ध नवाब सआदतअलीख... पुत्र गाजी-उद्दीन हैदर, जिनका जन्म सन् १... और मृत्यु सन् १८२७ ई० मे हुई।

जिस समय नवाब सआदत अली की मृ... समय उनके छोटे पुत्र 'शम्शुद्दौला' ने लखनऊ की ... अधिकार करना चाहा, क्यो कि गाजी-उद्दीन ... पिता के विशेष प्रिय पात्र न थे। शराबी और ... के कारण वे अपने पिता से २२ वर्ष से अलग ... जब सिंहासन पर शम्शुद्दौला ने अपने अधिका... किया तो 'गाजी-उद्दीन हैदर ने लार्ड हेस्टिग्स ... लेकर लखनऊ की गद्दी पर अपना अधिकार किय... १८१४ ई० मे रिफत उद्दौला' 'रफी-उल मुल्क' धारण करके वे गद्दी पर बैठे। लार्ड हेस्टिंग... बादशाह की पदवी देकर दिल्ली-सम्राट् से उन्हे पू... कर दिया। इसके उपलक्ष मे गाजी-उद्दीन-हैदर ने एक बडा भारी दरबार किया जिसमे ३० हज... हीरे मोती लुटाये गये।

दिल्ली के शासन से स्वाधीन हो जाने पर ... उद्दीन खाँ बाहर और भीतर से अग्रेजो के हा... पुतली बने रहे।

इनके शासन-काल मे अवध का राज्य ... एक केन्द्र बन गया था। इनकी बडी बेगम, जो ... बेगम', के नाम से प्रसिद्ध थी मेहदी अली खाँ की ... इनके विरुद्ध षड यत्र करती रहती थी। इनके प्र... आगा मीर के व्यवहार से ...

इन षड्यन्त्रों के परिणाम स्वरूप अंग्रेजों का अवध की आन्तरिक राजनीति में बराबर हस्तक्षेप बढ़ता गया और उसके परिणाम स्वरूप गाजउद्दीन ने अपने दिये हुए आश्वासनो के विरुद्ध एक करोड़ रुपये नेपाल युद्ध के लिए, एक करोड़ पचास लाख बरमा युद्ध के लिए और एक करोड़ रुपये उनके दीवान आगामीर को बचाने की शर्त पर ऋण के रूप में वसूल किये थे।

चरित्र से पतित और विलासी होते हुए भी गाज़ी-उद्दीन को साहित्य संगीत और कला से बड़ा प्रेम था। वे स्वयं अरबी फारसी और उर्दू भाषा के जानकार थे। उनका दरबार 'मीर तकी नासिख' 'मुसहफी' 'आतिश' 'इंशा' इत्यादि महान् कवियों से भरा रहता था। चित्र कला और स्थापत्य कला के भी वे बड़े शौकीन थे। उनके माता-पिता के मकबरे लखनऊ की स्थापत्यकला के सुन्दर उदाहरण हैं। गाजी-उद्दीन हैदर का हिन्दुओं के प्रति भी सदा सद्व्यवहार था। राजा बख्तावर सिंह उनके दीवान और राजा हजारी मल उनके कोषाध्यक्ष (खजांची) थे।

गाटशेड जॉन क्रिस्टोफ़
(Johann Christoph Gottsched)

अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में जर्मन साहित्य का प्रसिद्ध नाटककार और कवि जिसका जन्म सन् १७ में और मृत्यु १७६६ में हुई।

गाटशेड के समय में 'साइलिस' नगर जर्मन साहित्य का सबसे बड़ा केन्द्र बन रहा था। गॉटशेड उस समय में जर्मन साहित्य का नेता था। साहित्य क्षेत्र की उच्छृंखलता का वह विरोधी था और शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार साहित्य के विकास का वह पक्षपाती था। जर्मन नाटकों और वहाँ के रङ्गमञ्च में भी आवश्यक परिवर्तन करना वह चाहता था।

फ्रेंच भाषा की तरह जर्मन भाषा में भी वह बहता हुआ प्रवाह पैदा करना चाहता था।

उसकी समालोचना ने तत्कालीन जर्मन साहित्य के स्तर को काफी ऊँचा उठा दिया। मगर भाषा और कविता को भाषा प्रकार के बन्धनों में जकड़ देने के जो दुष्परिणाम होते हैं और जिनसे साहित्य का विकास रुक जाता है गाटशेड का भी वहीं असर जर्मन साहित्य पर भी होने लगा। जिसके परिणाम स्वरूप अनेक लेखकों ने उसके खिलाफ विद्रोह करना प्रारम्भ कर दिया।

गाडगिल (नरहरि विष्णु)

पूना विश्वविद्यालय के उप-कुलपति और कांग्रेस के वरिष्ठ नेता नरहरि विष्णु गाडगिल। जिनका जन्म सन् १८९६ में और मृत्यु सन् १९६६ में हुई।

नरहरि विष्णु गाडगिल का जन्म सन् १८९६ में राजस्थान में हुआ था। क्रमशः बड़ौदा पूना और बम्बई में उनकी शिक्षा हुई। वकालत की डिग्री लेकर उन्होंने पूना में प्रैक्टिस प्रारम्भ की।

अपने समयके सभी राष्ट्रीय नेताओंकी तरह वे भी भारतीय स्वाधीनता के आन्दोलन में भाग लेने के लिए कांग्रेस के सदस्य हुए। १९२० में वे महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित हुए और कई बार जेल भी गये।

सन् १९३४ में वे केन्द्रीय असेम्बली के लिए चुन गये और कांग्रेस दल के सचेतक तथा मंत्री के रूप में उन्होंने काम किया।

आजादी मिलने के पश्चात् भी गाडगिल लोकसभा के सदस्य चुने गये और केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में निर्माणकार्य खान और विद्युत विभाग के मंत्री रहे। सन् १९४७ से १९५२ तक उन्होंने यह कार्य किया।

उसके पश्चात् प्रधान मंत्री पं० नेहरू से राज्य-पुनर्गठन के सम्बन्ध में मतभेद हो जाने के कारण वे मंत्रिमण्डल से अलग हो गये। सन् १९५८ से १९६२ तक वे पञ्जाब के राज्यपाल रहे। इस समय पञ्जाब राज्य की उन्होंने जो सेवा की उसके उपलक्ष में पञ्जाब विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डॉक्टर ऑफ लॉ' की उपाधि प्रदान की।

पूना वापस आने के पश्चात् वे पूना विश्वविद्यालय के उपकुलपति बनाये गये। श्री गाडगिल एक उच्च कोटि के लेखक और साहित्यकार भी थे। उन्होंने अर्थशास्त्र और राजनीति पर मराठी और अंग्रेजी में कुछ पुस्तकों की रचना की।

श्रीगाडगिल अपनी स्पष्टवादिता और स्वतत्र विचारधारा के लिए प्रसिद्ध थे। जब काग्रेस महाराष्ट्र मे बम्बई के विलय के विरोध मे थी तब भी उन्होने महाराष्ट्र मे बम्बई के विलय का जोरदार समर्थन किया था।

गाजीपुर

पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले का प्रधान शहर जिसकी जन सख्या ३७१४७ है।

किम्वदन्तियो के अनुसार प्राचीन युग मे 'गाधि' नामक किसी राजा ने यहाँ पर गाधि नाम का एक दुर्ग बनाया था। और गजपुर के नाम से इस बस्ती को बसाया था। इस स्थान के आस-पास के स्थानो से मिले हुए मूल्यवान स्तम्भो और शिलालेखो से पता लगता है कि ईसा से पहले बौद्धयुग मे यह क्षेत्र मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत बहुत समृद्धिशाली था।

अशोक के राज्यकाल मे इस क्षेत्र मे बौद्ध-धर्म का काफी प्रचार हुआ। चौथी से सातवी शताब्दी तक यह प्रदेश गुप्त-साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। गुप्त-राजाओ के बनाए हुए स्तम्भ और सिक्के यहाँ पर पाये जाते हैं।

चीनी-यात्री हुएन-सग सन् ६३० ई० मे इस प्रदेश मे आया था। उस समय यहा बौद्ध और हिन्दू—दोनो धर्मों का प्रभाव था। उसने लिखा है कि—"चेन-चू राज्य की सीमा चारो ओर १६५ कोस है। गगातीर पर उसकी राजधानी स्थापित हैं। यहां के निवासी समृद्धिशाली और भूमि उर्वरा है।" [1]

हुएन सग के जाने के पश्चात् यहाँ पर 'भर' नामक जाति के लोगो ने अपना आधिपत्य स्थापित किया। उत्तर-पश्चिम से मुसलमानो के अत्याचारो से त्रस्त ब्राह्मण और राजपूत लोग उधर से भागकर इस हिन्दू-राज्य मे आकर बसने लगे, और यही पर जमीनें लेकर जमीदार बन गये।

कहा जाता है कि सन् १३३० ई० मे महम्मद तुगलक के सामन्त मसऊद ने यहाँ के राजा को रण मे मार डाला। इससे खुश होकर सम्राट् ने मसऊद को 'गाजी' की उपाधि दी और उन्ही के नाम पर इस शहर का नाम गाजीपुर रखा।

सन् १३६४ से १४७६ तक यह प्रदेश जौनपुर के मुसलमानी शासको के अधीन रहा। उसके बाद मुगल सम्राट् बाबर ने इस पर अपना अधिकार कर लिया। फिर बक्सर की लडाई मे शेरशाह ने हुमायूँ को परास्त कर के इस प्रात को अपने अधिकार मे लिया। अकबर के समय मे यह स्थान मुगल-साम्राज्य के इलाहाबाद सूबे मे लगता था।

उसके बाद यह क्षेत्र अवध के नवाबो के अधिकार मे आया। सन् १७३८ मे नवाब सआदत खाँ ने शेख अब्दुल्ला नामक एक व्यक्ति को गाजीपुर का सूबेदार नियुक्त किया था। यहाँ पर उसके द्वारा बनाया हुआ इमामबाडा, मस्जिद, शहर पनाह, किला, नवाबबाग नामक बगीचा और 'चेहल-सन्तू' नामक ४० खम्भो का भवन देखने को मिलता है।

अब्दुल्ला के मरने पर उसका पुत्र फजलअली यहाँ का शासक हुआ, मगर बनारस के राजा बरिवण्ड सिंह ने उसको निकाल कर गाजीपुर प्रदेश को अपने राज्य मे मिला लिया। सन् १७७० ई० मे बरिवण्ड सिंह के मरने पर उनकी जगह पर चेतसिंह राजा हुए।

उसके पश्चात् सन् १७८१ ई० मे लार्ड वारेन-हेस्टिंग्स ने चेतसिंह को गद्दी से उतार दिया। उसी समय से यह क्षेत्र अग्रेजी-राज्य मे मिला लिया गया।

सन् १८०५ ई० मे यहाँ पर भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड कार्नवालिस की मृत्यु हुई। इस घटना की स्मृति मे 'कार्नवालिस मानूमेट' नाम की एक इमारत बनाई गयी, जिसमे ३२ खम्भे और बीच में एक गुम्बज है। इसमे लार्ड कार्नवालिस की अर्ध मूर्ति रखी गयी है।

गाजीपुर मे उत्तर प्रदेश के अफीम विभाग का बडा केन्द्र है। यहाँ अफीम का एक विशाल कारखाना ४५ एकड भूमि पर स्थित है। इसके सिवाय गाजीपुर गुलाब के फूल, गुलाब के इत्र और गुलाब जल के लिए बहुत प्रसिद्ध है।

---

१ (कनिंगहम ऐन्शेंट ज्याग्रफी आफ इण्डिया पेज ४३६)

गाजीखाँ बदख्शी

एक मुसलमान सेनापति और कवि इसका असली नाम गाजी-निजाम था।

इसकी वीरता से खुश होकर बदख्शाँ के सुल्तान ने इसको गाजीखाँ की उपाधि दी थी। उसके बाद ये भारतवर्ष में आकर सम्राट अकबर के यहाँ एक हजारी मनसबदार बनाए गये।

इन्होंने मानसिंह के साथ राणाप्रताप के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया था। और बिहार के विद्रोह को दबाने में भी इनका हाथ था। गाजीखाँ एक उत्तम सेनाध्यक्ष के साथ-साथ लेखक और कवि भी थे। इन्होंने सम्राट अकबर के सामने 'सिजदा' करने की प्रथा का प्रचलन किया था।

गाडफ्रे

ईसाइयों के प्रसिद्ध धर्म-युद्ध क्रूसेड की लड़ाइयों में एक सेना का नेता। जिसने सन् १ ९९ ई० की बसन्तऋतु में प्रायः २ हजार सैनिकों के साथ 'जेरूसलेम' की ओर प्रस्थान किया। करीब दो महीने का घेरा डालने के पश्चात् इसने उस नगर को जीत लिया और वहाँ के निवासियों को मार डाला।

'गाडफ्रे जेरूसलेम का शासक नियुक्त किया गया और उसने अपना नाम 'पवित्र मंदिर का रक्षक' रखा। इसकी मृत्यु जल्दी हो गयी और सन् ११ ई० में उसका भाई 'बाल्डविन' उसकी गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।

गाथ

एक प्राचीन जर्मन जाति का नाम। इस जाति का इतिहास ईसा की ४थी शताब्दी से प्रारम्भ होकर करीब ७वीं शताब्दी तक चला।

मध्य एशिया से जब हूण-जाति एक के बाद एक आक्रमण करती हुई यूरोप के समीप पहुँची और उसने 'डेन्यूब' नदी के किनारे पर बसे हुए जर्मन लोगों को भगाया। तब इन लोगों ने नदी के इस पार आकर रोम साम्राज्य की शरण ली। यह जर्मन जाति इतिहास में 'गाथ' के नाम से प्रसिद्ध है। थोड़े दिनों में रोम राज्य के कर्मचारियों से गाथ-जाति के सरदारों का झगड़ा हुआ। जिसके परिणाम-स्वरूप सन् ३७८ ई० में 'एड्रियानोपुल' की भयङ्कर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में गाथ-जाति के लोगों ने रोम के तत्कालीन सम्राट 'वालेस' को पराजित करके मार डाला। इस लड़ाई में पराजित होने के कारण रोम की प्रतिष्ठा बहुत गिर गयी। जिसके परिणाम-स्वरूप सन् ४११ ई० में 'आलेरिक' नामक सरदार ने 'इटली' पर हमला करके 'रोम' पर कब्जा कर लिया। मगर उसने किसी प्रकार की लूट-पाट नहीं मचाई।

आलेरिक के मरने के पश्चात् गाथ जाति घूमती हुई गाल तथा स्पेन देशों में गयी। इससे कुछ ही पहले उत्तर से 'वांडाल' नामक जाति गाल तथा स्पेन देश में घुस आई थी। गाथ लोगों ने स्पेन में पहुँच कर रोम-साम्राज्य की सहायता से वांडाल-जाति को भगा दिया। इससे प्रसन्न होकर रोम के सम्राट ने गाथ-जाति को दक्षिणी गाल में बसने के लिए एक विशाल क्षेत्र दिया जहाँ पर इन्होंने अपने राष्ट्र की स्थापना की।

इसके पश्चात् 'युरिक' नाम के गाथ राजा ने स्पेन पर अधिकार करके वहाँ अपना राज्य स्थापित किया।

सन् ४७६ ई० में जर्मन सरदार 'ओडोसर' ने रोम के पश्चिमी सम्राट को निकाल कर पश्चिमी रोम के राजचिह्न आदि रोम के पूर्वी सम्राट के पास 'कुस्तुनतुनिया' भेज दिये और वह स्वयं उनके प्रतिनिधि के रूप में पश्चिमी रोम का शासन करने लगा। इसी लिए सन् ४७७ ई० का वर्ष पश्चिमी रोम साम्राज्य के पतन का वर्ष समझा जाता है। और इसी वर्ष से योरोप में मध्ययुग का प्रारम्भ समझा जाता है।

कुछ ही वर्षों के पश्चात पूर्वी गाथ के सरदार 'थियोडोरिक' ने ओडोसर पर आक्रमण करके 'रावेना' नगर में उसे पकड़ लिया और ईसवी सन् ४९१ में थियोडोरिक ने अपने हाथों से ओडोसर का सिर काट लिया। थियोडोरिक ने भी पूर्वी रोम-सम्राट के संरक्षण में अपने राष्ट्र का निर्माण किया। उसने सिक्कों पर भी पूर्वी रोम-सम्राट की मूर्ति बनाई। पुराने कानून और पुरानी संस्थाओं को इसने कायम रखा। इसने चारों ओर शान्ति स्थापित रखी और बड़ी सुन्दर इमारतों से इसने अपनी राजधानी 'रावेना' को सुसज्जित किया।

सन् ५२६ ई० मे थियोडोरिक की मृत्यु हुई।

सन् ५२७ ई० मे पूर्वी रोम साम्राज्य की गद्दी पर 'जस्टीनियन' नामक् सम्राट् अधिष्ठित हुआ। इसका सेनापति 'वेली-सीरियस' बडा युद्ध कला विशारद था। सन् ५३४ ई० मे इसने उत्तरी अफ्रीका के वांडाल राज्य को जीतकर साम्राज्य मे मिला लिया और सन् ५५३ ई० मे इसी सेनापति ने इटली के गाथ लोगो पर भी आक्रमण करके उन्हे इटली से निकाल दिया।

इस प्रकार गाथ-जाति के इस गाथ राज्य का अन्त हुआ।

गाथा (सप्तशती)

आन्ध्र सातवाहन वश के नरेश "हाल" के द्वारा प्राकृत भाषा की गाथाओ मे रचा हुआ एक सुन्दर काव्य। जिसमे ७०० गाथाओ का सग्रह है और जिसकी रचना ईसा की पहली सदी से लेकर तीसरी सदी के बीच किसी समय हुई मानी जाती है।

गाथा सतसई प्राचीन युग की प्राकृत गाथाओ का सबसे बडा सग्रह है। इसकी कई गाथाएँ तो स्वय "हाल" नरेश की रची हुई है और कई उस समय के लोकगीतो से सग्रह की हुई है। इसकी अनेक गाथाएँ उस समय की कई नारी कवित्रियो के द्वारा रची हुई हैं।

गाथा सतसई मे विशेष रूप से शृङ्गार और करुण दोनो रसों का बडे ललित शब्दो मे विवेचन हुआ है। कई गाथाओ में प्रणय, विरह और मिलन के प्रसङ्ग बडी रोमाण्टिक शैली मे चित्रित हुए हैं।

इसके अतिरिक्त देहातो मे रहनेवाली जनता के जीवन का चित्रण, ऋतुओ का वर्णन इत्यादि अनेक प्रकार के वर्णन इन गाथाओं मे किये गये हैं।

इसी गाथा सतसई के आधार पर आगे जाकर और भी कई सतसइयाँ लिखी गई। हिन्दी की बिहारी सतसई भी इसीके अनुकरण पर लिखी गई हैं। हालाकि उसकी मौलिकता और सौन्दर्य बिहारी का स्वय अपना है।

गान्धार

हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर सिन्धु नदी के पूर्व मे बसा हुआ विस्तीर्ण प्राचीन प्रदेश, जिसमे वर्तमान अफगानिस्तान का बहुत-सा हिस्सा सम्मिलित था।

गान्धार प्रदेश का विवेचन हमारे प्राचीन ग्रन्थो मे स्थान स्थान पर देखने को मिलता है। ऋग्वेद (१-१२-६७) अथर्ववेद (५-२२-१४) और छान्दोग्योपनिषद (६-१४-१) मे इस जनपद का उल्लेख पाया जाता है।

बहुत प्राचीन काल से यह क्षेत्र हिन्दू राजाओ के अधिकार मे रहा। सिन्धु नदी के पश्चिम तीर से वर्तमान अफगानिस्तान का बहुत सा हिस्सा गान्धार देश मे सम्मिलित था। ऋग्वेद मे गान्धार के निवासियो को गान्धारी कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद् मे भी गान्धार देश का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। महाभारतमे महाराज धृतराष्ट्रकी रानी पतिव्रता गान्धारी गान्धार देश के राजा सुबल की कन्या थी। सुबल का पुत्र शकुनी था, जो महाभारत का प्रधान नायक था।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार राजा दशरथ की रानी कैकयी कैकय-जनपद की कन्या थी। कैकय जनपद गान्धार के पूर्व की ओर स्थित था। कैकय-नरेश युधाजित के कहने से कैकेयी के पुत्र भरत ने गान्धार के अन्तर्गत गन्धर्वदेश को जीत कर वहाँ पर तक्षशिला और पुष्कलावती नामक नगरियो को बसाया था।

जैनियो के प्रसिद्ध ग्रन्थ उत्तराध्यवन सूत्र मे गान्धार के जैन-नरेश 'नग्गति' का उल्लेख पाया जाता है। इसी धर्म के 'अरिष्टनेमि' पुराण के अन्तर्गत गान्धार को एक पुण्यस्थान कहा गया है। प्राचीन यूनान के इतिहासकार 'हेरोडेटस' 'हेक्टेयस' और 'टालेमी' ने यहाँ के आदिबासियो का 'गान्दारी' और इस प्रदेश का 'गान्दीरीटीज' के नाम से उल्लेख किया है।

बौद्ध-युग के अन्दर इस प्रदेश ने बहुत महत्व ग्रहण किया था। यह सारा प्रदेश उस समय मौर्य्य-साम्राज्य के अन्तर्गत था। तक्षशिला का विश्वविद्यालय उस समय अपनी उन्नति की चरम सीमा पर था। दूर-दूर देशो के विद्यार्थी यहाँ पर शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। राजनीति के धुरधर आचार्य कौटिल्य और आयुर्वेद के धुरधर आचार्य जीवक भी इसी विश्वविद्यालय के स्नातक थे।

को भागते देखकर युद्ध के मैदान से हिंदू-सेना भी भागने लगी और हिंदुओ की जीत हार मे बदल गयी।

इसके पश्चात् यह सारा प्रदेश राजकीय और धार्मिक दोनो दृष्टियो से इस्लाम के अधीन हो गया।

गांधी मोहनदास करमचन्द

भारतवर्ष के एक इतिहास प्रसिद्ध सत, राजनीतिक नेता, समाज कल्याण के आचार्य, अहिंसा धर्म और सत्याग्रह के महान् प्रदर्शक, मौलिक विचारक, जिनका जन्म २ अक्टूबर सन् १८६६ई० को 'पोरबन्दर मे और मृत्यु ३० जनवरी सन् १६४८ ई० के दिन दिल्ली बिडला-भवन मे नाथूराम गोडसे के द्वारा हुई।

महात्मा गाधी की शिक्षा राजकोट हाईस्कूल मे हुई, जहा से सन् १८८७ ई० मे उन्होने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १८८८ मे ये वकालतकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिए विलायत गये और सन् १८६१ मे बैरिस्टर होकर भारत वापस आये।

सन् १८६३ मे सेठ अब्दुल करीम जवेरी के साथ किसी केस के सम्बध मे ये दक्षिण अफ्रीका गये। और वहाँ के भारतीयो की स्थिति खराब देखकर २२ मई सन् १८६४ को नेटाल मे 'नेटाल-इण्डियन काग्रेस' की स्थापना की।

उसके बाद सन् १६०४ मे इन्होंने वहा से 'इण्डियन ओपीनियन' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला जो अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रभावकारी सिद्ध हुआ।

इन्ही दिनो महात्मा गाधी को 'रस्किन' की लिखी हुई 'अण्टू धिस लास्ट' नामक पुस्तक पढ़ने को मिली। इस पुस्तक ने इनके जीवन को एक महत्वपूर्ण मोड दिया। और इनके अन्दर सर्वोदय की भावना का जागरण हुआ।

१ जनवरी सन् १६०७ को ट्रांसवाल-सरकार ने प्रवासी भारतीयो के लिए हाथ-पाव आदि अगो को छापो से युक्त 'परवाना' रखने का आदेश दिया था। यह आदेश भारतीयो के लिए अत्यत अपमानजनक था। इसी आदेश का प्रतिकार करने के लिए महात्मा गाधी ने पहले-पहल सत्याग्रह का प्रयोग किया और इसी सिलसिले मे गाधी जी पहली बार जेल गये। उनके जेल जाने से वहाँ के जनआदोलन को बडा बल मिला और वहाँ की सरकार को समझौता करने के लिए मजबूर होना पडा। मगर सरकार ने समझौते को बारम्बार भग किया। जिसके परिणाम-स्वरूप इन्हे दो बार और सत्याग्रह करना पडा। जनवरी सन् १६१४ मे अन्तिम समझौता हुआ। और उसी वर्ष गाधीजी वहाँ से एक विजयी सत्याग्रही के रूप मे भारतवर्ष आये।

सन् १६१५ मे उन्होने देश मे घूम कर देश की स्थिति का अध्ययन किया। सन् १६१६ मे वे लखनऊ काग्रेस मे सम्मिलित हुए। इसी वर्ष वसतपञ्चमी पर वायसराय लार्ड 'हार्डिङ्ग' ने बनारस मे हिंदू-युनिवर्सिटी का शिलान्यास किया। इस अवसर पर महात्मा गाधी ने जो भाषण दिया, वह भाषा, शैली, विषय आदि सभी दृष्टियो से अद्भुत, अपूर्व और अकल्पनीय था। इसी मञ्च से पहली बार आर्त्त, दीन और ग्रामीण भारतीयो की आवाज सुनाई पडी। इस भाषण को सुनकर वाइसराय और तमाम देशी राजा स्तब्ध रह गये। और डा० एनी-बीसेंट तो क्षुब्ध होकर वहाँ से उठ कर चली गयी।

इसी समय स्वामी श्रद्धानन्द ने यू० पी० के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर जेम्स मेस्टन, शिरोल और कर्टिस की बनाई हुई भारतीय शासन सुधार के सबध की एक योजना बतलाई। गाधीजी ने काग्रेसी नेताओ के सामने इस योजना का भण्डाफोड़कर दिया जिससे काग्रेस और लीग के क्षेत्र मे क्षोभ की लहर फैल गयी और लोकमान्य 'तिलक' के गरम दल को इससे बहुत बडा बल मिला।

उस समय बिहार के चम्पारन क्षेत्र में नील की बहुत बडी खेती होती थी। और उस खेती मे किसानो के परिश्रम का सारा लाभ वहाँ पर बसे हुए गोरे लोग स्वय उठा लेते थे। और किसानो पर बडा अत्याचार करते थे। इस अत्याचार को दूर करने के लिए महात्मा गाधी ने सन् १६१७ में तिरहुत-कमिश्नर के आदेश की अवज्ञा कर मोतीहारी मे प्रवेश किया और वहाँ की स्थिति का गम्भीर अध्ययन कर करीब ७ हजार किसानो के बयान लिए। इसके परिणाम-स्वरूप निलहे गोरो के अत्याचार की जाँच करने के लिए एक "कमीशन" नियुक्त हुआ। उस कमीशन की रिपोर्ट पर गवर्नर ने 'तिनकठिया कानून' को रद्द कर दिया। इस प्रकार 'गाधी राजनीति की पहली पाठशाला' चम्पारन मे बनी।

चम्पारन की इस विजय से गांधीजी की सारे भारतवर्ष मे बहुत प्रसिद्धि हो गयी। इस समय 'गाधी-राजनीति' मे

नेताओं को बताया कि वे सब लोग स्वावलम्बी बनें। अपना कमरे आप धोवें अपने बर्तन आप माँजें अपने कमरेमें आप झाड़ू दें इत्यादि। यदि बैरिस्टर गांधी यह सब कर सकता है और अपना बिस्तर अपने कन्धे पर उठा कर चल सकता है तो बिहार के वकील क्यों नहीं ऐसा कर सकते। इस प्रकार भारतीय राजनीति को राजनीतिक दलों और आराम कुर्सियों से हटा कर त्याग बलिदान और स्वावलम्बन का स्वरूप देने का श्रेय गांधीजी को ही था।

इधर कांग्रेस में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और लोकमान्य तिलक के दल में सघर्ष चल रहा था। लोकमान्य का दल एनी-बीसेंट को कलकत्ता-कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने को तैयार नहीं था। एनी-बीसेंट की होमरूल-लीग का आन्दोलन बड़ी तेजी पर था। थियोसोफिस्ट भी राजनीति में उतर आये थे। मगर गांधीजी को इन बातों से कोई प्रयोजन नहीं था। वे अपनी धुन में चम्पारन के गांवों में घूम रहे थे।

अगस्त सन् १९१७ में भारत-सचिव ने माण्टेग्यू चेम्स फोर्ड सुधार-योजना की जो घोषणा की उसपर भी गांधीजीने कोई मत देने की आवश्यकता नहीं समझी। कलकत्ता कांग्रेस में वे केवल राष्ट्रभाषा-सम्मेलन तक ही सीमित रहे। किन्तु उनकी बात को मानकर कुछ अग्रेजीपत्रों ने और लोकमान्य के 'केसरी' पत्र ने प्रति सप्ताह हिन्दी में एक कालम का लेख देना स्वीकार किया।

इसी समय गुजरात प्रांतिक परिषद् गांधीजी को सक्रिय राजनीति में खींच लाई। इसके अध्यक्ष महात्मा गान्धी चुने गये। परिषद् के सामने उन्होंने माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड योजना के खिलाफ एक लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवाने का प्रस्ताव रक्खा और भारत के लिए स्वराज्य की मांग करने की योजना बनाई। इस योजना से प्रभावित होकर सरदार पटेल भी सक्रिय रूप से गांधीजी के आन्दोलन में शरीक हो गये। बिहार के ब्रजकिशोर बाबू और राजेन्द्र बाबू इसके पहले ही इस आन्दोलन में सम्मिलित हो चुके थे। इसी वर्ष सन् १९१७ में गान्धीजी ने अहमदाबाद में साबरमती नदी के तीर पर सत्याग्रह आश्रम की नींव डाली।

इन सारी घटनाओं ने महात्मा गांधी का राजनैतिक दर्जा बहुत बड़ा दिया और दिल्ली कांग्रेस ने बैरिस्टर जिन्ना के प्रस्ताव पर लो० तिलक, बैरिस्टर हसन इमाम और महात्मा गांधी का एक प्रतिनिधिमण्डल वर्साईसन्धि सम्मेलन में भेजना स्वीकार कर लिया। यह पहली कांग्रेस थी जिसमें किसान प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे और जो भारत की बढ़ती हुई मनोवृत्ति का परिचय दे रही थी।

इसी समय महायुद्ध के अवसर पर की हुई भारत की विशाल सहायता के उपहारस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारत पर 'रौलेट कानून' के समान भयङ्कर कानून लादने का निश्चय किया और इम्पीरियल कौन्सिल ने उस बिल पर स्वीकृति की मुहर लगा दी। माननीय श्रीनिवास शास्त्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और मालवीयजी की ओजपूर्ण वक्तृताएं कुछ नहीं कर सकीं केवल प्लेटफार्म की वस्तुएं साबित हुईं। जिन्ना प्रेसिडेन्ट पटेल, मजहरुलहक मालवीयजी इत्यादि नेताओं के द्वारा कौन्सिल से इस्तीफा देने का भी कोई असर ब्रिटिश सरकार पर नहीं पड़ा। सशस्त्र प्रतिकार की भी उस समय कोई सम्भावना नहीं थी।

ऐसे समय में सारे देश की दृष्टि महात्मा गांधी की ओर लगी हुई थी जो साबरमती के किनारे अपना आश्रम बनाकर दधीचि की तपस्या कर रहा था। अचानक साबरमती में तूफान आया। महात्मा गांधी ने घोषणा की—

"लड़ाई के वास्ते कूच करने के लिए आत्मा को शुद्ध करो मन को पवित्र करो बुद्धि को निर्मल करो। इसके लिए उपवास करो ईश्वर का भजन करो और पूर्ण हड़ताल रखो"

विश्व के इतिहास में यह पहला अवसर था जब एक महान् सन्त ने राजनैतिक नेता का रूप लिया था और अपने सैनिकों को अस्त्र और शस्त्रों की जगह त्याग, तपस्या अहिंसा और सत्य का मार्ग बतलाया था।

केवल ब्रिटिश सरकार ही नहीं सारा संसार इतिहास के इस अभूतपूर्व आन्दोलन को चकित दृष्टि से देख रहा था। यह पहला मौलिक प्रयोग था जो संसार के इतिहास में कोटि कोटि जनता के ऊपर आजमाया जा रहा था। जिस महान् शक्ति को जर्मनी जैसी खूंखार शक्ति भी परास्त नहीं कर सकी थी उस महान् शक्ति को सत्य अहिंसा और तपस्या की विशाल शक्ति से भिड़ा हुआ यह एक नुमा अजेय था।

जिसमें किसी प्रकार का छल नही था, दुराव नही था, गोप-नीयता नही थी ।

महात्मा गाधी की सेना गाव-गाव मे फैली हुई थी, जहा थाने नही थे, डाकघर नही थे, आवागमन के साधन नही थे । सारे देश मे एक विचित्र, अभूतपूर्व विराट् जनशक्ति का उदय हो रहा था । जिसका सृष्टा और नियन्ता गाधी था । देश की झोपडी-झोपडी गाधी के जयनाद से गूंज रही थी । क्राति की प्रबल लहर ऊँची अट्टालिकाओ से उतर कर झोपडियो मे पहुच गई थी ।

२८ फरवरी १९१९ को वह ऐतिहासिक प्रतिज्ञा पत्र प्रकाशित हुआ जिसमे कानून को न मानने की घोषणा थी और ६ अप्रैल १९१९ का दिन हडताल, उपवास और सभाएँ करने के लिए निश्चित किया गया । गांधीजी ने बिना डिक्लेरेशन के 'सत्याग्रही' नामक पत्र प्रकाशित किया । १० अप्रैल को वे गिरफ्तार किये गये और बम्बई मे ले जाकर छोड दिये गये । इससे सारे देश मे क्रोध का वातावरण छा गया, जिसके परिणाम स्वरूप देश मे कई स्थानो पर दगे हो गये । इसके परिणाम स्वरूप गांधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर प्रायश्चित रूप मे तीन दिन का उपवाश किया ।

दूसरी ओर इस आन्दोलन का निर्दयतापूर्वक दमन करने के लिए पञ्जाब के गवर्नर माइकेल ओडवायर ने पञ्जाब मे मार्शल लॉ घोषित कर दिया । और उस आदेश के अन्तर्गत जनरल डॉयर ने जालियन वाला बाग मे हो रही एक सभा को चारों ओर से घेर कर उस पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलाना प्रारम्भ किया । जिसमे बहुत से व्यक्ति मारे गये । और बचे हुए लोगो को अमृतसर की गलियो मे पेट के बल रेंग कर जाना पडा । इससे सारे देश का वातावरण अत्यन्त उग्र और आतङ्कपूर्ण हो गया ।

इसी समय देश मे मौलाना मुहम्मद अलीने खिलाफत आन्दोलन का भी प्रारम्भ किया । और गांधीजी के सहयोग से खिलाफत और असहयोग आन्दोलन एक हो गये और चारो तरफ 'हिन्दू मुसलिम भाई भाई'' के नारे लगने लगे ।

सन् १९२० मे नागपूर कांग्रेस के अन्तर्गत महात्मागांधी ने असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम पेश किया । इस आन्दोलन से सारे देश मे एक सगठित जागृति की जोरदार लहर आई और वकीलो, छात्रो तथा पदवीधारियो ने अपनी वकालत, स्कूल और पदवियो को छोड कर इस आन्दोलन मे सहयोग दिया । इस आन्दोलन का दमन करने के लिए सरकार ने हजारो आदमियो को गिरफ्तार किया मगर इससे आन्दोलन में कोई शिथिलता नही आई और महात्मा गाँधी सन् १९२१ मे इस आन्दोलन के पूर्ण शक्ति प्राप्त डिक्टेटर बना दिये गये ।

इसी आन्दोलन के सिलसिले मे पुलिस के अत्याचारो से तङ्ग आकर गोरखपुर के समीप चोरी चोरा नामक स्थान की जनता ने पुलिस चौकी पर हमला करके २३ पुलिस मैनो को मार डाला और पुलिस चौकी मे आग लगा दी । इस दुर्घटना से दु खी होकर महात्मागांधी ने अपना आन्दोलन वापस ले लिया । इस प्रकार असहयोग आन्दोलन की पहली किश्त समाप्त हुई ।

इस घटना से सारे देश मे एक मृतक शान्ति छा गई । लोगो के मनसूबे खतम होगये । जेलो मे देशबन्धुदास और मोतीलाल नेहरू जैसे नेता भी गाधीजी के इस निर्णय से तिल मिला उठे मगर गाँधी जी का निर्णय अडिग था । उसमे कोई परिवर्त्तन नही हुआ ।

देशकी इस कमजोर मन स्थिति का फायदा उठाकर सरकार ने गाधी जी को गिरफ्तार कर लिया । उस समय उन्होने कोर्ट मे अपना ऐतिहासिक बयान देते हुए कहा कि—

''मैं एक राजद्रोही हूँ, मैं जानता हूँ कि मैं आग के साथ खेल रहा हूँ, और यदि मुझे छोड दिया जाय तो मैंने जो कुछ किया है फिर वही करूँगा । यदि मैं ऐसा नही करूँ तो अपना फर्ज अदा नही करूँगा । मैं जानता हू कि कभी कभी मेरे देश वासियो ने पागलपन से भरे काम किये है और उन कायो की जवाब दारी भी मेरे पर ही है । इस लिए यहाँ जो मैं खडा हूँ सो कोई मामूली सजा सुनने के लिए नही वल्कि कडी से कडी सजा पाने के लिए । मैं दया की प्रार्थना नही करता । मैं तो ऐसे काम के लिए, जो कानून की निगाह में जानबूझ कर किया गया अपराध है पर मेरे दृष्टिकोण से एक नागरिक का सबसे बडा कर्त्तव्य है कठोर से कठोर सजा चाहता हूँ ।''

''विचारपति महोदय । आपके आगे इस समय दो ही मार्ग हैं या तो आप अपना पद छोड दें । या यदि आप समझते है कि जिस शासन व्यवस्था और जिस कानून के व्यवहार मे

आप सहायता दे रहे हैं वह अंगम दायक है तो फिर मुझ बड़ी से बड़ी सजा दें।"

इस केस में जज ने महात्मा गांधी को ६ साल की सजा दी। गांधी जी के जेल म जाते ही सारे देश में एक नराश्य पूर्ण वातावरण छा गया। इसी वातावरण में गया की कांग्रेस हुई। इस कांग्रेस में ब्रिटिशशासन की कौंसिलों में प्रवेश करना या नहीं इस प्रश्न पर दो दल हो गये। एक दल राजगोपालाचारी का था जो कौंसिलप्रवेश का विरोधी था। दूसरा दल मोती लाल नेहरू का था जो कौंसिल प्रवेश के पक्ष में था। कांग्रेस का निर्णय कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध होने पर मोतीलाल नेहरू ने देश बन्धुदास सरदार विट्ठल भाई पटेल आदि के सहयोग से अलग स्वराज्य पार्टी की स्थापना कर ली।

इसके पश्चात् सन् १९२९ ई तक देश मे कोई महत्व पूर्ण प्रगति नहीं हुई। टर्की में 'कमाल पाशा के द्वारा खिलाफत को समाप्त कर दिये जाने के कारण भारतवर्ष में भी खिलाफत आंदोलन का अन्त हो गया। जिससे देश के अनेक भागों म हिंदू मुसलमानों में जोरदार दंगे प्रारम हो गये।

सन् १९२२ ई मे मुल्तान में सन् १९२३ मे बंगाल और पंजाब में और सन् १९२४ ई में कोहाट के अन्दर हिंदू-मुसलमानों के भयंकर दंगे हुए। इन साम्प्रदायिक दंगों से गांधीजी को अत्यंत कष्ट हुआ और उसके प्रायश्चित्त स्वरूप १७ सितम्बर सन् १९२४ ई से उन्होंने २१ दिन का उपवास किया। लेकिन फिर भी हिंदू-मुसलमानों का तनाव प्रतिदिन बढ़ता ही गया और मि जिन्ना का प्रभाव सारे मुसलमान-समाज म व्यापक रूप ग्रहण करता गया।

सन् १९२९ में प जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहोर की कांग्रेस के अंतर्गत २६ जनवरी को रावी नदी के किनारे पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य घोषित किया गया।

सत्याग्रह का दूसरा दौर

सन् १९३ ई के मार्च महीने में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह का दूसरा दौर नामक सत्याग्रह के रूप में प्रारंभ किया। उन्होंने वाइसराय को एक लम्बा पत्र लिखकर ११ मार्च सन् १९३ ई को अपने ७९ साथियों के साथ अहमदा बाद से १ मील दूर 'डांडी' के लिये पैदल-यात्रा प्रारंभ कर दी। वहाँ पर पहुँच कर समुद्र के किनारे उनको 'नमक-कानून' को भंग करना था। कूच के समय ही गांधी जी ने घोषित कर दिया था कि स्वराज्य नहीं मिला तो रास्ते में या तो मर जाऊँगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक-कर नहीं उठा सका तो आश्रम में भी लौटने का इरादा नहीं है।

नमक-सत्याग्रह के साथ ही फिर इस बार बंदे मातरम् का डंका सारे देश पर घूम गया। सारे देश में एक प्रबल नई जागृति की लहर दौड़ गई। हजारों आदमी सत्याग्रह करके जेल जाने लगे। २४ दिनों की यात्रा के बाद पाँच अप्रैल को प्रातः काल मे लोग डांडी पहुंचे। और प्रार्थना कर के विधिवत् 'नमक-कानून' को भंग किया।

६ अप्रैल से सारे देश में एक छोर से दूसरे छोर तक एक ज्वालामुखी भड़क उठा। बड़े-बड़े शहरों में लाखों की उपस्थिति में बड़ी-बड़ी सभाएँ हुई। पेशावर मे सेना की गोलियों से कई आदमी मारे गये।

इसके बाद गान्धी जी ने 'धरसाना' और 'धरासड़ा' के नमक-भंडारों पर धावा करने की सूचना वाइसराय को दी। इस सूचना के पहुँचते ही ५ मई को महात्मा गांधी गिरफ्तार करके 'यरवदा' जेल में भेज दिये गये।

इस बार गान्धी जी की गिरफ्तारी से न केवल भारत में प्रत्युत सारे संसार के लोकमत में एक सहानुभूति का भाव जग गया। अमेरिका के १ २ प्रभावशाली पादरियों ने इंग्लैंड के प्रधान मंत्री को एक लम्बा तार भेजकर भारतवर्ष से समझौता करने की अपील की। मगर सरकार अपनी प्रतिज्ञा पर अड़ी रही और सारे देश में दमन का जोरदार चक्र उसने चला दिया। गुजरात में तो यह दमन इतने जोर शोर से लागू हुआ कि उससे तंग आकर वहाँ के करीब ८ हजार किसान अंग्रेजी राज्य की सीमाओं को छोड़ कर देशी राज्यों की सीमाओं मे चले गये मगर आन्दोलन की तीव्रता मे कोई अन्तर नहीं आया।

जयकर-सप्रू इत्यादि मध्यस्थ लोगों के प्रयत्न से तथा लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेंस होने की सम्भावना से २६ जनवरी सन् १९३१ ई को सरकार ने महात्मा गांधी और उनके सत्याग्रही साथियों को छोड़ दिया।

उसके तुरत बाद महात्मा गाधी लार्ड 'इरविन' से मिले, जिसके फल स्वरूप इतिहास-प्रसिद्ध गान्धी-इरविन समझौता हुआ। इसमे सरकार ने गाधी जी को सन्तुष्ट करने के योग्य एक वातावरण तैयार कर दिया और गन्धीजी ने इसे स्वीकार कर अपना सत्याग्रह बद कर दिया।

इसके बाद कराची मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। इन्ही दिनो पञ्जाब सरकार ने सरदार भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी पर चढ़ाया। और इन्ही दिनो कानपुर के हिन्दू मुसलिम दगे मे श्री गणेश शकर 'विद्यार्थी' की हत्या हुई। इस शोक पूर्ण वातावरण मे कराची का अधिवेशन हुआ।

इसके कुछ समय पश्चात् सितम्बर सन् १९३१ ई० मे लन्दन की गोलमेजपरिषद् मे महात्मा गान्धी को भेजा गया। यह परिषद् ११ सप्ताह तक चली। मगर इस गोलमेज-परिषद् की कार्यवाही से गाधी जी बिल्कुल असन्तुष्ट रहे। कोई समझौता न हो सका। वह परिषद् असफल हुई और अत में गाधी जी ने सभापति को धन्यवाद देते हुए कहा—"अब हमे अलग-अलग रास्तो पर जाना होगा। मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसी मे है कि हम जीवन मे आने वाली आँधियो से टक्कर लें। मैं नही जानता कि मेरा रास्ता क्या होगा। फिर भी इतना निश्चय है कि भारत शासको का रक्तपात करके स्वाधीनता नही चाहता, लेकिन स्वतत्रता की प्राप्ति के लिए यदि आवश्यकता हुई तो हम भारतवासी अपने रक्त से गगाजल को भी लाल कर देंगे।"

२८ दिसम्बर सन् १९३१ ई० को गाधी जी भारतवर्ष वापस आये, मगर उनके भारत पहुँचने के पहले ही सरकार ने युक्तप्रात बगाल, सीमाप्रांत इत्यादि स्थानो पर आर्डिनेंस निकाल कर बहुत से लोगो को गिरफ्तार कर लिया था जिनमे प० जवाहर लाल नेहरू और पुरुषोतम दास टण्डन भी थे।

गाधी जी ने यहाँ पहुँचते ही स्थिति को देखकर लार्ड 'विलिगडन' से पत्र-व्यवहार किया। मगर वाइसराय ने बडी सख्ती से उनके उत्तर दिये और ४ जनवरी सन् १९३२ को सवेरे महात्मा गाधी और सरदार पटेल को भी गिरफ्तार कर लिया और प्रातीय तथा जिला काग्रेस कमेटियो, आश्रमो और दूसरी राष्ट्रीय सस्थाओ को गैर कानूनी घोषित कर दिया। चारो तरफ आतक और सर्वनाश का बोलबाला हो गया।

आमरण अनशन और पूना पैक्ट

इसी समय भारत-सरकार ने असेम्बली के निर्वाचनो मे हरिजन लोगो के लिए पृथक् निर्वाचनो की घोषणा कर दी। जेल मे महात्मा गाधी को जब यह मालूम हुआ तो उन्होने सरकार को तुरत नोटिस दे दिया कि—"यदि सरकार दलित जातियो के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को बन्द नही करेगी तो २० अप्रैल सन् १९३२ ई० से मैं आमरण अनशन प्रारभ कर दूगा।"

मगर सरकार ने महात्मा गाधी की सलाह को मजूर नही किया। फलस्वरूप गाधी जी ने अपना इतिहास-प्रसिद्ध अनशन चालू कर दिया।

इससे पहले ही महात्मा गाधी के निश्चय से सारे देश मे खलबली मच चुकी थी और देश के तमाम बडे बडे नेता और अछूत नेता पूना मे इस समस्या को सुलझाने के लिये एकत्र हो चुके थे। यही पर सुप्रसिद्ध पूना पैक्ट पास हुआ, जिसमे हरिजनो के लिए सरकार के पृथक् निर्वाचन प्रस्ताव मे जितनी सीटें रखी गयी थी, उनसे भी अधिक सीटे इस पैक्ट मे रख दी गयी और दोनो पक्षो के नेताओ ने इसकी स्वीकृति की सूचना सरकार को दे दी। सरकार ने भी इस पैक्ट को मानकर पृथक्-निर्वाचन के प्रस्ताव को रद्द कर दिया। तब २६ अप्रैल को महात्मा गाधी ने अपना उपवास तोडा।

इसके बाद ८ मई १९३३ ई० को गाधी जी ने आत्म-शुद्धि के लिए फिर २१ दिन का उपवास शुरू किया। इस उपवास से सारा देश आशकित हो उठा। क्योकि गाधी जी का स्वास्थ्य ऐसा नही था कि वे इतने लम्बे अनशन को सहन करले। सरकार ने भी इस भयकर खतरे को उठाना उचित न समझ कर उन्हें रिहा कर दिया। सारे देश मे उनके दीर्घ जीवन के लिए प्रार्थनाएँ होने लगी। प्रति दिन डाक्टर लोग अत्यन्त चिन्ता से उनकी सेवा शुश्रूषा करते हुए रिपोर्ट निकालने लगे। उनका ब्लड प्रेशर बढ़ गया और स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरने लगा। सारे देश मे चिंता का वातावरण उत्पन्न हो गया। इस चिंता पूर्ण वातावरण को देखकर एक दिन गाधी जी ने कहा कि—'आप लोग चिंतित न हो—मैं

इस उपवास से मरूँगा नहीं।' और डाक्टरों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उनकी प्रबल इच्छाशक्ति के बल से उनका गिरता हुआ स्वास्थ्य एक दम रुक गया। दूसरे दिन से डाक्टरों की आशा जनक रिपोर्ट प्रकाशित होने लगीं। महान् इच्छाशक्ति की विजय हुई और २१ दिनों का उपवास पूरा करके उगे हुए सोने की भाँति प्रसन्न-वदन से महात्मा गांधी लोगों के सामने आये।

१७ सितम्बर सन् १९३४ को गांधी जी ने कांग्रेस से अलग होने की घोषणा की। इन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि— शिक्षित कांग्रेस-जनों का बहुत बड़ा वर्ग मेरे उपायों विचारों और उनपर आधारित प्रोग्रामों से ऊब गया है। मैं कांग्रेस के विकास में सहायक होने के बजाय बाधक हो रहा हूँ। यह संस्था मेरे व्यक्तित्व से बंध रही है। अन्य बात लोकतन्त्रवादी के लिए यह बात बड़ी ही अपमानजनक है। १४ वर्षों के प्रयोग के बाद अधिकांश कांग्रेसजनों के लिए 'अहिंसा' केवल एक नीति के रूप में स्वीकार्य है। मगर मेरे लिए वह धर्म है। मैंने इस प्रयोग के लिए अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया है और मुझे पूर्ण तटस्थता तथा कार्य की पूर्ण स्वाधीनता की आवश्यकता है।

कांग्रेस से अलग होकर गांधीजी ने वर्धा के निकट सेवाग्राम में अपना आश्रम बनाया और वे ग्रामोद्योग तथा हरिजनोद्धार के काम में लग गये।

इसके पश्चात् कांग्रेस क्षेत्रों में निराशा का वातावरण छा गया और ऐसा दिखाई पड़ने लगा जैसे महात्मा गांधी का प्रभाव कम होता जा रहा है। इसका प्रमाण तब मिला जब त्रिपुरी कांग्रेस के समय उनके अध्यक्ष पद के लिए महात्मा गांधी के द्वारा खड़े किये गये उम्मीदवार पट्टाभि सीतारामैय्या सुभाषचन्द्र बोस के मुकाबले में बुरी तरह से पराजित हो गये। इस हार को गान्धी जी ने अपनी व्यक्तिगत हार माना था।

आन्दोलन का तीसरा दौर

मगर यह स्थिति अधिक समय तक कायम नहीं रही और दूसरे महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर सन् १९४१ के दिसम्बर में जापानी लोग भारत की सीमा पर आ पहुँचे। तब सन् '४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स समझौते का प्रस्ताव लेकर भारत आये। इस प्रस्ताव को गांधीजी ने 'पोस्ट डेटेड चेक' (आगे की पड़ी हुई तारीख का चेक) कहकर अस्वीकार कर दिया।

इसके बाद सीमा पर खतरे के लक्षण देख कर गांधीजी ने अंग्रेजों के सामने क्विट इण्डिया (Quit India) 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव रखा। ८ अगस्त सन् १९४२ को बम्बई में भारतीय कांग्रेस कमेटी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उसके दूसरे दिन गान्धीजी तथा बम्बई में उपस्थित सभी कांग्रेस के नेता गिरफ्तार कर लिए गये और कांग्रेस कमेटियाँ गैर कानूनी घोषित कर दी गयीं। उचित नेतृत्व के अभाव में देश में जगह-जगह हिंसा-काण्ड होने लगे। स्थान-स्थान पर रेलवे-स्टेशन डाकघर, अदालतें और थाने जला दिये गये। रेलों और तारों की लाइनें काट दी गयीं। उधर सरकारी दमन ने जनता पर भयङ्कर गोलियों की वर्षा की। लोग घसीटे गये पीटे गये पेड़ों पर लटकाये गये। सामूहिक जुरमाने किये गये। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस सारे काण्ड में २,९११ व्यक्ति हताहत हुए और ६० ७० हजार लोग गिरफ्तार किये गये। १५ अगस्त को जेल में ही गान्धीजी के प्राइवेट सेक्रेटरी महादेव भाई देसाई का देहान्त हो गया।

सरकार के इस दमनचक्र के विरोध में गान्धीजी ने जेल में १० फरवरी १९४३ ई. से २१ दिनों का उपवास प्रारम्भ कर दिया। इनके साथ ही कस्तूर बा सरोजिनी नायडू और मीरा बहनने भी अनशन प्रारम्भ किया। २१ फरवरी '४३ को गान्धीजी की स्थिति चिन्ताजनक हो गयी मगर अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के बल पर वे इस अग्निपरीक्षा में भी उत्तीर्ण हो गये। २२ फरवरी १९४४ ई. को गांधीजी की पत्नी श्रीमती कस्तूरबा का देहान्त आगाखाँ महल में ही हो गया। इससे गांधीजी के स्वास्थ्य को बड़ा धक्का लगा। ६ मई को बिना शर्त वे जेल से मुक्त कर दिये गये।

उसके बाद उन्होंने १५ दिनों का मौन व्रत ग्रहण किया। तत्पश्चात् हिन्दू मुसलिम समस्या को सुलझाने के लिये वे मुहम्मदअली जिन्ना के घर पर गये मगर उसका कोई भी परिणाम न निकला। मि. जिन्ना ने मुस्लिमराज्य के अलग स्थापना करने के सिवाय किसी भी शर्त पर समझौता करने से इनकार कर दिया।

१४ जून को वाइसराय ने कांग्रेस कमेटी के सदस्यों को रिहा कर दिया और समझौते के लिए शिमला में नेताओं का एक सम्मेलन बुलाया। गांधीजी भी उसमें सलाहकार के रूप में

शामिल हुए। यह सम्मेलन २५ जून से १४ जुलाई तक चला, मगर मुस्लिमलीग के रुख के कारण कोई परिणाम नही निकला।

उधर इंग्लैण्ड की पार्लियामेंट के चुनाव मे विंस्टनचर्चिल को भारी पराजय देकर श्री एटली के नेतृत्व मे मजदूर दल इंग्लैण्ड के शासन पर आया। मि० एटली का रुख शुरू से ही भारत के अनुकूल रहा। उन्होंने कांग्रेस को पुन कानूनी घोषित किया और प्रान्तीय तथा केन्द्रीय धारा सभाओ के पुन चुनाव करवाये। इसमे कांग्रेस की बहुत बडी विजय हुई। सन् १९४६ ई० के प्रारम्भ मे एक ब्रिटिश मन्त्रिदल भारत आया और यहाँ के नेताओ से बातचीत कर भारत छोडने की नीति को स्वीकार करके एक अस्थायी सरकार के संगठन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कांग्रेस ने इस अस्थायी सरकार का संगठन किया। मगर मुसलिम लीग ने इस योजना को अस्वीकार कर दी और बङ्गाल के मुख्य मन्त्री सुहरावर्दी ने १६ अगस्त को डाइरेक्ट एक्शन (Direct Action) का दिन निश्चित कर दिया। इस दिन कलकत्ते मे भयङ्कर दङ्गा हुआ। हजारो व्यक्ति हताहत हुए और सैकडो दूकाने लूटी और जलाई गयी। नोवाखाली मे भी बडा भयङ्कर हत्याकाण्ड हुआ।

यह देखकर लार्ड वावेल ने अस्थायी सरकार मे मुसलिम लीग के प्रतिनिधित्व को भी स्थान दे दिया। जिससे अस्थायी सरकार मे भी कांग्रेस और मुसलिम लीग का संघर्ष प्रारम्भ हो गया। नोआखाली की प्रतिक्रिया मे विहार के अन्दर भी साम्प्रदायिक आग भडक उठी। गृहयुद्ध की इस आशका को देख कर महात्मागाधी 'नोवाखाली' की पैदल यात्रा को तैयार हुए और २० नवम्बर सन् १९४६ ई० से गाधीजी ने नोवाखाली की पैदल-यात्रा प्रारम्भ की। उनके प्रयत्नो से किसी प्रकार नोवाखाली और विहार मे शान्ति स्थापित हुई तो 'लीग' ने पञ्जाब और सीमाप्रान्त मे इस आग को फैला दिया।

देश-विभाजन

इन सब घटनाओ के परिणाम-स्वरूप अंग्रेज-सरकार ने देश विभाजन का प्रस्ताव रखा। गांधीजी की आत्मा इन सब घटनाओ से अत्यन्त त्रसित हो रही थी। देश का विभाजन उन्हे किसी भी रूप मे स्वीकार न था। उन्होंने एक बार कहा था कि—"मेरे शरीर के टुकडे हो जायँ तो मुझे इसकी चिन्ता न होगी, मगर देश के टुकडे होना मुझे सहन नही होगा।"

मगर इन सब घटनाओ ने जब अत्यन्त निराशापूर्ण वातावरण की सृष्टि कर दी और दूसरे नेता लोग उन पर विभाजन को स्वीकार करने के लिए जोर देने लगे तो उन्होंने अत्यन्त दुखी हृदय से उस प्रस्ताव को स्वीकार किया।

१५ अगस्त को भारत को स्वतन्त्रता मिली, मगर गांधी जी के हृदय पर कोई आनन्द या उल्लास नही था। जिस स्वराज्य या रामराज्य की स्थापना का वह स्वप्न देख रहे थे, वह स्वप्न चूर-चूर हो चुका था। उनके चित्त को शान्ति नहीं थी। वे अपने आप को अजीब उलझन मे अनुभव कर रहे थे और ईश्वर से मार्गदर्शन की प्रार्थना कर रहे थे।

स्वाधीनता मिलने के पश्चात् ही चारो ओर साम्प्रदायिकता की आग भडक उठी। ९ सितम्बर को गाधीजी ने पञ्जाब जाने का निश्चय किया। मगर वे वहां न जा सके। क्योंकि दिल्ली के आस पास और पञ्जाब के हिन्दू-क्षेत्रों मे भी साम्प्रदायिकता की आग भडक उठी थी। इस अग्नि को शात करने के लिए उन्होने फिर १३ जनवरी १९४८ ई० को अनशन प्रारम्भ कर दिया। १८ जनवरी को दोनो सम्प्रदायो के प्रतिनिधियो के अनुरोध पर उन्होने अपना अनशन भङ्ग किया।

३० जनवरी सन् १९४८ ई० को जब गांधीजी बिडला-भवन मे प्रार्थना सभा मे प्रवचन करने के लिए मञ्च की ओर बढ़ रहे थे तब नाथूराम गोडसे नामक एक व्यक्ति ने लगातार तीन गोलियाँ चला कर उनकी हत्या कर दी।

३० जनवरी सन् १९४८ ई० को ५ बजकर ४० मिनट पर इस महापुरुष महात्मा गांधी का देहान्त हो गया। यह समाचार बिजली की तरह सारे देश मे फैल गया। सारे देश मे अत्यन्त शोक का वातावरण छागया और इस महा पुरुष का नाम ईसा और सुकरात की तरह ससार महान् शहीदो मे लिखा गया।

गांधी-जीवन-दर्शन

महात्मा गाधी केवल एक राजनैतिक नेता ही नही थे और न भारत से अंग्रेजो को निकाल देना ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य था। यह सब चीजें तो उनके जीवन का एक आनुषागिक पहलू मात्र थी।

उनके जीवन का चरमलक्ष्य संसार को—मानव समाज को जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में एक बिलकुल नवीन और मौलिक सन्देश देना था। जिसमें जीवन के एक एक पहलू पर विशुद्ध और मौलिक दृष्टिकोण से विचार किया गया हो। उनकी कल्पना में एक ऐसा समाज और एक ऐसा संसार था जिसमें हिंसा युद्ध अनैतिकता दम्भ और शोषण का अस्तित्व नहीं हो। जिसमें मानव-मात्रको फलने फूलने का समान अवसर मिले और जिसमें रामराज्य के समान कल्याण कारी राज्य की स्थापना हो।

इस स्वप्न को चरितार्थ करने के लिए उन्होंने बुनियादी रूप से दो तत्वों का सहारा लिया। ये दो तत्व सत्य और अहिंसा थे। उनका अटूट विश्वास था कि इन दो महान् तत्वों की आधारशिला पर जिस समाज का निर्माण होगा वह इतिहास का सर्वोत्कृष्ट समाज होगा।

गांधीजी का यह जीवन-दर्शन उनकी विशुद्ध मौलिक कल्पना थी। यद्यपि राम कृष्ण बुद्ध महावीर, ईसा टॉलस्टाय रस्किन इत्यादि महान् पुरुषों के जीवन-दर्शन से उन्होंने प्रकाश ग्रहण किया था मगर उन सब विचारों को अपने सांचे ढालकर उन्होंने उसे बिलकुल मौलिक रूप दे दिया था।

सत्य और अहिंसा का कल्याणकारी सिद्धान्त आज का कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है। संसार के बहुत से महापुरुषों ने हजारों वर्षों से समाज में दैवी सम्पद के विकास के लिए सत्य और अहिंसा के रूप को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया है मगर उन महात्माओं ने किसी राजनैतिक और आर्थिक सिद्धि के लिए इन तत्वों का उपयोग कभी नहीं किया। महात्मा गांधी ने मानवीय इतिहास में पहली बार विशुद्ध मौलिक रूप से राजनैतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिये इन तत्वों का प्रयोग किया। उन्होंने कहा कि—"न सिर्फ भारत प्रत्युत अखिल विश्व का कल्याण और भवितव्य सत्य और अहिंसा के जीवन-दर्शन में ही गुम्फित है। अहिंसा की पद्धति जिस प्रकार से सर्वथा निर्दोष है उसी प्रकार वह संसार के अत्याचार-पीड़ित समाज के समस्त राजनैतिक और आर्थिक सवालों को हल करने के लिए भी अमोघ अस्त्र है। मैंने अपने जीवन के प्रारंभ से ही यह समझ लिया है कि अहिंसा केवल साधुओं का ही गुण नहीं है बल्कि सारा समाज के जीवन-यापन के लिए भी निरंतर नैतिक विधान है। यदि मानव-समाज मानवता के गौरव के अनुकूल जिन्दगी बसर करना चाहता है और यदि वह शान्ति और स्वतंत्रता का इच्छुक है, तो जीवन में उसको अहिंसा का ग्रहण करना ही पड़ेगा। युग युग से मानव जिस महान् लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है, उसकी प्राप्ति सिर्फ अहिंसा के ही द्वारा हो सकती है।

इन्हीं तत्वों के प्रकाश में गांधी जीवन-दर्शन मानवीय इतिहास की नैतिक व्याख्या करता है। मार्क्स की तरह यह जीवन और जगत को गतिशील द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद के रूपमें नहीं देखता बल्कि द्वन्द्वात्मक जीवन वादमें वह विश्वास करता है। वह जीवन समाज और जगत को नैतिकता के आलोक में देखता है। इस जीवन-दर्शन का विश्वास है कि समाज यदि सच्चे हृदय से नैतिकता का मूल्यांकन करले और अपने साथ अपने पड़ोसी के कल्याण की कामना भी सच्चे हृदय से करने लग जाय और वह अपने जीवन की बुनियाद हिंसा और शोषण की प्रवृत्ति से हटाकर अहिंसा और त्याग की वृत्ति पर स्थित कर दे तो समाज की सारी राजनैतिक सामा जिक आर्थिक और युद्ध संबंधी समस्याएँ अपने आप हल हो जाती हैं। यह एक ऐसी कुञ्जी है जिससे सामाजिक शान्ति के सब ताले अपने-आप खुल जाते हैं। इसके विपरीत यदि समाज स्वार्थ दम्भ लोलुपता अहंकार और शोषण की प्रवृत्ति तथा प्रभुता और शोषणकी नींवपर खड़ा किया जाता है तो फिर चाहे उसका नाम समाजवादहो चाहे कम्युनिज्म हो, चाहे और कोई नाम हो—वह कभी सुख और शान्ति का जनक नहीं हो सकता।

आर्थिक जीवन-दर्शन

गान्धी जीवन-दर्शन का विश्वास है कि आर्थिक व्यवस्था का व्यक्ति और समाज पर सबसे अधिक प्रभाव होता है। फिर उससे उत्पन्न हुई आर्थिक और सामाजिक मान्यताएँ राजनैतिक व्यवस्था को जन्म देती हैं। गांधीजी का विश्वास था कि मशीन-युग की आधुनिक अर्थ-व्यवस्था पूंजी का केन्द्रीकरण कर देती है। जिससे समाज की अर्थव्यवस्था थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रीभूत हो जाती है और इस पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा के लिए शक्ति तथा अधिकार के

सम्पन्न राज्य-सत्ता आगे आती है। जिसके फलस्वरूप परिश्रम करने वाले समाज के बहुत बड़े श्रमजीवी वर्ग का शोषण और दोहन होता है। इस अवस्था को दूर करने का एकमात्र उपाय आर्थिक व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण है। उत्पादन की प्रणाली, उत्पादन के साधन और पूँजी बड़े-बड़े उद्योगों से निकाल कर जब छोटे-छोटे ग्राम उद्योगों मे विकेन्द्रीकरण कर दी जायगी तभी यह समस्या हल होगी। और हर एक व्यक्ति को अपने परिश्रम का भोग स्वय करने को मिलेगा। और इस प्रकार विकेन्द्रित उत्पादन और पूँजी के आधार पर बना हुआ समाज किसी वर्ग-विशेष के स्वार्थ का साधन न बन पायेगा। ऐसी विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था मे जब समाज की सब इकाइयाँ स्वावलम्बी हो जायगी, तब किसी शस्त्र-शक्ति-सम्पन्न राजनैतिक सत्ता के हस्तक्षेप की आवश्यकता न होगी।

सामाजिक जीवन-दर्शन

सामाजिक समस्याओ के बारे मे भी गान्धी-जीवन दर्शन की विचार धारा अत्यन्त सुस्पष्ट, सुलझी हुई और गभीर अध्ययन के द्वारा परिपुष्ट की हुई है।

गाधीजी का विचार था कि जिस समाज मे छुआछूत और दासत्व की भावनाएँ तथा स्त्रियो के प्रति पक्षपात पूर्ण व्यवहार का अस्तित्व है, वह समाज व्यवस्था कभी भी शाति प्रदायक नही हो सकती। उनका विश्वास था कि छुआछूत का रोग मानव जाति के शरीर मे कोढ के समान घिनौनापन पैदा करता है। यह एक ऐसा अभिशाप है जो मनुष्य-मनुष्य के बीच भेद भाव की दीवारें खडी करके मानवता का पतन कर देता है और समाज मे स्थायी शान्ति का प्रादुर्भाव नही होने देता।

इसलिए महात्मा गाधी ने अपने जीवनका बहुत बडा भाग इसी समस्या को सुलझाने मे लगाया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हर एक मनुष्य को जीवन का दैनिक कार्य करने मे स्वावलबी होना चाहिए। कपडे धोना, झाडू लगाना, मलमूत्र की सफाई करना इत्यादि कामो मे परावलम्बी होने से समाज मे इस प्रकार की परिस्थितियाँ पैदा होती हैं।

समाज मे स्त्रियो की स्थिति के सम्बन्ध मे भी उनके विचार बहुत मँजे हुए थे। उनके मत मे पुरुषों की तरह स्त्रियो की भी शिक्षा-दीक्षा और सामाजिक स्थिति का निर्माण होना चाहिए। मगर अत्यधिक भोग प्रवृत्ति, विलास-वासना और फैशन की चटक-मटक से बचना उनके लिए भी परमावश्यक है। कुटुम्ब की अन्तरंग सुव्यवस्था के लिए पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो का दायित्व अधिक विस्तृत है।

राष्ट्रभाषा

सामाजिक सुव्यवस्था के लिए हरएक राष्ट्र के लिए एक राष्ट्रभाषा का होना अत्यन्त आवश्यक है। राष्ट्रभाषा सम्बन्धी इस आन्दोलन मे राजनीति मे प्रवेश करने के पहले ही गान्धीजी प्रविष्ट हो गये थे और उन्होने भाषा विज्ञान सम्बन्धी सभी समस्याओ का अध्ययन करने के पश्चात् भारतीय राष्ट्र के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी को ही चुना था और इस राष्ट्रभाषा-प्रचार के लिए वे जीवन भर उद्योग करते रहे।

महात्मा गाधी का कहना था कि "भारतवर्ष मे अंग्रेज रहे इसमे हमे कोई आपत्ति नही है, मगर यहाँ पर जो अंग्रेजियत पैदा हो गयी है, उस अंग्रेजियत को निकालना हमारे लिए अनिवार्य है। उस अंग्रेजियत को निकाले बिना हमारे राष्ट्र का कल्याण नही हो सकता।" और यह अंग्रेजियत बिना एक राष्ट्रभाषा को स्वीकार किये नही निकल सकती।

मद्य-निषेध

समाज-कल्याण की दृष्टि से गाधी-जीवन-दर्शन के अन्तर्गत मद्य-निषेध भी एक प्रमुख अग है। गाधीजी का कहना था कि मदिरा के सेवन से मनुष्य अपने विवेक को खो बैठता है। उसकी पशु-प्रवृत्तियाँ-जागृत हो जाती है और वह ऐसे काम कर बैठता है, जो इन्सानियत के खिलाफ है। जब तक मद्य पान का अस्तित्व है तब तक मानवता का सर्वाङ्गीण विकास होना बहुत कठिन है। इसलिए समाज से मद्य-पान के अभिशाप को मिटाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए सारे जीवन उन्होने प्रयत्न किया।

आरोग्य और स्वास्थ्य

मनुष्य के आरोग्य और स्वास्थ्य के सम्बध में महात्मा गाधी की विचारधारा प्राकृतिक चिकित्सा के पक्ष मे थी। उनका विचार था कि मनुष्य यदि प्रकृति के ससर्ग मे रहे और जिन तत्वो से उसके शरीर का निर्माण हुआ है, उसके रोगो की चिकित्सा भी उन्ही तत्वो से करे तो

उनका स्वास्थ्य अत्यन्त स्वाभाविक रह सकता है। चेचक का टीका देने का टीका तथा सुई-चिकित्सा के वे सिद्धान्ततः विरोधी थे।

उपरोक्त सभी बातों के देखने पर पता चलता है कि महात्मा गांधी संसार के एक महान् क्रांतिकारी थे। सामाजिक जीवन के हर एक पहलू में वे क्रांति करना चाहते थे मगर उनकी क्रांति के तरीके बिल्कुल मौलिक थे। मानवीय इतिहास में वे पहले क्रांतिकारी थे जिनकी क्रांति की बुनियाद विध्वंस के बजाय रचना पर, हिंसा की जगह अहिंसा पर, अनैतिकता की जगह नैतिकता पर, और संघर्ष की जगह सहयोग पर आधारित थी। शोषण और असत्य के प्रति उनका खुला विरोध था। परन्तु विरोही के साथ वह महान् विचारक भी थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने अपने प्रत्येक आदर्श को जीवन में सक्रिय रूप में स्थापित किया। हर एक आदर्श को उन्होंने व्यवहार में प्रयोग करके बतलाया—और इसी विशेषता ने उनको संसार के लोकोत्तर महान् पुरुषों की श्रेणी में रखा।

शासकों की आचार संहिता

भारत के स्वाधीन होने के साथ ही उनको सबसे बड़ी चिन्ता इस बात की थी कि संसार की चकाचौंधपूर्ण सभ्यता में कहीं हमारे शासक पथ भ्रष्ट न हो जायें। इसलिए ११ फरवरी १९४७ ई० को महात्मा गांधी ने शासकों या मंत्रियों के लिए एक आचार-संहिता का निर्माण किया था। उसकी चौथी, पाँचवीं और आठवीं धाराएँ इस प्रकार हैं—

(४) मंत्रियों का व्यक्तिगत जीवन इतना सादा होना चाहिए कि लोगों पर उसका प्रभाव पड़े। उन्हें देश के लिए एक घंटा नित्य शारीरिक श्रम करना ही चाहिए। भले ही वे घर में बैठकर चरखा कातें या अपने घर के आसपास साग-सब्जी का अन्न पैदाकर अपने देश का उत्पादन बढ़ायें।

(५) मोटर और बंगला तो होना ही नहीं चाहिए। आवश्यक हो तो एक और उतना साधारण मकान काम में लाना चाहिए। हाँ दूर जाना हो तो मोटर सेकेंड काम में लाई जा सकती है। मगर उसका कम से कम प्रयोग होना चाहिए।

(८) आज जबकि देश में करोड़ों मनुष्यों को बैठने के लिए चटाई और पहनने को वस्त्र तक नहीं मिलते हैं, उस हालत में मंत्रियों को कीमती सोफा-सेट, चमकीले फर्नीचर और भड़कीली कुर्सियों का उपयोग नहीं करना चाहिए। ऐसे सादे सरल और आध्यात्मिक विचार रखने वाले मंत्रियों या जनता के सेवकों की रक्षा जनता बड़े प्रेम के साथ करेगी। प्रत्येक मंत्री के बंगले के पास ५ या उससे अधिक सिपाहियों का पहरा अहिंसक मंत्रिमण्डल के लिए बेहूदा लगना चाहिए।

प्रश्न यह है कि क्या गांधीजी का स्वप्न चरितार्थ हुआ? भारतीय जनता ने गांधी-जीवन दर्शन को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया?

वैसे तो गांधीजी ने १७ सितम्बर सन् १९३४ ई० को कांग्रेस से अलग होते समय यह कहा था कि—"अधिकांश कांग्रेसजन अहिंसा का प्रयोग केवल एक नीति के तौर पर रहे हैं किन्तु मेरे लिए तो यह एक धर्म है।" उनके इस कथन से ही उनकी निराशा का कुछ कुछ पता लग जाता है। मगर उनको भयानक धक्का तो तब हुआ जब ठीक स्वाधीनता के पहले साम्प्रदायिक आधार पर देश के दो टुकड़े हुए तथा सारे देश में साम्प्रदायिक विप्लव होकर खून की नदियाँ बह गयीं। रामराज्य और कल्याणकारी राज्य का उनका स्वप्न चूर चूर हो गया और पहले जिन्होंने सवा सौ वर्ष तक जीवित रहने की कल्पना की थी वह कल्पना भी निराशा के गर्त में डूब गयी और उन्होंने अत्यन्त निराशापूर्ण स्वर में कहा कि—"इस दुःखद परिस्थिति में अब मुझे अधिक जीने की आकांक्षा नहीं है" उसी साम्प्रदायिकता की वेदी पर अत्यन्त दुःखपूर्ण वातावरण में उनका बलिदान भी हो गया।

गांधी विद्यामंदिर

राजस्थान के अन्तर्गत मरुभूमि के विस्तृत प्रदेश में बसे हुए सरदार शहर नामक शहर में स्थापित एक महान् और विशाल संस्था जो मरुभूमि के उस बीहड़ प्रदेश में ज्ञान की अनुपम ज्योति जगा रही है।

राजस्थान में बीकानेर से दिल्ली जाने वाली गाड़ी में

बीच रतगगढ़ नामक एक जक्शन पडता है। रतनगढ़ से रेलवे लाइन का एक छोटा सा टुकडा बालू के बडे बडे टीलो के बीच होकर 'सरदार शहर' पहुँचता है। विशाल बालू के टीलो के बीच बसा हुआ यह नगर अपनी विशेष स्थिति रखता है।

इस नगर के निवासी श्री कन्हैयालाल दूगड बडे शिक्षा-प्रेमी और भावुक व्यक्ति हैं। उन्होने इस वीहड प्रदेश मे शान्ति निकेतन और गुरुकुल कागडी के आदर्श पर एक सस्था खोलने का विचार किया।

सन् १९५१ ई० मे श्री भँवरलाल दूगड के सहयोग से इस सस्था के लिए उन्होने ५ लाख रुपये नगद और १० वर्ष का समय दिया और महात्मा गाधी के ८३ वे जन्म-दिवस के उपलक्ष मे उनकी ८३ इच ऊँची प्रस्तर मूर्ति प्रतिष्ठित करके इस सस्था का शिलारोपण किया।

प्रारभ मे इस सस्था का आरभ छोटे पैमाने पर घास-फूस की झोपडियो मे किया गया था मगर आज वही सस्था उनके प्रयत्न से ३२ सौ बीघे के विस्तीर्ण क्षेत्र मे अनेक भव्य भवनो के रूप मे साकार हो उठी है। और इसमे अनेक प्रकार के विद्यालय चालू हो गये हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) सन् १९५२ ई० मे सबसे पहले बेसिक हाई स्कूलकी स्थापना हुई। शुरू से १३ छात्रो से यह सस्था प्रारभ हुई। आज इस मे ४०० से अधिक छात्र विद्यालाभ कर रहे हैं।

(२) सितबर १९५३ ई० में छोटे बच्चो के लिये 'बालबाडी' की स्थापना हुई। जिसमे 'माटेसरी-शिक्षा-पद्धति' के आधार पर मनोरञ्जन के साथ छोटे बच्चो को शिक्षा दी जाती है।

(३) सन् १९५४ ई० मे 'आयुर्वेद-विश्वभारती' के नाम से एक विशाल आयुर्वेद के विद्यालय की स्थापना की गयी। इस विद्यालय मे आयुर्वेद की स्नातक और स्नातकोत्तर (भिषगाचार्य) तक की शिक्षा देने की व्यवस्था है। राजस्थान मे यह पहली आयुर्वेद-सस्था है, जहां शवच्छेदन के द्वारा शरीर-शास्त्र की शिक्षा देने की व्यवस्था की गयी है।

(४) ९ अगस्त सन् १९५६ ई० को इस सस्था मे 'बेसिक टीचर्स-ट्रेनिंग कालेज' की नीव पडी। इस संस्था मे टीचर्स ट्रेनिग की, स्नातक तथा स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था है।

(५) सन् १९५८ ई० मे महिलाओ की शिक्षा के लिए मीरा निकेतन-महिला विद्यापीठ की स्थापना की गयी। इसमे कन्याओ के लिए हाई स्कूल के अलावा सिलाई, कताई, बुनाई, कढ़ाई और हिन्दी की उच्च परीक्षाओ की शिक्षा देने की व्यवस्था है।

(६) १२ जनवरी सन् १९५९ ई० को 'बुधमल दूगड डिग्री कालेज' की स्थापना की गयी।

(७) विद्यार्थियो के लिये शुद्ध दूध की व्यवस्था के लिए यहाँ पर एक गोशाला भी स्थापित है। इस गोशाला मे गौओ की नस्ल सुधारने के लिए कई साँड भी रखे गये हैं।

श्री कन्हैया लाल दूगड ने अपना सर्वस्व इस सस्था को देकर और रात दिन इसके लिए अलख जगाकर जो विशाल रूप दे दिया है, वह उनकी अमर स्मृति के रूप मे सदा जीवित रहेगा।

गॉवर-जॉन (John Gawer)

प्रारम्भिक युग का एक अग्रेज कवि जान गावर जिसका जन्म सन् १३३० मे और मृत्यु सन् १४०० मे हुई।

अग्रेज कवि गावर महाकवि चासर का सम कालीन था। यह लैटिन और फ्रेन्च भाषा मे अपनी कविताए करता था। इसकी कविताएँ इसके जीवन काल मे ही प्रसिद्ध होगई थी। और चासर का समकालीन होने पर भी उसके पश्चात् दूसरे स्थान पर यही अंग्रेजी काव्य का उस काल मे प्रतिनिधित्व करता था।

गामा पहलवान

भारतवर्ष का एक सुप्रसिद्ध पहलवान, जिसने पहलवानी इतिहास के रिकार्ड मे 'वर्ल्ड-चेम्पियन शिप' की डिग्री प्राप्त की।

गामा का जन्म सन् १८८२ ई० मे झाँसी के समीप दतिया रियासत मे हुआ था।

गामा के पिता का नाम अजीज पहलवान था, जो दतिया रियासतका राजकीय पहलवान था।

गामा पहलवान 'माधवसिंह पहलवान' का शिष्य बना और उससे कुश्ती के दाव-पेंचों की पूरी तरह शिक्षा ग्रहण की। गामा की पहली कुश्ती पहलवान 'रहीम सुल्तान' के साथ और दूसरी कुश्ती सन् १९०६ ई० में खलीफा 'गुलाम मुहीउद्दीन आफ्ताबे हिन्द' के साथ लाहौर में हुई। इन दोनों कुश्तियों में इन दोनों प्रसिद्ध पहलवानों ने 'गामा' को चित करने की बहुत कोशिश की मगर उन्हें सफलता नहीं हुई और दोनों कुश्तियाँ बराबरी पर छूटी।

सन् १९११ ई में 'जानबुल वर्ल्ड रेसलिंग-चैम्पियन शिप' के सञ्चालकों ने 'वर्ल्ड चैम्पियन शिप' के लिये संसार भर के पहलवानों को लन्दन में बुलाया। इस प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए भारत से गामा इमाम बख्श' और अहमदबख्श भेजे गये।

यह टोली जब लन्दन पहुँची तो इनके छोटे-छोटे कद को देख कर उक्त संस्था के सञ्चालकों ने इनका नाम लड़नेवालों की सूची में रखने से इनकार कर दिया। और कहा कि इनका कद और वजन बहुत कम है।

इस प्रतियोगिता में संसार भर के करीब ४५ पहलवान आये थे। जिनमें 'जबिस्को' 'हेकनश्मिट' 'मोरिसलेम' और 'रोलर' जैसे विशालकाय और संसार प्रसिद्ध पहलवान सम्मिलित थे। इन पहलवानों के सामने भारतीय पहलवान बहुत छोटे नजर आते थे।

गामा को अपनी शक्ति पर पूरा विश्वास था। मगर जब किसी प्रकार उसका नाम पहलवानों की लिस्ट में न आया तब उसने दो घोषणाएँ एक साथ कीं। पहली घोषणा में उसने कहा कि जो भी पहलवान अखाड़े में मेरे सामने ५ मिनट तक खड़ा रहेगा और नहीं गिरेगा उसे मैं ५ पौण्ड बतौर इनाम के दूंगा। दूसरी घोषणा में उसने कहा कि मैं इंग्लैंड के चुने हुए २ पहलवानों को एक-एक करके सिर्फ एक घण्टे में चित कर सकता हूँ। जो भी चाहे मुझ से मुकाबला करले।

गामा की पहली चुनौती पर पहले दिन ३ पहलवान मुकाबले पर आये और इन तीनों को गामा ने तीन-तीन मिनट के अन्दर अखाड़े में चित कर दिया। दूसरे दिन १२ पहलवान आये—उन सबको भी उसने एक-एक कर चित कर दिया।

यह आश्चर्यजनक प्रदर्शन देख 'टूर्नामेंट कमेटी' ने गामा का नाम लड़ने वालों की सूची में दर्ज कर लिया।

दूसरे ही दिन गामा का मुकाबला विश्वविजयी पहलवान 'जेबिस्को' के साथ हुआ। पूरे तीन घंटे तक कुश्ती चली मगर हार-जीत का फैसला नहीं हुआ। इस कुश्ती पर टिप्पणी करते हुए लन्दन के प्रसिद्ध दैनिक 'टाइम्स' ने लिखा था कि—

'जेबिस्को अखाड़े के एक कोने में पड़ा हुआ रेंग रहा था। तीन बार गामा के नीचे से निकलकर उसने उस पर असफल हमले किये मगर गामा का हाथ उसके ऊपर था और साफ दिखाई दे रहा था कि वह जेबिस्को से बढ़िया पहलवान है। जेबिस्को उसके नीचे पड़े रहने में ही सन्तुष्ट था।

टाइम्स ने आगे लिखा कि 'यह कोई कुश्ती नहीं थी। दर्शक भी इस कुश्ती का मजाक उड़ाने लग गये थे। गामा जेबिस्को की पीठ पर सवार होकर बैठा था और उसे धक्के मार-मार कर उठने के लिए ललकार रहा था। कभी-कभी तो वह उसकी पीठ पर से उतर कर उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाता था ताकि जेबिस्को उठ कर खड़ा हो जाय।'

आखिर हार-जीत का फैसला न होते देख कर 'टूर्नामेंट कमेटी' ने यह कुश्ती अगले दिन के लिए स्थगित कर दी पर अगले दिन जेबिस्को अखाड़े में ही नहीं आया। फल स्वरूप कमेटी ने 'वर्ल्ड चम्पियन शिप' की पेटी गामा को ही प्रदान की।

इस प्रकार सारे यूरोप में भारत का सिक्का जमा कर 'गामा' वापस भारत आया।

यहाँ आते ही उसका पहला प्रतिद्वन्द्वी रहीम पहलवान पुनः मुकाबले के लिए तैयार हो गया। यह कुश्ती इलाहाबाद में हुई। भारत की कुश्ती के इतिहास में यह कुश्ती महत्वपूर्ण थी। गामा के हर एक दाव को रहीम पहलवान तोड़ता जाता था। गामा की कोई चाल काम नहीं कर रही थी। तब गामा ने पूरी शक्ति लगा कर उसे एक दो धप्पड़ मारा इस चोट से कराहते हुए वह अखाड़े से बाहर निकल गया।

यह कुश्ती पूरी नहीं लड़ी गयी। फिर भी गामा को 'रुस्तमे-हिन्द' का खिताब दिया गया।

इसके बाद सन् १६२८ ई० मे जेविस्को पहलवान अपना बदला चुकाने भारतवर्ष आया। उस समय गामा पटियाला महराज का दरबारी पहलवान था। इस बार गामा ने उसे २॥ सेकण्ड मे चित कर दिया। तब 'जेविस्को' ने कहा कि गामा ससार का सर्वश्रेष्ठ पहलवान है।

सन् १६१२ ई० मे 'गामा' ने अपनी शादी नवाब-बेगम के साथ कर ली। नवाब बेगम के मरनेपर उसने फिर अपनी शादी उसकी छोटी बहिन नजीर-बेगम से कर ली।

सन् १६५३ ई० से वह बीमार पडा। ७ वर्ष की बीमारी में वह शारीरिक और आर्थिक दोनो दृष्टियो से बहुत बेजार हो गया। इलाज कराने के लिए उसके पास पैसे भी न रहे। श्रीजुगलकिशोर बिडला ने ऐसे समय में ५०००) रुपयो से उसकी सहायता की। अन्त मे सन् १६६० ई० मे ससार प्रसिद्ध पहलवान गामा की बडी दयनीय दशा मे मृत्यु हो गयी।

(बलबीर सिह 'कमल'—हिन्दी-नवनीत)

गायकवाड़-राजवंश

बडौदा का सुप्रसिद्ध राजवश जिसकी स्थापना दामाजी गायकवाड नामक मराठा सरदार ने १८वी सदी के प्रारम्भ मे की थी।

दामाजी के पश्चात् उनके भाई के पुत्र पिलाजी राव गद्दी पर आये। इनके समय मे दिल्ली के बादशाह ने इनको गद्दी से उतार कर इनकी जगह जोधपुर के राजा अभयसिह को बैठा दिया।

तब पिलाजी राव ने दिल्ली के बादशाह के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करके बादशाह की सेनाओ को परास्त किया और कई स्थानों पर कब्जा कर लिया। जब अभयसिह ने देखा कि पिलाजी राव को लडाई मे जीतना सहज नही सन् १७३२ ई० में उनकी गुप्त रूप से हत्या करवा दी।

पिलाजी राव के बाद उनके पुत्र दामाजी राव गायकवाड उनकी गद्दी पर आये। इसी वर्ष अर्थात् सन १७३२ ई० मे पिलाजी के भाई महाजी ने बडौदा नगर पर अधिकार कर लिया। तभी से बडौदा नगर गायकवाड राजवश की राजधानी बना हुआ है।

सन् १७६१ ई० की ७ जनवरी को 'पानीपत' के मैदान मे अहमद शाह अब्दाली के साथ मराठो की जो इतिहास-प्रसिद्ध लडाई हुई, उसमे दामाजी गायकवाड भी मराठो की ओर से लडने को गये थे। वहाँ उनकी सेना के अधिकाश सैनिक मारे गये और थोडी सी सेना लेकर ये वापस लौटे। यहाँ आने पर इन्होंने गुजरात के शासक जवाँमर्द खाँ से गुजरात राज्य का बहुत सा हिस्सा जीत लिया और 'ईडर' के राजा को भी अपना करद बना लिया।

दामाजी की मृत्यु सन् १७६८ ई० आस पास हुई। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके लडको मे काफी झगडे हुए और अन्त मे आनन्दराव गायकवाड अपने मन्त्री रावजी अप्पाजो और अग्रेजी फौज की सहायता से बडौदा की गद्दी पर बैठे और लेफ्टिनेण्ट कर्नल 'वाकर' वहाँ के रेसिडेण्ट और पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त हुए। इस समय बडौदा रियासत बडे कर्ज मे डूबी हुई थी। सन् १८१३ ई० मे बडौदे मे भयङ्कर अकाल पडने से यह कर्ज और भी बढ़ गया। सन् १८१६ ई० मे आनन्द राव की मृत्यु हो गयी।

आनन्दराव की मृत्यु के पश्चात् सयाजी राव गायकवाड बडौदा की गद्दी पर बैठे। सयाजी के वक्त भी रियासत का कर्जा अदा नही हुआ और सन् १८२० ई० मे यह कर्ज १ करोड ७ लाख और बढ़गया तब अग्रेज सरकार ने गायकवाड राज्य के नौसारी और पिप्पलावद आदि कई स्थानो पर दखल कर लिया। सन् १८४७ ई० मे सयाजीराव गायकवाड की मृत्यु हो गयी और उनके ज्येष्ठ पुत्र गणपति राव वहाँ की गद्दी पर आये।

इनके समय मे बम्बई बडौदा रेलवे की स्थापना हुई और उसके लिए उन्होने अग्रेजी गवर्नमेट को जमीन दी। सन् १८५६ ई० मे गणपति राव गायकवाड की मृत्यु हुई। गणपतिरावके बाद खडेराव और खडेरावके बाद मल्हारराव गद्दी पर आये, मगर इनकी अयोग्यता के कारण सन् १८७५ ई० मे मल्हार राव को पदच्युत कर मदरास भेज दिया और उनकी जगह सयाजी राव को सन् १८७५ ई० को १२ वर्ष की अवस्था मे गद्दी पर बैठाया और इनके प्रधान मन्त्री सुप्रसिद्ध सर टी० माधव राव के० सी० एस० आई० बनाये गये।

सयाजी राव गायकवाड़ का शासन-काल बड़ौदा की जनता और गवर्नमेंट दोनों के पक्ष में बहुत अच्छा रहा। अंग्रेज गवर्नमेंट से इन्हें कई विशिष्ट उपाधियां भी प्राप्त हुई। सयाजी राव गायकवाड़ ने अंग्रेजों के समय में मराठा-राजनीति में काफी भाग लिया। इनके समय में बड़ौदा राज्य की शैक्षणिक और सांस्कृतिक उन्नति भी बहुत अधिक हुई।

गायना

दक्षिण अमेरिका का एक प्रसिद्ध राज्य। जिसका एक अन्य भाग सन् १८'४ ई से ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का एक प्रसिद्ध उपनिवेश बनकर रहा और २६ मई सन् १९६६ ई को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के जुए से मुक्त होकर स्वतन्त्र राष्ट्रों की पंक्ति में आ गया।

१३६ वर्षों की दासतासे मुक्त होकर स्वाधीन बननेवाला ब्रिटिश गायना' विभिन्न जातियों और धर्मोंका संगम-स्थान है। दिसम्बर सन् ६४ ई की जन गणना के अनुसार गायना की आबादी ६३१८० है जिसमें मूल निवासियों की कुल संख्या २६।। हजार है। इन बाहरी लोगों में भारतवासी पुर्तगाली अफ्रीका और अमरीकी लोग शामिल हैं।

गायना का क्षेत्रफल एक लाख चौंतीस हजार कीलोमीटर है। बाक्साइट' नामक खनिज पदार्थ के उत्पादन में इस देश का नम्बर सारे संसार में चौथा है। इसके अलावा यहां सोना मेगनीज एल्यूमीनियम लोहा तांबा इत्यादि खनिज पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं।

गायना उस विशाल क्षेत्र का एक भाग है, जिसका अनुसन्धान सबसे पहले कोलम्बस ने किया था। उसके पश्चात् सर 'वाल्टर रैले' ने इस क्षेत्र की पूरी खोज की। जिसके फल स्वरूप यूरोपीय साम्राज्यवाद ने इसे अपने शिकंजे में ले लिया। और इस क्षेत्र को ५ भागों में बांट गया। स्पेन-अधिकृत क्षेत्र का नाम 'कासीना' पुर्तगाल अधिकृत क्षेत्र का 'वैनेजुवेला' फ्रांस अधिकृत क्षेत्रका 'फ्रेंच गायना' डच अधिकृत क्षेत्रका नाम डच गायना और ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र का 'ब्रिटिश-गायना' हुआ। ब्रिटिश गायना का सबसे सम्पन्न समुद्र तटीय क्षेत्र है। इस क्षेत्र में लगभग ३।। लाख लोग रहते हैं और राजधानी 'जार्जटाउन' भी इसी क्षेत्र में स्थित है।

इस समय ब्रिटिश गायनामें ३ प्रमुख राजनीतिक पार्टियाँ हैं। (१) डा० छेदी जगन की 'पीपुल्स प्रोग्रेसिव पार्टी' (२) डा० बर्नहम की पीपुल्स नेशनल कांग्रेस और (३) डा० 'डमप्यार' की 'युनाइटेड पार्टी'। पीपुल्स प्रोग्रेसिव पार्टी सबसे बड़ा राजनीतिक दल है। मगर स्वतन्त्रता देने के पूर्व ब्रिटेन ने यहां के संविधान में संशोधन करके आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली लागू कर दी। जिसके कारण सत्ता 'बर्नहम' और 'डमप्यार' की पार्टियों के संयुक्त नियन्त्रण में चली गयी और बहुमत वाली डा 'छेदी जगन की पार्टी खाली रह गयी। इसलिए गायना के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री डा छेदी जगन बहुत असन्तुष्ट हैं। उनका कहना है कि इस आजादी का यह अर्थ है कि अंग्रेजों ने अपने आधिपत्य से मुक्त करके गायना को अमरीकी साम्राज्यवाद के हाथों में दे दिया जो अधिक खतरनाक है।

डा छेदीजगन के इस विरोध से गायना का राजनैतिक संकट आगे क्या रंग लायेगा यह नहीं कहा जा सकता। इस समय वहां पर आपत्कालीन स्थिति चालू है और 'पीपुल्स प्रोग्रेसिव पार्टी' के २४ नेता जेल में हैं।

डच-गायना

सन् १८१४ ई० से डचों के आधीन है। इसकी भी भौगोलिक परिस्थितियां ब्रिटिश-गायना की तरह ही हैं। यहां का मुख्य नगर 'परामरीबो' 'सुरीनम' नदी के मुहाने पर स्थित है। यह राजधानी और मुख्य बन्दरगाह है।

फ्रेंच-गायना

सन् १८१७ ई से फ्रांसीसियों के आधीन है। तटीय क्षेत्र को छोड़कर इसका सारा क्षेत्र महत्वहीन है। इस उपनिवेश का एक मात्र उपयोग आजीवन कारावासी अपराधियों को बसाने के लिए किया जाता है। ये कारावासी इस क्षेत्र में 'डेविल्स-आईलैंड' में बसाये जाते हैं। यहां के सभी निवासी आजीवन कारावास की सजा पाये हुए हैं।

गायत्री मंत्र

वैदिक-साहित्य का एक सर्वमान्य महान्-मन्त्र जिसके ऋषि विश्वामित्र और देवता सविता है।

गायत्री-मंत्र ऋग्वेद का एक सुप्रसिद्ध मन्त्र है। ऋग्वेद

के सम्पूर्ण १० हजार मन्त्रो मे इस मन्त्र का महत्व सबसे अधिक माना गया है। इस मन्त्र मे २४ अक्षर हैं और उनमे आठ आठ अक्षर के ३ चरण हैं और शुरू मे 'ॐ भूर्भुव स्व' मिलाकर इस मन्त्र का पूरा स्वरूप स्थिर हुआ है। इस मन्त्र का रूप इस प्रकार है—

'ॐ भूर्भुव स्व तत्सवितुर्वरेण्य, भर्गो देवस्य, धी महि धियो यो न प्रचोदयात्'।

वृहदारण्यक उपनिषद् मे (५।१४।४) मे गायत्री शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है कि 'गाय' शब्द का अर्थ 'प्राण' और 'गायत्री' शब्द का अर्थ 'प्राण रक्षा करने' वाला होता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यथा काल और यथा नियम विद्वान आचार्य के निकट यज्ञोपवीत के पश्चात् गायत्री मन्त्र में दीक्षित होते हैं। इसी समय इनका पुनर्जन्म माना जाता है और ये 'द्विज' कहलाने लगते हैं।

गायत्री-मन्त्र की महिमा इतनी क्यो है ? इसकी मीमासा करते हुए डा० वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं—

"गायत्री-मन्त्र एक ओर विराट् विश्व, दूसरी ओर मानव जीवन, एक ओर देव-तत्व, और दूसरी ओर भूततत्व, एक ओर मन और दूसरी ओर प्राण, एक ओर ज्ञान और दूसरी ओर कर्म के पारस्परिक सम्बन्धो की पूरी व्याख्या कर देता है। इसी लिए यह मन्त्र वैदिककाल से लेकर आज तक वैदिक धर्मावलम्बियो का सर्वोत्कृष्ट महान् मन्त्र बन रहा है।

गारफील्ड-सोबर्स

वेस्ट इण्डीज मे क्रिकेट खेल का एक प्रसिद्ध खेलाडी, जिसने सन् १९५८ ई० मे पाकिस्तान के विरुद्ध खेलते हुए तीसरे टेस्ट मैच मे व्यक्तिगत रूप से ३६५ रन बनाकर विश्व के सर्वश्रेष्ठ खेलाडियो मे अपना स्थान प्राप्त कर लिया है।

'गारफील्ड-सोवर्स' विश्व के ऐसे ७वें खिलाडी हैं, जिन्होने 'क्रिकेट टैस्ट मैच' में ३ सौ से अधिक रन बनाने का श्रेय प्राप्त किया है। सन् १९३० ई०मे इग्लैण्ड के 'ऐथी सेथम' ने वेस्टइडीजके विरुद्ध 'किग्सटन' (जमैका) के मैदान मे ३ सौमे अधिक रन बनाने का गौरव प्राप्त किया था और उसके २८ वर्षोके पश्चात् 'सोवर्स' ने उसी मैदान मे पाकिस्तान के विरुद्ध खेलते हुए वही गौरव प्राप्त किया।

गारो

एक मातृ वशमूलक पहाडी जाति। जो विशेषकर आसाम की गारो पहाडियो पर रहती है। गारो जाति मे अभी भी मातृ-मूलक वश-प्रथा जारी है। इसमे परिवार की वशावली स्त्री से ही चलती है और सम्पत्ति की स्वामिनी भी स्त्री ही होती हैं। विवाह होने पर स्त्रियाँ अपने घर ही पर रहती हैं, सामान्यत पुरुष बुवा की लड़की से विवाह करता है और वह अपने भानजे को अपनी लडकी दे सकता है।

यह जाति साल जाग नामक एक आदिदेव की उपासना करती है जो सूर्य का प्रतिरूप है। इनके पुरोहित कमाल कहलाते हैं। कमाल लोग अनेक प्रकार के लक्षणो से किसी रोगी का निदान करते हुए बतलाते हैं कि किस अपदेवता के कोप से यह पीडा हुई और फिर पूजा, बलि इत्यादि व्यवस्था उसके दूर करने के लिए बतलाते है।

किसी की मृत्यु होने पर इस जातिके लोग मृतदेह को उत्तमोत्तम वेश-भूषा से सजा कर दो-तीन दिन तक रख छोडते हैं। तीसरे या चौथे दिन लाश जलाई जाती है। एक सप्ताह के पीछे उसकी राख को लेकर मृत-व्यक्ति के घर के पास गाड कर उसपर एक ध्वजा लगा देते है। इस प्रकारकी बहुत सी ध्वजाएँ गाँव मे देखने को मिलती हैं।

सन् १८६६ ई० मे गारो पहाड सबसे पहले अग्रेजो के कब्जे मे आया और कप्तान 'विलिगसन्' पहले डिप्टी कमिश्नर बनाए गये। सन् १८७२ ई० मे गारो-जाति के लोगोंने अग्रेजो के विरुद्ध एक बडा विद्रोह किया था। इस विद्रोह को सन् १८७२ ई० मे कप्तान 'लाटूनी' ने दबाकर वहाँ शान्ति स्थापित की।

गारोदी

दक्षिण भारत की एक पर्वत-गुफा जो तेलगाव दाभाडे से दस मील दक्षिण, समतल क्षेत्र से ५०० फुट ऊँची पहाडी पर बनी हुई है।

इस पर्वत पर ईसा की पहली शताब्दी मे खुदे हुए कई एक बौद्ध गुफा-मन्दिर दिखाई पडते है। पहला गुफा मन्दिर पहाडी की सबसे ऊँची चोटी पर बना हुआ है। इसका द्वार

दक्षिण पश्चिम मुखी है। यहाँ पर चढ़ने के लिए कोई सीधा रास्ता नहीं है।

दूसरी गुफा इससे कुछ नीची है। इसका मण्डप २१ फुट लम्बा और १० फुट चौड़ा है। इसके स्तम्भों के मस्तक पर सिंह, व्याघ्र और हाथी की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इन मूर्तियों की शिल्पकला बहुत सुन्दर है। इस गुफा में सन् १४११ ई० का एक शिलालेख लगा हुआ है।

इसके सिवाय इस पहाड़ी पर ३-४ मन्दिर और भी बने हुए हैं। एक गुफा में प्राचीन राजाओं के समय की दक्षिण देशीय ब्राह्मीलिपि में खुदी हुई एक प्रशस्ति भी दिखलाई देती है।

गार्दी-फ्रांसिस्को

इटली देश के 'वेनिस' नगर का एक प्रसिद्ध चित्रकार, जिसका जन्म सन् १७१२ ई० में और मृत्यु सन् १७९३ ई० में हुई।

गार्दी-फ्रांसिस्को ने अपनी कला का प्रकाश प्रसिद्ध चित्रकार 'कनालेट्टो' से ग्रहण किया था। इस चित्रकार के चित्रों में इसके प्रकाश और मुक्त वायुमण्डल के चित्रण बहुत स्पष्टतापूर्वक दिखलाये गये हैं। इस चित्रकला का यह सौन्दर्य आगे चलकर 'इम्प्रेशनिस्ट' चित्रकला के रूप में विकसित हुआ।

गार्वोग-आर्नी

नार्वे का एक प्रसिद्ध लेखक और कवि जिसका जन्म सन् १८५४ ई० और में मृत्यु सन् १९२४ ई० में हुई।

गार्वोग ने उपन्यास कविता नाटक निबन्ध इत्यादि सभी क्षेत्रों में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इसकी रचनाओं में 'ट्रैक्टेशिन्-सन्' 'बॉरेन्नु-बैटा' 'ब्रॉड' इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

गार्सां-द-तासी

एक प्राच्य विद्या विशारद फ्रेंच विद्वान् जो १९वीं सदी में पेरिस में हिन्दुस्तानी उर्दू के अध्यापक थे। इनका जन्म सन् १७९४ में और मृत्यु १८७८ में हुई।

गार्सां-द-तासी उर्दू के पक्ष में हिंदी-भाषा के बड़े विरुद्ध थे। सन् १८३९ ई० में उन्होंने हिन्दुस्तानी-साहित्य का इतिहास लिखा था जिसमें उर्दू-कवियों के साथ कुछ हिंदी-कवियों का भी जिक्र था।

हिन्दी-उर्दू का झगड़ा उठने पर उन्होंने अपने मजहबी रिश्ते के ख्याल से उर्दू का पक्ष ग्रहण करते हुए कहा था कि 'हिन्दी में हिन्दू धर्म का आभास है। वह हिन्दू-धर्म जिसके मूल में बुतपरस्ती और उसके आनुषंगिक विधान हैं। इसके विपरीत उर्दू में इस्लामी संस्कृति और आचार व्यवहार का सञ्चय है। इस्लाम भी सामी-मत है और एकेश्वरवाद उसका मूल सिद्धांत है। इसलिए वह ईसाई-धर्म के अधिक नजदीक है।'

गार्सां-द-तासी सर सैय्यद अहमद खाँ से बहुत प्रभावित थे और उन्हीं के सुर में सुर मिलाकर वे हिंदी का विरोध और उर्दू का समर्थन करते थे।

जब पंजाब में हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध समर्थक नवीनचंद्र राय ने हिंदी का समर्थन करते हुए अपने एक भाषण में उर्दू का विरोध किया तो गार्सां-द-तासी फ्रांस में बैठे हुए ही बहुत झल्ला उठे और वहीं पर अपने एक व्याख्यान में उन्होंने बड़े जोश के साथ हिन्दी का विरोध और उर्दू का समर्थन करके नवीन बाबू को कट्टर हिन्दू बतलाया। अब यह फ्रेंच विद्वान हिंदी से इतना चिढ़ने लग गया था कि उसकी जड़ पर ही उसने अपना कुठार चलाने का प्रयत्न किया और मि० 'बीम्स' का हवाला देते हुए उसने कहा कि— हिंदी तो एक पुरानी भाषा थी जो संस्कृत से पहले प्रचलित थी आर्यों ने आकर उसका नाश किया और जो कुछ बचे-खुचे शब्द रह गये उनकी व्युत्पत्ति भी संस्कृत से सिद्ध करने का रास्ता निकाला।'

इसी प्रकार जहाँ भी कहीं हिंदी का नाम लिया जाता, तो 'तासी' बड़े बुरे ढङ्ग से उसके विरोध में कुछ न कुछ कह जाता।

मगर 'तासी' का स्वप्न पूरा न हुआ और हिंदी अपनी स्वाभाविक गति से बराबर उन्नति करती गयी।

(रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास)

गार्सी-लासो

स्पेन का एक प्रसिद्ध कवि और सैनिक। जिसका जन्म सन् १५०१ ई० मे और मृत्यु सन् १५३६ मे हुई।

स्पेन के सम्राट् ने 'गार्सी लासो' को किसी अपराध मे देश से निर्वासित कर दिया था। इसलिये इन्होने इटली के 'नेपुल्स नगर' मे जाकर के रहना प्रारम्भ किया। फलस्वरूप इनकी कविताओ पर स्वाभाविक रूप से इटालियन प्रभाव पड़ा। इन्ही के द्वारा स्पेनी कविता मे इटालियन भावो का प्रवेश हुआ। इनकी कविताओ मे विशेपकर निराश प्रेम की अभिव्यक्ति झलकती है।

गाल्दोज (Benito Perey Galdos)

उन्नीसवी सदी मे स्पेन का एक प्रसिद्ध कवि जो उन्नीसवी सदी के मध्य मे हुआ।

गाल्दोज स्पेन का एक महान् साहित्यकार था। इसने करीब ३२ उपन्यासो की और बहुत सी कहानियो की रचना की। जिनमे उस समय के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन का क्रान्तिकारी दृष्टिकोण से विवेचन किया है यह एक यथार्थवादी उपन्यासकार था। इसके उपन्यासो मे 'ग्लोरिया' 'दोजा परफेकता' 'ला फ़ामिलिया' डी ल्योनरोच' इत्यादि उपन्यास विशेष प्रसिद्ध है।

ग्रांड-जूरी

इग्लैंड मे राजा हेनरी द्वितीय के समय मे न्याय के लिए स्थापित की हुई एक सस्था, जिसका नाम ग्राड-जूरी था।

हेनरी द्वितीय सन् ११५४ ई० मे गद्दी पर बैठा था। इसके गद्दी पर बैठनेके पूर्व इगलैण्ड मे बड़ी अराजकता मची हुई थी। इसने गद्दी पर बैठते ही बड़े साहस के साथ अराजकता को दूर किया। और न्यायालयों का पूरी तरह सुधार किया। इसने यह प्रबन्ध किया कि सरकारी न्यायाधीश देश भर मे भ्रमण करें ताकि प्रत्येक स्थान मे प्रतिवर्ष एक बार वहाँ के सब मामले तय हो जायँ।

'हेनरी' के द्वारा स्थापित की हुई एक सस्था 'ग्राडजूरी' थी। इस सस्था मे स्थान स्थान पर कुछ प्रतिभाशाली व्यक्तियो को न्यायाधीश की सहायता के लिए बैठाया जाता था। ये लोग अपराधियो के अपराधो पर विचार करके उसके निर्णय पर अपनी सम्मति देते थे।

इसके अतिरिक्त एक छोटी जूरी और होती थी। ये व्यवस्थाएँ पहले से चली आई थी। मगर इनको नियमित कर के 'हेनरी' ने सर्वसाधारण के लिए खोल दिया। ग्रांड-जूरी के सदस्य पक्षपातहीन होकर अपनी राय देते थे। यह प्रथा कितनी अच्छी थी—इसका पता इससे चलता है कि आज तक कामन ला के नाम से इसके किये हुए निर्णयो का आदर होता है।

गाल्स-वर्दी

इग्लैंड मे विक्टोरिया युग का एक सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, कवि और साहित्यकार। जिसका जन्म सन् १८६७ ई० मे और मृत्यु सन् १९३३ ई० मे हुई।

'गाल्स-वर्दी' इग्लैंड के एक महान् साहित्यकार थे। इनका जन्म इग्लैंड के 'फारसाइट' परिवार (उच्चमध्य कुल) मे हुआ था। अपनी शिक्षा को समाप्त करके इन्होने सारे ससार का भ्रमण किया और उसके बाद साहित्य के क्षेत्र मे उन्होने कलम उठाई।

विक्टोरिया युग के अन्तर्गत इग्लैंड मे जो समाज-व्यवस्था और जो न्याय व्यवस्था थी, उसकी प्रतिक्रिया 'गाल्स वर्दी' के हृदय पर बड़ी प्रतिकूल हुई और उसी प्रतिकूल प्रतिक्रिया का प्रतिविम्ब उनके सारे साहित्य पर पड़ा।

गाल्सवर्दी ने करीब १४ उपन्यास, ५ नाटक, कई कहानियो, कई कविताओ और आलोचनात्मक निबन्धो की रचना की। गाल्सवर्दी की सबसे सुप्रसिद्ध रचना "दी फोर साइट-सागा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस रचना के सिलसिले मे उन्होने करीब ९ उपन्यासो की रचना की। इन उपन्यासो मे इग्लैंड के तात्कालिक सामाजिक जीवन की मार्मिक आलोचना की गयी है। इग्लैण्ड की न्याय व्यवस्था की आलोचना करते हुए उन्होंने बतलाया है कि इग्लैंड की न्याय-व्यवस्था धनियों के लिए अलग है और गरीबो के लिए अलग। इस प्रकार की न्याय व्यवस्था से समाज का कल्याण नही हो सकता।

गाल्सवर्दी के नाटक भी अग्रेजी-साहित्य मे चोटी का स्थान रखते हैं। 'दि सिल्वर बाक्स' और 'जस्टिस' नामक

दक्षिण पश्चिम मुखी है। यहाँ पर चढ़ने के लिए कोई सीधा रास्ता नहीं है।

दूसरी गुफा इससे कुछ नीची है। इसका मण्डप ९१ फुट लम्बा और १० फुट चौड़ा है। इसके स्तम्भों के मस्तक पर सिंह, व्याघ्र, और हाथी की मूर्तियां खुदी हुई हैं। इन मूर्तियों की शिल्पकला बहुत सुन्दर है। इस गुफा में सन् १४११ ई० का एक शिलालेख लगा हुआ है।

इसके सिवाय इस पहाड़ी पर ३-४ मन्दिर और भी बने हुए हैं। एक गुफा में आन्ध्र राजाओं के समय की दक्षिण देशीय ब्राह्मीलिपि में खुदी हुई एक प्रशस्ति भी दिखलाई देती है।

गार्दी-फ्रांसिस्को

इटली देश के 'वेनिस' नगर का एक प्रसिद्ध चित्रकार, जिसका जन्म सन् १७१२ ई० में और मृत्यु सन् १७९३ ई० में हुई।

गार्दी-फ्रांसिस्को ने अपनी कला का प्रकाश प्रसिद्ध चित्रकार 'कनालेट्टो' से ग्रहण किया था। इस चित्रकार के चित्रों में हल्के प्रकाश और मुक्त वायुमण्डल के चित्रण बहुत सफलतापूर्वक दिखलाये गये हैं। इस चित्रकला का यह सौन्दर्य आगे चलकर 'इम्प्रेशनिस्ट चित्रकला' के रूप में विकसित हुआ।

गार्वोग-आर्नो

नार्वे का एक प्रसिद्ध लेखक और कवि जिसका जन्म सन् १८५४ ई० और में मृत्यु सन् १९२४ ई० में हुई।

गार्वोग ने उपन्यास कविता नाटक निबन्ध इत्यादि सभी क्षेत्रों में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इसकी रचनाओं में 'ट्रैमकोमिन्‌-वन्' 'बांडिनु-बैटा' 'फ्रेड' इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

गार्सा-द-तासी

एक प्राच्य विद्या विशारद फ्रेंच विद्वान् जो १९वीं सदी में पेरिस में हिन्दुस्तानी उर्दू के अध्यापक थे। इसका जन्म सन् १७९४ में और मृत्यु १८७८ में हुई।

गार्सा-द-तासी उर्दू के पक्ष में हिंदी-भाषा के बड़े विरोधी थे। सन् १८६६ ई० में उन्होंने हिन्दुस्तानी-साहित्य का इतिहास लिखा था जिसमें उर्दू-कवियों के साथ कुछ हिंदी-कवियों का भी जिक्र था।

हिन्दी-उर्दू का झगड़ा उठने पर उन्होंने अपने मजहबी रिश्ते के ख्याल से उर्दू का पक्ष ग्रहण करते हुए कहा था कि "हिन्दी में हिन्दू धर्म का आभास है। वह हिन्दू-धर्म जिसके मूल में बुतपरस्ती और उसके आनुषंगिक विधान हैं। इसके विपरीत उर्दू में इस्लामी संस्कृति और आचार व्यवहार का सञ्चय है। इस्लाम भी सामी-मत है और एकेश्वरवाद उसका मूल सिद्धांत है। इसलिए वह ईसाई-धर्म के अधिक नजदीक है।"

गार्सा-द-तासी सर सैय्यद अहमद खाँ से बहुत प्रभावित थे और उन्हीं के सुर में सुर मिलाकर वे हिंदी का विरोध और उर्दू का समर्थन करते थे।

जब पञ्जाब में हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध समर्थक नवीनचन्द्र राय ने हिंदी का समर्थन करते हुए अपने एक भाषण में उर्दू का विरोध किया तो गार्सा-द-तासी फ्रांस में बैठे हुए भी बहुत भन्ना उठे और वहीं पर अपने एक व्याख्यान में उन्होंने बड़े कोप के साथ हिन्दी का विरोध और उर्दू का समर्थन करते हुए नवीन बाबू को कट्टर हिन्दू बतलाया। अब यह यहाँ तक हिंदी से इतना चिढ़ने लग गया था कि उसकी जड़ पर ही उसने अपना कुठार चलाने का प्रयत्न किया और मि० बीम्स' का हवाला देते हुए उसने कहा कि—"हिंदी तो एक पुरानी भाषा थी जो संस्कृत से पहले प्रचलित थी। आर्यों ने उसका नाश किया और जो कुछ बचे-खुचे शब्द रह गये उनकी व्युत्पत्ति भी संस्कृत से सिद्ध करने का रास्ता निकाला।

इसी प्रकार यहाँ भी यही हिंदी का नाम लिया जाता तो 'तासी' जो बुरे शत्रु थे उसके विरोध में कुछ न कुछ कह जाता।

मगर तासी' का स्वप्न पूरा न हुआ और हिंदी अपनी स्वाभाविक गति से बराबर उन्नति करती गयी।

(रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास)

इसके बाद गाल-जाति और क्लूसियम के युद्ध मे रोम के एक प्रतिनिधि ने एक गाल-सरदार को मार डाला। इस पर गाल-जाति के लोग आग बबूला होगये, और गाल-सरदार 'वेन्नस' बीच के सब क्षेत्रो को छोड़ता हुआ एक दम रोम की ओर बढा।

ईसवी सन् से ५०४ वर्ष पूर्व रोमनगर से १२ मील दूर आलिया नदी के किनारे पर रोम की सेनाओ से गालजाति का एक भयकर युद्ध हुआ। गालजाति की सेना मे ७० हजार सुशिक्षित सैनिक थे, जबकि रोम की सेना मे केवल ४० हजार अधकच्चरे सिपाही थे। परिणाम-स्वरूप गाल-लोगो ने बहुत शीघ्र रोमन लोगो को हरा दिया। बहुत से रोमन-सिपाही मारे गये—बहुत से 'टाइबर' नदी मे डूबकर मर गए और बहुत से "वी" नगर मे जाकर छिप गये।

इसके बाद गाल लोग रोमनगर के 'कोलाइन' नामक फाटक को तोड कर रोमनगर मे घुस गये। मगर सारा नगर सूना पडा हुआ था। घरो के दरवाजे बन्द थे। और रोम के बहुत से लोग पहाडी पर बने हुए 'कैपिटल' नामक सुरक्षित् किलेमे जाकर छिप गये थे। केवल 'सीनेट' के सभा भवन मे कुछ वृद्ध सभासद बैठे हुए थे। गाल लोगो ने उन सबको मार डाला और सारे नगर मे आग लगादी। मगर कैपिटल का किला सुरक्षित था। कोशिश करने पर भी गॉल लोग उसमे न घुस सके।

कुछ दिनोंके घेरे के बाद गाल सेना मे अन्न की कमी हो गयी और रोग फैल जाने से बहुत से गाल सैनिक मर गये। ऐसी हालत मे गाल सेनापति 'ब्रेन्नस' रोम निवासियो से कुछ हरजाना लेकर वापस लौटने का विचार करने लगा।

इसी समय वी नगर मे छिपे हुए रोमन सैनिको ने रोम के मशहूर उद्धारक 'केमीलस' को—जो कि इस समय देश निकाले का दण्ड भुगता रहा था—फिर से सेनापति बनाकर गाल जाति के ऊपर हमला कर दिया और उनको बुरी तरह से पराजित कर वहाँ से भगा दिया।

गाल—जाति के इस आक्रमण का परिणाम रोम के लिए बहुत बुरा हुआ, उनका सारा साहित्य और इतिहास मन्दिरो मे एकत्रित था और गाल लोगो ने उन मन्दिरो को जलाडाला था। इसलिए वह सुरक्षित साहित्य भी जल गया था। रोमनगर भी सारा खण्डहर हो गया था और उसको फिर से बनाना पडा।

इसके बाद भी गाल—जाति के लोग इधर-उधर हमले करते रहे। अन्त मे रोम के महान् विजेता 'जूलियस-सीजर' ने ईसवी सन् से ५८ वर्ष पूर्व सारे गाल प्रदेश पर अधिकार करलिया। इस विजय का संवाद सुनकर रोमन लोग बहुत प्रसन्न हुए और इस महा विजय के लिए १५ दिन तक रोम मे भारी उत्सव मनाया गया। आज तक ऐसा उत्सव रोम मे कभी नही हुआ था। जूलियस सीजर ने गाल देश मे जो लडाइयाँ लडी थी—उसका वर्णन उसने स्वय लिखा था। उसकी भाषा मनोहर तथा हृदय-ग्राही थी। अब भी लोग उसे बडे चाव से पढ़ते हैं।

कुछ दिनो तक 'सीजर' ने गालदेश मे रहकर वहा की सुन्दर व्यवस्था की। वहाँ पर सडको का निर्माण करवाया। सीजर के शासन-काल मे ५ वर्ष तक गाल—देश मे अटल शान्ति छाई रही।

इसके पश्चात् ईसा की ७ वी शताब्दी के प्रारभ मे 'फ्राक' जाति के लोगो ने राजा 'क्लोवियस' के नेतृत्व मे रोमन सेना को पराजित कर गालदेश पर अधिकार कर लिया। और 'पेरिस' को अपनी राजधानी बनाया। उसी समय से फ्राक-जाति के नाम पर इस देश का नाम फ्रांस प्रसिद्ध हुआ।

गालिब

उर्दू और फारसी के एक महान् कवि जिनका जन्म सन् १७९६ ई० मे आगरे मे और मृत्यु सन् १८६९ ई० के करीब हुई।

इनके पिता मिर्जा 'अब्दुल्लाबेग' अलवर नरेश बख्तावर सिंह की नौकरी मे थे। जिस समय गालिब सिर्फ ५ वर्ष के थे तभी इनके पिता एक लडाई में मारे गये। तब इनके चचा नसरुल्ला खा बेग ने इनका पालन पोषण किया। मगर वह भी इनको ९ वर्ष का छोड कर मर गये। तब इनके ननिहाल वालो ने इनका पालप पोषण किया।

१३-१४ वर्ष की उम्र से ही गालिब कविता करने लग गये थे। मगर 'अब्दुल सम्मद' नामक एक विद्वान् से, जो कि

नाटकों में उन्होंने मानव-स्वभाव की बड़ी सुन्दर और सूक्ष्म व्याख्या की है। उनके अनेक चरित्र अंग्रेजी साहित्य के चिरस्मरणीय चरित्र बन गये हैं।

गाल्सवर्दी उच्चकोटि के निबन्ध-लेखक भी थे। इनके निबन्धों का संग्रह 'कैंडीलेबा' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

गाल्सवर्दी के समस्त साहित्य में सामाजिक स्थिति और मानवीय सम्बन्धों का गम्भीर और मर्मस्पर्शी अध्ययन प्रस्तुत करता है और यही अध्ययन उन्हें अंग्रेजी साहित्य के प्रथम श्रेणी के कलाकारों में स्थान प्रदान करता है।

गाल्फ

एक मनोरंजक और पुराना खेल जिसकी उत्पत्ति स्कॉटलैंड से हुई ऐसा समझा जाता है।

स्कॉटलैंड में यह खेल १४ वीं सदी में बड़े शौक से खेला जाता था और इस खेल में लोगों की इतनी अभिरुचि बढ़ गयी थी कि इसके कारण उनकी सैनिक शक्ति को धक्का पहुँच रहा था। इसलिए सन् १४५७ ई. में स्काटलैंड की सरकार ने एक आदेश निकाल कर इस खेल पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये थे। मगर जब इस आदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो सन् १४९१ ई. में स्काटलैंड की सरकार ने गाल्फ का खेलना कानूनन मना कर दिया। इस आदेश की वजह से एक शताब्दी तक यह खेल बिल्कुल बन्द रहा मगर उसके बाद पुनः चालू हो गया।

मध्य काल में इंग्लैंड के राजा लोग भी इस खेल के बड़े शौकीन थे। इंग्लैंड का राजा 'चार्ल्स प्रथम' गाल्फ का बड़ा प्रेमी था।

इसी प्रकार 'जेम्स द्वितीय' भी गाल्फ का बड़ा उपासक था। गाल्फ के खेल में उसका साथी जान पटर्सन नामक एक मोची था। इस मोची ने जेम्स द्वितीय के साथ गाल्फ की एक प्रतियोगिता में विजय प्राप्त कर के बहुत सा धन कमाया और उस धन से 'गाल्फर्स लैंड' नामक एक भवन निर्माण करवाया।

गाल्फ का खेल घास भूमि मैदान में खेला जाता है। यह खेल एक विशेष प्रकार के डंडे से गेंद के साथ खेला जाता है। खेल के मैदान में ४१ इंच व्यास के १८ छेद बने हुए रहते हैं। डंडे से गेंद को मार कर इन छेदों में पहुँचा देने का नाम ही 'गाल्फ' है। खेल प्रारंभ हो जाने पर जब तक गेंद छेद में नहीं पहुँच जाता तब तक उसे हाथ या शरीर के किसी भाग से छूना मना रहता है। इस खेल में विजयी वही समझा जाता है जो कम से कम प्रहार में गेंद को 'टी' से पीटकर गड्ढे (Cup) में पहुँचा दे।

गाल्फ का डंडा (Clab) भी विशेष प्रकार का होता है। पहले यह डंडा लकड़ी का बनाया जाता था। अब यह इस्पात का बनाया जाता है। इन डंडों के बनाने के लिए कई बड़े बड़े कारखाने भी स्थापित हो गये हैं।

गाल जाति और गाल प्रदेश

पश्चिमी योरोप में जिस स्थान पर इस समय फ्रांस देश बसा हुआ है—यही क्षेत्र प्राचीन युग में 'गाल प्रदेश' के नाम से प्रसिद्ध था। और इसमें बसने वाले लोग 'गाल-जाति के लोग' कहलाते थे।

गाल-जाति के लोग मध्य एशिया से योरोप में आकर गाल प्रदेश में बसे थे। यह जाति असभ्य होते हुए भी अत्यन्त शूरवीर थी। ये लोग अपने गाँव के चारों ओर परकोटा नहीं बाँधते थे। पशु-पालन इनका प्रधान व्यवसाय था और घास की कमी हो जाने पर गाल लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर चले जाते थे। शान्ति से जीवन निर्वाह करना इनके स्वभाव के विरुद्ध था। दूसरों के प्रदेशों पर चढ़ाई करना लूटना-खसोटना इनका प्रधान काम था।

ईसवी सन् से ३९५ वर्ष पूर्व से ये लोग बराबर रोम की ओर बढ़ रहे थे। मगर बीच में 'इट्रस्कन' जाति के लोगों से लड़नेमें इनके कुछ वर्ष बीत गये। ई. पू. ३९१ में इस जाति के सरदार 'ब्रेनस' ने रोम से सौ मील की दूरी पर स्थित 'क्लूसियम' नामक नगरपर चढ़ाई की तब क्लूसियमके लोगोंने इन लोगों का मुकाबला करने के लिए 'रोम' से सहायता माँगी। सहायता देने के पूर्व रोम के लोगों ने गाल-जाति के सरदार को समझाने के लिये अपने प्रतिनिधि भेजे। रोम के प्रतिनिधियों ने ब्रेनस से कहा कि जब क्लूसियम के निवासियों ने तुम्हें कोई तकलीफ नहीं दी तो तुम्हें उनके प्रदेश पर चढ़ाई करने का क्या अधिकार है? गाल-सेनापति ने उत्तर दिया कि—'हम शूर लोगों का संसार की प्रत्येक वस्तु पर अधिकार है। और तलवार ही हमारा धर्म है।'

मुँह न खुलने पर है वह आलम कि देखा ही नहीं
जुल्फ़ से बढ़कर नकाब उस शोख के मुँह पर खुला।
तेरे वादे पै जिये हम तो, यह जान झूठ जाना।
कि खुशी से मर न जाते, अगर जो इतबार होता।
इशरते कतरा है दरिया में फना हो जाना।
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना॥
गालिब बुरा न मान जो वाइज बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहे उसे॥
अब तो घबरा के ये कहते है कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे॥
इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया।
वर्ना हम भी आदमी थे काम के॥

गाले-गास

पुर्तगाल अधिकृत 'वेनिजुवेला राज्य' का एक प्रसिद्ध उपन्यासकार, जिसका जन्म सन् १८८४ ई० मे हुआ।

गाले-गास वेनिजुवेला का एक प्रसिद्ध उपन्यासकार है। इसके उपन्यासो मे वेनिजुएला के सामाजिक जीवन की झाकी सजीव रूप मे देखने को मिलती है। प्राचीनता और नवीनता के सघर्ष मे नवीनता को ग्रहण करने मे कितने तीव्र विरोध का सामना करना पड़ता है—इसका चित्रण उन्होंने बडे सुदर ढङ्ग मे किया है। इनके उपन्यासो मे 'डोना-वार्बरा' नामक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध है। इस उपन्यास के कारण उनका स्थान अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकारो मे आ गया है।

गॉर्टर (Hermn-Gorter)

डच साहित्य का एक प्रसिद्ध कवि और लेखक जिसका जन्म सन् १८६४ मे और मृत्यु सन् १९२७ मे हुई।

नैदर लैण्ड की साहित्यिक जागृति मे सन् १८७० से लेकर सन् १९०० तक के तीस वर्ष बडे महत्व पूर्ण माने जाते हैं। इन वर्षो मे साहित्य, कला, काव्य, पत्रकारिता इत्यादि सभी क्षेत्रो मे नैदर लैण्ड के अन्दर बडी उन्नति हुई। इन्ही दिनो वहाँ पर 'नीवे गिड्स' नामक एक'' प्रसिद्ध पत्रका प्रकाशन एक युवक सघ ने सन् १८८५ से करना प्रारम्भ किया। इस पत्र के द्वारा साहित्य और कला के क्षेत्र मे एक नव जीवन की लहर दौड़ गई।

गॉर्टर इस युवक संघ का सबसे महान् और प्रतिभाशाली कवि था। उसका प्रसिद्ध काव्य "मान्य" (my) डच साहित्य की उच्चतम कृतियो मे से एक माना जाता है। गोर्ट समाज वादी विचार धारा का कवि था। और उसकी कविताओ का प्रभाव उसी की सम कालीन प्रसिद्ध कवियत्री -होल्स्ट" पर बहुत पड़ा। इसी की प्रेरणा से 'होल्स्ट' डच साहित्य मे बहुत लोक प्रिय हो गई।

गिआर डिनो ब्रूनो

(Gior dino bruno)

इटाली का एक कॉमेडी (सुखान्त) नाटककार और दार्शनिक जिसका जन्म सन् १५४८ मे हुआ और सन् १६०० मे यह नास्तिकता के अपराध मे जीवित जला दिया गया।

सोलहवी सदी मे इटली के रगमचीय क्षेत्र मे एक नया मोड आया। उस समय की कॉमेडी रचनाओ मे अश्लीलता और यौन दुराचरण की बाढ आगई। गिआर डिनो ब्रूनो की प्रसिद्ध कॉमेडी 'इल काण्डेलाइओ' इसी प्रकार की भावनाओ की एक कृति थी।

नाटकीय क्षेत्र की तरह दार्शनिक क्षेत्र मे इस लेखक की कृतियो मे वहाँ की धर्म-अदालतो को नास्तिकता की बू आई और इसी अपराध मे वह जीवित जला दिया गया।

गिजाली मौलाना

फारसी के एक प्रसिद्ध राज कवि, जिनका जन्म सन् १५२४ ई० मे 'मसहद' के अन्तर्गत हुआ और मृत्यु सन् १५७२ ई० मे अहमदाबाद मे हुई।

मौलाना 'गिजाली' अपनी जन्मभूमि 'मसहद' से चल कर प्रारम्भ मे दक्षिण के मुसलमानी शासको के यहाँ गये। परन्तु वहाँ पर उचित क्षेत्र न मिलने पर ये जौनपुर के सूबेदार खाँजमा अलीकुली के पास चले गये। यही पर इन्होंने 'नक्शवदीय' नाम की कविता लिखी। इस कविता के प्रत्येक शेर पर नवाब ने उनको एक-एक अशर्फी इनाम दिया।

सन् १५६८ ई० मे 'अकबर' के साथ होने वाले युद्ध मे खाँजमा मारे गये तब मौलाना गिजाली ने अकबर के यहाँ नौकरी कर ली। सम्राट् अकबर ने उन्हें 'मालिक-उश शुअरा'

पारसी से मुसलमान हो गया था। इन्होंने दो वर्ष तक अरबी और फारसी की शिक्षा ग्रहण की। तभी से इनकी कविता में बहुत निखार आया।

अपनी कविताओं और गद्यकृतियों के कारण 'गालिब' उर्दू और फारसी के कविता और पद्य-साहित्य में एक प्रकाशमान नक्षत्र की भाँति चमकते हैं। उर्दू-साहित्य के इतिहास में तो इनका स्थान और भी ऊँचा है। इनकी कविता में कला के साथ-साथ सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक अन्ध श्रद्धाओं के प्रति चुटकियाँ लेने की और तीखे व्यंग्य करने की भी बड़ी विशेषता थी। स्वर्ग-नरक पुण्य पाप जीवन-मृत्यु आदि विषयों के ऊपर वह थोड़े शब्दों में ऐसी मार्के की बातें कह जाते थे जो दिल पर चोट करती हैं।

> हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन
> दिल के खुश रखने को गालिब यह खयाल अच्छा है।
> गालिब शराब पीने दे मस्जिद में बैठ कर
> या वह जगह बता कि जहाँ पर खुदा न हो।

गालिब का 'दीवान' जो इस समय प्राप्त है उसमें १८ सौ शेर हैं, जो बड़े दीवान (कविता-संग्रह) का संक्षिप्त संस्करण माना जाता है।

बहादुर शाह द्वितीयकी आज्ञासे गालिबने 'मेहनीम रोज' नामक एक इतिहास लिखा जिसमें अमीर तैमूर से हुमायूँ तक का वृतान्त है। दूसरे भाग 'मिहानीम' में अकबर से लेकर बहादुरशाह तकका इतिहास लिखनेका विचार था पर गदर के कारण वे उसे पूरा न कर सके। 'दस्तम्बू' नामक फारसी गद्य-रचना में इन्होंने ११ मई सन् १८५७ ई० से १ जुलाई सन् १८५८ ई० तक के सिपाही-विद्रोह का आँखों देखा वर्णन लिखा है।

गालिब उर्दू गद्य के जनक माने जाते हैं। इन्होंने अपने पत्रों के संग्रह ऊद-ए-हिन्दी और उर्दू-ए-मुअल्ला के द्वारा सरल और सुबोध गद्य लिखने का ढंग निकाला। इन पत्रों की भाषा अत्यन्त सरल सुन्दर तथा आकर्षक है और उस समय की सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति का भी इनमें अच्छा चित्रण किया गया है।

मिर्ज़ा गालिब अत्यन्त कोमल हृदय के भावुक और विनोदप्रिय व्यक्ति थे। इनकी विनोद-प्रियता के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

एक बार पञ्जाब-गवर्नर के मीरमुंशी पं० मोतीलाल मिर्ज़ा साहबके मकान पर आये। बातचीतमें मिर्ज़ा गालिबकी पेंशन की बात निकल पड़ी। क्योंकि गवर्नमेंट ने इनकी पेंशन सिपाही-विद्रोह में शामिल होने के सन्देह में बन्द कर दी थी। मिर्ज़ा ने कहा—

"तमाम उम्र में एक दिन शराब न पी हो तो काफिर, और एक दफा भी नमाज पढ़ी हो तो गुनहगार, फिर क्या नहीं कि सरकार ने मुझे किस तरह बागी मुसलमानों में शुमार किया।

मिर्ज़ा गालिब के एक मित्र हकीम रजी-उद्दीन आम बिल्कुल नहीं खाते थे। एक दिन जब वे मिर्ज़ा गालिब के मकान के बरामदे में बैठे थे—कि एक गधा गली में से निकला गली में आम के छिलके पड़े हुए थे। गधे ने उनको सूँघ कर छोड़ दिया। हकीम साहबने कहा कि देखिये—आम ऐसी चीज है कि जिसे गधा भी नहीं खाता। मिर्ज़ा ने कहा 'बेशक गधे आम नहीं खाया करते'।

एक दिन सरदार मिर्ज़ा शाम को मिर्ज़ा गालिब से मिलने चले आये। थोड़ी देर के बाद जब वह जाने लगे तो मिर्ज़ा शमादान लेकर उनके साथ आये। उन्होंने कहा कि आपने क्यों तकलीफ फर्माई मैं तो अपना जूता आप ढूँढ लेता। मिर्ज़ा गालिबने तुरत कहा कि "मैं आपका जूता दिखाने को शमादान नहीं लाया बल्कि इसलिए लाया हूँ कि कहीं आप मेरा जूता न पहन कर चले जायें।"

एक बार मिर्ज़ा गालिब को जुआ खेलने के अपराध में तीन महीने की सजा हो गयी। जब वहाँ से छूट कर आये तो अपने एक मित्र काले खाँ के यहाँ आकर रहे। वहाँ किसी ने उनको जेल से रिहाई पर मुबारकबादी दी तो बोले—"कौन भड़वा कैद से छूटा है, पहले गोरे की कैद में था अब काले की कैद में हूँ।

इस तरह की बहुत सी घटनाएँ हैं, जिनसे मिर्ज़ा गालिब की विनोदप्रियता का पता चलता है।

मिर्ज़ा गालिबने इश्क शराब नीति धर्म इत्यादि जीवन दर्शन के सभी विषयों पर कविताएँ की हैं। उसकी कविताओं के कुछ नमूने इस प्रकार हैं—

मुँह न खुलने पर है वह आलम कि देखा ही नहीं
जुल्फ़ से बढ़कर नकाब उस शोख के मुँह पर खुला।
तेरे वादे पै जिये हम तो, यह जान झूठ जाना।
कि खुशी से मर न जाते, अगर जो इतबार होता।
इशरते कतरा है दरिया में फना हो जाना।
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना ॥
गालिब बुरा न मान जो वाइज बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहे उसे ॥
अब तो घबरा के ये कहते है कि मर जायेंगे।
मरके भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे ॥
इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया।
वर्ना हम भी आदमी थे काम के ॥

गाले-गास

पुर्तगाल अधिकृत 'वेनिजुवेला राज्य' का एक प्रसिद्ध उपन्यासकार, जिसका जन्म सन् १८८४ ई० मे हुआ।

गाले-गास वेनिजुवेला का एक प्रसिद्ध उपन्यासकार है। इसके उपन्यासो मे वेनिजुएला के सामाजिक जीवन की झाकी सजीव रूप में देखने को मिलती है। प्राचीनता और नवीनता के सघर्ष मे नवीनता को ग्रहण करने मे कितने तीव्र विरोध का सामना करना पडता है—इसका चित्रण उन्होंने बडे सुदर ढङ्ग मे किया है। इनके उपन्यासो मे 'डोना-वार्बरा' नामक उपन्यास बहुत प्रसिद्ध है। इस उपन्यास के कारण उनका स्थान अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के कलाकारो मे आ गया है।

गॉर्टर (Hermn-Gorter)

डच साहित्य का एक प्रसिद्ध कवि और लेखक जिसका जन्म सन् १८६४ मे और मृत्यु सन् १९२७ मे हुई।

नैदर लैण्ड की साहित्यिक जागृति मे सन् १८७० से लेकर सन् १९०० तक के तीस वर्ष बडे महत्व पूर्ण माने जाते हैं। इन वर्षों मे साहित्य, कला, काव्य, पत्रकारिता इत्यादि सभी क्षेत्रो में नैदर लैण्ड के अन्दर बडी उन्नति हुई। इन्ही दिनो वहाँ पर 'नीवे गिड्स' नामक एक'' प्रसिद्ध पत्रका प्रकाशन एक युवक सघ ने सन् १८८५ से करना प्रारम्भ किया। इस पत्र के द्वारा साहित्य और कला के क्षेत्र मे एक नव जीवन की लहर दौड गई।

गॉर्टर इस युवक सघ का सबसे महान् और प्रतिभाशाली कवि था। उसका प्रसिद्ध काव्य ''मान्य'' (my) डच साहित्य की उच्चतम कृत्तियो मे से एक माना जाता है। गोर्ट समाज वादी विचार धारा का कवि था। और उसकी कविताओ का प्रभाव उसी की सम कालीन प्रसिद्ध कवियत्री -होल्स्ट'' पर बहुत पड़ा। इसी की प्रेरणा से 'होल्स्द' डच साहित्य मे बहुत लोक प्रिय हो गई।

गिआर डिनो ब्रूनो
(Gior dino bruno)

इटाली का एक कॉमेडी (सुखान्त) नाटककार और दार्शनिक जिसका जन्म सन् १५४८ मे हुआ और सन् १६०० मे यह नास्तिकता के अपराध मे जीवित जला दिया गया।

सोलहवी सदी मे इटली के रगमचीय क्षेत्र मे एक नया मोड आया। उस समय की कॉमेडी रचनाओ मे अश्लीलता और यौन दुराचरण की बाढ़ आगई। गिआर डिनो ब्रूनो की प्रसिद्ध कॉमेडी 'इल काण्डेलाइओ' इसी प्रकार की भावनाओ की एक कृत्ति थी।

नाटकीय क्षेत्र की तरह दार्शनिक क्षेत्र मे इस लेखक की कृत्तियो मे वहाँ की धर्म-अदालतो को नास्तिकता की बू आई और इसी अपराध में वह जीवित जला दिया गया।

गिजाली मौलाना

फारसी के एक प्रसिद्ध राज कवि, जिनका जन्म सन् १५२४ ई० मे 'मसहद' के अन्तर्गत हुआ और मृत्यु सन् १५७२ ई० मे अहमदाबाद मे हुई।

मौलाना 'गिजाली' अपनी जन्मभूमि 'मसहद' से चल कर प्रारम्भ मे दक्षिण के मुसलमानी शासको के यहाँ गये। परन्तु वहाँ पर उचित क्षेत्र न मिलने पर ये जौनपुर के सूबेदार खाँजमा अलीकुली के पास चले गये। यहीं पर इन्होंने 'नक्शबदीय' नाम की कविता लिखी। इस कविता के प्रत्येक शेर पर नवाव ने उनको एक-एक अशर्फी इनाम दिया।

सन् १५६८ ई० मे 'अकवर' के साथ होने वाले युद्ध मे खाँजमा मारे गये तव मौलाना गिजाली ने अकवर के यहाँ नोकरी कर ली। सम्राट् अकवर ने उन्हें 'मालिक-उश शुआरा'

(कविराज) की उपाधि प्रदान की। कहा जाता है कि भारत में यह उपाधि सबसे पहले इन्हीं को मिली थी।

इनकी रचनाओं में एक दीवान और 'किताब असरार रियाहात-अल-हयात' और 'मिरात-उल-कायनात' नाम की तीन मसनवियाँ उल्लेखनीय हैं।   (वसु-विश्वकोष)

गिञ्जी

मद्रास प्रान्त के दक्षिणी अर्काट जिला में पर्वतीय भूभाग पर बना हुआ एक पहाड़ी किला जिसका निर्माण १४ वीं शताब्दी में हुआ ऐसा समझा जाता है।

इस दुर्ग के तीन ओर राजगिरि कृष्णगिरि और चन्द्रा रायन दुर्ग नामक तीन पर्वतीय दुर्ग बने हुए हैं। ये तीनों दुर्ग एक सुदृढ़ प्राचीर द्वारा आपस में मिला दिये गये हैं। पर्वत और प्राचीर को मिला कर इस दुर्ग की परिधि ७ मील के करीब पड़ती है।

सन् ११८३ ई. की विजयनगर के राज्य की एक प्रशस्ति में लिखा हुआ है कि इस दुर्ग से ही इस प्रदेश का नाम 'जिंजी' पड़ा। अतः मालूम होता है कि इस प्रशस्ति के समय से पूर्व ही यह दुर्ग बन कर तैयार हो गया था। इस किले में 'कल्याण-महल' जिमखाना' 'धान्यागार' 'ईदगाह 'मारिक' 'मण्डप' और एक आठ मंजिला 'गुम्बज' बना हुआ है।

बहुत दिनों तक यह किला विजयनगर साम्राज्य के अन्तर्गत रहा। उसके पश्चात् मैसूर के नायकों ने इस पर अधिकार किया। सन् १५६४ ई. में तालीकोट' की लड़ाई में यह किला मुसलमानों के अधिकार में गया। सन् १६१८ ई. में विजयपुर के सेना नायक ने मराठा सरदार शाहजी की सहायता से इस पर अधिकार किया। सन् १६७७ ई. में यह किला छत्रपति शिवाजी के अधिकार में आया। उनके बाद औरङ्गजेब के सेनापति 'जुल्फिकार अली खाँ' ने एक लम्बी लड़ाई के बाद सन् १६६८ ई. इस किले पर अपना अधिकार किया। सन् १७५ ई. में फ्रांसीसी सेनापति 'मार्शल बुसी' ने इस पर अधिकार किया। सन् १७८ ई. में यह किला 'हैदरअली' के हाथ में आया।

जिंजी से एक मील उत्तर पहाड़ पर 'सिंहनाथ कुंड' नामक स्थान की पर्वतशिलाओं पर २४ जैन-तीर्थंकरों की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। यहाँ से १॥ मील उत्तर-पश्चिम एक विष्णु-मन्दिर बना हुआ है, जो पहाड़ तोड़ कर बनाया गया है।

गिद्धौर

बिहार प्रान्त में मुंगेर जिले का एक छोटा गाँव।

प्राचीन काल में यह गाँव बड़ा समृद्धिशाली रहा। इस गाँव के निकट एक बहुत प्राचीन किले के अवशेष दिखाई पड़ते हैं। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि यह किला 'शेरशाह' ने बनवाया था। मगर कुछ लोगों के मत से किला पहले मौजूद था। शेरशाहने उसका जीर्णोद्धार करवाया था।

वर्तमान गिद्धौर राजवंश के प्रतिष्ठाता वीरविक्रमसिंह चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। इनके पूर्वज बुन्देलखण्ड के 'महोबा' नामक क्षेत्र के राजा थे। सन् ११६८ ई. में वीर विक्रमसिंह यात्रा के लिए परिवार सहित वैद्यनाथ धाम को आये और किसी स्वप्न से प्रेरित होकर यहीं पर उन्होंने 'गिद्धौर' राजवंश की स्थापना की।

इसी वंश के १ वें राजा पूरनमल ने 'वैद्यनाथ' देव के मन्दिर का निर्माण करवाया। मन्दिर के भीतरी दरवाजे के ऊपरी भाग पर संस्कृत-भाषा में उनकी प्रशस्ति खुदी हुई है।

वीर विक्रम की १४ वीं पुश्त में 'दलपतिसिंह' नामक राजा हुए। इन्होंने बङ्गाल के सूबेदार को दबाने में सम्राट शाहजहाँ की मदद की थी। इसलिए सम्राट शाहजहाँ ने इनको राजा की उपाधि प्रदान की थी।

जब बंगाल और बिहार का शासनभार अंग्रेज सरकार के हाथ में आया उस समय गिद्धौर के राजा 'गोपालसिंह' थे। सन् १८३९ ई. में गोपालसिंह के पौत्र 'जयमङ्गल सिंह' ने सन्थाल-विद्रोह को दबाने में अंग्रेजों की विशेष रूप से मदद की थी। इससे सन्तुष्ट होकर सन् १८५६ ई. में गवर्नर जनरल ने उन्हें एक सनद और राजा की उपाधि प्रदान की।

इसके पश्चात् सिपाही-विद्रोह के समय में इन्होंने फिर अंग्रेजी-सरकार की मदद की। जिसके परिणाम-स्वरूप सन् १८६८ ई. में ब्रिटिश सरकार ने इन्हें आजीवन 'महाराजा' और 'के० सी० एस० आई०' की उपाधि तथा एक बड़ी जागीर प्रदान की।

जयमंगल सिंह के पश्चात् राजा 'शिवप्रसाद' और राजा

'रावरणेश्वर प्रसाद' गिद्धौर-राजवंश मे हुए । इस समय यह कस्वा वहुत छोटी और गिरी हुई हालत मे मुगेर जिले मे सम्मिलित है । (वसु—विश्वकोप)

गिनी

अफ्रीका के पश्चिमी तट पर स्थित, गिनी नामक खाडी पर बसा हुआ प्रदेश, जो 'पालमास अन्तरीप' से लेकर 'गेवुन एसचुरी' तफ फैला हुआ है ।

यह प्रदेश आधुनिक दुनियां की जानकारी मे सन् १२७० ई० मे जिनेवा के निवासी 'हेलैन्सलाटमेलो-सेलो' के द्वारा लाया गया ।

इसका ग्रीनकास्ट नामक ४०० मील लम्वा तट पीपर और काली मिर्च के व्यापार के लिये प्रसिद्ध था । इसका दूसरा विभाग 'आईवरी कॉस्ट' हाथी-दांत के व्यापार के लिए प्रसिद्ध था। इसका एक विभाग 'गोल्डकास्ट' के नाम से और एक विभाग 'स्लेव कोस्ट' के नाम से प्रसिद्ध है ।

गिनी-प्रदेश मे अफ्रीका के घाना, लाइवेरिया, लियोन, आइवरीकोस्ट, टोगोलेंड नाइजीरिया राज्यो के भाग सम्मिलित हैं। इसके प्रमुख नगरोमे घाना, इबादान, लागोस, फ्री टाउन इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

गिब्स (जोशिया गिब्स)

एक प्रसिद्ध भौतिक-शास्त्री वैज्ञानिक, जिनका जन्म सन् १८३९ ई० मे 'न्यु हेवेन' में हुआ और मृत्यु भी उसी स्थान पर सन् १९०३ ई० मे हुई ।

गिब्स ने आधुनिक भौतिक-शास्त्र के विकास मे उल्लेखनीय योग दिया है। यद्यपि उनकी प्रसिद्धि अधिक नही हुई । उन्होने हमेशा एकान्त जीवन बिताना ही पसन्द किया और विवाह करनेके झझट मे भी वे नही पडे । उन्होंने अपना सारा जीवन अध्ययन मे ही लगाया ।

विज्ञान के इतिहास मे अपने पत्र—व्यवहार से बहुत कम व्यक्तियो ने इतना प्रभाव डाला होगा जितना 'गिब्स' ने डाला है। इनसे पत्र व्यवहार करने वालो मे तीन

वैज्ञानिक प्रमुख थे। प्रथम प्रसिद्ध ब्रिटिश भौतिकशास्त्री लार्ड 'केल्विन' थे, जिन्होने 'न्यूटन' की मान्यताओ के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई थी। दूसरे डच-वैज्ञानिक 'हैनृक-आरेज' थे, जिनके समी-करणो के आधार पर ही वाद मे जगत् प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'आईन्स्टीन' ने अपने सापेक्षता के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया । तीसरे 'मात्रा-सिद्धान्त' के आविष्कारक 'मैक्स प्लैंक' थे, जिन्होने यह प्रमाणित किया कि 'विकीरण-उर्जा' एक सतत प्रवाह मे प्रवाहित नही होती प्रत्युत वह लहरो मे निकलती है ।

गिब्स की दिलचस्पी प्रारभ मे दूसरी उर्जाओ के स्वरूप से ताप के सम्बन्ध मे थी । सन् १८७० ई० मे उन्होने इस विषय पर एक निबन्ध प्रकाशित करवाया । इस लेख की तरफ वैज्ञानिको का ध्यान आकृष्ट हुआ । इसके कुछ वर्षो के बाद उन्होने ताप के सक्रमण के नियामक गणित-सम्बन्धी सिद्धान्तो को प्रकाशित करवाया । गिब्स के समीकरण प्रकाशित होने के वाद ही मैक्स प्लैंक ने उनसे पत्र-व्यवहार किया ।

गिब्स की व्यवहारिक विज्ञानमे भी बडी दिलचस्पी थी । जिस समय 'सेम्युअल-लेंग्ली' अपने उड्डयन सबधी यत्रके विकास मे लगे हुए थे, उस समय उचित परामर्श के लिए उन्होने गिब्स को एक पत्र लिखा था । गिब्स ने उन्हे वायुगति-विज्ञान सम्बन्धी समीकरण के नियम लिखकर भेजे थे । इन्हीं समीकरणो को वाद मे राइट-बन्धुओ ने अपनी खोज का आधार बनाया था । गिब्स ने एक रेलवे-ब्रेक का भी 'पेटेंट' करवाया था । इसी की सहायता से जॉर्ज वेस्टिंगस हाउस' ने प्रसिद्ध 'एअर-ब्रेक' का आविष्कार किया था ।

सन् १९५५ ई० मे 'येल' मे भौतिकशास्त्र, प्राणी-विज्ञान और वनस्पतिशास्त्र मे उच्च शास्त्रीय अध्ययन के लिए इनकी स्मृतिमे जोशिया गिब्स रिसर्च लेबोरेटरी' की स्थापना कर उनका सम्मान किया गया ।

गिबन-एडवर्ड (Edword Gibbon)

अग्रेजी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार और गद्य-लेखक जिनका जन्म सन् १७३७ मे और मृत्यु सन् १७९४ में हुई ।

'एडवर्ड गिबन' ने "दी डिक्लाइन एण्ड दी फॉल ऑफ रोमन एम्पायर" नामक ग्रन्थ को लिख कर बडी प्रसिद्धि प्राप्त

की। इस ग्रन्थ ने इतिहास के उस सुनहले भूतकाल का चित्र जनता के सम्मुख उपस्थित किया जिसके द्वारा प्राचीन के साथ नवीन इतिहास का मूल्यांकन सम्भव हो गया।

इस सुप्रसिद्ध रचना ने उनको इतिहास के क्षेत्र में अमर कर दिया। सन् १७७२ से लेकर सन् १७८७ ई० तक पूरे १५ वर्षों में उन्होंने इस ग्रन्थ को समाप्त किया।

इस ग्रन्थ में योरोप और उसके आस-पास के प्रदेशों का १८ शताब्दियों का सम्पूर्ण इतिहास अत्यन्त सुन्दर और ललित भाषा में बतलाया गया है। इस ग्रन्थ में रोम की राज्य-व्यवस्था ईसाई-धर्म के प्रचार के पश्चात् योरोप पर पड़ने वाले उसके प्रभावोंका विश्लेषण 'बिजन्टीन' में स्थापित रोम के पूर्वी साम्राज्य का विस्तृत वर्णन इस्लाम के विश्वव्यापी प्रचार का विश्लेषण मध्य युग की धार्मिक धर्म यात्रा और उनको छोड़ने वाले धर्म-सुधारकों का इतिहास—इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का बड़ी रोचक भाषा में सिलसिलेवार वर्णन किया गया है। पूरी दो शताब्दियाँ बीतने और ऐतिहासिक जगत में कई नवीन अनुसन्धान हो जाने के पश्चात् भी इस ग्रन्थ का महत्व ज्यों का त्यों बना हुआ है।

गिबनने अपनी जीवनी आत्मकथा भी लिखी जो उस समय के परिमार्जित गद्य का एक सुन्दर नमूना है। इस प्रकार अपनी कृतियों से ही वे प्रसिद्ध इतिहासकारों और गद्य-लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया।

प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् 'फ्रीमैन' के मतानुसार इतिहास में चाहे और कुछ पढ़ा जाय या न पढ़ा जाय 'गिबन' अवश्य पढ़ा जाना चाहिए।

गिरनार

सौराष्ट्र-राज्य में जूनागढ़ के समीप गिरनार पहाड़ पर बना हुआ जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थस्थान जो जैनियों के २२ तीर्थंकर नेमिनाथ की निर्वाण भूमि के रूप में प्रसिद्ध है।

जैन परम्पराओं के अनुसार यादवकुल में सुप्रसिद्ध कृष्णचन्द्र के भाई नेमिनाथ बड़े तेजस्वी महान और उदार पुरुष थे। कृष्ण से उनकी प्रतिस्पर्धा चलती रहती थी। नेमिनाथ का सम्बन्ध राजा उग्रसेन की पुत्री राजमती के साथ निश्चित हुआ था। जब नेमिनाथ की बारात ब्याह के लिए राजमती के यहाँ पहुँची उस समय कृष्ण के पावन से वहाँ की पाकशाला में बहुत से जीवों का वध करवाकर उनका मांस बनवाया गया।

नेमिनाथ विशुद्ध अहिंसक प्रकृति के जैन-धर्म में श्रद्धा रखने वाले व्यक्ति थे। जीव-हिंसा के इन दृश्यों को देखकर उन्हें एकदम वैराग्य हो गया और वे उसी समय बिना विवाह किए जैन-दीक्षा ग्रहण करने के लिये चले गये।

दीक्षा ग्रहण करके उन्होंने 'गिरनार' पर्वत पर कठिन तपस्या की। उन्हीं के स्मारक में इस तीर्थ की स्थापना हुई।

गिरनार पहाड़ की चोटी पर कई जैन-मन्दिर बने हुए हैं। यहाँ तक पहुँचने का मार्ग बड़ा दुर्गम और बीहड़ है। सबसे ऊँची टोंक पर पहुँचने के लिए ७० सीढ़ियाँ पार करनी पड़ती हैं। आधी दूर जाने पर एक कोठ का महल और २७ मन्दिर बने हुए हैं। पास में ही नेमिनाथ की धर्मपत्नी राजमती की गुफा है, जहाँ पर उन्होंने तपस्या की थी। इस गुफा में राजमती की चरण पादुकाएँ बनी हुई हैं।

यहाँ से और ऊँचे चढ़ने पर दो टोंकें मिलती हैं जिन पर नेमिनाथ ने तपस्या की थी। यहीं पर हिन्दू धर्मावलम्बियों का 'दत्तात्रेय' का सुप्रसिद्ध मन्दिर भी बना हुआ है। मुसलमान लोग इसे 'आदम बाबा' के नाम से पुकारते हैं। यहाँ से ऊपर सबसे ऊँची चोटी पर जाने पर दो टोंकें और बनी हुई हैं। पहली टोंक पर तीर्थंकर नेमिनाथ को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई थी और दूसरी टोंक पर उनका निर्वाण हुआ था। यहीं पर उनकी एक प्रतिमा और चरण-पादुका बड़ी सुन्दर बनी हुई है।

गिरनार पहाड़ पर एक मन्दिर गुजरात के एक सुप्रसिद्ध नरेश कुमारपाल का और दूसरा मन्दिर वस्तुपाल और तेजपाल नामक दो भाइयों का बनवाया हुआ है—इसे 'नेमिनाथ का मन्दिर' कहते हैं। यह सन् १२१० ई० में बनकर तैयार हुआ। तीसरा सब से सुन्दर मन्दिर नेमिनाथ का बना हुआ है जो सम्भवतः सन् १२०० ई० में बन कर तैयार हुआ।

इन मन्दिरो के सभा-मण्डप, स्तभ, शिखर, गर्भगृह आदि विशुद्ध सगमरमर के बने हुए अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं।

गिरनार पहाड पर कई ऐतिहासिक शिलालेख भी पाये गये है। इनमे एक विशाल चट्टान पर पाली भाषा मे खुदी हुई अशोक की मुख्य धर्म-लिपियाँ और उसी चट्टान पर 'क्षत्रप रुद्रदामन' का सस्कृत का सुप्रसिद्ध अभिलेख भी खुदा हुआ है। इसमे रुद्रदामन के द्वारा दाक्षिणात्य नृपति को पराजित करनेका उल्लेख किया हुआ है। इसी विशाल लेख मे सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उनके बाद मे होने वाले राजाओ के द्वारा निर्मित तथा जीर्णोद्धार किए हुए 'सुदर्शन ताडाग' और 'विष्णु मन्दिर' का सुन्दर वर्णन है। राजा रुद्रदामन का यह लेख दस्कृत गद्य के विकास का एक प्राचीन उदाहरण माना जाता है। इसी शिलालेख की चट्टान पर सन् ४५५ ई० की शिलालिपि मे 'सुदर्शन-कुण्ड' के बाध टूटने और उसका फिर से जीर्णोद्धार करने का उल्लेख है। यह लेख गुप्त सम्राट् 'स्कन्द गुप्त' के समय का है।

गिरनार (२)

सौराष्ट्र-प्रान्त के जूनागढ नगर से १० मील पूर्व मे यह पहाडिया स्थित हैं। इनकी ऊँचाई करीब ३५०० फुट है। इसकी ५ चोटियाँ प्रमुख हैं।

(१) अम्बा माता (२) गोरखनाथ (३) अगाध शिखर (४) गुरु दत्तात्रेय और (५) कालिका।

इन मे सबसे ऊँची चोटी गोरखनाथ की है। अम्बामाता का मन्दिर अम्बादेवी की चोटी पर स्थित है। यहाँ पर गोमुखी हनुमान धारा और कमण्डल नामक तीन कुण्ड बने हुए हैं। प्राचीम युग मे यहा पर 'अघोर-सम्प्रदाय' के लोग विशेष रूप से आते-जाते रहे।

इस प्रकार गिरनार का पर्वत जैनियो और हिन्दुओ दोनों का पवित्र तीर्थस्थान बना हुआ है।

गिरजा-घर (चर्च)

ईसाई-धर्म के उपासना-गृह जिनको गिरजा-घर या चर्च' कहते हैं और जिनका इतिहास बहुत पुराना है।

ऐसा समझा जाता है कि सबसे पहला गिरजाघर रोमके अन्तर्गत 'ईसा मसीह' के प्रमुख शिष्य 'सेंट पीटर' के द्वारा स्थापित किया गया और वे ही इसके सबसे पहले बिशप (पादरी) नियुक्त किये गये। इसीलिए रोम का चर्च समार के सब चर्चो का जनक समझा जाता है। रोम के वचन सबसे पवित्र माने जाते थे। फिर रोम की नगरी भी उस समय ससार के सबसे बडे साम्राज्य की राजधानी थी। इस कारण उसका और भी विशेष गौरव था।

शुरू की ४ शताब्दियो तक रोमन-चर्च का इतिहास सिलसिलेवार नही मिलता। क्योकि उस समय तक रोम के सम्राटो ने ईसाई धर्म नही ग्रहण किया था और वे ईसाई-धर्म मानने वालों को हर प्रकार का कष्ट देते थे।

सन् ३११ ई० मे सबसे पहले रोम के सम्राट् 'उलेरियस' ने ईसाई-धर्म और रोम के प्राचीन धर्म को बराबरी का स्थान दिया। और उसके पश्चात् सन् ३३० ई० से विजन्तीन सम्राट् 'कास्टेंटाइन' ने स्वय ईसाई-धर्म ग्रहण करके चर्च के महत्व को बढाया।

इसके पश्चात् चर्च का सगठन बाकायदा किया गया और इनके सबसे बडे धर्माचार्य को 'बिशप' और उसके नीचे के धर्माधिकारियो को 'डीकन' 'सब-डीकन' 'एकोलाइट' 'एक जहारसिस्ट' की सज्ञा दी गयी।

इसके पश्चात् रोमन-चर्च का तेजी से विकास होने लगा और बडे बडे विद्वान धर्माचार्यों ने इस सस्था को सगठित करने मे अपनी पूरी शक्ति लगा दी। इन धर्माचार्यो मे सबसे पहला नाम 'अथानीसियस' का आता है जिसने सच्चे चर्चके आचार-विचार आदि का निर्णय किया। मगर इन धर्माचार्यो मे सबसे प्रसिद्ध 'सेंट आगस्टाइन' हुआ। इसका समय सन् ३५४ ई० से सन् ४३० ई० तक था। इस महान् धर्माचार्य ने ईसाई-धर्म के प्रचार मे बड़ा सक्रिय सहयोग दिया। इनके लेख ईसाई-साहित्य मे अभी तक प्रमाणभूत माने जाते हैं।

इसी समय से रोमन-चर्च ने धार्मिक-क्षेत्र के साथ साथ राजनैतिक क्षेत्र मे भी प्रवेश किया। क्योकि उस समय पश्चिमी रोम-साम्राज्य के अन्तर्गत बाहरी लोगो के आक्रमण से बडी अराजकता फैल चुकी थी। इसलिए वहाँ पर शान्ति स्थापित करने के लिए चर्च ने आगे कदम बढाया। सन् ५०२ ई० मे पहली बार रोमन-चर्च की एक सभा ने यह निश्चय किया कि ईश्वर ने ससार मे अधिकार की दो तलवारें दी हैं। एक

राजा के हाथ में और दूसरी धर्माधिकारी के हाथ में। मगर धर्माधिकारी की शक्ति राजा की शक्ति से बढ़कर है। क्योंकि धर्माधिकारी ईश्वर के सम्मुख राजा के कार्यों का भी उत्तर दायी है। इसलिए जब धर्म और राज्य का झगड़ा हो तब धर्माधिकारी का निर्णय ही अन्तिम माना जाना चाहिए।

इसी समय से रोमन चर्च के बिशप को पोप (Pope) की सत्ता प्राप्त हुई। और इसके बाद से १० वर्ष तक रोमन चर्च योरोप की सबसे बड़ी शक्तिमान संस्था बन कर रहा।

रोमन-चर्च की उन्नति का सबसे बड़ा श्रेय 'ग्रेगरी महान्' को है जो सन् ५९ ई० में पोप की गद्दी पर बैठे। इन्होंने देश-देशान्तरों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए सैकड़ों धर्माचार्यों को भेजा। इंग्लैंड जर्मनी फ्रान्स इत्यादि देशों में क्रिस्तान-धर्म का प्रचार करना और वहाँ की धर्म संस्थाओं को पोप के नियन्त्रण में लेना—इन्हीं के समय में हुआ।

इसके पश्चात् पोपों की परम्परा में और भी कई इतिहास प्रसिद्ध पोप हुए जिन्होंने योरोप की राजनीति और धर्मनीति में बड़े महत्वपूर्ण खेल खेले।

ग्रीक-चर्च

सम्राट कॉन्स्टेन्टाइन के समय में रोम-साम्राज्य के पूर्वी क्षेत्र में भी कुस्तुन्तुनियाँ के अन्तर्गत चर्च की स्थापना हुई जो ग्रीक-चर्च के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस पूर्वीय और पश्चिमीय चर्च के विचारों में बड़ा मतभेद होने लगा। ग्रीक-चर्च के अनुयायी कुस्तुन्तुनियाँ के बिशप को सर्वश्रेष्ठ मानने लगे। और लैटिन चर्च के अनुयायी रोमन चर्च को सर्वश्रेष्ठ समझने लगे और इन दोनों चर्चों के अनुयायियों में बहुत झगड़े होने लगे। सन् ४४५ ई० में सम्राट् तृतीय 'वेलेंटाइन' ने एक आदेश जारी किया था कि—'रोम का बिशप सर्वश्रेष्ठ समझा जाय और दूसरे सब बिशप उसके कानून का अनुसरण करें। मगर इसके ६ वर्ष के पश्चात् 'चालसीडन' नामक स्थान में एक धर्म-सभा ने यह निश्चय किया कि कुस्तुन्तुनियाँ के बिशप को भी रोमन-बिशप के समान ही अधिकार सम्पन्न समझा जाय और सारे संसार के क्रिस्तान-धर्म पर दोनों बिशपों का अधिकार समझा जाय परन्तु इस निर्णय को पश्चिमीय धर्माचार्यों ने स्वीकार नहीं किया। इसके बाद भी इन दोनों चर्चों में झगड़े चलते रहे।

कैंटरबरी-चर्च

ईसा की ६ठीं शताब्दी के अन्त में रोमन चर्च के 'ग्रेगरी महान' ने ४ पादरियों का एक दल इंग्लैंड में भेजा। उस समय इंग्लैंड के केंट नामक प्रदेश का 'ईथलबर्ट' नामक राजा था। इसकी रानी फ्रांस की राजकुमारी 'बर्था' पहले से ही ईसाई धर्म को मानने वाली थी। राजा ईथलबर्ट ने इन पादरियों का बड़ा सम्मान किया और कैंटरबरी' नगर के पुराने गिरजाघर में इनको ठहरने का स्थान दिया। वहीं पर एक धर्मशाला बनवाकर इन पादरियों ने अपना धर्म प्रचार करना प्रारम्भ किया। तभी से कैंटरबरी का यह चर्च कैंटरबरी चर्च के नाम से प्रसिद्ध है। अभी भी इंग्लैंड का यह एक सुप्रसिद्ध चर्च है और यहाँ के पादरी 'लार्ड पादरी' कहे जाते हैं।

इसके पश्चात् ईसाई-धर्म के प्रचार के साथ-साथ संसार के सब देशों में गिरजाघरों की स्थापना हुई। १४वीं तथा १५वीं शताब्दी में 'मार्टिनलूथर' के द्वारा प्रोटेस्टेंट मत की स्थापना के साथ-साथ ये गिरजाघर रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट इन दो विभागों में विभक्त हो गये। प्राचीन धर्म के अनुयायी रोमन-कैथोलिक गिरजाघरों में अपनी उपासना करते हैं और प्रोटेस्टेंट-धर्म के अनुयायी प्रोटेस्टेंट-गिरजाघरों में।

ईसाइयों के सारे धर्मकार्य—प्रार्थना विवाह, मृतक-संस्कार इत्यादि सभी कार्य इन गिरजाघरों में सम्पन्न होते हैं।

गिरजाघर 'नमक का'

दक्षिण अमेरिका में 'कोलम्बिया' नामक स्थान में नमक की पहाड़ी के अन्दर बना हुआ एक गिरजाघर जो जगत का एक महान् आश्चर्य है और जिसका निर्माण-कार्य पूरा हो जाने पर उसमें ५ हजार व्यक्ति एक साथ प्रार्थना कर सकेंगे।

१९वीं सदी के प्रारम्भ में दक्षिण अमेरिका का बहुत सा भाग स्पेन की गुलामी में कसा हुआ था और स्पेनी शासकों के अत्याचारों से त्रस्त हो रहा था। ऐसे समय में 'साइमन बोलीवर' नामक एक देश-भक्त ने कुछ देशभक्तों को जमा एकत्र करके स्पेन के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा उठाया। सन् १८१९ ई० में यह देशभक्त २५ सैनिकों की एक टुकड़ी लेकर एंडीज और 'वेनजुला' होते हुए स्पेन

भिजवाया पहुँचा। वगोहा के निकट पहुँचने पर इन्हे मालूम हुआ कि ५ हजार स्पेनी सैनिको की एक सुशिक्षित सेना उनका मुकाबला करने के लिए तेजी से चली आ रही है। बोलीवस की सेना की दोनो तरफ पहाडियाँ खडी हुई थी और स्पेनी-सेना से उनकी रक्षा करने का कोई उपाय दिखाई नही दे रहा था और चारो ओर निराशा का अन्धकार दिखाई दे रहा था। ऐसे कठिन समय मे एक जङ्गली और असभ्य व्यक्ति ईश्वर के भेजे हुए दूत की तरह वहाँ पर आया और उसने एक तङ्ग रास्ते की ओर इशारा किया।

बोलीवर की सेना उस तङ्ग रास्ते की ओर रेंगती हुई आगे बढ़ी। कुछ दूर जाने पर वह सँकरा रास्ता चौडा हो गया और आगे चल कर 'नमक की एक विशाल गुफा' नजर आई। 'बोलीवर' के आदेश से वह सारी सेना उस गुफा मे उतर गई और तीन दिन तक आराम से वहाँ छिपी रही। यहीं से बोलीवर ने अपने विश्वासपात्र सैनिकों को अपने मित्रो के पास भेजा, जिसके फलस्वरूप दो हजार सैनिको की 'कुमक' उसे और मिल गई, जिसकी सहायता से उसने स्पेन की सेना को परास्त कर दिया। और यह नमक की गुफा उनके लिए एक पवित्र तीर्थस्थान के रूप मे बन गयी।

सन् १८५० ई० के करीब वहाँ के 'रेड-इडियन' लोगो ने स्पेन वालो को निकाल कर पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। उसके बाद वहाँ के लोग छोटे छोटे दल बाँध कर उस पवित्र गुफा मे जाने लगे और दीवारो को खोद-खोद कर सपाट बना डाला। और उन दीवारो मे सैकडो पूजा की वेदियाँ बना डाली।

आज यह 'नमक का गिरजा घर' दुनियाँ के ७ आश्चर्यों मे एक गिना जाता हैं। इसका गुबज भीतरसे ३०० फुट ऊँचा है और अभी भी यहाँ १५ हजार लोग पूजा के लिए खडे हो सकते हैं और जब यह पूरा हो जायगा, उस समय ५० हजार व्यक्ति इसमे खडे हो सकेंगें।

मगर इसके खोजने वाले साइमन-बोलीवर का अन्त बडा करुणाजनक हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्तिके वाद उसी को विश्वास-घाती ठहराया गया जिसके परिणामस्वरूप उसे देश छोडने के लिए बाध्य होना पडा। जब वह बन्दरगाह पर जहाज की राह देख रहा था, तभी बीमार पड गया और सन् १८३० ई० मे एक मित्र के घर पर इसकी मृत्यु हुई। कफन का कपडा न होने से मित्र की कमीज मे उसका शरीर लपेट कर दफनाया गया।

गिरधर बहादुर

सम्राट् महम्मद शाह के समय मे मालवा का एक प्रसिद्ध सूबेदार, जिसको ३० अगस्त सन् १७२२ ई० को मालवा की सूबेदारी प्राप्त हुई।

'गिरिधर बहादुर' नागर ब्राह्मण था। इलाहाबाद के राजा छबीलेराम का वह भतीजा था। पहले वह अवध का सूबेदार रह चुका था। किन्तु जब सम्राट् ने सआदत अली खाँ को अवध की सूबेदारी देने का निश्चय किया तब गिरधर बहादुर को अवध से हटाकर मालवा भेज दिया।

जिस समय गिरधर-बहादुर मालवे मे पहुँचा, उसी समय मालवे पर मराठो के आक्रमण प्रारभ हो चुके थे।

सन् १७२३ मे ई० निजाम ने गिरधर बहादुर को मालवा की सूबेदारी से हटा दिया। मगर उसके बाद सन् १७२५ ई० मे सम्राट् ने फिर से गिरधर बहादुर को मालवे की सूबदारी पर नियुक्त किया। इस बार वह अपने चचेरे भाई दया बहादुर को भी साथ ले आया। दयाबहादुर सेना-सञ्चालन की दृष्टि से बडा प्रवीण था।

मालवे मे आते ही गिरधरबहादुर और दयाबहादुर ने मराठा-आक्रमणकारियो को दवाना शुरू किया। दयाबहादुर ने इस तेजी के साथ मराठे आक्रमणकारियो का पीछा किया कि उसमे से बहुत से सेना नायको ने आत्मसमर्पण कर दिया और दयाबहादुर के नेतृत्व मे शाही सेनाने मराठा आक्रमण कारियो को निकाल बाहर कर दिया।

इसके पश्चात् गिरधरबहादुर ने मालवा प्रान्त मे मुगल शासन को सुदृढ़ और सुसगठित बनाने के लिए भरसक प्रयत्न किया, मगर धन की कमी से उसे पूरी सफलता न मिली।

अक्टूबर सन् १७२८ ई० मे पेशवा ने एक विशाल मराठासेना का सगठन करके चिमाजी-बलाल के नेतृत्व मे मालवे पर आक्रमण करनेके लिए भेजा। शाही सेना गिरधर बहादुर और दया बहादुर के नेतृत्व मे मराठो का सामना करने को बढी। 'अमझरा' के मैदान मे २९ नवबर सन् १७२९ ई० को भयकर युद्ध हुआ।

इस लड़ाई में गिरिधरबहादुर और दयाबहादुर दोनों मारे गये। शाही सेना को भयंकर पराजय हुई। इसी समय से मालवा प्रान्त में मराठों का बोलबाला हो गया।

गिरजादत्त शुक्ल (गिरीश)

हिन्दी के एक प्रसिद्ध साहित्यकार और कवि जिनका जन्म सन् १६० ई के करीब और मृत्यु सन् १९५१ ई में हुई।

सन् १९२२ ई में पं गिरिजादत्तशुक्ल न प्रयाग विश्व विद्यालय से बी ए० पास किया और उसके बाद 'लॉ' ज्वाइन करके वे युनिवर्सिटीके जैन-होस्टलमें रहने लगे। जैन होस्टल उन दिनों प्रयाग का एक साहित्यिक तीर्थ बना हुआ था और उन्हीं साहित्यिकों के संसर्ग से इनके अन्दर साहित्यिक प्रतिभा का जागरण हुआ।

इनके साहित्यिक जीवन का प्रारंभ इनकी 'रसायन' नामक कृति से प्रारंभ हुआ। इसके पश्चात् इन्होंने एक पुस्तक 'प्रसाद' पर, एक पुस्तक 'प्रेमघन' पर और ६० पृष्ठों का एक ग्रन्थ भारतीय ज्योतिष पर लिखा। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई उपन्यासों की भी रचना की।

मगर इनकी सबसे बड़ी महान् कृति 'तारकवध महाकाव्य' थी। जिसे इन्होंने २ वर्षों लगातार परिश्रम से लिखा था। यह महाकाव्य जब अप्रकाशित था तभी इसकी चर्चा हिन्दी-संसार में काफी हो गयी थी। इसी के साथ साथ इनके 'बाबू साहब' और 'बहता पानी' उपन्यास भी प्रकाशित हुए। इन उपन्यासों ने हिन्दी-साहित्य में अच्छा आदर प्राप्त किया। इनकी उल्लेखनीय रचनाएं इस प्रकार हैं—

महाकाव्य—तारकवध।
खण्डकाव्य—ज्मान बन प्रवासी शुक्र-भस्मी।
आलोचना—महाकवि हरिऔध गुप्तजी की काव्य-धारा'
उपन्यास—सदिरा पाप की पहेली प्रेम की पीड़ा बाबूसाहब सम्पादक विराग बहता पानी इत्यादि।

गिरधर कविराय

हिन्दी भाषा की नीति विषयक कुण्डलियों के एक सुप्रसिद्ध कवि जिनका जन्म सन् १७१३ ई म बाराबंकी जिले के एक ग्राम में हुआ था।

गिरधर कविराय ने अपनी सारी कविताएं कुण्डलिया छंद के अन्तर्गत की है। इनकी सारी कुण्डलिया नीति व्यवहार और सामाजिक मर्यादाओं पर आधारित है। काव्य क्षम श्रृंगार और अनुप्रास के चक्कर में न पड़कर सीधी-सादी भाषा में जो बातें इनकी समझ में आईं उनको तत्परता से प्रकट कर दिया है। नीति सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए जो दृष्टान्त प्राप्त हुए उन्हें भी इन्होंने अपनी कविताओंमें बैठिये। अत्यन्त सीधी-सादी और उपयोगी होने के कारण इनकी कुण्डलियों का प्रचार शिक्षित और अशिक्षित शहरी और ग्रामीण सभी क्षेत्रों में बहुत अधिक हुआ।

साईं बैर बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरनाकुश अरु कंस को गयो दुहुन के राज॥
गयो दुहुन के राज बाप-बेटा के बिगरे।
दुश्मन दावागीर भये महिमण्डल सिगरे॥
कह गिरधर कविराय जुगन याही चलि आई।
पिता-पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई॥
रहिए लटपट काटि दिन बरु घामहिं में सोय।
छाहँ न वाकी बैठिए जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा देहैं।
जा दिन बहै बयारि टूट तब जर से जैहैं॥
कह गिरिधर कविराय छाँह मोटे की गहिए।
पाता सब झरिजाय तऊ छाया में रहिए॥

गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी

संस्कृत-भाषा के एक सुप्रसिद्ध विद्वान, महामहोपाध्याय, विद्यावाचस्पति प गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जिनका जन्म सन् १८८१ ई में राजस्थान के जयपुर नगर में हुआ।

पं गिरिधर शर्मा के पिताका नाम पं मायुलाल शर्मा था। संस्कृत भाषा के प्रति बाल्यकाल से ही इनकी बड़ी

अभिरुचि थी। जिसके फलस्वरूप संस्कृत की प्रवेशिका परीक्षा से लेकर आचार्य की उच्चपरीक्षा तक सब परीक्षाएँ इन्होने प्रथम स्थानसे उत्तीर्ण की। इसके बाद इन्होने जयपुर कालेज से वेदान्त की परीक्षा तथा पञ्जाब विश्वविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा भी एक साथ पास की।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् इन्होने कुछ समय तक विभिन्न पत्र पत्रिकाओ मे लेख लिखना प्रारम्भ किया। कुछ समय के पश्चात् इनकी नियुक्ति सहारनपुर के 'स्याद्वाद जैन महाविद्यालय' के प्रधानाचार्यके पद पर हुई। सन् १९०८ई० मे ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम, ज्वालापुर के अधिष्ठाता की जगह पर चतुर्वेदीजी की नियुक्ति हुई। सन् १९१८ से सन् १९२४ ई० तक सनातन धर्म कालेज, लाहौर मे इन्होने अध्यापन का कार्य किया। सन् १९२५ ई० से सन् १९४४ ई० तक 'महाराजा संस्कृत कालेज जयपुर के ये प्रधानाचार्य रहे। और सन् १९५० ई०से सन् १९५४ ई० तक बनारस युनिवर्सिटीमे 'डाइरेक्टर ऑफ संस्कृत स्टडीज ऐंड रिसर्च' के पदपर इनकी नियुक्ति हुई।

प० गिरिधर शर्मा ने अपने जीवन मे कई पत्र पत्रिकाओ तथा ग्रन्थो का सम्पादन किया है। इनके द्वारा सम्पादित और रचित ग्रथो मे गीता-विज्ञान भाष्य, बालाम्बा-परिणय चम्पू, शतपथ ब्राह्मण, महाकाव्य सग्रह, ब्रह्म सिद्धान्त, पाणिनीय परिचय, वेद विज्ञान बिन्दु, वैदिक विज्ञान और भारतीय सस्कृति इत्यादि, हिन्दी तथा सस्कृत की अनेक रचनाएँ उल्लेखनीय है।

इनकी विद्वत्ता और साहित्य सेवासे प्रभावित होकर भारत सरकार ने इन्हें 'महामहोपाध्याय' की, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ने वाचस्पति' की, हिन्दी साहित्य सम्मेलनने साहित्य-वाचस्पति' की और भारत धर्म महामण्डल ने महामहोपदेशक की सम्मानपूर्ण उपाधियाँ प्रदान की।

अ० भा० सस्कृत-साहित्य सम्मेलन, दिल्ली की स्थापना का श्रेय भी चतुर्वेदीजी को ही प्राप्त है। इस सस्था की भारत के अनेक प्रदेशो में शाखाएँ है। इस सस्था के अखिल भारतीय कई अधिवेशनो के आप सभापति भी रहे हैं।

सन् १९५६ ई० मे महामहोपाध्याय प० गिरिधर शर्मा की 'हीरक जयन्ती' अ० भा० सस्कृत सम्मेलन के द्वारा दिल्ली मे बडे समारोह के साथ मनाई गयी। उस अवसर पर दरभगा के नरेश स्वर्गीय कामेश्वर सिंह ने आप को अभिनदन पत्र भेंट किया था।

८६ वर्ष की आयु हो जाने और शरीर की शक्ति और नेत्रो की ज्योति मन्द पड जाने पर भी आप अपना दैनिक कार्य, उपासना, ग्रंथ-लेखन तथा विभिन्न सस्थाओ मे योगदान इत्यादि सभी कार्य नियमित रूप से करते रहते हैं।

गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'

हिन्दी और सस्कृत के एक सुप्रसिद्ध कवि प० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' जिनका जन्म सन् १८८० ई० के आसपास हुआ था।

प० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' वैसे गुजराती ब्राह्मण थे मगर शुरु से ही झालावाड नरेश के राजकवि की तरह झालरापाटन मे रहते थे। हिन्दी के प्रारम्भिक युग मे मालवा और राजपूताने के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के प्रचार मे इन्हो ने बडा योग दिया। इनकी कविताए 'सरस्वती' मे बराबर छपती रही।

इन्होने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीताञ्जलि' का और माघ के 'शिशुपालवध' के दो सर्गो का तथा जैनियो के भक्ताभर, कल्याण मन्दिर इत्यादि कई काव्यो का सुदर हिन्दी खडी बोली मे सुदर पद्यानुवाद किया था। इसके अतिरिक्त गुजराती के सुप्रसिद्ध कवि नानालाल दलपतराम की 'जया-जयन्त' और 'ऊषा' नामक कृतियो का भी सुन्दर हिन्दी मे अनुवाद किया था।

प० गिरिधर शर्मा हिन्दी के साथ ही सस्कृतके भी अच्छे कवि थे। 'गोल्ड स्मिथ' के 'हरमिट' (Hermit) नामक काव्य का इन्होने सस्कृत श्लोको मे अनुवाद किया था। राजपूताने से निकलने वाले 'विद्या भास्कर' नामक पत्र का भी कुछ दिनो तक इन्होने सम्पादन किया था। इनकी मृत्यु सन् १९६१ मे होगई।

गिरीशचन्द्र घोष

बगला साहित्य के एक महान् नाटककार और कवि, जिनका जन्म सन् १८४४ ई० मे और मृत्यु सन् १९१२ ई० मे हुई।

गिरीशचन्द्र घोष का महत्व बंगला रंगमंच तथा बंगला नाटक-साहित्य में अद्वितीय है। इनके पहले बंगला के अभिजात रंगमंच राजाओं और अमीर घरानों के व्यक्तिगत रंगमंच थे। जिनमें साधारण जनताको प्रवेश करनेका अधिकार नहीं होता था। गिरीशचन्द्र घोष ने एक सार्वजनिक रंगमंच स्थापित करने का संकल्प किया। और बाग-बजार में एक छोटी नाटक-मण्डली स्थापित की। इससे बंगाली नाटक साहित्य में एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ।

सन् १ ६१ ई में इस नाटक मण्डली में मधुसूदनदत्त का 'शर्मिष्ठा' नामक नाटक खेला गया। इसका संगीत स्वयं गिरीश बाबू ने बनाया था। यह नाटक बहुत सफल रहा। इसके पश्चात् गिरीशचन्द्र घोषने बड़े परिश्रमसे 'नेशनल थियेटर' नामक एक स्थायी रंगमंच की स्थापना की। इस थियेटर में सन् १८७१ ई मे दीनबन्धु रचित लीलावती नामक नाटक खेला गया। इससे 'नेशनल-थियेटर की बड़ी प्रसिद्धि हो गयी। नेशनल थियेटर पहला थियेटर था जो एक व्यावसायिक रंगमंच के रूप में बंगाल के अन्दर स्थापित हुआ। इसके बाद तो बहुत से रंगमंच स्थापित हुए।

उसके बाद गिरीश बाबू 'स्टार नेशनल थियेटर' में वैतनिक प्रबन्धक नियुक्त हो गये और उन्होंने नाटक लिखने का नियमित क्रम अपना लिया। इन्होंने भिन्न-भिन्न शैलियों में लगभग ८ नाटकों की रचना की।

गिरीशचन्द्र घोष का विशेष महत्व इस लिए है कि इन्होंने बंगला रंगमंच को सम्भ्रान्त कुलों के क्षेत्र से निकाल कर साधारण जनता के लिए सुलभ बनाया और स्वयं अपने अभिनय के द्वारा बंगला-रंगमंच की कला को ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया। इन्होंने नई नई अभिनेत्रियों को भी रंगमंच पर आने के लिए उत्साहित किया। इन अभिनेत्रियो में 'कुसुमारी दत्त' और तारासुन्दरी के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

गिरीशचन्द्र घोष बंगला-नाटक-साहित्य के इतिहास में एक नवीन युग के प्रवर्तक माने जाते हैं।

(डा नगेन्द्र बंगला-साहित्य का इतिहास)

गिरीशचन्द्र राय

बंगाल प्रान्त में नवद्वीप के राजा-ईश्वरचन्द्र के [illegible] जिनका जन्म सन् १७८६ ई में और मृत्यु सन् १८४१ [illegible] में हुई।

गिरीशचन्द्र राय छोटी उमर से ही धार्मिक प्रवृ[illegible] व्यक्ति थे। इन्होंने कृष्णनगर में 'आनन्दमयी काली' [illegible] 'आनन्दमय शिव' के मन्दिर बनवाये थे। गंगा के कि[illegible] जमीन में से इनको एक गोपालजी की मूर्ति प्राप्त हुई [illegible] इस मूर्ति को बड़े समारोह के साथ से लाकर इन्हें नवा[illegible] नाथ के नाम से स्थापित किया। इन धार्मिक कार्यों में [illegible] द्रव्य खर्च हो जाने से इनकी आर्थिक स्थिति बहुत कम[illegible] हो गयी और जमींदारी के ८४ परगनों में से केवल ७ प[illegible] बच गये। ऐसे आर्थिक कष्ट में भी इन्होंने नवद्वीप में दो [illegible] मन्दिरों का निर्माण करवाया। एक मन्दिर में 'भवतार[illegible] के नाम से काली की प्रतिमा को और दूसरे मन्दिर में '[illegible] तारण' के नाम से शिव की विशाल प्रतिमा को स्था[illegible] किया।

गिरीशचन्द्र राय की साहित्य और संगीत में विशेष [illegible] रुचि थी।

गिलगिट

काश्मीर-राज्य का एक जिला और उपत्यका जो [illegible] समय अवैधानिक रूप से पाकिस्तान-कश्मीर के अधिकार में है[illegible]

यह नगर और जिला काश्मीर में सिन्धु नदी की सहा[illegible] 'गिलगिट नदी' के किनारे पर सिन्धु नदी से २४ मील [illegible] दूरी पर बसा हुआ है।

इस स्थान का प्राचीन नाम 'सर्गिन' था, जो बदल [illegible] गिलगिट नदी के नाम पर 'गिलगित' रखा गया। पहले [illegible] नगर ८ दुर्गों से परिवेष्टित था नगर 'पसीन' और 'नि[illegible] वाले राजाओं के आपस में लड़ने से इन दुर्गों का विध्वंस [illegible] गया। इसके बाद यह उपत्यका सिक्खों के अधिकार [illegible] चली गयी। पुराने मन्दिर और बौद्ध कला के ध्वंसों के [illegible] से मालूम होता है कि १४वी शताब्दी से पहले यहाँ [illegible] हिन्दुओं का राज्य था। हिन्दू राजवंश के अन्तिम राजा [illegible] नाम 'श्रीबद्दत' था जो आदमखोर के नाम से मशहूर था।

किसी मुसलमान आक्रमणकारी ने युद्ध मे इस राजा को मारकर उसकी कन्या से विवाह कर लिया। इस कन्या की सन्तानें "एरवने" वशके नामसे अभिहित हुई थी राजा श्रीवद्दत के समय मे चित्राल, यसीन, तगीर, दरेल, चिलास, गोर, अस्तोर, हुनजा, नागर, हरमोज इत्यादि स्थान गिलगिट-राज्य के अन्तर्गत थे।

इस पार्वत्य प्रदेश मे असख्य उपत्यकाएँ और बहुत सी पर्वत चोटियाँ नजर आती हैं। ये चोटियाँ १८ हजार फुट से लेकर २६ हजार फुट तक की ऊँची है। इसके निम्न प्रदेश मे बहुत से जंगली भैंसे, कुत्ते, लाल रीछ और स्थान परिवर्तन करने वाले पक्षी पाये जाते हैं। गिलगिट नगर और सिन्धु नदी के मध्यवर्ती स्थान मे 'बागरोत' उपत्यका है। इस उपत्यका में बहुत से समृद्धशाली गाँव बसे हुए हैं। इस क्षेत्र मे विशेष कर शीन-वशी लोग रहते हैं। इनकी भाषा, शीनभाषा कहलाती है।

सन् १८६८ ई० मे यह जिला काश्मीर राज्य के अधिकार मे आया। गिलगिट वजारत मे कुल २६४ गाँव हैं।

गिलक्राइस्ट

सुप्रसिद्ध अग्रेज विद्वान् जिनको उर्दू-गद्य का पिता कहा जाता है। इनका जन्म सन् १७५९ ई० में 'एडिन्बरा' मे हुआ और मृत्यु सन् १८४१ ई० मे पेरिस के अन्दर हुई।

सन् १७९४ ई० मे 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के सर्जन होकर ये कलकता आये। भारतीय भाषाओ के अध्ययन मे इनको बडी दिलचस्पी थी। भारतीय भाषाओ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन्होने स्वय उत्तरी भारत का भ्रमण करके वहाँ की बोल चाल की भाषाओका अध्ययन किया और सस्कृत तथा फारसी भाषाओ का ज्ञान प्राप्त किया।

सन् १८०० ई० मे कलकत्ते मे 'फोर्ट विलियम कालेज' की स्थापना हुई और डा० गिलक्राइस्ट उसके पहले प्रिंसिपल बनाये गये। लार्ड 'वेलस्ली' ने हिन्दी और उर्दू की पाठ्य-पुस्तको की रचना का कुल भार इनको सौपा, जिसे इन्होने पूरी सफलता के साथ सम्पूर्ण किया। इसी समय मे इन्होने इंगलिश और हिन्दुस्तानी की 'डिक्शनरी' दो भागो मे और हिन्दुस्तानी व्याकरणकी रचनाकी। कप्तान 'अब्राहमक्लोकट' प्रोफेसर जे० डब्ल्यू टेलर और डा० 'हटर' के सहयोग से डा० गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू के गद्य को एक सुन्दर और सरल रूप देने का सफल प्रयत्न किया। इसी से इनको उर्दू गद्य का पिता भी कहा जाता है।

सन् १८०४ ई० मे स्वास्थ्य अच्छा न रहने के कारण डा० गिलक्राइस्ट वापस विलायत चले गये। वहाँ पर एडिनबरा विश्वविद्यालय ने इन्हे एल्०-एल० डी० की डिग्री प्रदान की। लन्दन मे ओरियण्टल इस्टिट्यूशन के खुलने पर सन् १८१८ से १८२६ ई० तक उसमे ये हिन्दुस्तानी के अध्यापक रहे। सन् १८४१ ई० मे पेरिस मे इनका देहान्त हुआ। इनकी स्मृति मे कलकत्ते मे गिलक्राइस्ट एजूकेशन ट्रस्ट की स्थापना हुई।

इनकी रचनाओ मे (१) इंगलिश-हिन्दी डिक्शनरी (२) ग्रामर ऑफ दी हिन्दुस्तानी लैंग्वेज (३) दी ऐंटी जारगोनिस्ट (४) दी स्ट्रेंजर्स ईस्ट इण्डियन गाइड टू दि हिन्दुस्तानी और (५) दी हिन्दी-स्टोरी टेलर नामक रचनाए विशेष उल्लेखनीय हैं।

सन् १८२५ ई० मे उन्होने अपनी सब रचनाओ का सग्रह 'दी ओरियण्टल आक्सीडेण्टल ट्यूश्नरी पायोनियर' के नाम से प्रकाशित किया।

गिलगमेष

सुमेरियन और बेबिलोनियन नामक अत्यत प्राचीन सभ्यताओ के अतर्गत ईसा से करीब बारह सौ वर्ष पहले लिखा हुआ एक महान् वीरकाव्य। जो क्यूनीफार्म या कीलाक्षरी लिपि मे बारह ईंटो पर खुदा हुआ है। और जिसमे उसी प्रकार जल-प्रलय की कहानी अङ्कित की गई है जैसी बाईबिल, प्राचीन भारतीय साहित्य और अन्य प्राचीन सभ्यताओ के साहित्य मे भी पाई जाती है।

अत्यन्त प्राचीनकाल मे ईसा से करोब पाँच हजार वर्ष पूर्व से लेकर कई हजार वर्षों तक मेसोपेटोनिया की दजला और फरात नदियो की घाटियो मे सुमेरियन, बेबिलोनियन और असीरियन इन तीन महान् सभ्यताओ का विकास हुआ। इन प्राचीन सस्कृतियो की छाया में मनुष्य ने जीवन के हरएक क्षेत्र मे साहित्य, काव्य, ज्योतिष, गणित, कानून, धर्म शास्त्र इत्यादि सभी क्षेत्रो मे काफी उन्नति करली थी।

गिलमेष पर मोहित हो जाती है। मगर गिल्गमेष उसकी प्रणय-याचना को ठुकरा देता है।

इससे क्रुद्ध होकर देवी "इनिन्ना" अपने पिता "अन्न-देवता" से एक दिव्य वृषभ का सृजन करने को कहती है। जो गिलगमेष का सहार कर दे। दिव्य वृषभ का सृजन होता है। वह वहुत से आदमियो को मार डालता है। मगर अन्त मे "एकिन्दू" उसके सीग पकड़ कर उसे पछाड देता है। देवी इनिन्ना बहुत अपमानित होती है मगर असहाय है। इस दिव्य वृषभ के सीगो से साठ मन तेल प्राप्त होता है। जिसे एक ज्ञान-दीप मे भर कर गिलगमेष लुगाल-बन्दा के मन्दिर मे जलाता है।

सातवी टूटी हुई ईट से पता चलता है कि दिव्य-वृषभ को मार डालने के अपराध मे देवता लोग "एकिन्दू" को मृत्युदण्ड देते हैं। और वह एक भयङ्कर स्वप्न मे यमलोक देखता है। इसके पश्चात् काव्य मे यमलोक का वर्णन उसी प्रकार किया गया है जैसा भारतीय साहित्य मे पाया जाता है।

आठवी ई ट मे गिलगमेष अपने मरणसन्न मित्र को धीरज बधाता है। मगर अन्त मे एकिन्दू की मृत्यु हो जाती हैं और अपने मित्र के वियोग मे मर्मस्पर्शी शब्दो में गिल्गमेष विलाप करता है।

इसके पश्चात् गिल्गमेप को भगवान् बुद्ध की तरह या कठ उपनिषद् के नचिकेता की तरह यह प्रश्न सताता है कि क्या अपने मित्रकी तरह एक दिन वह भी मर जावेगा। क्या दुनियां के हर एक व्यक्ति को इसी प्रकार मरना होता है? तब जिस प्रकार अमरता की खोज में नचिकेता यम-राज की शरण मे गया था उसी प्रकार वह भी उस समय अमरता का भेद जानने वाले "जिऊसद्दू" की तलाश मे जाता है। जल प्रलय के पश्चात् जिउसद्दू को देवताओ से अमरता का भेद मालूम हुआ था।

नवी ई ट मे गिलगमेष की उस भयङ्कर यात्रा का वर्णन है जो 'गिलगमेष' ने जिऊसद्दू की खोज मे की थी। बह बडे-बडे भयानक पर्वतो पर जाता है जहां की रक्षा दैव-वृषभ करते हैं।

दसवी ई ट मे वह 'मृत्यु के समुद्र' मे पहुचता है। इस मृत्यु समुद्र मे नाव चलाने वाला केवट उसकी भयङ्करता का वर्णन करके उसे वापस लौटने की सलाह देता है। मगर गिलगमेष वहाँ पहुँचने के लिए अपना दृढ निश्चय प्रकट करता है और अन्त मे वह जिऊसद्दू के पास पहुँच जाता है।

ग्यारहवी ई ट मे जिऊसद्दू उसे "जल-प्रलय" की भयङ्कर कहानी कहता है जो इस काव्य के अन्तर्गत दूसरा उपकाव्य है।

जिउसद्दू को अमरता कैसे प्राप्त हुई इसका भेद वतलाते हुए वह कहता है कि फरात नदी के किनारे वसे हुए प्राचीन नगर "शुरुप्पक" मे रहने वाले देवता एन्लिल ने वहाँ के निवासियो से क्रुद्ध होकर जन-प्रलय करने का निश्चय किया। मगर दूसरा देवता एकी जो वडा दयालु था इस जल-प्रलय के विरुद्ध था। इस देवता ने उस देवता के सकल्प को नरकट की एक झोपडी मे सोते हुए जिउसद्दू को सुनाते हुए कहा कि ऐ शुरुप्पक के इन्सान! अपने सब माल असवाव को यही छोड कर अपनी जान वचाने की फिक्र कर और एक नौका बना कर उस पर सब जीवो के बीजो को चुन कर रख ले। उसके कहने के अनुसार जिउसद्दू ने एक मजबूत नाव बनाई और उसे जीवो के बीजो से और भोजन से खूब भर लिया। और स्वय अपने को तथा अपने परिवार को उसमे चढ़ा कर उसे चारो ओर से बन्द कर लिया।

जल प्रलय का प्रारम्भ भयङ्कर तूफान के साथ हुआ। चारो तरफ घोर अन्धकार छा गया, और भयङ्कर तर्जन-गर्जन के साथ जल बढ़ने लगा। सारी सृष्टि मे चारो ओर जल ही जल हो गया। फिर छोटे-छोटे पर्वतो के शृङ्ग उसमे डूबने लगे, बडे-बडे पर्वत शृङ्ग भी उसमे विलीन होने लगे। पृथ्वी और आकाश मे कोई भेद नही रहा, देवता स्वर्ग मे एक दूसरे से चिपके हुए भय से पत्तो तरह थर-थर काप रहे थे। वहाँ की मातृदेवी इनन्ना प्रसव पीडित नारी की भांति चीख रही थी।

सात रात और छ दिनो तक लगातार वाढ का पानी उमडता रहा। दैत्याकार जल तरङ्गोंके बीच अपनी नौका में वैठा हुआ जिऊसद्दू भय से थर-थर कांप रहा था। अन्त मे उसकी नौका एक अत्यन्त ऊंचे पर्वत शिखर के साथ लग जाती है। उसी पर्वत शिखर पर से जिउसद्दू प्रलय के भयङ्कर दृश्य को देखता रहा।

सतवें दिन उसने एक कवूतर उड़ाया। कवूतर उडता-

उड़ता वापस वहीं आ गया उसे कहीं बैठने को जगह नहीं मिली। फिर उसने एक दूसरा और तीसरा पक्षी उड़ाया। तीसरे पक्षी कौए ने सूचना दी कि अब जल घट रहा है। इसके बाद जिउसुद्दु ने देवताओं को बलि चढ़ाई। वहां सब देवता इकट्ठा हुए। और उन्होंने प्रलय के कर्ता एन्लिल देवता को बहुत बुरा भला कहा। कहा कि—ऐ देवता! यदि किसी न पाप किया हो तो उसका दण्ड पापी को देना चाहिए। किसी ने मर्यादा भङ्ग की हो तो उसकी सजा उसी को मिलना चाहिए। सारी सृष्टि पर जल प्रलय लाना बहुत बुरा है। इससे तो अच्छा है कि सिंह और भेड़ियों को भेज कर प्रजा का नाश कर दे।

इस पर एन्लिल देवता बहुत लज्जित हुआ। उसने नाव में आकर जिउसुद्दु और उसकी पत्नी को निकाला और उन्हें देवता बनने का वरदान दिया और अमरता का रहस्य बतलाया।

इस प्रकार जल-प्रलय की कथा सुना कर जिउसुद्दु गिल्गामेश को अमरता का रहस्य बतलाते हुए कहता है कि अमरता समुद्र के तल में पैदा होने वाली एक औषधि से प्राप्त होती है। इस औषधि में कांटे होते हैं। तब गिल्गमेश पैरों में भारी पत्थर बांध कर समुद्र के तल में पहुंचता है और वहां से उस औषधिको प्राप्त कर वापस ऊपर आता है। उसके बाद मर्त्य जगत् में आकर वह उस औषधि को किनारे पर रख कर स्नान करने के लिए सरोवर में प्रवेश करता है। उसी समय कहीं से एक सांप वहां आता है और वह उस अमरता की औषधि को लेकर भाग जाता है। अपने परिश्रम की इस व्यर्थता से गिल्गमेश अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगता है। और एक दम बूढ़ा हो जाता है।

बारहवें सर्ग में बूढ़ा गिल्गमेश व्याकुल होकर परलोक की व्यवस्था जानने के लिए अपने मित्र एङ्किडू की प्रेतात्मा का आह्वान करता है और उससे परलोक के विधान को पूछता है। एङ्किडू का प्रेत कहता है कि परलोक में चारों ओर दुःख ही दुःख है। प्रेत लोग इधर उधर घूमते हुए मैला खाते और नालियों का जल पीते रहते हैं। केवल उन्हीं को परलोक में शान्ति मिलती है। जिनकी कब्र पर उनके वंशधर उत्तमोत्तम आहार और पेय चढ़ाते रहते हैं।

इस प्रकार अत्यन्त निराशाजनक स्थिति में गिल्गमेश की मृत्यु होती है।

इस काव्य की भाषा इतनी सुंदर और वर्णन करने का ढङ्ग इतना मनमोहक है कि संसार की अनेक भाषाओं में इस काव्य के अनुवाद हो चुके हैं।

जल प्रलय की कहानी गिल्गमेश द्वारा अमरता की खोज तथा और अनेक बातें इस साहित्य में ऐसी हैं जो भारतीय पुराणों में वर्णित कहानियों से बहुत मिलती जुलती हैं। इससे यह संदेह मिलता है कि बेबीलोनियन साहित्य किसी न किसी रूप में भारतीय साहित्य से प्रभावित था।

डॉ॰ भगवत्शरण—विश्वसाहित्य की रूपरेखा

नागरी प्रचारणी—विश्वकोष

विश्वम्भरनाथ पाराशर—विश्व सभ्यता का विकास।

गिल्बर्ट विलियम

इंग्लैंड में एलिजाबेथ-युग के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक, जिनका जन्म सन् १५४ ई॰ में और मृत्यु सन् ११ १ ई॰ में हुई।

गिल्बर्ट ने कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय से 'डॉक्टर ऑफ मेडी-सन की उपाधि प्राप्त की और महारानी एलीजाबेथ ने इनको अपना राजकीय डाक्टर नियुक्त कर दिया।

मगर विलियम गिल्बर्ट की औषधि-विज्ञानके क्षेत्रमें विशेष ख्याति नहीं हुई। उनकी विशेष ख्याति वैज्ञानिक क्षेत्र में चुम्बक-शक्ति के विशेषज्ञ के रूप में हुई। उनके जिस अन्वेषण ने वैज्ञानिक जगत में हलचल मचा दी वह यह था कि—'यह पृथ्वी स्वतः ही एक बहुत बड़ा चुम्बकीय तत्व है'।

गिल्बर्ट तथा उनके उत्तरवर्ती वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाले कि पृथ्वी की चुम्बक-शक्ति का यह फल है कि 'कुतुब नुमा' की सूई हमेशा उत्तर और दक्षिण में ही अपनी स्थिति रखती है। इसी का यह फल है कि सूई की नोक स्वतन्त्र होकर डुबकी लगाती है। यह सूई उत्तर-दक्षिण की स्थिति क्यों धारण करती है और क्यों यह डुबकी लगाती है? इस बारे में गिल्बर्ट के अनुसंधान के पूर्व बहुत से लोग भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुमान लगाते थे। कोलम्बस का अनुमान था कि आकाश के किसी नक्षत्र से यह सूई आकर्षित होती है।

गिल्बर्ट के अनुसन्धान ने चुम्बकीय विज्ञान को एक सुव्यवस्थित रूप दे दिया। आधुनिक वैज्ञानिकों की सम्मति में गिल्बर्ट की खोज अपने ढङ्ग की अपूर्व खोज थी। उनके

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "दी मैगनेट" में चुम्बक सम्बन्धी जितना साहित्य उपलब्ध हो सकता था, वह सब दे दिया है। गिल्बर्ट पहले व्यक्ति थे, जिन्होने यूनानी शब्द 'इलेक्ट्रान' के आधार पर 'इलेक्ट्रीसिटी' शब्द का प्रयोग किया। यूनानी शहर मैग्नेशिया के नाम पर ही, जहां से प्राचीनकाल मे लोहे की कच्ची धातु का निर्यात होना था—अंग्रेजी शब्द 'मैग्नेट' की उत्पत्ति हुई।

गिल्बर्ट-हम्फ्री

सुप्रसिद्ध ब्रिटिश नाविक, जिन्होने अमेरिका मे ब्रिटिश उपनिवेश की सबसे पहले स्थापना की।

सन् १५८३ मे 'गिल्बर्ट-हम्फ्री' ने महारानी एलिजाबेथ का आशीर्वाद लेकर ५ जहाजो के साथ 'प्लाई माउथ' बन्दरगाह से प्रस्थान किया। ३० जुलाई को ये न्युफाउड लैण्ड के पास तथा ३ अगस्त को सेंट-जॉन्स द्वीप पर पहुँचे। ५ अगस्त से अमेरिका मे इन्होने प्रथम अंग्रेज उपनिवेश की स्थापना प्रारम्भ की।

१५ सितम्बर सन् १५८३ ई० को जहाजी दुर्घटना मे इनकी मृत्यु हो गयी।

गिल्बर्ट-हेनरी

इग्लैड के एक कृषि-विद्या-विशारद और फसलो के लिए कृत्रिम ऊर्वरकोके आविष्कर्ता। जिनका जन्म सन् १८१८ ई० में और मृत्यु सन् १९०१ ई० मे हुई।

'गिल्बर्ट' ने 'लॉज' नामक कृषि-विशारद के साथ 'राथम स्टेड एक्सपेरिमेटल सेण्टर' की स्थापना की। इस प्रयोगशाला में मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए उर्वरको पर प्रयोग किये जाते थे। इनके समस्त प्रयोगो का विवरण 'राथेमस्टेड मेमोरीज' के नाम से १० भागो मे सकलित कर दिया गया है। इन निबन्धो के मतानुसार बिना दाल वाले अन्नो को नाइट्रोजन से युक्त यौगिको की आवश्यकता पडती है। बिना इन यौगिको के फसलो का समुचित विकास नही हो सकता। इन कृत्रिम यौगिको के द्वारा भूमि की उर्वराशक्ति को बढाया और स्थिर रखा जा सकता है। चाहे वह कुछ ही वर्षों के लिए क्यो न हो। भूमि को समय तक पडती रखने से उसकी उर्वराशक्ति बढ जाती हैं और उसमे नाइट्रोजन की मात्रा भी अधिक हो जाती है।

कृषि सम्बन्धी अन्वेषण और कृत्रिम खादो के क्षेत्र मे डा० गिल्बर्ट के अनुसन्धान बहुत महत्वपूर्ण समझे जाते हैं।

गिलोटीन (Guillotine)

फ्रास की सुप्रसिद्ध राज्य क्राति के समय मे अपराधी को मृत्यु दण्ड देने के लिए आविष्कृत किया गया एक यन्त्र। इसका आविष्कार सन् १७८९ ई० मे हुआ।

इस यन्त्र का आविष्कार तत्कालीन विधान सभा के अध्यक्ष डा० गिलाटीन ने किया था। इसका उद्देश्य अपराधी को मृत्यु दण्ड के समय कम से कम यन्त्रणा पहुँचाने का था।

पेरिस के क्रान्ति चौक (स्कायर ऑफ दि रिवोल्युशन) मे गिलोटिन की सैकडो 'टिक टियां' खडी रहती थी। क्रान्तिकारी न्यायालय जिन अपराधियो को मृत्युदण्ड देता था, वे सब यहां पर लाये जाते थे और इस गिलोटिन यन्त्र के द्वारा उनके सिर धड से अलग कर दिये जाते थे।

अनुमान किया जाता है कि अकेले पेरिस मे ही करीब ५ हजार व्यक्तियो के सिर इस गिलोटिन-यन्त्र के द्वारा काटे गये, जिनमे रानी 'मेरी आंतुवानेत' ओरल्याका ड्यूक, मैडम रोलां तथा जिरोदिस्त दल के कई प्रमुख सदस्य भी थे।

इस प्रकार गिलोटीन का एह यन्त्र फ्रास की राज्य क्राति के समय सारे यूरोप मे प्रसिद्ध हो गया था।

ग्लिका

रूस का एक प्रसिद्ध सगीतकार जिसका जन्म सन् १८०९ ई० मे और मृत्यु सन् १८५७ ई० मे हुई।

'ग्लिङ्का' ने शुरू मे पश्चिमी-सङ्गीत की कला मे प्रवीणता प्राप्तकरके उसके बाद रूसी-जन सङ्गीतको अपनाया और यह घोषणा की कि रूस की राष्ट्रीय सगीत कला अन्य किसी भी सङ्गीत-कला से पीछे नही है। पश्चिमी सङ्गीत के उपासक सम्भ्रान्त कुल के व्यक्तियो ने उसका मजाक उडाने मे कोई कमर नही रखी। ऐसे लोग उसे गाडीवानो के गीत रचने वाला कहते थे। लेकिन ग्लिङ्का ने इसकी परवाह नहीं

की। और इमाम के मुसाफिर जैसे एक सुप्रसिद्ध वेशभक्त को नायक बनाकर उसने अपने ओपेरा की रचना की। इससे लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ और वह शीघ्र ही सङ्गीत-कला का आचार्य माना जाने लगा।

काव्य और साहित्य के क्षेत्र में जो स्थान पुश्किन का माना जाता है वही स्थान संगीत और रंगमञ्च के क्षेत्र में ग्लिंका का है।

गिलोम-डी-लारीज
(Guillaume De-Larris)

फ्रान्स में मध्य कालीन साहित्य का एक साहित्यकार जिसका समय ई० सन् १२३० के आसपास था। फ्रान्स की प्रसिद्ध मध्य कालीन रचना 'गुलाब का रोमान्स' का पहला-खण्ड इसी के द्वारा लिखा गया था। इस काव्य ने पश्चात् की यूरोपियन साहित्य पर बड़ा प्रभाव डाला।

ग्रिमेल्स हाउसेन

जर्मन साहित्य का एक प्रसिद्ध साहित्यकार जिसका जन्म करीब सन् १६२४ में और मृत्यु सन् १६७२ के करीब हुई।

उस समय जर्मनी तीस वर्षीय युद्ध में फंसा हुआ था और सारे देश में एक अजीब वीरानी सी छा रही थी। साहित्य का क्षेत्र भी उसी प्रकार हीन था। ऐसे ही समय में ग्रिमेल्स हाउसेन का जन्म हुआ। केवल तेरह चौदह साल की उम्र में शत्रुओं ने उसका अपहरण कर लिया और उसके बाद वह स्थान स्थान की ठोकरें खाता हुआ जन जनता की दुर्दशा को अपनी आँखों से देखता रहा। युद्ध समाप्त होने पर वह एक छोटे कस्बे में जाकर रहने लगा। और जीवन भर में देखी हुई सब घटनाओं को एक उपन्यास के रूप में लिख डाला। इस उपन्यास का नाम 'सिम्पली सिसीमस' है तीस वर्षीय युद्ध में होने वाले भयङ्कर विनाश रक्तपात और मानव के द्वारा किये हुए अमानवीय कृत्यों का चित्र बड़ा ही मार्मिक वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है। वह अपूर्व ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में उसने समाज के उन स्वार्थ, मदान्ध, और पाशविक जीवन का चित्रण कर एक ऐसे समाज की स्थापना की कामना की है। जो इन बाधाओं से मुक्त हो।

ग्रिबोये दोव
Alcksander sorgeyeuyeh Griboyedov

रूसी साहित्य का प्रसिद्ध कवि और व्यङ्ग नाटककार जिसका जन्म सन् १७९५ में और मृत्यु सन् १८२९ में हुई।

रूसके अन्तर्गत सन् १८२५ के दिसम्बर में जार अलेक्जेण्डर प्रथम के मरने के बाद इतिहास प्रसिद्ध विद्रोह हुआ। जो दिसम्बर विद्रोह के नामसे प्रसिद्ध है। इस विद्रोह के परिणाम स्वरूप सम्राट् कान्स्टेन्टाइन को गद्दी छोड़नी पड़ी और निकोलस जारकी गद्दीपर बैठा।

इस दिसम्बर विद्रोह का रूसके साहित्य क्षेत्र पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। और वहाँ के साहित्यकारों की प्रवृति राजनीति से हटकर दर्शन और कविता की अनुगामिनी हुई।

ग्रिबोये दोव भी इसी युग का कवि था यह रूस के विदेश विभाग का एक अधिकारी था। और ईरान की राजधानी तेहरान में रूसी राजदूत के रूप में भी रहा था। इसकी प्रसिद्ध रचना। 'मोरे आत उमा' नामक कॉमिडी आज भी रूसी साहित्य की एक मूल्यवान् सम्पत्ति मानी जाती है। इसमें मास्को के तत्कालीन पश्चिम प्रभावित जीवन पर बहुत ही कठोर ताना कशी और व्यङ्ग किये गये हैं। इसके चरित्र चित्रण इसकी भाषा और इसकी वर्णन शैली अत्यन्त स्वाभाविक मर्म स्थान पर चोट पहुंचाने वाली और एक दम मौलिक है। इस कॉमिडीने उससमय के रूसी साहित्य क्षेत्र में बड़ी हल चल मचा दी थी।

ग्रिबोये दोवकी सन् १८२९ में तेहरान में ही जब वह वहां राजदूत था हत्या करदी गई।

ग्रामोफोन

ध्वनि को ग्रहण करके उसका विस्तार करने वाला एक यंत्र। जिसके आविष्कार का श्रेय अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन को सन् १८७७ ई० में प्राप्त हुआ।

मगर ध्वनि विषयक इन सिद्धान्तों का ज्ञान थोड़े रूप में प्राचीन युग के लोगों को भी था।

ऐसा कहा जाता है कि बहुत प्राचीन काल मे चीन के अन्तर्गत एक अधिकारी ने कोई गुप्त सन्देश २ हजार मील की दूरी से एक पेटी मे आवाज भर कर चीन के शाहशाह के पास भेजा था। जब शाहशाह ने उस पेटी को खोला तो पेटी के एक कोने मे से उस अधिकारी की आवाज सुनाई पड़ने लगी। और यह सारा गुप्त भेद शाहशाहको भलीभांति मालूम हो गया। मगर इस सम्बन्ध के नाम और काल सम्बन्धी कोई निश्चित प्रमाण नही है फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि चीन को इस कला का किसी रूप मे ज्ञान था। चीन के प्राचीन साहित्य मे इस प्रकार के बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं।

मिस्र मे भी इस प्रकार की कला का ज्ञान किसी रूप मे था।

योरोप के अन्दर मध्य युग मे 'रोजर-बेकन' नामक एक वैज्ञानिक ने सन् १२६४ ई० मे कई वर्षों के अनुसन्धान के पश्चात् एक ऐसी मूर्ति बनाई। जिसमे फिट की हुई भिन्न-भिन्न चाभियो को दबाने से भिन्न भिन्न प्रकार की आवाज सुनने को मिलती थीं।

सन् १५८० ई० मे 'पार्टा' नामक वैज्ञानिक ने एक ऐसी नली बनाई जिसमे बोले हुए सब्दो को सग्रह करने की शक्ति और उन शब्दों को वापस निकालने की शक्ति थी।

सन् १७६१ ई० मे 'लियोनार्ड-ह्वीलर' नामक एक गणित शास्त्री ने 'फोनोग्राफ' के सिद्धातो पर कई लेख लिखे। इन लेखो से फोनोग्राफ के सिद्धात पर वैज्ञानिको की रुचि जागृत हुई। जिसके परिणाम स्वरूप 'लीयन-स्कॉट' नामक वैज्ञानिक ने सन् १८५७ ई० मे इस विषय की जानकारी प्राप्त करके 'फोनटोग्राफ' नामक यत्र का आविष्कार किया, जिसके द्वारा ध्वनि का अभिलेखन किया जा सकता था।

पर ग्रामोफोन की शोध का सम्पूर्ण यश तो अमेरिकन वैज्ञानिक एडीसनको ही मिला। सबसे पहले 'साउण्डबाक्स' अनुसन्धान इन्होने ही किया।

एक बार 'टेलीफोन' के एक यन्त्र को सुई की सहायता से 'एडीसन' सुधार रहे थे। उस सूई की रगड से कुछ शब्द उत्पन्न हुआ। इससे एडीसन को यह ख्याल हुआ कि सुई के कम्पनो के द्वारा किसी पत्तर में कम्पन उत्पन्न करके शब्द उत्पन्न किया जा सकता हैं।

इस सिद्धान्त के ऊपर उन्होने साऊँण्डवक्स का निर्माण किया। एडीसन ने जो सबसे पहले फोनोग्राफ बनाया था, वह बहुत भारी और भद्दा था। उन्होने पहले पहल बहुत पतली पत्ती पर जो कि एक चूडीनुमा गिलास पर चिपकी रहती थी—शब्द को अंकित किया था। आवाज सुनने के लिए चूडी हाथ से घुमानी पडती थी। पीछे जाकर इस यन्त्र मे बडी उन्नति हुई। चूडियो के स्थान मे तवे और 'रेकार्ड' काम आने लगे। और यान्त्रिक बल से ग्रामोफोन चलाया जाने लगा।

एडीसन के पश्चात् सन् १८८७ ई० मे 'एमाइल-बर्लिनर नामक वैज्ञानिक ने और सन् १९२५ ई० मे 'हेरीसन' ने इस ग्रामोफोन मॅशीन के अन्दर और भी कई उपयोगी सुधार किये।

इस प्रकार क्रमागत विकास की कई मञ्जिलो को पार करते हुए 'ग्रामोफोन' आज की स्थिति मे पहुँचा है।

ग्रिग नार्डल

नार्वे के साहित्य का एक सुप्रसिद्ध कवि, उपन्यासकार और नाटककार जिनका जन्म सन् १९०२ ई० मे और मृत्यु सन् १९४३ ई० मे हुई।

ग्रिग नार्डल ने अपना जीवन और अपना साहित्य समाज के दलित वर्ग की सेवा मे लगाया। इनकी तमाम रचनाओ मे समाज मे होने वाले शोषण और अन्याय के प्रति गहरी अनुभूति प्रदर्शित होती है।

इनकी कविताओ का सग्रह 'नारवे इन आवर हार्ट्स' के नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमे विश्व-प्रेम की ओर प्रभाहित होने वाली राष्ट्रीय भावनाओ का सुन्दर विवेचन मिलता है।

जिस समय जर्मनी ने नार्वे पर आक्रमण किया, उस समय ग्रिगनार्डल ने साहित्यकार का रूप छोड कर सैनिक का रूप धारण कर लिया और नार्वे की रक्षा के लिए यह सेना मे सम्मिलित हो गये।

सन् १९४३ ई० मे जर्मनी पर हवाई हमले के समय इनकी मृत्यु हो गई।

ग्रिम जेकब

जर्मन भाषा के एक सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री और इतिहासकार जिनका जन्म सन् १७८५ में हुआ था।

'ग्रिम जेकब' और उनके भाई विलियम दोनों की भाषा-विज्ञान के सम्बन्ध में बड़ी अभिरुचि थी। जर्मनी के प्राचीन महाकाव्यों और लोक-गाथाओं का वैज्ञानिक अध्ययन कर सन् १८१५ ई॰ में इन्होंने जर्मन-लोकगाथाओं का एक विवेचनात्मक संग्रह प्रकाशित किया। इस प्रकाशन से जर्मनसाहित्य में इनकी अच्छी कीर्ति हो गयी।

इसके अतिरिक्त इन्होंने जर्मन भाषा के व्याकरण तथा भाषा-विज्ञान की दृष्टि से उसका तुलनात्मक अध्ययन कर एक विशाल रचना कई खण्डों में प्रकाशित की। जर्मन भाषा के शब्दकोष की भी इन्होंने रचना की। इन सब कार्यों से जर्मन भाषा विज्ञान के इतिहास में ग्रिम-जेकब ने अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया।

ग्रियर्सन जॉर्ज

भारतीय भाषा के एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान्। जिनका जन्म आयरलैंड के 'डब्लिन' नामक स्थान पर सन् १८५१ ई॰ में और मृत्यु सन् १९४१ ई॰ में हुई।

१७ वर्ष की उम्र से ही उन्होंने डब्लिन में संस्कृत और हिन्दुस्तानी भाषा का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। सन् १८७१ ई॰ में वे 'इण्डियन सिविल सर्विस' के कर्मचारी के रूप में कलकत्ता आये और यहाँ आने पर उन्होंने ने भारतीय भाषाओं का अध्ययन प्रारम्भ किया। संस्कृत प्राकृत हिन्दी बिहारी बंगला इत्यादि कई भाषाओं की विशेष योग्यता उन्होंने प्राप्त की।

सन् १८८६ ई॰ में प्राच्य विद्या-विशारदों की एक अन्तर्राष्ट्रीय कौंसिल 'वीएना' के अन्तर्गत हुई। इस कौंसिल ने भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण की आवश्यकता बतलाते हुए भारत की अंग्रेज सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। जिसके फलस्वरूप सन् १८८८ ई॰ में भारत सरकार ने डा॰ ग्रियर्सन की अध्यक्षता में एक भाषा 'सर्वेक्षण-कमेटी' की स्थापना की। ३५ वर्ष तक कठोर परिश्रम करके इस कमेटी ने भारतवर्ष की १७९ भाषाओं और ५४४ बोलियों का सविस्तर वर्णन इस रिपोर्ट में किया। यह रिपोर्ट कुल २१ जिल्दों में प्रकाशित हुई। ग्रियर्सन के इस महान् काम ने भारतीय साहित्य के इतिहास में उनको अमर कर दिया। इस रिपोर्ट का नाम 'लैंग्वेस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' है। रोजाना बोलचाल में काम आने वाली भाषाओं और बोलियों का इतना सूक्ष्म और परिमार्जित अध्ययन ग्रियर्सन के पहले और उनके बाद भी कभी नहीं हुआ।

इस महान् रचना के अतिरिक्त बंगाल के लोकगीतों, मैथिल भाषा के व्याकरण मैथिली भाषा के परिचय, काश्मीरी भाषा के व्याकरण और कोष बिहारी कृत सतसई और तुलसीदास पर विशेष अध्ययन और भारतवर्ष के आधुनिक साहित्य पर उन्होंने कई महत्वपूर्ण रचनाएँ विशेष कर अंग्रेजी भाषा में कीं।

ग्रियर्सन को भारतीय भाषाओं, भारतीय सभ्यता और यहाँ के निवासियों के प्रति अगाध प्रेम था। भारतीय भाषा-विज्ञान के वे महान् पण्डित थे। उनकी सेवाओं के पुरस्कार के रूप में भारत सरकार ने सन् १८९४ ई॰ में उनको सी॰ आई॰ ई॰ की और १९१२ ई॰ में सर की पदवी प्रदान की।

सन् १८९४ ई॰ में जर्मनी की हाले युनिवर्सिटी ने उन्हें पी॰ एच॰ डी॰ की और सन् १९०२ ई॰ में डब्लिन के 'ट्रीनिटी-कालेज' ने उनको डी॰ लिट की उपाधियाँ प्रदान कीं। (ना॰ प्र॰ विश्वकोष)

गीकी आर्कीबाल्ड

ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री जिनका जन्म सन् १८३५ ई॰ में और मृत्यु सन् १९२४ ई॰ में हुई।

एडिनबरा विश्वविद्यालय में अपनी शिक्षा समाप्त करके सन् १८५५ ई॰ में गीकी ने भूगर्भ सर्वेक्षण-विभाग में अपनी सेवाएँ प्रारम्भ कीं। सन् १८६७ ई॰ में इनको स्कॉटलैंड में भूगर्भ सर्वेक्षण-विभाग की शाखा का अध्यक्ष बनाया गया। साथ ही एडिनबरा विश्वविद्यालय में जियोलॉजी और मिनरालोजी के अध्यापन का कार्य भी वे करते रहे। सन् १८८१ ई॰ में ग्रेट ब्रिटेन के प्रधान भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग के 'डाइरेक्टर जनरल' के पद पर इनकी नियुक्ति हुई। सन् १८९२ ई॰ में वे ब्रिटिश एसोसियेशन के सभापति और सन् १९०८ ई॰ में रायल सोसाइटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

डा० गीकी ने भूगर्भ-विद्या पर कई पुस्तकों की रचना की। इनकी लिखी हुई 'टेक्सटबुक ऑफ जियालोजी' एक रिफरेंस बुक की तरह अभी भी प्रमाणभूत मानी जाती है।

गीजेर

स्वीडेन के एक प्रसिद्ध इतिहासकार और सगीत-शास्त्री, जिनका जन्म सन् १७८३ ई० मे और मृत्यु सन् १८४७ ई० मे हुई।

श्री 'गीजेर' का लिखा हुआ 'सवेस्का फोकेस्टस स्टोरिया' नामक विशाल ग्रथ तीन भागो मे प्रकाशित हुआ। इसके अन्दर स्वीडेन के इतिहास पर इन्होने व्यापक रूप से प्रकाश डाला। इस ग्रथ से इनकी काफी कीर्ति हुई।

स्वीडेन के कविता साहित्य मे इन्होने 'गाथिक कला' का विकास करके वहा की काव्यधारा को एक नवीन मोड दिया। सगीत के क्षेत्र मे भी इनका अच्छा नाम हुआ।

गीत-गोविन्द

महाकवि जयदेव द्वारा रचित सस्कृत का अत्यन्त प्रसिद्ध ललित और सुन्दर काव्य। जिसकी रचना १२ वी शताब्दी मे बगाल के अन्तिम पालनरेश 'लक्ष्मणसेन' के राजत्वकाल मे हुई।

सस्कृत-भाषा में कितना लालित्य, कितना माधुर्य और कितनी रस-व्यञ्जना उत्पन्न की जा सकती है--इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण 'गीतगोविन्द' मे देखने को मिलता है।

महाकवि 'जयदेव' ने अष्टपदी छन्दो के द्वारा रस और लालित्य की जो अविरल धारा गीतगोविन्द के गीतो मे बहा दी है, वह ससार के साहित्य में देखने की वस्तु है। इस काव्य की शैली सस्कृत परम्परा मे मिलने वाले काव्यो मे सबसे अधिक सगीतपूर्ण हैं। एक ओर वन्य-प्रदेश, सरितातट पर छाई हुई चादनी, वसन्त की सम्पूर्ण मोहकता के साथ अत्यन्त सुदर गीतो मे छान कर रख दी है तो दूसरी ओर राधा और कृष्ण के रूप मे नर-नारी के सौन्दर्य, लावण्य और प्रेम का चरम विकास, रसकल्लोलिनी की तरह इन गीतो मे बहता हुआ दिखलाई देता है। एक ओर पर्वतो की ढाल पर उगने वाली पुष्पलतिकाओ के मकरन्द की सुगन्ध से भरपूर पवन बह रहा है, दूसरी ओर चन्दन से सुवासित नीलवदन पीताम्बरधारी कृष्ण सुन्दर पुष्पो के हार से सुशोभित सामने उपस्थित हैं। ऐसी स्थिति मे मानिनी राधा का मान कैसे टिक सकता है। सखी उसे समझाती हैं--

हे प्रिये! माधव से मान मत करो! कोमल-कमल की पखुडियो से सुशोभित शीतल-शय्या पर हरि का अवलोकन करके अपने नेत्रो को कृतकृत्य करो।'

वसन्त ऋतु का वर्णन करते हुए गीतगोविंद मे महाकवि जयदेव लिखते हैं--

ललित लवग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करबित कोकिल, कूजित-कुञ्ज-कुटीरे।
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते!
नृत्यति युवति जनेन सम सखि, विरहि जनस्य दुरन्ते!

इत्यादि

कृष्ण के नखशिख का वर्णन करते हुए महाकवि लिखते है--

चन्दन चर्चित नील कलेवर, पीतवसन वनमाली।
केलिचलन्मणि कुण्डलमण्डित, गण्डयुगस्मित शाली॥

गोपिकाओ का प्रेम वर्णन करते हुए गीतगोविन्द मे कहा है--

पीन पयोधर-भार-भरेण, हरि परिरम्य सरागम्।
गोप-वधूरनुगायति काचिदुदञ्चित पञ्चम रागम्।
कापि विलास-विलोल विलोचन-खेलनजनितमनोजम।
ध्यायति मुग्धवधूरधिक मधुसूदन वदन-सरोजम्।
कापि कपोलतलेमिलिता लपितु किमपि श्रुतिमूले।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयित पुलकैरनुकूले॥

इत्यादि।

महाकवि जयदेव का गीत-गोविन्द अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। बाद के अनेक कवियो ने इसके अनुकरण पर कई रचनाएँ की। इन रचनाओमे--राजशेखर रचित 'गीतगङ्गाधर' भानुदत्त रचित 'गीत गौरीपति' गोविन्ददास-रचित 'सगीत-माधव' हरिशकर-रचित 'गीतमाधव' और मैसूर के राजा चिक्कदेव राय के द्वारा १७ वी सदी मे रचित 'गीतगोपाल' नामक काव्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

'गीतगोविन्द' पर व्याख्याएँ और टीकाएँ भी बहुत हुई हैं। इन व्याख्याओ मे मेवाड़ के सुप्रसिद्ध महाराणा कुभा के

द्वारा १६वीं शताब्दी में की हुई व्याख्या तथा १८वीं शताब्दी में शंकर मिश्र के द्वारा की हुई व्याख्याएं बहुत सुन्दर हैं।

जब उड़ीसा के प्रसिद्ध राजा राजेन्द्रचोड़ गंगदेव ने जगन्नाथपुरी के विशाल मन्दिर की स्थापना की तो इस मंदिर में संगीत और नृत्य का भी एक विभाग खोला गया। इस नाट्य-मन्दिर में गीत-गोविंद का ही संगीत माना जाता था। दूसरे गाये जाने वाले गीत गीतगोविंद के मुकाबले में धीरे-धीरे अप्रिय होते गये। जिसके परिणामस्वरूप ईस्वी सन् १४१७ में राजा प्रतापरुद्रदेव ने तो यह आदेश दे दिया कि मन्दिर में होने वाले नृत्य और संगीत का कुल आधार जयदेव कवि के गीतगोविंद से ही लिया जाय।

संसार की दूसरी भाषाओं में भी गीतगोविंद के बहुत से अनुवाद हुए हैं। सबसे पहले 'सर विलियम जोन्स' ने अंग्रेजी में इसका अनुवाद किया। उसके बाद लासन ने लैटिन-भाषा में 'रूकर्ट' ने जर्मन भाषा में और 'एडविन आरनल्ड' ने अपनी कविता में इसका अनुवाद किया और इस ग्रंथ पर अपने विचार प्रदर्शित किए।

सर विलियम जोन्स ने जयदेव के गीतों पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा कि— 'यह काव्य मानव-आत्मा के पार्थिव और दिव्य प्रेम के प्रति एकान्तरत आकर्षण का रूपक है, किन्तु अन्त में सम्पूर्ण ऐन्द्रिक संवेदन-शीलताओं से मुक्त हो गया है।

'लासन ने जयदेव के नायक कृष्ण को मनुष्यरूप में अवतरित दिव्यात्मा माना है जो संसार की माया की ओर आकर्षित होते हुए भी अन्त में निरन्तर आनन्द और सत्य के क्षेत्र को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

चैतन्य महाप्रभु भी जयदेव कवि की रचनाओं का गान करते-करते आनन्द में विभोर हो जाते थे और वे जयदेव को अपनी परम्परा का ही एक व्यक्ति मानते थे।

इस प्रकार जयदेव का गीतगोविंद भारतीय साहित्य में शृङ्गार मूलक भक्ति-परम्परा का धार्मिकता की प्रतिध्वनि से युक्त एक अत्यन्त सुन्दर काव्य माना जाता है।

मगर कुछ विद्वान् ऐसे भी हैं जो गीतगोविन्द को विशुद्ध शृङ्गार रस से ओतप्रोत एक काव्य मानते हैं। भक्ति और धार्मिकता के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं समझते।

अंग्रेज विद्वान् और इतिहासकार कीथ ने लिखा है कि— 'यह काव्य भारतीय परम्परा के उस मिथ्या ग्रहण से उत्पन्न है, जो धार्मिक भावनाओं के लिए कामप्रतीकों के प्रयोग से पूर्णतया अभ्यस्त थी। ईसाई-परम्परा के 'सांग ऑफ सांग्स' में इसकी समानता मिलती है।

संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् कृष्ण चैतन्य' का कथन है कि—' नायक नायिका के रूप में राधा और कृष्ण के चुनाव के अतिरिक्त इस काव्य के उद्देश्य में ऐसा कुछ नहीं जिसमें धार्मिकता की प्रतिध्वनि हो। जब कि भागवत के अन्तर्गत इसी प्रकार के शृङ्गारमूलक स्थलों में धार्मिक भावना का निश्चित रूप से समावेश पाया जाता है।

गीताञ्जलि

विश्व के महान् कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की सुप्रसिद्ध काव्यकृति। जिस पर उनको सन् [illegible] में अन्तर्राष्ट्रीय नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

'रवीन्द्रनाथ टैगोर' ने समय-समय पर बंगला-भाषा में जो बहुत से गीत लिखे थे उनमें से १ [illegible] उत्कृष्ट गीतों का स्वयं संकलन करके उन्होंने स्वयं उनका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया और उन अनुवादों को भी ऐ [illegible] की प्रेरणा से उन्होंने 'नोबुल प्राइज कमेटी को [illegible] दिया। इस संग्रह पर उन्हें [illegible] हजार पौण्ड का पुरस्कार प्राप्त हुआ और इसी काव्य ने उनको विश्व के महान् कवियों में स्थान दे दिया।

जिस युग में इन गीतों की रचना हुई, बंगाल में वह सामाजिक क्रांति का युग था। इस युग में पूर्व और पश्चिम को सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र में मिलाने का काफी प्रयत्न हुआ। रवि ठाकुर ने अपने गीतों में पूर्व और पश्चिम को मिलाने की चेष्टा नहीं की बल्कि आध्यात्मिक धरातल पर पश्चिम को ऊपर उठा कर पूर्व की गरिमा का सन्देश दिया। यह विश्व-साहित्य के लिए उनकी अनुपम देन थी। 'नोबुल पुरस्कार' के रूप में विश्व ने इसको स्वीकार भी किया।

संसार की अणु अणु में अनन्त की छवि के दर्शन से कवि का सारा काव्य ओतप्रोत है। इसी भावना के विविध स्तरों और विविध व्याख्याएं कवि की वाणी से काव्य की धारा के रूप में बहती हुई दृष्टिगोचर

होती है। मनुष्य के अहङ्कार की तुच्छता प्रदर्शित करते हुए महाकवि प्रभु से प्रार्थना करते हैं—

मेरा मस्तक अपनी चरण धूलि तक झुका दे।

प्रभु! मेरे समस्त अहङ्कार को आँखों के पानी मे डुबो दे।

अपने झूठे महत्व की रक्षा करते हुए मै केवल अपनी लघुता दिखाता हूँ।

अपनी ही परिक्रमा करते-करते मैं प्रतिक्षण जर्जर होता जा रहा हूँ।

मेरे समस्त अहकार को आँखो के पानी मे डुबा दे।

मैं अपने सासारिक कार्यो मे अपने को व्यक्त नही कर पाता।

प्रभु! मेरे जीवन-कार्यो मे तू अपनी ही इच्छा पूरी कर

मैं तुझसे चरम शाति की भीख माँगने आया हू!

मेरे जीवन मे अपनी उज्ज्वल काति भर दे।

मेरे हृदय-कमल की ओट मे तू खडा रह।

प्रभु! मेरा समस्त अहङ्कार आँखो के पानी मे डुबा दे!

महाकवि ससार की विपत्तियो मे डर कर उन विपत्तियो से त्राण पाने की हीन भावना को लेकर अपने प्रभु के पास नही जाता। वह कहता है—

प्रभो! विपत्तियो से रक्षा करो! यह प्रार्थना लेकर मैं तेरे द्वार पर नही आया।

विपत्तियो से भयभीत न होऊँ, यही वरदान दे!

अपने दुख से व्यथित चित्त को सान्त्वना देने की भिक्षा नही मांगता।

दुखो पर विजय पाऊँ, यही आशीर्वाद दे—यही प्रार्थना है।

तेरी सहायता मुझे न मिल सके तो भी यह वर दे कि दीनता स्वीकार करके अवश न बनूँ।

मुझे बचाले, यह प्रार्थना ले कर मैं तेरे दर पर नही आया।

केवल ससार-सागर मे तैरते रहने की शक्ति माँगता हूँ।

मेरा भार हल्का कर दे—

यह याचना पूर्ण होने की सात्वना नही चाहता।

यह भार वहन करके चलता रहूँ, यही प्रार्थना है।

सुख भरे क्षणो मे नतमस्तक हो, तेरे दर्शन कर सकूँ।

किंतु दुःख भरी रातो मे जब सारी दुनियाँ मेरा उपहास करेगी—

तब मैं शकित न होऊँ। यही वरदान चाहता हूँ।

गीताञ्जलि के अनुवाद

विश्वकवि की गीताञ्जलि के अनुवाद ससार की प्रायः सभी भाषाओं मे हो चुके हैं। इसके जर्मन-अनुवाद की ५० लाख से अधिक कापियाँ बिक चुकी हैं।

अग्रेजी मे इसका पहला अनुवाद सन् १९१२ ई० मे प्रकाशित हुआ था। तब से अब तक उसके पचीसो सस्करण हो चुके हैं।

हिन्दी-भाषा मे इसका पद्यबद्ध अनुवाद सबसे पहले सम्भवत प० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' का लिखा हुआ प्रकाशित हुआ था। इस अनुवाद मे हर एक पद्य का एक पद्य मे अनुवाद किया गया था। इसके बाद इसके और भी कई गद्य-पद्य अनुवाद हुए।

सब से ताजा अनुवाद प० सत्यकाम विद्यालङ्कार के द्वारा किया गया। जो शहादरा के 'पाकेट-बुक सीरीज' ने प्रकाशित किया। इस अनुवाद मे 'गीताञ्जलि' का बडे सुदर और भावपूर्ण गद्य मे अनुवाद किया गया है। इसी अनुवाद से हम दो गीतो का अनुवाद ऊपर उद्धृत कर चुके हैं।

सन्दर्भ डा० सत्येन्द्र—बंगला साहित्य का इतिहास।
सत्यकाम विद्यालङ्कार—गीताञ्जलि हिन्दी अनुवाद।

गीता (श्रीमद्भगवद्गीता)

आर्य्य सभ्यताका, मनुष्य के समस्त जीवन-दर्शन की सूक्ष्म रूप से व्याख्या करने वाला एक महान् ग्रन्थ। जिसको महाभारत के समय अर्जुन को निर्देश करके भगवान् कृष्ण ने कहा था। महाभारत का समय ईसा से करीब सोलह सदी पूर्व माना जाता है।

जिन विलक्षण सयोगो के बीच गीता का निर्माण हुआ, ऐसे विलक्षण सयोग समग्र ससारमे आज तक किसी भी काव्य-रचना को प्राप्त नही हुए। और उन विलक्षण सयोगो के बीच मे भी जीवन के महान् दर्शन की जैसी व्याख्या इस छोटे से ग्रन्थ मे हुई—ऐसी ससार के किसी भी दूसरे ग्रन्थ मे नही हुई।

वे विलक्षण संयोग क्या थे ? कुरुक्षेत्र के विशाल मैदान में महाभारत के विशालयुद्ध की मोर्चेबन्दी होरही है। समस्त भारतवर्ष के चुने हुए धनुधर महारथी अपनी अपनी सेनाओं के साथ रणक्षेत्र में डटे हुए हैं। एक ओर कौरवों का विशाल सैन्य समाज है जिसका नेतृत्व पितामह भीष्म कर रहे हैं, दूसरी ओर पाण्डवों के सैन्य समाज का नेतृत्व धृष्टद्युम्न के हाथ में है।

प्रथम अध्याय—इस महायुद्ध के आंगन में पाण्डव पक्ष के महारथी अर्जुन का रथ प्रवेश करता है जिसका सञ्चालन श्रीकृष्ण कर रहे हैं। रथ युद्धक्षेत्र में पहुंचता है। अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि हे अच्युत ! मेरा रथ दोनों सेनाओंके बीच में ले जाकर खड़ा करो। जिससे मैं देख सकूं कि मुझे इस युद्ध में किनके साथ लड़ना है। तब श्रीकृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। यहां अर्जुन देखते हैं कि सेना के कर्णधार के स्थान पर भीष्मपितामह खड़े हैं जिन्होंने उनको गोद मे लेकर खिलाया था। एक ओर द्रोणाचार्य खड़े हैं जो उनके गुरु हैं और जिन्होंने अस्त्र-शस्त्र विद्या की सम्पूर्ण शिक्षा देकर उनके जीवन का निर्माण किया है। एक ओर शल्य खड़े हैं जो उनके मामा हैं, एक ओर महारथी कर्ण हैं जो उनके माँ जाये भाई हैं।

अर्जुन सोचते हैं इन्हीं सब स्वजनों के साथ मुझे युद्ध करना है, किस लिए, एक भूमिखण्ड के लिए, इस छोटे से जीवन मे एक छोटा सा राज्य प्राप्त करने के लिये ? नहीं मुझे ऐसे राज्य की आवश्यकता नहीं। अर्जुन की आत्मा विल मिला उठती है। उनका हृदय अपने स्वजनों के लिए हाहाकार कर उठता है। अत्यन्त दीन वाणी से वे कह उठते हैं।

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा

हे कृष्ण ! मुझे विजय की इच्छा नहीं न राज्य चाहिए और न सुख ही। हे गोविन्द ! हमें राज्य भोग और जीवन से क्या प्रयोजन है।

वे कहते हैं "लोभ से जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है उन्हें कुलक्षय के भय से होने वाला दोष और मित्रद्रोह का पातक दिखाई नहीं पड़ता। किन्तु हे जनार्दन ! कुलक्षय का दोष मुझे तो साफ दिखाई पड़ रहा है। इसलिए मैं तो यह युद्ध नहीं करूँगा। इस प्रकार कह कर अर्जुन धनुष-बाण को रथ में डालकर अत्यन्त कातर हृदय से निश्चेष्ट होकर बैठ जाता है।

कैसी विचित्र स्थिति है एक ओर महाभारत के सारे धनुर्धारी हथियार कर रहे हैं कि अर्जुन गाण्डीव पर प्रत्यञ्चा चढ़ावे इधर वह निश्चेष्ट हो रहा है। क्या ऐसी विलक्षण परिस्थिति संसार के और भी किसी काव्य की रचना का मूलस्रोत बनी है।

ऐसी ही विलक्षण परिस्थिति में इस ग्रन्थ का निर्माण होता है। भगवान कृष्ण के समान जीवन का महान् सारथी ऐसे विलक्षण समय में जीवन-दर्शन के सारे ताने-बाने खोल कर जीवन का वास्तविक स्वरूप कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान अनासक्ति और निष्काम कर्म तथा अक्रम ज्ञान और भक्ति के सारे ताने बाने खोल कर अर्जुन को वास्तविक ज्ञान के दर्शन करवाता है वही ज्ञान गीता है।

दूसरा अध्याय—अर्जुन को इस प्रकार मोहग्रस्त देख कर भगवान् कृष्ण गीता के दूसरे अध्याय में कहते हैं—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे
गतासूनगतासूंश्च, नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

हे अर्जुन ! जिनका शोक न करना चाहिए तू उन्हीं का शोक कर रहा है और ज्ञान की बात कर रहा है। किसी के प्राण चाहे जाय चाहे रहें ज्ञानी पुरुष उनका शोक नहीं करते।

कृष्ण कहते हैं हे अर्जुन ! तू क्यों मोह में पड़ा हुआ है। इस शरीर में चैतन्य रूप जो आत्मा है उसे न कोई मार सकता न वह मर सकता है।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥
वासांसि जीर्णानि यथाविहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रोंको छोड़कर नवीन वस्त्रोंको धारण करता है उसी प्रकार शरीर का स्वामी यह आत्मा भी पुराने शरीर को त्याग कर नये शरीर को धारण करता है। इसलिये जो मारने वाला व्यक्ति समझता है कि मैं मारने वाला हूं और मरने वाला समझता है कि मैं मारा जा रहा हूँ— इन दोनों को ही सच्चा ज्ञान नहीं है। क्यों कि यह आत्मा न तो मारता है और न मरता है।

इसके पश्चात् अर्जुन को उसकी कर्त्तव्य बुद्धि का भान दिलाते हुए कृष्ण कहते हैं—

स्वधर्म मपि चावेक्ष्य, न विकम्पितु मर्हसि
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते
यदृच्छया चोपपन्न स्वर्गद्वार मपावृतम्
सुखिन क्षत्रिया. पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्
अथ चेत्त्वमिम धर्म्यं सग्राम न करिष्यसि
तत स्वधर्म कीर्ति च हित्वा पापमवाप्स्यसि

यदि स्वधर्म की ओर देखें तो भी इस समय हिम्मत हारना तुझे उचित नही है। क्यों कि धर्मोचित युद्ध की अपेक्षा क्षत्रिय को और कुछ श्रेयस्कर नही है। और हे पार्थ! यह युद्ध आप ही आप खुला हुआ स्वर्ग का द्वार ही है। अतएव यदि तू धर्मानुमोदित यह युद्ध नही करेगा तो स्वधर्म की कीर्ति खोकर पाप ही का सचय करेगा।

हतोवा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वाव भोक्ष्यसेमहीम्
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय, युद्धाय कृत निश्चयः
सुख दु खे समेकृत्वा, लाभालाभौ जयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैव पापमवाप्स्यसि

अगर इस युद्ध मे तेरी मृत्यु हो गयी तो स्वर्ग मे जायगा और अगर जीत गया तो पृथ्वी भोगेगा। इस लिए हे अर्जुन! तू युद्ध का निश्चय करके उठ। सुख, दु ख, हानि, लाभ और जीत हार को एक समान मानकर हे अर्जुन! तू युद्ध मे लग जा। ऐसा करने से तुझे कोई पाप लगने का नहो।

इस प्रकार युद्ध के लिए प्रेरित करके भगवान् कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग की महत्ता समझाते है।

भगवान् कहते हैं कि सृष्टि के रहस्य को देखने से पता चलता है कि आत्मज्ञानी पुरुषो के लिए जीवन बिताने के दो मार्ग चले आ रहे हैं (गीता ३–३) आत्मज्ञान सम्पादन करने पर शुक के समान महापुरुष ससार छोड कर आनन्द के साथ भिक्षा मागते फिरते हैं तो जनक सरीखे दूसरे आत्मज्ञानी ज्ञान के पश्चात् भी स्वधर्मानुसार लोगो के कल्याण के लिए अपना कर्म करते रहते हैं। पहले मार्ग को साख्य या साख्य-निष्ठा कहते हैं और दूसरे मार्ग को कर्मयोग कहते हैं।

कर्मयोग की व्याख्या करते हुए भगवान् कहते हैं—

कर्मण्येवाधिकारस्ते, माफलेषु कदाचन
मा कर्मफल हेतुर्भूर्माते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि
योगस्थ कुरु कर्माणि सग त्यक्त्वा धनञ्जय
सिद्ध्यसिद्ध्यो. समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते

हे धनञ्जय! मनुष्य का अधिकार केवल कर्म करने का है। कर्म के फल का अधिकार मनुष्य को नही है। इसलिए फल की आसक्ति को छोड कर, तथा उसकी सिद्धि या असिद्धि मे समान भाव रख कर योगस्थ होकर जो कर्म करता है वही सच्चा कर्मयोगी है। कर्मयोग का यही महान् सिद्धान्त अनासक्ति योग सम्पुष्ट होकर ससार को गीता का सन्देश दे रहा है।

कर्मजं बुद्धियुक्ताहि फलत्यक्त्वा मनीषिण·
जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्
यदाते मोह कलिल बुद्धिर्व्यतितरिष्यति
तदा गन्तासि निर्वेद श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च

बुद्धि से युक्त जो ज्ञानी पुरुष कर्मफल का त्याग करते हैं वे जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होकर परमपद को प्राप्त करते हैं। जब तेरी बुद्धि मोह के गन्दे आवरण से पार हो जावेगी तब उन बातो से तू विरक्त हो जावेगा जो सुनी हैं और सुनने की है।

इसके पश्चात् अर्जुन के प्रश्न करने पर भगवान् स्थिति प्रज्ञ का लक्षण बताते हुए कहते हैं—

हे पार्थ! जब मनुष्य मन की समस्त कामनाओ और वासनाओ को छोड कर, सुख, दु ख मे समभावी होकर भय एव क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेता है वही स्थितिप्रज्ञ मुनि कहलाता है।

तीसरा-अध्याय—तीसरे अध्याय के प्रारम्भ मे अर्जुन फिर प्रश्न करता है। हे जनार्दन! यदि तुम्हारा यही मत है कि कर्म की अपेक्षा साम्यबुद्धि ही श्रेष्ठ है (२–४९) तो हे केशव! मुझे युद्ध के घोर कर्म मे क्यो लगाते हो और ऐसे सन्दिग्ध भाषण करके मेरी बुद्धि को क्यो भ्रम मे डाल रहे हो। तुम मुझे एक ही असन्दिग्ध और निश्चय बात बतलाओ।

कृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन! कर्मो का प्रारम्भ न करने से ही मनुष्य को नैष्कर्म्य की प्राप्ति नही हो जाती, और कर्मों का प्रारम्भ न करने से ही सिद्धि नही मिल जाती, क्यो कि कोई मनुष्य कर्म किये बिना क्षण भर भी नही रह सकता। प्रकृति के गुण प्रत्येक मनुष्य को कर्म करने मे लगाये ही रहते हैं। जो मूढ़ हाथ-पैर इत्यादि कर्मेन्द्रियो को रोक कर मनसे

का प्रतिबोध देते हुए भगवान् कृष्ण ने जीवन और सृष्टि के सारे रहस्यों को ज्ञान कर्म भक्ति वैराग्य सन्यास योग आदि सभी विषयों के ताने-बाने बुन कर इस अपूर्व ग्रंथ को इतना विशिष्ट बना दिया कि ज्ञान के उपासक ज्ञानयोग की कर्म के उपासक कर्मयोग को भक्ति के उपासक भक्तियोग की और सांख्य (सन्यास) के उपासक सांख्ययोग को पूर्ण झलक इस ग्रंथ के अंदर देखते हैं।

लोक० तिलक लिखते हैं कि— 'श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्मग्रंथों में एक अत्यंत तेजस्वी और निर्मल हीरा है। पिंड ब्रह्माण्ड-ज्ञान सहित आत्मविद्या के गूढ़ और पवित्र तत्त्व को थोड़े में स्पष्ट रीति से समझा देने वाला उन्हीं तत्त्वों के आधार पर मनुष्य मात्र को पुरुषार्थ की और आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देने वाला भक्ति और ज्ञान का मेल करा के इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला और निष्काम कर्म के आचरण की व्याख्या करने वाला—गीता के समान बाल-बोध ग्रंथ संस्कृत की कौन कहे—सारे संसार के साहित्य में कहीं नहीं मिल सकता।

गीता प्रमुखरूप से कर्मयोग को प्रतिपादित करता है या ज्ञानयोग को या भक्तियोग को ?—इसके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं।

गीता के भाष्य

जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपने शांकर भाष्य में गीता के प्रवृत्ति-विषयक स्वरूप को निकाल कर उसे विशुद्ध निवृत्ति मार्ग के सांचे में ढाल दिया है।

विशिष्टाद्वैत के संस्थापक रामानुजाचार्य ने अपने भाष्य में कहा है कि गीता में यद्यपि ज्ञान कर्म और भक्ति का वर्णन है तथापि तत्त्वज्ञान की दृष्टि से विशिष्टाद्वैत और आचार दृष्टि से वासुदेव की भक्ति ही गीता का सारांश है। कर्मनिष्ठा कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं वह केवल ज्ञाननिष्ठा की उत्पादक है। इस प्रकार रामानुजाचार्य ने शांकर-सम्प्रदाय के अद्वैत ज्ञान के बदले विशिष्टाद्वैत और सन्यास के बदले भक्ति की गीता में स्थापना की।

द्वैत-सम्प्रदाय के संस्थापक श्रीमध्वाचार्य ने गीता का भाष्य करते हुए कहा कि— 'यद्यपि गीता में निष्काम कर्म के महत्त्व का वर्णन है तथापि वह केवल साधन है और भक्ति ही अन्तिम निष्ठा है। भक्ति की सिद्धि हो जाने पर कर्म करना और न करना बराबर है। परमेश्वर के ध्यान अथवा भक्ति की अपेक्षा निष्काम कर्म करना श्रेष्ठ है इत्यादि गीता के कुछ वचन इस सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ते हैं। इसके सम्बन्ध में माध्वभाष्य का कहना है कि इन वचनों को अक्षरशः सत्य न समझ कर अर्थवादात्मक ही समझना चाहिए।'

इसके बाद वल्लभाचार्य का नम्बर आता है जो पुष्टि मार्ग के संस्थापक हैं। इस सम्प्रदाय के 'तत्त्वदीपिका' आदि गीता सम्बन्धी ग्रन्थों में निर्णय किया गया है कि भगवान ने अर्जुन को पहले सांख्य ज्ञान और कर्मयोग बतलाया है, पर अन्त में उसे भक्ति का अमृत पिला कर कृतकृत्य किया है। इसलिए ईश्वर की भक्ति ही गीता का प्रधान तात्पर्य है। और इसी लिए भगवान ने गीता के अन्त में यह उपदेश किया है कि—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

हे अर्जुन सब धर्मों को छोड़ कर केवल मेरी शरण ले।

इसी प्रकार निम्बार्काचार्य काश्मीरी वसुगुप्त आदि आचार्यों ने भी गीता पर अपने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए।

महाराष्ट्र के अन्दर गीता की सर्वोत्तम विवेचना महात्मा ज्ञानेश्वर ने अपनी 'ज्ञानेश्वरी टीका' में की है। इसमें कहा गया है कि गीता के प्रथम ६ अध्यायों में कर्म बीच के ६ अध्यायों में भक्ति और अन्त के ६ अध्यायों में ज्ञान का प्रतिपादन किया है। इस ग्रंथ में गीता का मूल अर्थ लोक एवं दृष्टान्तों के साथ समझाया गया है।

आधुनिक युग में गीता के ऊपर सबसे विशुद्ध टीका 'गीता रहस्य' के नाम से लोकमान्य प० बालगंगाधर तिलक ने की है। यह टीका पूर्ववर्ती सभी टीकाओं से भिन्न एक स्वतन्त्र विचार पद्धति का समर्थन करती है और निष्काम कर्म योग की दृष्टि से गीता का अर्थ करती है। और गीता में वर्णित किये गये ज्ञान भक्ति और सन्यास योग को कर्मयोग की पुष्टि में बतलाये गये योगों की तरह मानती है।

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि भारत में जितने भी वैदिक सम्प्रदाय में जितने अवतारी विभूति वाले महापुरुष हुए, और जिन्होंने अपनी महान प्रतिभा से धर्म क्षेत्र में स्वतन्त्र विचारधाराओं की स्थापना की उन्होंने गीता पर अपने अपने विचारानुसार भाष्य लिखे। टीका स्वरूप गीता पर आज तक जितने भाष्य और टीकाएँ हैं किसी दूसरे ग्रन्थ पर नहीं हुई। इसका कारण यह है

जीवन में जिस सत्य का उन्होने दर्शन किया, उस सत्यकी रूप रेखा उन्हें गीता के अन्तर्गत दिखलाई पडी ।

इस प्रकार गीता एक ऐसे ज्ञान-सरोवर की तरह सिद्ध हुई कि इसमे जिसने ज्ञान की खोज मे डुबकी लगाई उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई, जिसने उसमे भक्ति को ढूँढना चाहा उसे भक्ति प्राप्त हुई, जिसने उसमे कर्म की खोज की उसे अनासक्ति के जल से धोये हुए शुद्ध कर्म की प्राप्ति हुई । जिसमे उसने प्रवृति को ढूँढा उसे विशुद्ध प्रवृत्ति की ओर निवृत्ति को ढूँढने वाले को निवृत्ति की प्राप्ति हुई ।

फिर भी यह तो माननाही पडेगा जिन विलक्षण सयोगो मे गीता की सृष्टि हुई । वे सयोग कर्मयोग के उपदेश की ही अपेक्षा कर रहे थे । निश्चेष्ट और निराश वने हुए अर्जुन के हाथो मे शस्त्र ग्रहण करवा कर, उसे युद्ध के लिए प्रवृत्त करना ही इसका मूल उद्देश्य था और इस उद्देश्य की सिद्धि अनासक्त कर्मयोग से ही प्राप्त हो सकती थी और वही उपदेश भगवान् ने अर्जुन को स्थान स्थान पर दिया और साथ ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्य भी उसी कर्मयोग के समर्थक है—यह बताने के लिए उन्होने इन तत्वो की भी गम्भीर व्याख्या कर के इस उपदेश को एक पूर्णशास्त्र का रूप दे दिया ।

अन्य गीताएँ

भारतीय धर्मशास्त्र में "गीता" का नाम इतना अधिक प्रचलित हुआ कि और भी कई विद्वानो ने और पुराण-कारो ने इस नाम से और-और रचनाएँ कीं । ऐसी अन्य गीताओ में महाभारत के शान्ति पर्व मे मोक्षपर्व के फुटकर प्रकरणो मे एक 'हसगीता' कही गई है । इसी ग्रथ के अश्व-मेघ प्रकरण में एक "ब्राह्मणगीता" कही गई है । इसी प्रकार अवधूत गीता, अष्टावक्र गीता, ईश्वर गीता, उत्तरगीता, कपिल गीता, गणेश गीता, देवगीता, पाण्डव गीता, ब्रह्मगीता, यमगीता, व्यास गीता, सूर्य गीता इत्यादि अनेक गीताएँ प्रसिद्ध हैं ।

इनमें से कई गीताएँ तो स्वतन्त्र रूप से रची गई और कई भिन्न-भिन्न पुराणो से ली गई हैं । जैसे गणेश पुराण के अन्तिम क्रीडा खण्ड में गणेश गीता कही गयी है । कूर्म पुराण के उत्तर भाग के पहले ग्यारह अध्यायो मे ईश्वर गीता हैं । और उसके वाद व्यास गीताका उदय हुआ है । स्कन्द पुराण में ब्रह्म गीता और सूत गीता कही गई है । यम गीता के तीन रूप हैं एक विष्णु पुराण मे, दूसरा अग्नि पुराण मे और तीसरा नृसिह पुराण मे दिखलायी पडता है ।

इन सब गीताओ की रचना भगवद्गीता के जगत् प्रसिद्ध होने के पश्चात् प्राय उसी के अनुकरण पर हुई हैं । जिस तरह भगवान् ने भगवद्गीता मे अर्जुन को विश्व रूप बतला कर ज्ञान का स्वरूप समझाया है । उसी प्रकार शिव गीता, देवी गीता और गणेश गीता में भी वर्णित है । ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो इन गीताओ मे भगवद्गीता की अपेक्षा कुछ विशेषता नही है । फिर भी अपने-अपने पुराण और पन्थ का गौरव बढाने के लिए सभी लोगों ने इन भिन्न भिन्न गीताओ की रचनाएँ की ।

गीता-रहस्य

लोकमान्य 'तिलक' के द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता पर किया हुआ विस्तृत भाष्य, जिसको कर्मयोग शास्त्र भी कहते है ।

गीता- रहस्य का यह सुप्रसिद्ध ग्रथ 'लोकमान्य तिलक' ने मण्डाले नगर की जेल मे २ नवम्बर सन् १९१० ई० को लिखना प्रारम्भ किया और ३० मार्च सन् १९११ ई० के दिन केवल पाँच महीनो मे करीव एक हजार पृष्ठ के इस अत्यन्त गम्भीर एव दार्शनिक ग्रन्थ को लिख कर समाप्त कर दिया ।

गीता के ऊपर महान् विद्वानो के द्वारा रचे हुए अनेक भाष्यो के विद्यमान होते हुए भी इस ग्रथ की रचना क्यो की गयी—इसका उल्लेख करते हुए लोकमान्य तिलक लिखते हैं कि—

"गीता के अनेक सस्कृत भाष्य, अन्यान्य टीकाएँ और मराठी तथा अग्रेजी में लिखे हुए अनेक विद्वानो के विवेचन पढ़ने के पश्चात् हमारे दिल मे यह शङ्का हुई कि जो गीता उस अर्जुन को युद्ध मे प्रवृत्त करने के लिए बतलाई गयी थी कि जो अपने स्वजनो के साथ युद्ध करने को बडा भारी कुकर्म समझ कर खिन्न हो गया था उस गीता मे ब्रह्मज्ञान से या भक्ति से मोक्ष प्राप्ति की विधि का—निरे मोक्ष-मार्ग का—विवेचन क्यो किया गया है ! यह शका इसलिए और भी दृढ होती गयी कि गीता की किसी भी टीका में इस विषय का योग्य उत्तर ढूढने पर भी न मिला ...... । इसके बाद हमने गीता की समस्त टीकाओ और भाष्यो को लपेट कर एक

का प्रतिबोध देते हुए भगवान् कृष्ण ने जीवन और सृष्टि के सारे रहस्यों को, ज्ञान कर्म भक्ति वैराग्य सन्यास योग आदि सभी विषयों के ताने-बाने बुन कर इस लघुकाय ग्रंथ को इतना विशिष्ट बना दिया कि ज्ञान के उपासक ज्ञानयोग की कर्म के उपासक कर्मयोग की भक्ति के उपासक भक्तियोग की और त्याग (सन्यास) के उपासक सांख्ययोग की पूर्ण झलक इस ग्रंथ के अंदर देखते हैं।

लोक० तिलक लिखते हैं कि— 'श्रीमद्भगवद्गीता हमारे धर्मग्रंथों में एक अत्यंत तेजस्वी और निर्मल हीरा है। पिंड ब्रह्माण्ड ज्ञान सहित आत्मविद्या के गूढ़ और पवित्र तत्व को थोड़े में स्पष्ट रीति से समझा देने वाला उन्हीं तत्वों के आधार पर मनुष्य मात्र को पुरुषार्थ की और आध्यात्मिक पूर्णावस्था की पहचान करा देने वाला भक्ति और ज्ञान का मेल करा के इन दोनों का शास्त्रोक्त व्यवहार के साथ संयोग करा देने वाला और निष्काम कर्म के आचरण की व्याख्या करने वाला—गीता के समान बाल-बोध ग्रंथ संस्कृत की कौन कहे—सारे संसार के साहित्य में कहीं नहीं मिल सकता।

गीता प्रमुखरूप से कर्मयोग को प्रतिपादित करता है या ज्ञानयोग को या भक्तियोग को ?—इसके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं।

गीता के भाष्य

जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपने शांकर भाष्य में गीता के प्रवृत्ति विषयक स्वरूप को निकाल कर उसे विशुद्ध निवृत्ति मार्ग के सांचे में ढाल दिया है।

विशिष्टाद्वैत के संस्थापक रामानुजाचार्य ने अपने भाष्य में कहा है कि गीता में यद्यपि ज्ञान कर्म और भक्ति का वर्णन है तथापि तत्त्वज्ञान की दृष्टि से विशिष्टाद्वैत और आचार दृष्टि से वासुदेव की भक्ति ही गीता का सारांश है। कर्मनिष्ठा कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं वह केवल ज्ञाननिष्ठा की उत्पादक है। इस प्रकार रामानुजाचार्य ने शांकर-सम्प्रदाय के अद्वैत ज्ञान के बदले विशिष्टाद्वैत और सन्यास के बदले भक्ति की गीता में स्थापना की।

द्वैत-सम्प्रदाय के संस्थापक श्रीमध्वाचार्य ने गीता का भाष्य करते हुए कहा कि— 'यद्यपि गीता में निष्काम कर्म के महत्व का वर्णन है तथापि वह केवल साधन है और भक्ति ही अन्तिम निष्ठा है। भक्ति की सिद्धि हो जाने पर कर्म करना और न करना बराबर है। परमेश्वर के ध्यान अथवा भक्ति की अपेक्षा निष्काम कर्म करना श्रेष्ठ है इत्यादि गीता के कुछ वचन इस सिद्धान्त के विरुद्ध पड़ते हैं। इसके सम्बन्ध में माध्वाचार्य का कहना है कि इन वचनों को अक्षरशः न समझ कर अर्थवादात्मक ही समझना चाहिए।

इसके बाद वल्लभाचार्य का नम्बर आता है जो पुष्टि मार्ग के संस्थापक हैं। इस सम्प्रदाय के 'तत्त्वदीपिका' आदि गीता सम्बन्धी ग्रंथों में निर्णय किया गया है कि भगवान ने अर्जुन को पहले सांख्य ज्ञान और कर्मयोग बतलाया है, पर अन्त में उसे भक्ति का अमृत पिला कर कृतकृत्य किया है। इसलिए ईश्वर की भक्ति ही गीता का प्रधान तात्पर्य है। और इसी लिए भगवान ने गीता के अन्त में यह उपदेश किया है कि—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

हे अर्जुन सब धर्मों को छोड़ कर केवल मेरी शरण में आ।

इसी प्रकार निम्बार्काचार्य काश्मीरी मधुसूदन इत्यादि आचार्यों ने भी गीता पर अपने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए।

महाराष्ट्र के अन्दर गीता की सर्वोत्तम विवेचना आचार्य ज्ञानेश्वर ने अपनी 'ज्ञानेश्वरी टीका' में की है। इसमें यह कहा गया है कि गीता के प्रथम ६ अध्यायों में कर्म, बीच के ६ अध्यायों में भक्ति और अन्त के ६ अध्यायों में ज्ञान का प्रतिपादन किया है। इस ग्रंथ में गीता का मूल अर्थ अनेक अच्छे दृष्टान्तों के साथ समझाया गया है।

आधुनिक युग में गीता के ऊपर सबसे विशद टीका 'गीता-रहस्य' के नाम से लोकमान्य प० बालगंगाधर तिलक ने की है। यह टीका पूर्ववर्ती सभी टीकाओं से भिन्न एक स्वतंत्र विचार पद्धति का समर्थन करती है और विशुद्ध कर्मयोग की दृष्टि से गीता का अर्थ करती है। और टीका में वर्णित किये गये ज्ञान भक्ति और सन्यास योग को उसी की पुष्टि में बतलाये गये योगों की तरह मानती है।

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि भारत में हिन्दू धर्म के वैदिक सम्प्रदाय में जितने अवतारी विभूति वाले महापुरुष हुए, और जिन्होंने अपनी महान् प्रतिभा से भिन्न भिन्न रूप में स्वतन्त्र विचारधाराओं की स्थापना की उन सभी ने गीता पर अपने अपने विचारानुसार भाष्य लिखे। एक मात्र स्वयं गीता पर आज तक जितने भाष्य और टीकायें हुईं किसी दूसरे ग्रन्थ पर नहीं हुईं। इसका कारण यह है

प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता। गीता के तत्वज्ञान और उसकी विवेचना प्रणाली पर सन्त ज्ञानेश्वर की अटूट श्रद्धा थी। गीता का महत्व बतलाते हुए उन्होंने लिखा है—

"इस असीम गीता तत्व का आकलन भला कैसे किया जा सकता है। इस अलौकिक प्रचण्ड तेज को भला कौन उज्ज्वल कर सकता है। एक मच्छर अपनी मुट्ठी में आकाश को कैसे ले सकता है। मगर गुरुदेव और सरस्वती की यदि कृपा हो जाय तो गूंगे में भी बोलने की शक्ति आ जाती है। इसी कृपा के आधार पर मैं इस ग्रंथ की रचना करने को उद्यत हुआ हूँ।"

गीता की अब तक जितनी टीकाएँ हुई हैं, उनमें 'ज्ञानेश्वरी' का महत्व विशेष रूप से माना जाता है। इसका कारण यह है कि इसकी भाषा बहुत सुन्दर, स्पष्ट, शुद्ध, ओजस्विनी और प्रसाद गुण से युक्त है। इसके अतिरिक्त इसकी विवेचन शैली बड़ी ही मनमोहक और प्रशंसनीय है। इतने गम्भीर और दार्शनिक विवेचन को सन्त ज्ञानेश्वर ने ऐसे सरल और सुबोध ढङ्ग से समझाया है कि पढ़ने वाले मुग्ध हो जाते हैं।

वैसे संत ज्ञानेश्वर महान् योगी और ज्ञान के उपासक थे। उनकी टीका में योग और ज्ञानयोग की प्रधानता होना स्वाभाविक है। फिर भी जहाँ पर कर्मयोग का वर्णन आया है, वहाँ पर उन्होंने कर्मयोग की विवेचना भी पूरी उदारता के साथ की हैं। गीता के निम्नलिखित दो श्लोकों का अनुवाद ज्ञानेश्वर ने इस प्रकार किया है—

> स्वधर्ममपि चावेक्ष्य, न विकम्पितुमर्हसि।
> धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥
> यदृच्छया चोपपन्नं, स्वर्गद्वारमपावृतम्।
> सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ! लभन्ते युद्धमीदृशम्॥

हे अर्जुन! तुम क्या सोच रहे हो। जिस स्वधर्म से तुम्हारा तारण होने का है, उसी स्वधर्म को तुम भूल रहे हो ··· । हे अर्जुन! यदि तुम्हारा अन्तःकरण इस समय दया से द्रवित हो गया हो तो ऐसा होना, इस युद्ध के समय में नितांत अनुचित् है। गौ का दूध बहुत अच्छा होता है। फिर भी यह नहीं कहा गया है कि जिसे ज्वर आता हो उसे दूध का पथ्य दो! यदि नये ज्वर के किसी रोगी को दूध दिया जाय तो वह विष हो जाता है। इसी प्रकार प्रसङ्ग को ध्यान में न रख कर जो कार्य किया जाता है—उससे कल्याण का नाश होता है। इसलिए हे अर्जुन! अब तुम होश में आओ! जिस स्वधर्म के अनुसार आचरण करने पर त्रिकाल में भी कोई दोष नहीं होता, उसी स्वधर्म को तुम देखो। हे अर्जुन! स्वधर्म के अनुसार आचरण करने से समस्त कामनाएँ सहज में सिद्ध होती हैं। इसलिए तुम यह बात समझ लो कि तुम क्षत्रियों के लिए संग्राम को छोड़ कर और कुछ करना कभी उचित नहीं हो सकता। इसलिए तुम निश्चिंत होकर खूब अच्छी तरह जम कर लड़ो। हे अर्जुन! तुम यह समझ रखो कि इस समय जो युद्ध तुम्हारे सामने उपस्थित है—उससे मानो तुम्हारे सौभाग्य और धर्माचार का द्वार ही खुल गया है। इसे तो संग्राम कहना ही ठीक नहीं है। संग्राम के रूप में तुम्हें तो यह स्वर्ग ही प्राप्त हुआ है।

जब क्षत्रिय लोग विपुल पुण्य का संग्रह करते हैं तब कहीं जाकर उन्हें इस प्रकार के संग्राम का अवसर मिलता है। ऐसे संग्राम को छोड़ देना और व्यर्थ की बातों के लिए रोना मानो अपना ही घात करना है।

६वें और ७वें अध्याय की टीका में संत ज्ञानेश्वर ने योग-शास्त्र की बड़ी सूक्ष्म व्याख्या की है।

इसी प्रकार बिना किसी साम्प्रदायिक मताग्रहता को रखे हुए जहां जैसा अवसर आया है, वहाँ कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, सन्यासयोग इत्यादि सब योगों की बड़ी सुंदर और मर्मस्पर्शी व्याख्या की है। गीता के प्रेमियों को इस टीका का अध्ययन करने से बड़ी शांति और आनन्द प्राप्त होता है।

ग्रीनविच

टेम्स नदी के दक्षिणी तट पर स्थित लण्डन का एक प्रसिद्ध उपनगर, जो अपनी 'आवजर्वेटरी' या वेधशालाके लिए लिए प्रसिद्ध है। यहाँ का निकाला हुआ 'टाइम' सब दूर 'स्टैंडर्ड टाइम' के नाम से स्वीकार किया जाता है।

सन् १६७५ ई० में यहाँ की सुप्रसिद्ध वेधशाला का निर्माण नाविक-ज्योतिष की प्रगति के लिए किया गया था। प्रतिदिन रात्रि को १ बजे यहाँ से सम्पूर्ण देश के मुख्य नगरों को विद्युत-संकेत के द्वारा ठीक समय का ज्ञान कराया जाता है। इसी स्थान को शून्य अंश मान कर भूगोलवेत्ता पूर्व तथा

घोर रत किया और फिर गीता के ही विचार पूर्वक अनेक पारायण किये। ऐसा करने पर टीकाकारोंके चंगुल से छूटे। और यह बोध हुआ कि गीता निवृत्ति प्रधान नहीं है, वह तो कर्म प्रधान है। और अधिक क्या कहें, गीता में अकेला योग शब्द ही कर्मयोग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत वेदान्तसूत्र उपनिषद् और वेदान्त शास्त्र विषयक अन्यान्य संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषा के ग्रंथों के अध्ययन से भी यह मत दृढ़ होता गया— । तब इन विचारों को लिख कर ग्रंथ रूपमें प्रकाशित करने का विचार हुआ।

"मगर अब तक प्राचीन टीकाकारों के समस्त मतों का संग्रह करके उनकी सकारण अपूर्णता दिखला देना एवं अन्य धर्मों तथा तत्त्वज्ञान के साथ गीताधर्म की तुलना करना कोई ऐसा साधारण काम न था जो चटपट हो जाय।

लोकमान्य तिलक को सन् १९०८ ई० में अंग्रेज सरकार ने सजा देकर मंडालेके जेल में भेज दिया। जेल में इनको ग्रंथ लिखने की सामग्री पूने से मंगा लेने की अनुमति भी मिल गयी। वहीं पर उन्होंने इस महान् ग्रंथ को तैयार किया।

इस ग्रन्थ में उन्होंने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया कि— 'गीता शास्त्र के अनुसार इस जगत् में प्रत्येक मनुष्य का पहला कर्तव्य यही है कि वह परमेश्वर के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर के अपनी बुद्धि को जितनी हो सके निर्मल और पवित्र कर ले। परन्तु यह गीता का मुख्य प्रतिपाद्य विषय नहीं है। युद्ध के आरम्भ में अर्जुन इस कर्तव्य-मोह में फँसा था कि 'युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म भले ही हो परन्तु कुल क्षय का घोर पातक होने से जो युद्ध मोक्ष-प्राप्ति रूप आत्म कल्याण का नाश कर डालेगा उस युद्ध को करना चाहिए अथवा नहीं।" अतएव हमारा यह अभिप्राय है कि उसमें मोह को दूर करने के लिए शुद्ध वेदान्त के आधार पर कर्म-अकर्म का और साथ ही साथ मोक्ष के उपायों का भी पूर्ण विवेचन कर इस प्रकार निश्चय किया गया है कि एक तो कर्म कभी छूटते ही नहीं है और दूसरे उनको छोड़ना भी नहीं चाहिए। एवं गीता में उस युक्ति का ज्ञान पूर्वक भक्ति प्रधान कर्मयोग का ही प्रतिपादन किया गया है जिससे कर्म करने पर भी पाप नहीं लगता और उसी से मोक्ष भी मिल जाता है।

गीता रहस्य में कुल १५ प्रकरण और १६ वां परिशिष्ट प्रकरण लिखा गया है। पहले प्रकरण में विषय प्रवेश करके हुए, गीता पर हुए अब तक के भाष्यों का जिनमें श्रीशङ्कराचार्य मधुसूदन रामानुजाचार्य मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्क श्रीधर स्वामी ज्ञानेश्वर इत्यादि के द्वारा किए हुए भाष्यों का विवेचन और उनकी संक्षिप्त आलोचना की गयी है। दूसरे प्रकरण में कर्म जिज्ञासा का तीसरे में कर्मयोग शास्त्र का चौथे में आधिभौतिक सुखवाद का पाँचवें में सुख दुःख विवेक का छठे में आधिदैविक पक्ष और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विचार का सातवें प्रकरण में कपिल-सांख्यशास्त्र अथवा क्षराक्षर विचारका आठवें में विश्व की रचना और संहार का नवें में अध्यात्मवाद का दसवें में कर्म-विपाक का और आत्म स्वातंत्र्य का ग्यारहवें में सन्यास और कर्मयोग का बारहवें में सिद्धावस्था और व्यवहार का तेरहवें में भक्ति मार्ग का और चौदहवें में गीताध्याय सङ्गति का विवेचन किया गया है। पन्द्रहवाँ प्रकरण उपसंहार का है। इसमें देशी और विदेशी विचारधाराओं के साथ गीताशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और अन्तिम परिशिष्ट प्रकरण में गीता की बहिरङ्ग परीक्षा की गई है।

इस प्रकार लोकमान्य 'तिलक' के द्वारा कर्मयोग-शास्त्र का रचा हुआ यह महान् ग्रंथ विश्व साहित्य को उनकी अपूर्व देन है। ज्ञानयोग भक्तियोग और सन्यास-योग पर गीता के ऊपर अनेक भाष्यों की रचनाएं हो चुकी हैं, मगर गीता के मूल आधार मूल स्तम्भ कर्मयोग के ऊपर इतना विस्तृत और तर्कपूर्ण दृष्टि से रचा हुआ यह प्रथम महाभाष्य है।

गीता-ज्ञानेश्वरी

सुप्रसिद्ध सन्त महात्मा ज्ञानेश्वर के द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता पर किया हुआ सुप्रसिद्ध भाष्य। जिसका निर्माण और प्रवचन सन् १२९० ई० में उन्होंने सिर्फ १५ वर्ष की उम्र में किया।

महाराष्ट्र-सन्तों की परम्परा में सन्त ज्ञानेश्वर का स्थान शायद सबसे महत्वपूर्ण है। सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी छोटी सी उम्र में बहुत उच्च कोटि के तत्त्वज्ञानी योगी भक्त और लेखक थे। उन्होंने केवल २१ वर्ष और ३ महीने की आयु पायी। मगर इस छोटी सी उम्र में ही उन्होंने दर्शन शास्त्र योगशास्त्र और भक्तिशास्त्र के सम्बंध में जो लेखन किया उसको देख कर इनके असाधारी पुरुष होने में किसी

ग्रीनलैंड का औपनिवेशिक स्तर समाप्त हो गया और वह डेनमार्क शासन का अविच्छिन्न अंग बन गया। इसके लिए डेनमार्क सरकार का एक गवर्नर वहाँ शासन के लिए नियुक्त रहता है और प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से यह सम्पूर्ण द्वीप पूर्वी-उत्तरी और पश्चिमी तीन भागो मे विभक्त है। इसके उत्तरी भाग मे ४ महीने तक सूर्य दिखलाई नहीं देता। तटवर्ती कुछ भागो को छोड कर यह सम्पूर्ण द्वीप एक हजार फुट मोटी वर्फ की तहो से ढँका रहता है।

यहाँ के खनिज पदार्थों मे शीशा, जस्ता और क्रियोलाइट पाये जाते हैं।

ग्रीन-टामस

इग्लैंड के एक प्रसिद्ध अस्तित्ववादी दार्शनिक, जिनका जन्म सन् १८३६ ई० मे और मृत्यु सन १८८२ ई० मे हुई।

ग्रीन टामस निरीश्वरवाद या नास्तिकता के सिद्धान्त के प्रबल विरोधी थे। उनके मत से विश्व मे एक ऐसे तत्व का निश्चित अस्तित्व अवश्यभावी है, जिससे सब सम्बन्ध सम्भव होते हैं। परन्तु जो स्वय उन सम्बन्धो के द्वारा निर्धारित नही है। एक ऐसी नित्य शक्ति-सम्पन्न और आत्मबोध युक्त चेतना का अस्तित्व है, जिसे सब कुछ समष्टि रूप से ज्ञात है, पर हम लोगो को उसके थोडे से अश का ही पता है।

'प्रोलेगोमेन टू एथिक्स' नामक अपने ग्रथ मे इस विषय का स्पष्टीकरण करते हुए 'ग्रीन' ने बतलाया है कि—इस प्रकार की आध्यात्मिक चेतना पर ही नीति दर्शन की सुदृढ़ नीव रखी जा सकती है। इस आत्मबोध तथा आत्मचिन्तन से मनुष्य को अपनी सामर्थ्य, कर्म और उत्तरदायित्व का बोध होता है।"

ग्रीन ने दर्शन शास्त्र के उन सिद्धान्तो का प्रबल विरोध किया जो नास्तिकता से सम्बन्ध रखते हैं और प्राणी जगत् को प्राकृतिक शक्तियो का परिणाम बतलाते हैं। उनका कथन है कि—"इन सिद्धान्तो का अनुकरण करने से समस्त नीतिशास्त्र अर्थहीन हो जाता है। उनका कथन है कि नैतिक आदर्शो की प्राप्ति केवल ऐसे समाज में हो सकती है जो व्यक्तियो की व्यक्तिगत महत्ता को सुरक्षित रखते हुए उन्हे सामाजिक जीवन के अनुकूल बना सके। व्यक्ति अपने स्वरूप को समाज के सहयोग के बिना प्राप्त नही कर सकता और समाज भी व्यक्तियो के सहयोग के बिना अपने स्वरूप का विकास नही कर सकता।

ग्रीस (यूनान)

योरोप का एक अत्यन्त प्राचीन राज्य। जहाँसे एक सर्वतोमुखी उन्नतिशील सभ्यता का विकास हुआ। जिसका इतिहास ईसासे करीब तीन हजार वर्ष पहले से प्रारम्भ होता है।

ससार की प्राचीन सभ्यताओ के इतिहास मे 'ग्रीस' या 'यूनान' की सभ्यता अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इस सभ्यता ने अपने सर्वांगीण विकास से सारे यूरोप और एशिया के एक बहुत बडे भूभाग को प्रभावित किया था।

ससार की इस प्राचीन सभ्यता का केन्द्र ग्रीस या यूनान भौगोलिक दृष्टि से एक अनोखा देश है। एक झालर की भाँति कटावदार शक्ल मे समुद्र, इस देश मे दूर तक प्रवेश करता है। इसके पूर्व मे 'ईजियन' नामक खाडी और कालासागर है, दक्षिण मे भूमध्य सागर और एड्रियाटिक खाडी है। इसी ईजियन खाडी मे क्रीट और साइप्रस जैसे द्वीपो के अतिरिक्त ५०० छोटे-छोटे टापू और हैं।

इसके एक ओर ९७५४ फुट ऊँचा "आल्पस्" पर्वतमालाओ का पहाडी प्रदेश है। जिसका पुराना नाम 'हेलास' था। इन पर्वतमालाओ मे बहुत सी उपत्यकाएँ हैं। इस देश की नदियाँ उथली होने के कारण सिचाई के योग्य नही हैं। मैदान कटे-फटे होने के कारण खेती के योग्य नही हैं। सिर्फ भूमध्य सागर की जलवायु के कारण यहाँ फल बहुतायत से पैदा होते हैं, जिनमे प्रधानत अगूर, सेव, नासपाती, सन्तरे, अखरोट, अञ्जीर इत्यादि है।

'हेलास' नामक पहाडी प्रदेश होने के कारण इसके निवासियो ने अपने देश का नाम भी 'हेलास' ही रखा था। उसके बाद रोम के निवासियो ने इस देश का नाम 'ग्रीस' और अरब के विद्वानो ने इसका नाम 'यूनान' रखा।

यूनान के प्रान्तो को मकदूनियाँ, इपारस, थेसाली, मध्य ग्रीस और द्वीप समूह इन पाच भागो मे बाटा जा सकता है।

पश्चिमी देशान्तरों की गणना करते हैं। यहाँ से होकर जाने वाली देशान्तर रेखा 'ग्रीनविच रेखा' कहलाती है।

गीशा

भारतवर्ष म प्रचलित देव-दासियों की तरह नाचने गाने वाली कुमारी लड़कियों के एक वर्ग को जापान के अन्तर्गत 'गीशा' कहा जाता है।

ऐसा मालूम होता है कि धर्मस्थानों के लिए इस प्रकार गाने और नाचने वाली लड़कियों की व्यवस्था कई देशों के अन्दर विभिन्न रूपों में स्वीकृत की गयी थी।

भारतवर्ष में यह प्रथा देवदासी के रूप म स्वीकार की गयी थी। यह देवदासी-प्रथा विशेष करके दक्षिण भारत के मन्दिरों में विशेष रूप से प्रचलित हुई। इन देवदासियों का लग्न मन्दिर के देवता के साथ हुआ है—ऐसा समझा जाता था। इस लग्न के प्रतीक स्वरूप सोने की माला (ताली) उस कन्या के गले में बाँध दी जाती थी। इन देवदासियों में ध्वजस्तम्भ के समीप नृत्य करने वाली 'राजदासी' सामाजिक उत्सव के समय नृत्य करने वाली 'अलङ्कार दासी' और मन्दिर के अन्दर नियमित नृत्य करने वाली देवदासी कहलाती थी।

उड़ीसा के जगन्नाथपुरी के मन्दिर म भी यह प्रथा प्रचलित थी। यहाँ पर देवदासियों को 'माहरी' कहते थे।

बेबीलोनिया की प्राचीन सभ्यता म मन्दिरों की ये देवदासियाँ 'ऐन्नु' के नाम से प्रसिद्ध थीं।

इसी प्रकार जापान म ऐसी लड़कियों को 'गीशा' के नाम से सम्बोधित करते हैं। बचपन से ही इनको नाचने-गाने और सामाजिक शिष्टाचार की शिक्षा दी जाती है फिर भी भारत की देवदासी प्रथा व जापान की गीशा प्रथा में कई मौलिक भेद हैं। देवदासियाँ जहाँ सिर्फ मन्दिरों में देवताओं के सम्मुख नृत्य करती हैं—वहाँ गीशा सामाजिक उत्सवों और रेस्टोरेण्टों और चाय-घरों में भी नाच-गाकर लोगों का मनोरंजन करती है।

इस प्रकार देवदासी की अपेक्षा गीशा का सामाजिक स्तर निम्न श्रेणी का समझा जा सकता है फिर भी जापान के अन्दर गीशा किसी भी स्थिति म घटिया नहीं समझी जाती।

ग्रीनलैण्ड

अमेरिका महाद्वीप और आइसलैंड नामक द्वीप के बीच में अवस्थित एक बड़ा द्वीप जिसका उत्तरी भाग हमेशा बर्फ से ढका रहता है और दक्षिण तट पर आबादी बसी हुई है।

इस द्वीप का पूरा क्षेत्रफल ८२ हजार वर्गमील और आबादी वाले क्षेत्र का क्षेत्रफल ४६७४० वर्गमील है। इस द्वीप के दक्षिणी भाग की आबादी २७१०६, पश्चिमी भाग की २४६६० और पूर्वी भाग की ११८६ है।

जब से वैज्ञानिक लोगों ने उत्तरी ध्रुव की खोज करना प्रारम्भ की तभी से ग्रीनलैंड का इतिहास शुरू होता है। इस द्वीप की खोज नार्वे के गुनबर्न बिस्सन नामक व्यक्ति ने सब से पहले की। आइसलैंड का 'एरिक' नामक व्यक्ति इस द्वीप का 'ग्रीनलैंड' नामकरण करके इसके दक्षिणी-पश्चिमी तट पर उपनिवेश बसाने के विचार से यहाँ बस गया।

इसके पश्चात् शीघ्र ही यहाँ और भी कुछ उपनिवेश बसे। सन् ११२१ ई में यहाँ पर ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए मि मार्नसन' नामक व्यक्ति 'बिशप' होकर गये और उन्होंने यहाँ ईसाई-धर्म का प्रचार किया। जिसके फल स्वरूप यहाँ के सब लोगों ने ईसाई-धर्म ग्रहण कर लिया।

पहले यह द्वीप 'नार्वे' के सम्राट के द्वारा शासित होता था। मगर सन् १६ ५ ई में 'डेनमार्क' के राजा चतुर्थ क्रिश्चियन ने ग्रीनलैंड को विजय करने के लिए अपने जहाजी सेनापति लिंडेनो' को ५ जहाजों के साथ भेजा था। इसके बाद सन् १८२८ ई में डेनमार्क के राजा छठे फेडरिक' ने 'हंसान डे' को ग्रीनलैंड में भेजा था। तभी से ग्रीनलैंड डेनमार्क का उपनिवेश बना हुआ है।

सन् १९४१ ई में जब जर्मन फौजों ने डेनमार्क पर अपना अधिकार कर लिया तब ग्रीनलैंड की सरकारी व्यवस्था अमेरिका के हाथ में आई। इस अवधि में अमेरिका ने यहाँ पर कई हवाई अड्डे बनाये। दूसरे विश्वयुद्ध में अमेरिका ने इस द्वीप का अपनी काररवाइयों के लिए काफी उपयोग किया।

सन् १९५१ ई में अमरिका और डेनमार्क के बीच की गुप्त सन्धि हुई उसमें इस द्वीप पर अमेरिका का भी हाथ रह गया। सन् १९५३ ई० में नवीन संविधान के अनुसार

ग्रीनलैंड का औपनिवेशिक स्तर समाप्त हो गया और वह डेनमार्क शासन का अविच्छिन्न अग बन गया। इसके लिए डेनमार्क सरकार का एक गवर्नर वहाँ शासन के लिए नियुक्त रहता है और प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से यह सम्पूर्ण द्वीप पूर्वी-उत्तरी और पश्चिमी तीन भागो मे विभक्त है। इसके उत्तरी भाग मे ४ महीने तक सूर्य दिखलाई नही देता। तटवर्ती कुछ भागो को छोड कर यह सम्पूर्ण द्वीप एक हजार फुट मोटी बर्फ की तहो से ढँका रहता है।

यहाँ के खनिज पदार्थो मे शीशा, जस्ता और क्रियोलाइट पाये जाते है।

ग्रीन-टामस

इग्लैंड के एक प्रसिद्ध अस्तित्ववादी दार्शनिक, जिनका जन्म सन् १८३६ ई० मे और मृत्यु सन १८८२ ई० मे हुई।

ग्रीन टामस निरीश्वरवाद या नास्तिकता के सिद्धान्त के प्रबल विरोधी थे। उनके मत से विश्व मे एक ऐसे तत्व का निश्चित अस्तित्व अवश्यभावी है, जिससे सब सम्बन्ध सम्भव होते हैं। परन्तु जो स्वय उन सम्बन्धो के द्वारा निर्धारित नही है। एक ऐसी नित्य शक्ति-सम्पन्न और आत्मबोध युक्त चेतना का अस्तित्व है, जिसे सब कुछ समष्टि रूप से ज्ञात है, पर हम लोगो को उसके थोडे से अश का ही पता है।

'प्रोलेगोमेन टू एथिक्स' नामक अपने ग्रथ मे इस विषय का स्पष्टीकरण करते हुए 'ग्रीन' ने बतलाया है कि—इस प्रकार की आध्यात्मिक चेतना पर ही नीति दर्शन की सुदृढ नीव रखी जा सकती है। इस आत्मबोध तथा आत्मचिन्तन से मनुष्य को अपनी सामर्थ्य, कर्म और उत्तरदायित्व का बोध होता है।"

ग्रीन ने दर्शन शास्त्र के उन सिद्धान्तो का प्रबल विरोध किया जो नास्तिकता से सम्बन्ध रखते हैं और प्राणी जगत् को प्राकृतिक शक्तियो का परिणाम बतलाते हैं। उनका कथन है कि—"इन सिद्धान्तो का अनुकरण करने से समस्त नीति-शास्त्र अर्थहीन हो जाता है। उनका कथन है कि नैतिक आदर्श की प्राप्ति केवल ऐसे समाज मे हो सकती है जो व्यक्तियो की व्यक्तिगत महत्ता को सुरक्षित रखते हुए उन्हें सामाजिक जीवन के अनुकूल बना सके। व्यक्ति अपने स्वरूप को समाज के सहयोग के बिना प्राप्त नही कर सकता और समाज भी व्यक्तियो के सहयोग के बिना अपने स्वरूप का विकास नही कर सकता।

ग्रीस (यूनान)

योरोप का एक अत्यन्त प्राचीन राज्य। जहाँसे एक सर्वतोमुखी उन्नतिशील सभ्यता का विकास हुआ। जिसका इतिहास ईसासे करीब तीन हजार वर्ष पहले से प्रारम्भ होता है।

ससार की प्राचीन सभ्यताओ के इतिहास मे 'ग्रीस' या 'यूनान' की सभ्यता अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। इस सभ्यता ने अपने सर्वांगीण विकास से सारे यूरोप और एशिया के एक बहुत बडे भूभाग को प्रभावित किया था।

ससार की इस प्राचीन सभ्यता का केन्द्र ग्रीस या यूनान भौगोलिक दृष्टि से एक अनोखा देश हैं। एक झालर की भाँति कटावदार शक्ल मे समुद्र, इस देश मे दूर तक प्रवेश करता है। इसके पूर्व मे 'ईजियन' नामक खाडी और कालासागर है, दक्षिण मे भूमध्य सागर और एड्रियाटिक खाडी है। इसी ईजियन खाडी मे क्रीट और साइप्रस जैसे द्वीपो के अतिरिक्त ५०० छोटे-छोटे टापू और हैं।

इसके एक ओर ६७५४ फुट ऊँचा "आल्पस्" पर्वतमालाओं का पहाडी प्रदेश है। जिसका पुराना नाम 'हेलास' था। इन पर्वतमालाओ मे बहुत सी उपत्यकाएँ हैं। इस देश की नदियाँ उथली होने के कारण सिंचाई के योग्य नही हैं। मैदान कटे-फटे होने के कारण खेती के योग्य नही हैं। सिर्फ भूमध्य सागर की जलवायु के कारण यहाँ फल बहुतायत से पैदा होते हैं, जिनमे प्रधानत अगूर, सेब, नासपाती, सन्तरे, अखरोट, अञ्जीर इत्यादि हैं।

'हेलास' नामक पहाडी प्रदेश होने के कारण इसके निवासियो ने अपने देश का नाम भी 'हेलास' ही रखा था। उसके बाद रोम के निवासियो ने इस देश का नाम 'ग्रीस' और अरब के विद्वानो ने इसका नाम 'यूनान' रखा।

यूनान के प्रान्तो को मकदूनियाँ, इपारस, थेसाली, मध्य ग्रीस और द्वीप समूह इन पाच भागो में बाटा जा सकता है।

ग्रीस की प्राचीन सभ्यता का इतिहास ईसा से करीब १ हजार वर्ष से प्रारम्भ होता है। यूनान की पौराणिक परम्पराओं के अनुसार प्राचीन युग में इस क्षेत्र में 'पेलासगो' नामक असभ्य जाति के लोग रहते थे। उस समय 'सुरेनस' नामक मिस्र के किसी राजपुत्र ने यहाँ आकर अपना छोटा सा राज्य स्थापित किया।

सुरेनस के बाद उसके पुत्र 'सिटारस' और उसके बाद उसके पुत्र 'जुपिटर' ने यहाँ राज्य किया। जुपिटर ने अपने राज्य को अपने भाई 'नेपच्यून' और 'प्लूटो' को बाँट दिया। ये लोग बड़े विलक्षण तरीके से राज्य का शासन करते थे। 'थेसेली' के निकट 'ओलिम्पास' पर्वत के ऊपर इनका न्याय भवन बना हुआ था। ग्रीक-काव्यों में 'सुरेनस' सीटारस 'जुपिटर' इत्यादि लोगों का वर्णन देवताओं के वर्णन की तरह किया गया है और ओलिम्पास पर्वत के शिखर, देवताओं के वासस्थान की तरह बतलाए गये हैं। प्राचीन यूनान में इन देवताओं की पूजा जाति-देवताओं की तरह होती थी।

ईसवी सन् पूर्व ११ से लेकर ईसवी सन् १ १ तक ग्रीस की मुख्य भूमि पर माई-नो-अन सभ्यता का दौर-दौरा रहा। इस सभ्यता के संस्थापक 'क्रीट' द्वीप से ईजियन-सागर के द्वीपों में बढ़ते हुए यूनान प्रायद्वीप में पहुँचे। इन लोगों ने यूनान में आकर 'माईकीन' नामक एक बस्ती बसाई। बढ़ते बढ़ते यह व्यापारिक नगरी एक विशाल नगर के रूप में बदल गयी।

इसी माईकीनी सभ्यता के समय में ईसवी सन् पूर्व १२६६ के करीब 'एथेन्स' नामक नगर की ईसवी सन् पूर्व ११२ में 'स्पार्टा या लैसीडेमन नगर' की और ईसवी सन् पूर्व १४६१ में 'थीबिस' नामक नगरकी स्थापना हुई। माईकीनी युग में ही 'होमर' के प्रसिद्ध काव्य 'ईलियड' में वर्णित 'ट्राय' नगर का प्रसिद्ध युद्ध हुआ था। यह युद्ध ईसवी पूर्व १२वीं शताब्दी में लड़ा गया था।

ट्राय-युद्ध के करीब ८ वर्ष पीछे डोरियाई जाति के 'हरक्यूलस' के वंशजों ने ग्रीस पर आक्रमण करके यहाँ की पुरानी सभ्यताको नष्ट कर दिया और 'पोलो पोनेसस' में अपना राज्य बनाया। इनके पश्चात् ईसवी सन् से करीब एक हजार वर्ष पूर्व एशिया माइनर के किसी क्षेत्रसे 'हेलोनीक' लोगों ने ग्रीस में आकर अपना आधिपत्य जमाया। हेलोनिक लोग एशिया-खण्ड के किस क्षेत्र से आये—इस सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। परन्तु इस बात को सब लोग मानते हैं कि यह जाति एशिया के ही किसी भाग से यहाँ पहुँची थी।

यूनान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार 'हेरोडोटस' ने इस जाति का वर्णन करते हुए लिखा है कि 'सवेरे-शाम अपने हाथ-मुँह धोने वाले लम्बी दाढ़ी और ढीले कपड़े पहननेवाले इन लोगों ने अपने गरम देश से इस ठंडे देश में क्या किया?' हेरोडोटस लिखता है कि— यह जाति युद्ध-विद्या में कुशल होने के साथ-साथ धार्मिक क्रियाओं में भी बहुत दक्ष है। उनके देवता का नाम 'हर' है, जो नदी का सेवन करता है और बाघ चर्म पर त्रिशूल धारण कर बैठता है।

हेरोडोटस के इस कथन से तो यह स्पष्ट मालूम होता है कि ग्रीस में आने वाली यह हेलोनिक जाति भारतकी आर्य्य जाति की कोई शाखा थी। इसी आधार पर सुप्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल 'टाड' ने भी ग्रीस की हेलोनिक जाति को आर्य्य जाति की ही एक शाखा माना है।

हेलेनिक युग

इस प्रकार इस जाति ने ग्रीस के अन्दर आकर वहाँ पर एक नवीन युग का प्रादुर्भाव किया। जो प्राचीन ग्रीस के इतिहास में 'हेलोनिक-युग' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी युग में ग्रीक सभ्यता का सभी दृष्टियों से सर्वतोमुखी विकास हुआ। इसी युग में ग्रीस के अन्तर्गत नगर राज्यों की स्थापना हुई। कुछ ही समय में ये लोग यूनानी लोगों से घुल-मिल गये और इस मिश्रित सभ्यता का नाम ही यूनानी सभ्यता पड़ा।

कुछ समय बाद इस सभ्यता के लोगों ने ग्रीस से भी आगे बढ़ना शुरू किया और ईजियन खाड़ी के द्वीपों को आबाद करते हुए खाड़ी के उस पार पहुँच गये। वहीं पर इनका 'ट्राय' नगरवालों से इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसका वर्णन होमर ने अपने महाकाव्य 'ईलियड' में किया है।

ग्रीसके अन्दर प्राचीन युगमें कोई संगठन न होनेसे बाहर के आक्रमणकारी वहाँ पर आकर लूट पाट मचाते थे। इस लूट-पाट से बचने के लिए और वहाँ की जनता को एकता के बन्धन में बाँधने के लिए वहाँ के प्रमुख व्यक्तियों ने मिलकर 'ओलेम्पियन' (Olympian) नामक एक महान उत्सव का

प्रारम्भ किया। ईसा से ७७६ वर्ष पहले सबसे पहला ओलेम्पिकी उत्सव शुरू हुआ। इस जलसे मे बडे-बडे राजपुरुषो से लेकर साधारण नागरिक तक सभी शामिल होते थे। ग्रीस के ग्रथकार, कवि, मल्ल, योद्धा, अश्वारोही सभी इस उत्सव मे सम्मिलित होकर वहाँ की प्रतिस्पर्धाओ मे भाग लेते थे। विजयी लोगो का बडा सम्मान होता था और कवि अपनी शक्ति भर उसकी प्रशसा करते थे। ससार प्रसिद्ध 'ओलेम्पिक' खेलो का प्रारम्भ भी इसी उत्सव से हुआ था। ग्रीस के इतिहास मे यह युग वीर-पूजा युग के नाम से मशहूर है और इस युग का प्रतिनिधित्व महाकवि 'होमर' ने अपने काव्यो मे किया है।

हेलेनिक युग मे शुरू-शुरू मे नगरराज्यो का शासन राजाओ के द्वारा होता था। धीरे-धीरे यह राजतन्त्र, कुलीनतत्र मे परिवर्तित हुआ। मगर इस कुलीनतत्र के अन्दर भी जनता को सुख सुविधा नही थी। प्रजा की इस दुखद अवस्था को देख कर ईसवी सन् पूर्व ६२१ मे 'ड्रेको' नामक एक शासक ने अपनी सूझ-बूझ से कुछ कानूनो का निर्माण किया। इसके पश्चात् ईसवी पूर्व सन् ५९५ मे 'सोलन' नामक एक अधिकारी ने इन कानूनो मे उदारतापूर्वक काफी संशोधन किये।

ईसवी पूर्व ६०० से लेकर ईसवी पूर्व ५०० तक ग्रीस के प्रमुख नगर 'एथेन्स' मे क्रातियो और प्रतिक्रांतियो का दौर-दौरा रहा। ईसवी सन् पूर्व ५६० मे 'पिसिस्ट्रटस' नामक सैनिक अधिकारी ने अपनी शक्ति के बल पर राज्यसभाओ को भग करके पूर्ण निरङ्कुश शासन की स्थापना की। उसके बाद ईसवी पूर्व ५१० मे कुलीनवर्ग ने जन साधारण और स्पार्टा की सहायता लेकर इस निरङ्कुश शासन को समाप्त किया। और फिर से कुलीनतत्र की स्थापना की। इस कुलीन तत्र का अध्यक्ष 'क्लिस्थेनीज' नामक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हुआ जो यूनानी लोकतत्र का पिता समझा जाता है। इस व्यक्ति ने पद पर आते ही ग्रीस के कुलीनतन्त्र को लोकतत्र मे बदल दिया। इसने शासन के लिए एक कौसिल की स्थापना की, जिसके सदस्यो की सख्या ५०० रखी गयी और इस कौसिल में कुलीन वर्ग की अपेक्षा साधारण जनता को अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया।

क्लिस्थेनीज का शासन ५१० ईसवी पूर्व से ४९३ ईसवी पूर्व तक रहा। उसके पश्चात् 'थीमेस्टोक्लीज' नामक व्यक्ति यूनानी लोकतत्र का प्रधान बना। २० वर्ष के इसके शासन-काल मे यूनानियो को विशाल ईरानी-साम्राज्य के साथ बडी भयङ्कर लडाइयाँ लडनी पडी। इनमे पहली लडाई ईसवी पूर्व ४९० मे हुई जो 'मराथान' युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्ध मे ईरानियो को पराजय का मुँह देखना पडा।

दूसरी लडाई ईसवी पूर्व ४८० मे हुई। यह लडाई 'सालमिस' के जलयुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। इस युद्धमे शुरू-शुरू मे यूनानी सेना की पराजय हुई और ईरानी सेना ने मध्य यूनान मे घुस कर 'एथेंस' पर अधिकार कर लिया। और वहाँ के सारे मन्दिरो को जला डाला। मगर इसके साथ ही जलयुद्ध मे सालमिस की खाडी मे यूनानी बेडे ने ईरानी बेडे पर आक्रमण करके उसके २०० जहाजो को डुबो दिया। ईरानी बेडा भाग कर 'फलेरन' की ओर चला गया।

तीसरी लडाई ईसवी पूर्व ४७९ मे 'प्लेटिया के मैदान' मे हुई। इस लडाई मे यूनानी सेना ने ईरानी सेना को जल और थल दोनो ही मैदान मे भयङ्कर पराजय देकर यूनानी राज्यो को ईरान की दासता से हमेशा के लिए मुक्त कर लिया।

स्पार्टा

इसी समय से ग्रीस के दो प्रसिद्ध नगरराज्यो 'स्पार्टा' और 'एथेन्स' के बीच भी प्रतिस्पर्द्धा और सघर्ष की भावनाएँ प्रबल हो गयी। स्पार्टा और एथेन्स— दोनो यूनान के नगर राज्य थे। मगर इन दोनो नगरराज्यो की सभ्यता के आदर्शों मे मौलिक अन्तर था। एथेन्स की सभ्यता, दर्शन, राजनीति, साहित्य और कला की सभ्यता थी जिसने ससार को कई बडे-बडे दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार और कलाकार प्रदान किये। मगर स्पार्टा की सभ्यता विशुद्ध सैनिक सभ्यता थी।

स्पार्टा की सभ्यता का सुप्रसिद्ध नेता 'लाइकगर्स' नामक व्यक्ति था। इसने स्पार्टा के सैनिक सविधान का निर्माण किया। इस सविधान के अनुसार स्पार्टा की शासन व्यवस्था मे दो राजा और तीस सदस्यो की एक 'कौसिल ऑफ एल्डर्स' होती थी। इस कौसिल का नियन्त्रण कुलीन वर्गों के ५ प्रभावशाली व्यक्ति करते थे। इनको इफोर (Ephor) कहते थे। स्पार्टा की समाज व्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर

शौर्य का भाव जागृत रखने और उत्तम सन्तान पैदा करने के लिए कई विशेष नियमों की व्यवस्था की गयी थी। इस व्यवस्था के अनुसार—

(१) स्पार्टा में किसी बच्चे के पैदा होते ही उसकी शारीरिक शक्ति की परीक्षा के लिए उसे शराब में स्नान कराया जाता था। इसके बाद भी यह बच्चा यदि बच जाता तो उसकी और शारीरिक परीक्षाएँ करके माता पिताओं से उस बच्चे को लेकर उसके पालन-पोषण का भार राष्ट्र अपने ऊपर ले लेता था।

दुर्बल और कमजोर बच्चों को 'अपोथेटी' नामक गुफा में फेंक दिया जाता था। तीन दिन बाद फिर उसको वहाँ देखने के लिए जाते थे और यदि वह बच्चा वहाँ जीवित मिल जाता तो उसे वापस लाते थे।

(२) सब बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ति माने जाते थे। उनका पालन-पोषण राज्य की ओर से किया जाता था। और उनके शारीरिक संगठन और मानसिक विकास की पूर्ण व्यवस्था राष्ट्र की ओर से की जाती थी।

(३) हर एक व्यक्ति के विवाह अनिवार्य समझा जाता था। अविवाहित पुरुष निन्दा के पात्र होते थे।

(४) पति-पत्नी सुंदर तथा स्वस्थ सन्तानें पैदा करने के लिए एक दूसरे को आज्ञा लेकर अन्य पुरुषों और स्त्रियों से भी संगम कर सकते थे। इस प्रकार से पैदा हुई सन्तान वहाँ पर साधारण पैदा हुई सन्तान की अपेक्षा विशेष आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। पतिव्रत और पत्नीव्रत का कोई मूल्य नहीं था।

(५) वहाँ के लोग इन्हें बाल रखते थे। नंगे पैर रहते थे और सादे वस्त्र पहनते थे। साज शृङ्गार करना वहाँ पाप समझा जाता था। इसी प्रकार संगीत काव्य, नृत्य इत्यादि कलाओं पर भी वहाँ प्रतिबन्ध था।

इन प्रतिबन्धों की वजह से स्पार्टा के अंदर सैनिक शक्ति का बहुत अधिक विकास हुआ। और एथेन्स के साथ स्पार्टा-संघर्ष के अवसर भी कई बार हुए। ये संघर्ष पैलोपोनेशियन संघर्ष के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इन संघर्षों में पहला संघर्ष ईसापूर्व ४६४ में दूसरा संघर्ष ईसी पूर्व ४३१ में और तीसरा संघर्ष ई० पूर्व ४१५ में हुआ। ये संघर्ष कई-कई वर्षों तक चलते रहे और इसमें एथेन्स को पराजय का मुँह भी देखना पड़ा और उसकी जनहानि भी बहुत हुई।

पैरिक्लीज युग

पर इस युग में एथेन्स को 'पैरिक्लीज' नामक महान् नेता भी प्राप्त हुआ जिसने अपनी योग्यता उदारता और चतुराई के बल पर एथेन्स में एक स्वर्ण युग की स्थापना की। पैरिक्लीज की शताब्दी एथेन्स के इतिहास में एक गौरवपूर्ण शताब्दी है। जिसके अन्तर्गत एथेन्स ने 'सुकरात' 'प्लैटो' 'अरस्तू' 'जेनोफेन' 'हाईपोक्रेटस' इत्यादि महान् विचारकों को पैदा किया। जिन्होंने दर्शन-शास्त्र राजनीति, समाज शास्त्र विज्ञान इत्यादि सभी विषयों में इतनी मौलिक और महत्वपूर्ण देनें संसार को दीं जो हजारों वर्ष बीत जाने के पश्चात् आज भी संसार का पथ-प्रदर्शन कर रही हैं। इन सब दार्शनिकों का परिचय इनके नामों के साथ इस ग्रन्थ में पढ़ना चाहिए।

पैरिक्लीज के समय में एथेन्स की न्याय व्यवस्था भी बहुत उत्तम थी। वहाँ की राज्यसभा 'एक्लेसिया' के नाम से प्रसिद्ध थी जिसमें ४०० सभासद होते थे। कानून बनाने सन्धि विग्रह करने इत्यादि सब बातों का निर्णय करने का काम यही सभा करती थी।

गुलामी प्रथा

इन सब बातों के होते हुए भी एथेन्स और स्पार्टा में गुलामी प्रथा पूरे जोर-शोर से चालू थी। पराजित देशों के पुरुषों और स्त्रियों को पकड़ कर गुलाम बना लिया जाता था। घर के और खेत के सब काम इनसे निर्दयता पूर्वक कराये जाते थे। शासन और समाज-व्यवस्था में इनका कोई भाग नहीं था। प्लैटो के समान महान दार्शनिक ने भी इन गुलामों के साथ मानवी न्याय का उपयोग नहीं किया। अकेले एथेन्स में इस युग में गुलामों की संख्या ८० हजार थी। आबादी की दृष्टि से प्रति ४ व्यक्तियों के पीछे एक गुलाम था।

पैरिक्लीज के पश्चात् एथेन्स की शासन व्यवस्था बहुत बिगड़ गयी। प्रजातन्त्र के नाम पर वहाँ ३० अत्याचारियों—जिनको 'थर्टी टैरेंट्स' कहा जाता है—का शासन हो गया। इन्हीं के शासनकाल में सुकरात के समान महान् दार्शनिक की हत्या करवा

प्याला पिला कर की गयी। इन्ही के अत्याचारी शासन को देखकर अफलातून प्रजातन्त्र पद्धतिके बहुत विरुद्ध होगया था। जिसके परिणाम स्वरूप अपने महान् ग्रन्थ 'रिपब्लिक' मे उसने जनतन्त्र की कठोर आलोचना की है।

इसके पश्चात् ग्रीस का 'मकदूनिया' नामक राज्य इतिहास के रङ्गमञ्च पर आता है। ईसवी पूर्व ३५६ मे वहाँ पर 'फ़िलिप द्वितीय' नामक शासक का शासन प्रारम्भ होता है। फ़िलिप बडा महत्वाकाक्षी शासक था। इसने ग्रीस के कई नगर-राज्यो को जीत कर 'कोरिन्थ' और 'थीबीज' में अपने सैनिक अड्डे बनाए।

फ़िलिप का पुत्र ससार-प्रसिद्ध विजेता 'सिकन्दर महान्' था। इसका समय ईसवी पूर्व ३३६ से ३२३ तक रहा। सिकन्दर ने प्रारम्भ मे नगर-राज्यो मे बिखरे हुए सारे ग्रीस को अपने झडे के नीचे एकत्रित कर लिया। उसका स्वप्न सारे ससार को एक राज्य और एक सस्कृति मे देखने का था। इस स्वप्न को चरितार्थ करनेके लिए इस महान् विजेता ने अपनी दिग्विजय यात्रा प्रारम्भ की। उस यात्रा मे उसने ईरान के समान विशाल साम्राज्य को पराजित कर मिस्र को जीत कर भारत के एक भाग पर अधिकार कर लिया।

उसके बाद वह बेबीलोनियाँ को विजय करने के लिए गया और वही पर ३३ वर्ष की अवस्था मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसके पश्चात् उसका सारा साम्राज्य उसके तीन सेनापतियो मे बट गया।

सिकन्दर की शक्ति के पतन के साथ ही योरप मे रोमन साम्राज्य का विकास हुआ और रोम ने ग्रीस और मकदूनियाँ को भी ई० पूर्व दूसरी शताब्दी मे अपने साम्राज्य मे मिला लिया। रोमन काल मे भी ग्रीस की साहित्यिक और सास्कृतिक महत्ता ज्यो की त्यों बनी रही।

इसके बाद ग्रीस का इतिहास अपने गौरव की मजिल से उतर कर साधारण गतिसे चलने लगा। जब रोमन-साम्राज्य दो भागो मे विभक्त हो गया तब ग्रीस 'बैजटाइन' साम्राज्य का एक अग हो गया।

उसके बाद जब उस्मानी तुर्कों ने बेजेंटाइन साम्राज्य को पराजित कर कुस्तुन्तुनिया पर अधिकार कर लिया तब ग्रीस भी धीरे-धीरे टर्की-साम्राज्य मे विलीन हो गया।

मगर फ्रास की राज्य क्राति के पश्चात् ग्रीस के उत्साही देशभक्तों ने रूस, ब्रिटेन और फ्रांस की सहानुभूति से तुर्कों के विरुद्ध १० वर्ष तक लम्बा सघर्ष करके तुर्की के जुए को उतार फेंका और सन् १८३२ ई० मे बवेरिया के राजकुमार को 'ओटो प्रथम' के नाम से सम्राट् बनाया। मगर ओटो वहाँ की जनता को सन्तुष्ट न कर सका तब सन् १८४३ ई० मे वहाँ की जनता ने उसके विरुद्ध आन्दोलन करके जनतन्त्रवादी ससदीय परम्परा की स्थापना की। मगर इस परम्परा मे भी सम्राट् के पद को कायम रखा गया। जिसके परिणाम-स्वरूप सन् १८६३ ई० मे डेनमार्क का राजकुमार 'विलियम जार्ज' वहाँ का सम्राट् बनाया गया। मगर साम्राज्य की सारी शक्ति सम्राट् के हाथ से निकल कर जन-प्रतिनिधियो के हाथ मे आ गयी।

इसके बाद ग्रीस मे कभी जनतन्त्र और कभी राजतन्त्र की विजय होती गयी। दूसरे महायुद्ध के समय इटालियन-सेनाओ ने ग्रीस पर आक्रमण किया, मगर इस युद्ध मे ग्रीस ने इटालियन सेनाओ को करारी पराजय दी और उसके २० हजार सैनिको को बन्दी बना लिया। लेकिन कुछ समय बाद जर्मन-सेनाओ ने ग्रीस को रौद डाला।

सन् १९४६ ई० मे द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर ग्रीस मे आम चुनाव हुए। जिसमे अनुदार दलका बहुमत हुआ और सम्राट् जार्ज द्वितीय के भाई 'पाल' को शासनाध्यक्ष बनाया, पर वह भी जमकर शासन न कर सका। और सन् १९४७ ई० से लेकर सन् १९४९ ई० तक वहा पर १० सरकारें बदली।

सन् १९५४ ई० मे 'एथेन्स' और 'साइप्रस' मे ब्रिटिश हस्तक्षेप के विरुद्ध विद्रोह हुआ और उसके पश्चात् १९५९ ई० मे 'लन्दन-ज़्यूरिक' समझौते के अनुसार ग्रीक के शासन मे कुछ स्थिरता आई।

ग्रीस की प्राचीन चित्रकला

यह बतलाने की आवश्यकता नही कि प्राचीन ग्रीस ने चित्रकला, मूर्तिकला, सङ्गीत, साहित्य इत्यादि सभी क्षेत्रो मे बडी अद्भुत प्रगति की थी।

प्राचीन ग्रीस की खुदाइयो मे जो मिट्टी के बर्तन, फूलदान, शराब के प्याले इत्यादि अभी उपलब्ध हुए हैं उन पर की गयी चित्रकारी को देख कर यह मालूम होता है कि उस

वीरत्व का भाव जागृत रखने और उत्तम सन्तान पैदा करने के लिए कई विशेष नियमों की व्यवस्था की गयी थी। इस व्यवस्था के अनुसार—

(१) स्पार्टा में किसी बच्चे के पैदा होते ही उसकी शारीरिक शक्ति की परीक्षा के लिए उसे शराब में स्नान कराया जाता था। इसके बाद भी वह बच्चा यदि बच जाता तो उसकी और शारीरिक परीक्षाएँ करके माता-पिताओं से उस बच्चे को लेकर उसके पालन-पोषण का भार राष्ट्र अपने ऊपर ले लेता था।

दुर्बल और कमजोर बच्चों को 'अपोथेटी' नामक गुफा में फेंक दिया जाता था। तीन दिन बाद फिर उसको वहाँ देखने के लिए जाते थे और यदि वह बच्चा वहाँ जीवित मिल जाता तो उसे वापस लाते थे।

(२) सब बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ति माने जाते थे। उनका पालन-पोषण राष्ट्र की ओर से किया जाता था। और उनके शारीरिक संगठन और मानसिक विकास की पूर्ण व्यवस्था राष्ट्र की ओर से की जाती थी।

(३) हर एक व्यक्ति के विवाह अनिवार्य समझा जाता था। अविवाहित पुरुष निन्दा के पात्र होते थे।

(४) पति-पत्नी सुंदर तथा स्वस्थ सन्तानें पैदा करने के लिए एक दूसरे की आज्ञा लेकर अन्य पुरुषों और स्त्रियों से भी संगम कर सकते थे। इस प्रकार से पैदा हुई सन्तान वहाँ पर साधारण पैदा हुई सन्तान की अपेक्षा विशेष आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। पतिव्रत और पत्नीव्रत का कोई मूल्य नहीं था।

(५) वहाँ के लोग हल्के बाल रखते थे। नंगे पैर रहते थे और सादे वस्त्र पहनते थे। साज शृंगार करना वहाँ पाप समझा जाता था। इसी प्रकार संगीत नाट्य नृत्य इत्यादि कलाओं पर भी कड़ी प्रतिबन्ध था।

इन प्रतिबन्धों की वजह से स्पार्टा के अंदर सैनिक शक्ति का बहुत अधिक विकास हुआ। और एथेन्स के साथ स्पार्टा के संघर्ष भी कई बार हुए। ये संघर्ष पेलोपोनेशियन संघर्ष के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हैं। इन संघर्षों में पहला संघर्ष ईसवी पूर्व ४३१ दूसरा संघर्ष ईस्वी पूर्व ४१३ और तीसरा संघर्ष ई० पूर्व ४१३ में हुआ। ये संघर्ष कई-कई वर्षों तक चलते रहे और इसमें एथेन्स को पराजय का मुँह भी देखना पड़ा और उसकी धनहानि भी बहुत हुई।

पैरेक्लीज युग

पर इस युग में एथेन्स को 'पैरेक्लीज' नामक महान् नेता भी प्राप्त हुआ जिसने अपनी योग्यता उदारता और चतुराई के बल पर एथेन्स में एक स्वर्ण युग की स्थापना की। पैरेक्लीज की शताब्दी एथेन्स के इतिहास में एक गौरवपूर्ण शताब्दी है। जिसके अन्तर्गत एथेन्स ने 'सुकरात' 'प्लैटो' 'अरस्तू' जेनोफेन 'हिपोक्रेटिस' इत्यादि महान् विचारकों को पैदा किया। जिन्होंने दर्शन-शास्त्र राजनीति, समाज शास्त्र विज्ञान इत्यादि सभी विषयों में इतनी मौलिक और महत्वपूर्ण देनें संसार को दीं जो हजारों वर्ष बीत जाने के पश्चात् आज भी संसार का पथ-प्रदर्शन कर रही हैं। इन सब दार्शनिकों का परिचय इनके नामों के साथ इस ग्रन्थ में पढ़ना चाहिए।

पैरेक्लीज के समय में एथेन्स की न्याय व्यवस्था भी बहुत उत्तम थी। वहाँ की राज्यसभा 'एक्लेसिया' के नाम से प्रसिद्ध थी जिसमें ४०० सभासद होते थे। कानून बनाने सन्धि-विग्रह करने इत्यादि सब बातों का निर्णय करने का काम यही सभा करती थी।

गुलामी प्रथा

इन सब बातों के होते हुए भी एथेन्स और स्पार्टा में गुलामी प्रथा पूरे जोर-शोर से चालू थी। पराजित देशों के पुरुषों और स्त्रियों को पकड़ कर गुलाम बना लिया जाता था। घर के और खेत के सब काम इनसे निर्दयता-पूर्वक कराये जाते थे। शासन और समाज-व्यवस्था में इनका कोई भाग नहीं था। प्लेटो के समान महान दार्शनिक ने भी इन गुलामों के साथ मानवी न्याय का बरताव नहीं किया। कहते हैं एथेन्स में इस युग में गुलामों की संख्या ८० हजार थी। आबादी की दृष्टि से प्रति ४ व्यक्तियों के पीछे एक गुलाम था।

पैरेक्लीज के पश्चात् एथेन्स की शासन व्यवस्था बहुत बिगड़ गयी। प्रजातन्त्र के नाम पर वहाँ ३० आततायियों—जिनको 'थर्टी टेरेंट्स' कहा जाता है—का शासन हो गया। इन्हीं के शासनकाल में सुकरात के समान महान् दार्शनिक को इतना बड़ा

अपनी नीति मूलक कविताओं में भी होमर के वीर-छन्द का अनुकरण किया है पर उसने अपनी कविताओं में उच्च और सम्भ्रान्त वर्ग का चित्रण न कर किसानों और मजदूरों के जीवन का चित्रण किया है। अपनी 'थियोगोनी' में उसने ग्रीक पौराणिक विश्वासों का अध्ययन किया। इसकी रचनाओं का भी आने वाली पीढ़ी पर काफी प्रभाव पड़ा।

ईसा से पूर्व सातवीं सदी में यूनान के अन्तर्गत नगर राज्यों का उदय हुआ। इन नगरराज्यों में कहीं राजतन्त्र कहीं गणतन्त्र और कहीं प्रजातन्त्र की स्थापना हुई।

साहित्य और कविता पर इस बदली हुई राजनैतिक परिस्थिति का प्रभाव पड़ा। और कविता के क्षेत्र में इसके फलस्वरूप 'लिरिक' काव्य का जन्म हुआ। यद्यपि धार्मिक क्षेत्र में अभी भी वीर छन्द का काफी प्रयोग होता था।

इन लिरिक काव्यों की प्रधान विशेषता यह थी कि इनकी भाषा अलङ्कार पूरक न होकर सरल सहज और बोध गम्य होती थी। और इसी भाषा में प्रणय और विरह, आनन्द और विषाद संयोग और वियोग सभी भावनाओं को बड़ी खूबी और सुन्दरता के साथ चित्रण किया जाता था। ये लिरिक दो प्रकार के होते थे। एक व्यक्ति के द्वारा गाये जाने वाले लिरिक 'सोलो' और कई व्यक्तियों के द्वारा गाये जाने वाले लिरिक 'कोरस' कहलाते थे।

सैफो—ईसा से पूर्व सातवीं सदी के मध्य में लिरिक काव्य के क्षेत्रमें सफो नामक महिला बड़ी प्रसिद्ध हुई। इसका समय ईसा से ६१२ वर्ष पूर्व के आस पास था। यह नारी प्रेम की देवी अफ्रोदिते की परम भक्त थी और उसी की स्तुति के लिए यह अपनी नई महिला साथिनियों के साथ मधुर स्वर में वातावरण को कम्पित करती हुई लिरिकों का गायन करती हुई दूर दूर घूमती रहती थी। इसके जीवन के साथ उस समय की प्रथा के अनुसार कई अलौकिक कहानियाँ भी जुड़ी हुई हैं। इसकी भाषा में आध्यात्मिकता और प्रेरणा का झरना बहता था। पिंडोर लिरिक करीब पचास वर्ष या उससे अधिक समय तक ग्रीक कविता के प्रणयाग्रणी रहे।

इसी युग में 'एनिक्रयन' अनाक्रियन 'काम्पस' इत्यादि और भी कई लिरिककार हुए।

इसके बाद ई० पू० पाँचवीं सदी में ज्ञान विज्ञान की धारा यूनान के प्रसिद्ध नगर एथेन्स में आकर केन्द्रित हो गई। एथेन्स में नाटक, दर्शन शास्त्र चित्रकला इतिहास सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति हुई।

एस्किलस—यूनान में ट्रेजिडी नाटकों का सबसे पहला प्रवर्तक एस्किलस माना जाता है। हालांकि इससे पहले भी 'थेस्पिस' नामक व्यक्ति ने ग्रीक ट्रेजिडी को प्रारम्भिक रूप दे दिया था। एस्किलस का समय ई० पू० ५२५ से ई० पू० से ४५५ तक था। एस्किलस ने प्राचीन पौराणिक आख्यानों और वीर काव्यों के आधार पर अपने दुःखान्त नाटकों की रचना की। उसने ईरानी सम्राट जरक्सीज की यूनानियों द्वारा की गई पराजय पर 'परशियन' नामक एक नाटक की रचना की थी। इन नाटकों को उस समय 'ट्रिलोजी' कहा जाता था।

सोफोक्लीज—ग्रीक नाटक-कला में 'एस्किलस' का विकास सोफोक्लीज में हुआ। सोफोक्लीज का समय ई० पू० ४९७ से ई० पू० ४०५ तक था। एस्किलस ने अपने नाटकों में जहाँ सार्वदेशिक नैतिक सिद्धान्तों को अपना आदर्श बनाया वहाँ सोफोक्लीज ने अपने नाटकों में पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और नाना प्रकार के भावावेशों का चित्रण करने में बहुत सफलता प्राप्त की। इसके अतिरिक्त कथावस्तु की एकता भाषा का सौन्दर्य चरित्र चित्रण की स्वाभाविकता और नाट्यकला की सुरुचि की दृष्टि से भी इसकी रचनाएँ एस्किलस से आगे बढ़ी हुई थीं। कई विद्वानों ने आज के नाटककार भी इसकी महत्ता को स्वीकार करते हैं।

यूरिपिडीस—प्राचीन ग्रीक नाट्य क्षेत्रमें तीसरा नाटककार यूरिपीडीज हुआ। इसका समय ई० पू० ४८५ से ई० पू० ४०६ तक था। यह भी सोफोक्लीज का समकालीन था। इसने एस्किलस और सोफोक्लीज की परम्परागत प्रणाली को छोड़ कर ग्रीक नाट्यकला में एक नवीन पद्धति का प्रारम्भ किया। इसने अपने नाटकों में मानव-भावावेशों और मानव हृदयमें उठने वाली प्रेम घृणा ईर्ष्या धार्मिक आवेग इत्यादि भावनाओं का मर्मस्पर्शी चित्रण करना प्रारम्भ कर तत्कालीन नाट्यकला को एक नया मोड़ दे दिया। इसीलिए यूरिपिडिस ग्रीक साहित्य में अपने समकालीन नाटककारों से आगे बढ़ गया। इसने १७ ट्रेजिडी नाटक और व्यङ्ग नाटकों की रचना की। इन नाटकों में 'मीडिया' के प्रतिशोध घृणा की भावनाओं का 'फीड्रा' में प्रेम की भावनाओं का

ग्रौर ग्रागावे मे मनुष्य की धार्मिक सङ्कीर्णता की भावनाग्रो का ग्रच्छा चित्राकन हुग्रा है।

ग्ररिस्टोफेनिस – ग्रीक नाट्यकला मे ट्रेजिडी के साथ-साथ कॉमेडी (सुखान्त) नाटको का भी निर्माण हुग्रा। ग्ररिस्टोफेनिस सुखान्त नाटको का रचनाकार था। इसकी ग्यारह कॉमेडी इस समय उपलब्ध हैं। इसका समय ई० पू० ४५०से ई०पू० ३८५ तकका था। यह वह समय था जब एथेन्स ग्रौर स्पार्टा के बीच भयकर सघर्ष (पेलोपोनेसियन वार) चल रहे थे। इसने ग्रपने इन नाटको मे युद्धलोलुप शक्तियो पर प्रवल प्रहार करते हुए शान्ति के पक्ष का समर्थन किया है।

मिनाण्डर—ग्रीक कॉमेडी का दूसरा सफल नाटककार मिनाण्डर था। इसका समय ई० पू० ३४२ से ई०पू० २९१ तक था। इसने तत्कालीन कॉमेडी को भाण्डो की नकल से उठाकर एक व्यवस्थित रूप दिया। इन नाटको मे उसने दैवी चित्रो का चित्रण बन्द करके, मानवीय चित्रो का स्वाभाविक चित्रण कर सामाजिक जीवन के यथार्थरूप का निरूपण प्रारम्भ किया।

मनुष्य के सामाजिक जीवन के विकास के लिए साहित्य ग्रौर कला की तरह वक्तृत्वशक्ति की भी ग्रत्यन्त ग्रावश्यकता होती है। सामाजिक जीवन के विकास ग्रौर क्रान्ति मे साहित्य ग्रौर कला का जहाँ किसी हद तक ग्रप्रत्यक्ष योगदान होता है वहाँ जोशीली ग्रौर गम्भीर वक्तृताग्रो के द्वारा प्रत्यक्ष रूप मे जनसमाज के मानस को वदल दिया जा सकता है। नेताग्रो की प्रभावशाली वक्तृताग्रो से वडी-वडी क्रान्तिया उत्पन्न होती है।

प्राचीन ग्रीस मे भी वक्तृत्वकला का काफी विकास हुग्रा। इस कला का विकास करने के लिए वहाँ पर 'ग्रोरेटरी' नामक प्रभावशाली सस्था की स्थापना की गई थी। इसका सस्थापक ईसाक्रेटीज नामक वक्ता था। इस सस्था मे तीन प्रकार की वक्तृताग्रो का ग्रभ्यास कराया जाता था। (१) न्यायालय मे वहस करते समय कानूनी तथ्यो को सजीव भाषा मे वर्णन करना (२) राजनीति के रगमच की वक्तृता ग्रौर (३) धार्मिक उत्सवो की वक्तृता।

ग्रीस मे उस समय के सुप्रसिद्ध वक्ताग्रो मे 'एण्टिफोन' "लिमियस" 'डिमास्थनीज" इत्यादि के नाम वहुत प्रसिद्ध हैं। इनमे एण्टिफोन कानूनी क्षेत्र की वक्तृताग्रो के सम्वन्ध मे ग्रौर डिमास्थेनीज, राजनैतिक वक्तृताग्रो के क्षेत्रमे वहुत प्रसिद्ध थी। उसने मकदूनिया के राजा फिलिप (सिकन्दर महान् का पिता) के द्वारा ग्रीक नगरराज्यो पर किये हुए प्रहार से व्याकुल होकर ग्रीक जनता के राष्ट्रीय जागरण के लिए वक्तृता की। जिस परम्परा को उसने जन्म दिया वह ससार के इतिहास मे वेजोड मानी जाती है।

दर्शन शास्त्र ग्रौर राजनीति के क्षेत्र मे भी उस समय के यूनान ने ससार को ग्रत्यन्त महत्व पूर्ण ग्रौर महान् सामग्री प्रदान की जो हजारो वर्ष बीत जाने पर भी ग्राज तक राजनीति के क्षेत्र मे प्रकाश-स्तम्भ का काम करती है।

इन क्षेत्रो मे सुकरात, प्लेटो, ग्ररिस्टोटल, एपीक्यूरियस इत्यादि नाम ग्राज भी ससार के इतिहास मे प्रकाशमान नक्षत्रो की तरह चमक रहे हैं।

प्लेटो की महान् कृति 'रिपब्लिक' ग्रौर ग्ररिस्टोटल की 'पालिटिक्स' राजनीति के क्षेत्र मे ग्राज भी नीव के पत्थर का काम कर रही है। ग्ररिस्टोटल ने जीवन-दर्शन के सभी ग्रगो पर गम्भीर ग्रध्ययन करके ग्रपने विचारो की रचना की। (प्लेटो ग्रौर ग्ररिस्टोटलका विस्तृत वर्णन इस ग्रथके प्रथम खड मे "ग्रफलातून" ग्रौर "ग्ररस्तू" नाम के ग्रन्तर्गत देखें ग्रौर "एपीक्यूरियस" का परिचय दूसरे खण्ड मे "एपीक्यूरियस" नाम के साथ देखें।)

महान् सिकन्दर की विश्वव्यापी विजयो के पश्चात् एथेंस के ज्ञान विज्ञान का क्षेत्र मिस्र मे सिकदर के द्वारा नवनिमित "सिकन्दरिया" नामक नगर मे ग्रा गया। सिकन्दर के सेनापति मिस्र के शासक 'टॉलेमी' ज्ञान, विज्ञान ग्रौर कला का वडा शौकीन था। उसने सिकन्दरिया मे तत्कालीन ससार के सवसे वडे पुस्तकालय की स्थापना की। यह पुस्तकालय उस समय ससार का सब से वडा पुस्तकालय था। इसी पुस्तकालय के ग्रन्दर ज्ञान ग्रौर विज्ञान की खोज के लिए उसने एक ऐकेडमी या शोधकेन्द्र की भी स्थापना की। वह विद्वानो का वडा ग्राश्रयदाता था। उसकी कीर्ति को सुनकर ऐथेन्स के ग्रनेको विद्वान सिमट कर सिकन्दरिया मे ग्रा गये।

इस युग मे ग्रीक साहित्य मे कालीमेकस ग्रौर ग्रपोलोनियस के नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये दोनो साहित्यकार परस्पर विरोधी परम्पराग्रो के ग्रनुयायी थे। ग्रपोलोनियस

और आगावे मे मनुष्य की धार्मिक सङ्कीर्णता की भावनाओ का अच्छा चित्राकन हुआ है ।

अरिस्टोफेनिस – ग्रीक नाट्यकला मे ट्रेजिडी के साथ-साथ कॉमेडी (सुखान्त) नाटको का भी निर्माण हुआ । अरिस्टोफेनिस सुखान्त नाटको का रचनाकार था। इसकी ग्यारह कॉमेडी इस समय उपलब्ध हैं । इसका समय ई० पू० ४५०से ई०पू० ३८५ तकका था । यह वह समय था जब एथेन्स और स्पार्टा के बीच भयकर सघर्ष (पेलोपोनेसियन बार) चल रहे थे । इसने अपने इन नाटको मे युद्धलोलुप शक्तियो पर प्रवल प्रहार करते हुए शान्ति के पक्ष का समर्थन किया है ।

मिनाण्डर—ग्रीक कॉमेडी का दूसरा सफल नाटककार मिनाण्डर था । इसका समय ई० पू० ३४२ से ई०पू० २९१ तक था । इसने तत्कालीन कॉमेडी को भाण्डो को नकल से उठाकर एक व्यवस्थित रूप दिया । इन नाटको मे उसने दैवी चित्रो का चित्रण बन्द करके, मानवीय चित्रो का स्वाभाविक चित्रण कर सामाजिक जीवन के यथार्थरूप का निरूपण प्रारम्भ किया ।

मनुष्य के सामाजिक जीवन के विकास के लिए साहित्य और कला की तरह वक्तृत्वशक्ति की भी अत्यन्त आवश्यकता होती है । सामाजिक जीवन के विकास और क्रान्ति मे साहित्य और कला का जहाँ किसी हद तक अप्रत्यक्ष योगदान होता है वहाँ जोशीली और गम्भीर वक्तृताओ के द्वारा प्रत्यक्ष रूप मे जनसमाज के मानस को वदल दिया जा सकता है । नेताओ की प्रभावशाली वक्तृताओ से बडी-बडी क्रान्तिया उत्पन्न होती है ।

प्राचीन ग्रीस मे भी वक्तृत्वकला का काफी विकास हुआ। इस कला का विकास करने के लिए वहाँ पर 'ओरेटरी' नामक प्रभावशाली सस्था की स्थापना की गई थी । इसका सस्थापक ईसाक्रेटीज नामक वक्ता था । इस सस्था मे तीन प्रकार की वक्तृताओ का अभ्यास कराया जाता था । (१) न्यायालय मे वहस करते समय कानूनी तथ्यो को सजीव भाषा मे वर्णन करना (२) राजनीति के रगमच की वक्तृता और (३) धार्मिक उत्सवो की वक्तृता ।

ग्रीस मे उस समय के सुप्रसिद्ध वक्ताओ मे 'एण्टिफोन' "लिसियस" 'डिमास्थेनीज" इत्यादि के नाम वहुत प्रसिद्ध हैं । इनमे एण्टिफोन कानूनी क्षेत्र की वक्तृताओं के सम्बन्ध मे और डिमास्थेनीज, राजनैतिक वक्तृताओ के क्षेत्रमे बहुत प्रसिद्ध थी । उसने मकदूनिया के राजा फिलिप (सिकन्दर महान् का पिता) के द्वारा ग्रीक नगरराज्यो पर किये हुए प्रहार से व्याकुल होकर ग्रीक जनता के राष्ट्रीय जागरण के लिए वक्तृता की । जिस परम्परा को उसने जन्म दिया वह ससार के इतिहास मे बेजोड मानी जाती है ।

दर्शन शास्त्र और राजनीति के क्षेत्र में भी उस समय के यूनान ने ससार को अत्यन्त महत्व पूर्ण और महान् सामग्री प्रदान की जो हजारो वर्ष बीत जाने पर भी आज तक राजनीति के क्षेत्र मे प्रकाश-स्तम्भ का काम करती है ।

इन क्षेत्रो मे सुकरात, प्लेटो, अरिस्टोटल, एपीक्यूरियस इत्यादि नाम आज भी ससार के इतिहास मे प्रकाशमान नक्षत्रो की तरह चमक रहे हैं ।

प्लेटो की महान् कृति 'रिपब्लिक' और अरिस्टोटल की 'पालिटिक्स' राजनीति के क्षेत्र मे आज भी नीव के पत्थर का काम कर रही है । अरिस्टोटल ने जीवन-दर्शन के सभी अगो पर गम्भीर अध्ययन करके अपने विचारो की रचना की । (प्लेटो और अरिस्टोटलका विस्तृत वर्णन इस ग्रथके प्रथम खड मे "अफलातून" और "अरस्तू" नाम के अन्तर्गत देखें और "एपीक्यूरियस" का परिचय दूसरे खण्ड मे "एपीक्यूरियस" नाम के साथ देखें ।)

महान् सिकन्दर की विश्वव्यापी विजयो के पश्चात् एथेंस के ज्ञान विज्ञान का क्षेत्र मिस्र मे सिकदर के द्वारा नवनिर्मित "सिकन्दरिया" नामक नगर मे आ गया । सिकन्दर के सेनापति मिस्र के शासक 'टॉलेमी' ज्ञान, विज्ञान और कला का बडा शौकीन था । उसने सिकन्दरिया मे तत्कालीन ससार के सबसे बडे पुस्तकालय की स्थापना की । यह पुस्तकालय उस समय ससार का सब से बडा पुस्तकालय था । इसी पुस्तकालय के अन्दर ज्ञान और विज्ञान की खोज के लिए उसने एक ऐकेडमी या शोधकेन्द्र की भी स्थापना की । वह विद्वानो का बडा आश्रयदाता था । उसकी कीर्ति को सुनकर ऐथेन्स के अनेको विद्वान सिमट कर सिकन्दरिया मे आ गये ।

इस युग मे ग्रीक साहित्य मे कालीमेकस और अपोलोनियस के नाम विशेष उल्लेखनीय है । ये दोनो साहित्यकार परस्पर विरोधी परम्पराओ के अनुयायी थे । अपोलोनियस

पायथागोरस ग्रौर उसके अनुयायियो पर बडे अत्याचार हुए। उनके भवनों मे आग लगा दी गयी।

पायथागोरस अकगणित और ज्यामेट्री का बडा भारी विद्वान था। उसके सिद्ध किये हुए रेखागणितीय प्रमेय 'पायथागोरस-प्रमेय' के नाम से प्रसिद्ध हैं। हालांकि इन प्रमेयो को उससे भी पहले भारत के गणितज्ञो ने सिद्ध कर लिये थे।

इराटोस्थेनीज—यह भी यूनान का एक प्रसिद्ध गणितज्ञ था। इसका समय ई० पू० २७६ से ई० पू० १९४ तक था। इसने अविभाज्य सख्याओ (Prime Numbers, को निकालने की एक विधि का आविष्कार किया। यही विधि अक गणित को उसकी सबसे बडी देन थी। यह विधि सीव ऑफ इराटोस्थेनीज (Sieve of Eratosthenes) के नाम से प्रसिद्ध है। इराटोस्थनीज को गणितीय भूगोल का जन्मदाता भी कहते हैं। उसीने शायद पृथ्वी के व्यास और परिधि का नाप सबसे पहले दिया।

आर्कीमेडीज—यह भी यूनान का एक सुप्रसिद्ध गणित शास्त्री था। अक-गणित और रेखा-गणित के क्षेत्र मे उसके अनुसधान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसने मिलावट किये हुए सोने मे से असली सोने का वजन उसे पानी मे तौल कर निकालने की विधि का आविष्कार किया।

एपोलोनियस—अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कॉनिक्स (Conics) की वजह से रेखा-गणित के क्षेत्र मे यह अमर हो गया। इसका जन्म ई० पू० २६२ के लगभग हुआ था।

हिपाक्रेटिज—इसका समय ई० पू० ५ वी शताब्दी मे माना जाता है। ज्यामेट्री के क्षेत्र मे इसका भी नाम बहुत प्रसिद्ध है।

आर्काइटिस—इसका समय ई० पू० ४२९ से ई० पू० ३४७ तक माना जाता है। यह पाइथागोरस सम्प्रदाय का माना जाता था। गणितकार के साथ ही यह बहुत बडा दार्शनिक और नीतिशास्त्री भी था।

यूक्लिड—रेखा गणित के क्षेत्र मे यूक्लिड का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसका समय ई०पू० ३०० के आसपास था। इसके सिद्धान्त रेखा-गणित के क्षेत्र मे अभी भी बहुत मान्य समझे जाते हैं। यूक्लिडके सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'एलीमेंट्स (Elements) के सन् १८८२ ई० से लेकर अभी तक करीब एक हजार सस्करण निकल चुके थे। इसी प्रकार त्रिकोणमिति गणित के अन्दर 'हरोन' (Heron) मेनीलॉज (Menolaus) के नाम विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

ग्रीक-ज्योतिष

प्राचीन यूनान ने गणित-शास्त्र की तरह ही ज्योतिष शास्त्र के इतिहास मे भी कई महत्वपूर्ण प्रतिभाओ को पैदा किया। इनमे 'पायथागोरस' और 'अपोलोनियस' का परिचय हम ऊपर दे चुके है।

ईसवी पू० ३२० से ई० पू० २६० तक 'अरिष्टीलस' और 'टिमोरिस' ने तारो की स्थितियां नाप कर तारो की सूचियां बनाई।

मगर यूनानी ज्योतिष के इतिहास मे 'हिपार्कस' और 'टालमी' के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। हिपार्कस का समय ई० पू० दूसरी शताब्दी मे समझा जाता है। हिपार्कस ने ज्योतिष के प्रमुख ध्रुवाको को निर्धारित कर दिया था। उसने नक्षत्र वर्षों की लम्बाइयाँ, चान्द्रमास की लम्बाई, ५ ग्रहो के सयुतिकाल, रविमार्ग का तिरछापन इत्यादि विषयो पर अपने अनुसन्धान किये थे। हिपार्कस के आविष्कारो मे 'अयन' का पता लगाना अत्यन्त महत्वपूर्ण था। जब वसन्त ऋतु मे दिन रात बराबर होते हैं तब खगोल पर तारो के बीच सूर्य की स्थिति को 'वसन्त-विपुव' कहते हैं। वसन्त विषुव तारो के बीच स्थिर नहीं रहता। वह चलता रहता है। इसी चलने की क्रिया को अयन कहते हैं।

हिपार्कस ने तारो की भी सूची बनाई थी जिसमे लगभग ८५० तारो का उल्लेख था और इसमे प्रत्येक तारे की स्थिति भोगाश (लांजीट्यूट) और शर (लेटीट्यूड) लेकर बतलाई गयी थी।

टालमी-मगर ग्रीक ज्योतिष शास्त्र के इतिहास मे टालमी का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। कुछ लोग इसको मिस्र देश के अलेक्झेंड्रिया का निवासी बताते हैं और कुछ लोग टालेमेइ नामक यूनानी नगर का निवासी बताते हैं। इसका समय ईसा की दूसरी शताब्दी मे माना जाता है। सन् १२७ से १५१ तक इसने अलेक्झेंड्रिया की वेधशाला मे वेध का कार्य किया। इसका सुप्रसिद्ध ग्रथ, जिसने इसके नाम को गणित-शास्त्र और ज्योतिष-शास्त्र के इतिहास मे अमर कर

के नाम से प्रसिद्ध था। क्योंकि इस नगर और इसके आस पास के कुछ भाग को महाराज युधिष्ठिर ने अपने गुरु द्रोणाचार्य को गुरुदक्षिणा मे दे दिया था और यही पर द्रोणाचार्य ने पाण्डवो और कौरवो को धनुर्विद्या मे पारङ्गत किया था।

मुसलमानी काल मे यह जिला 'मेवात' के नाम से प्रसिद्ध था। क्योंकि यहाँ पर मेवात जाति के लोग रहते थे। और ये दिल्ली तथा आस पास के स्थानों मे लूट मार किया करते थे। सन् १८०३ मे लार्डलेक की विजय के बाद यह जिला अंग्रेजो के अधिकार में आया।

सन् १८५७ मे विद्रोह के समय फर्रुखनगर के नवाब ने विद्रोहियो का साथ दिया तब मेवात जाति और यहाँ के राजपूतो ने भी उनका साथ दिया। सन् १८५८ मे नवाब की सारी सम्पत्ति अंगरेजो ने जब्त कर ली।

सन् १७८३ से लेकर सन् १८६९ तक इस जिले मे जल की कमी से ७ भयङ्कर दुर्भिक्ष पडे। जिसमे सन् १७८३ के दुर्भिक्ष की भयङ्करता का वर्णन तो अभी भी किम्बदन्तियो के रूप में होता है।

इस जिले मे फरीदाबाद इस समय सबसे बडा औद्योगिक केन्द्र है। यहाँ पर कई प्रकार के छोटे बडे उद्योग स्थापित हो गए हैं। इसके अतिरिक्त रेवाडी मे धातु के बर्तन, हसनपुर में दरी, गलीचे और कम्बल, फिरोजपुर फिरका मे लोहे के सामान और सोहना में चूडियो के उद्योग स्थापित हैं।

इस जिले के प्रधान नगरो मे फरीदाबाद, रेवाडी और गुडगाव प्रमुख है। जिले की कुल जलसख्या १२,४०,७०६ और यहा का क्षेत्रफल २३६७ वर्गमील है।

गुड़िया

लडके और लडकियो के प्रतिरूप मे बनाये हुए छोटे खिलौने। जो बिल्कुल बालक और बालिकाओंके छोटे-छोटे रूप मे बनाये जाते हैं। लडकी की प्रतिकृति को गुडिया और लडके की प्रतिकृति का गुड्डा कहा जाता है।

भारतवर्ष के कई प्रान्तो मे छोटे-छोटे बालक गुड्डे और गुडिया को सजा-सजा कर परस्पर उनका विवाह रचाते हैं। ऐसे विवाहों के द्वारा उन्हें गृहस्थाश्रम, को कई बातो का जैसे घर सजाना, शृङ्गार करना इत्यादि बातो का प्रारभिक ज्ञान होता है। गुडिया वाली पार्टी गुड्डे की पार्टी को खिलाती, पिलाती तथा दहेज वगैरह देकर, वैसा ही आचरण करती है जैसा शादी के समय होता है।

गुडिया का यह खेल बहुत प्राचीन काल से संसार की सभी सभ्यताओ मे किसी न किसी रूपमे चलता रहा हैं। और चीजो की तरह गुडिया का प्रचार भी सबसे पहले भारतवर्ष मे होने के प्रमाण पाये जाते हैं। 'मोहन जोदडो' और 'हडप्पा' की खुदाई मे बहुत सी गुडियाएँ प्राप्त हुई हैं जिनका समय यहा की सभ्यता के समय के साथ-साथ ही माना जा सकता है, जो कि ईसासे ५ हजार वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है।

इसी प्रकार 'कौशाम्बी' 'पटना' 'मथुरा' इत्यादि प्राचीन राजधानियो में भी मौर्य्य, कुषाण और सातवाहन युगों की मिट्टी की बनाई हुई गुडियाएँ प्राप्त हुई हैं।

भारत की ही तरह प्राचीन मिस्र, यूनान और रोम मे भी ईसा से एक हजार वर्ष पूर्व से लेकर ईसा से पूर्व चार सौ वर्ष तक की गुडियाएँ पाई गयी हैं। भारतवर्ष की तरह रोम और यूनान की लडकियां भी अपनी शादी से पहले गुडियाओ से खेलती थी।

मध्य युग मे फ्रास के अन्दर गुडियाओ के खेल का विशेष रूप से प्रचार हुआ। सन् १३९० ई० मे इग्लैंड की रानी को भिन्न भिन्न पोशाको मे सजी हुई फ्रास की अनेक गुडियाएँ भेंट की गयी थी। इग्लैंड की सम्राज्ञी विक्टोरिया के पास भी भिन्न-भिन्न प्रकार की गुडियाओ का बहुत बडा सग्रह था।

ईसा की १५ वी शताब्दी मे जर्मनी का 'नूरेम्बर्ग' नगर गुडियाओ और उनके घरौंदोके लिए प्रसिद्ध था। उस समयकी गुडियाएँ और घरौंदे अभी भी जर्मनी और इग्लैंड के कई सग्रहालयो मे सुरक्षित हैं।

आधुनिक युग मे तो अब जर्मनी, अमेरिका, इग्लैंड, जापान इत्यादि देशो में खाती-पीती और रोने गाने वाली गुडियाएँ बनने लग गयी हैं। ये गुडियाएँ मिट्टी और लकडी की जगह प्लास्टिक, रबर, चीनी और कांच की भी बनाई जाती हैं।

ऐसा मालूम होता है कि भारतवर्ष मे गुड्डे और गुड़िया का खेल बालको को वैवाहिक जीवन का पूर्वरूप और गृहस्थाश्रम की पूर्व शिक्षा देने के लिए निर्मित किया गया था। इन

जिसको जैनाचार्यों ने अपने धर्म की रक्षा करने के कारण 'धर्मादित्य' की उपाधि दे दी थी—बडा प्रतापी राजा था। यह राजा 'ध्रुवसेन द्वितीय' का पुत्र और उत्तराधिकारी था।

जैनाचार्य धनेश्वर सूरि और मल्लसूरि शिलादित्य के समकालीन थे और उन्होने शिलादित्य को बौद्ध-आचार्यो के प्रभाव से निकाल कर जैन-धर्म के प्रति श्रद्धालु बना लिया था।

शिलादित्य प्रथमके पश्चात् उसका भतीजा 'ध्रुवसेन द्वितीय' वल्लभी की गद्दी पर बैठा। इसके साथ कन्नौज के सम्राट् हर्ष वर्धन की पुत्री का विवाह हुआ था। अपने श्वसुर के प्रभाव से इस राजा ने 'महायानी' बौद्ध-धर्म को ग्रहण कर लिया था। उस समय वल्लभी नगरी बौद्ध धर्म का एक विशाल केन्द्र बनी हुई थी। सन् ६९५ ई० मे चीनी यात्री 'इत्सिंग' ने अपने यात्रा वर्णन मे लिखा है कि वल्लभी नगरी उस समय 'नालन्दा' की तरह ही बौद्ध धर्म का प्रधान केन्द्र बनी हुई थी। इस शताब्दी मे गुणमति, स्थिरमति, जयसेन इत्यादि प्रमुख बौद्धाचार्य वल्लभी मे हुए।

इसके बाद इसवी सन् ७७० के करीब सिन्धु देश के मुसलमान शासक अमर-बिन-जमाल ने वल्लभी पर आक्रमण करके राजा 'शिलादित्य षष्ठ' को मार डाला और वल्लभी को लूट खसोट कर नाश कर दिया।

वल्लभी नगर के खण्डहरो में काले पत्थरो की बनी हुई शिवजी और नन्दी बैलो की कितनी ही मूर्तियाँ पाई जाती हैं। ये मूर्तिया आकार मे बहुत बडी-बडी हैं। इससे पता चलता है कि इन राजाओका राजधर्म शैव था मगर जैन धर्म के प्रति भी इनकी अटूट श्रद्धा थी।

जैन परम्पराओ के अनुसार वल्लभी नगरी के विनाश का समय ईसवी सन् ३१९ के करीब था, तभी से वल्लभी सबत्सर चला। इस प्रकार इन दोनो समयो में करीब ४॥ सौ वर्षों का अन्तर पडता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वल्लभी सम्वत् का प्रारम्भ वल्लभी के नाश से नही, बल्कि वल्लभी-राजवश की स्थापना के समय से हुआ होगा।

चावड़ा-राजवंश

वल्लभी का नाश होने के पश्चात् कुछ समय तक गुजरात देश सौराष्ट्र के 'सैन्धव' भडोच के 'गुर्जर' सौरमण्डल के 'वराह' लाट के 'चालुक्य' और अनहिलवाडे के 'चावडा' इत्यादि छोटे-छोटे राज्यो मे बटा हुआ था।

मगर इसी समय पञ्चासर के 'जयशेखर' चावडा के पुत्र 'वनराज' चावडा ने एक नवीन राज्य की स्थापना कर ईसवी सन् ७४६ मे 'अणहिलपुर' नामक सुप्रसिद्ध नगर को बसा कर वहाँ पर अपनी राजधानी बनाई।

राज्य-स्थापन के पूर्व वनराज का लालन-पालन जगल मे हुआ था और जैनाचार्य 'शीलाक सूरि',के उपाश्रय मे इसका बाल्यकाल व्यतीत हुआ था। उसकी माता 'रूपसुन्दरी' भी धार्मिक नियमो का पालन करते हुए वही रह रही थी। राज्य स्थापित होने के पश्चात् वनराज अपनी वृद्धा माता, धर्म गुरु और जिस मूर्ति की वे पूजा करते थे—उन सब को अणहिलपुर मे लाया और एक मन्दिर बनवा कर उस मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई और उसका नाम 'पञ्चसर पारसनाथ' रखा। इस मन्दिर की प्रदक्षिणा के स्थान पर लाल राजछत्र सहित राजा वनराज की मूर्ति भी उपासक की दशा मे वहाँ पर स्थापित की गयी।

वनराज का प्रधान मन्त्री 'चम्पा' जैनवणिक था, जिसने 'चाँपानेर नगर' को बसाया।

वनराज ने ६० वर्ष तक राज्य किया। वनराज के बाद चावडा-राजवश मे योगराज (सन् ८०६ से ८३६) योगराज के बाद उसका पुत्र क्षेमराज (८३६ से ८६६) और उसके बाद क्रमशः भूवड, वेरी सिंह और रत्नादित्य नामक राजा गद्दी पर बैठे।

रत्नादित्य सन् ९२० ई० मे सिंहासन पर बैठा। यह बडा पराक्रमी, साहसी और दृढ प्रतिज्ञ था। सन् ९३५ ई० मे इसकी मृत्यु हुई। इसके बाद इसका पुत्र सामन्त सिंह गद्दी पर बैठा। यही इस वश का अन्तिम राजा था। इसके साथ ही चावडा राजवश का अन्त हो गया।

आईने-अकबरीमे 'चावडा-वश' की वंश सूची इस प्रकार दी गयी है--

१—वनराज (राज्यकाल ६० वर्ष) २—योगराज (राज्य काल ३५ वर्ष) ३—क्षेमराज (२५ वर्ष) राजा पीथू (१९ वर्ष) ५—राजा विजय सिंह (२५ वर्ष) ६—राजा रावत सिंह (१५ वर्ष) और ७—राजा साँवतसिंह (७ वर्ष) इस प्रकार चाँवडा राजवश ने १९६ वर्ष तक राज्य किया।

सत्ता उसकी माता मीनल देवी के हाथ मे ग्राई। महामंत्री मुञ्जाल ग्रौर मन्त्री उदयन तथा सान्तू मीनलदेवी को उसके राजकाज मे सहयोग देते थे। वीरम गाँव के पास 'मीनलसर', तथा धोलका के समीप 'मीनल-तलाव' नामक सरोवर रानी मीनल देवी ने ग्रपने नाम पर बनवाये थे।

सन् १०९४ ई० मे 'सिद्धराज' गद्दी पर बैठा ग्रौर इसने सन् ११४३ ई० तक राज्य किया। यह ग्रत्यन्त शक्तिशाली, विजेता, धर्मात्मा, दानी ग्रौर सर्व धर्म-सहिष्णु राजा था। इसने शैव-धर्म ग्रौर जैन-धर्म—दोनोके प्रति ग्रत्यन्त श्रद्धा ग्रौर उदारताका व्यवहार किया। उसने एक ग्रोर 'रुद्रमाल' नामक एक विशाल शिवालय का निर्माण करवाया। दूसरी ग्रोर महावीर स्वामी के एक विशाल मन्दिर की भी रचना की। उसने शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा करके वहाँ के ग्रादिनाथ मन्दिर को १२ ग्राम भेंट किये।

सिद्धराज-जयसिंह ने धारा नगरी के परमार राजाग्रो के साथ १२ वर्ष तक युद्ध करके 'ग्रवन्तिनाथ' का विरुद धारण किया ग्रौर सोरठ के राजा खेंगार को परास्त करके 'चक्रवर्ती' का पद ग्रहण किया।

सिद्धराज जयसिंह का दरबार विद्वानो ग्रौर साहित्यकारो से भरा रहता था। ज्ञान ग्रौर कला का वह बडा प्रेमी था। भोज की धारा नगरी की भाँति ही सिद्धराज ने ग्रणिहिलपुर पाटण को ज्ञान का प्रमुख केन्द्र बनाने का निश्चय किया। ग्रौर वहाँ एक विशाल विद्यापीठ की स्थापना की। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य 'हेमचन्द्र' को सिद्धराज ने साहित्यिक ग्रौर धार्मिक प्रवृत्तियो के नेतृत्व का भार सौपा। ग्राचार्य हेमचन्द्र ने ग्रपनी उत्कट प्रतिभा से 'त्रिषिष्ट-शलाका महापुरुष' द्वयाश्रय' काव्य, सिद्धहेम व्याकरण, योगशास्त्र, ग्रभिधान-चिन्तामणि इत्यादि ग्रनेकानेक ग्रथो की रचना करके साहित्यिक ग्रौर धार्मिक क्षेत्र मे ग्रपनी ग्रद्भुत क्षमता का परिचय दिया।

सिद्धराज के युग मे ही कक्कल-कायस्थ व्याकरण के क्षेत्र मे, वाग्भट ग्रलङ्कार ग्रन्थो के क्षेत्र मे, हेमचन्द्र सूरि के शिष्य रामचन्द्र नाटको के क्षेत्र मे तथा ग्रानन्द सूरि, महेन्द्र सूरि, ग्रमरचन्द्र सूरि, वर्धमान गणि, गुणचन्द्र, देवचन्द्र इत्यादि ग्रनेक जैनाचार्यों ग्रौर विद्वानो ने धार्मिक क्षेत्र मे ग्रपनी प्रतिभाग्रों का उत्कृष्ट परिचय दिया। सिद्धराज-जयसिंह ने इन सब का ग्रपने दरबार मे काफी सम्मान किया।

सिद्धराज जयसिंह के जीवन मे जगदेव परमार का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। जगदेव परमार मालवा के राजा उदयादित्य परमार की 'सोलङ्किनी' रानी के गर्भ से पैदा हुग्रा था। मगर राजा उदयादित्य जगदेव की सौतेली माँ 'बाघेली' रानी के प्रभाव मे थे। बाघेली रानी जगदेव से बडी घृणा करती थी। इससे दुखी होकर जगदेव परमार नौकरी की तलाश मे सिद्धराज जयसिंह के दरबार मे पहुचा। सिद्धराज जयसिंह ने इसकी प्रतिभा ग्रौर तेजस्विता को देख कर एक हजार रुपया प्रतिदिन के वेतन पर ग्रपने दरबार मे रख लिया।

गुजरात के साहित्य मे सिद्धराज जयसिंह ग्रौर जगदेव परमार के सम्बन्ध मे कई विचित्र किम्वदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। जिनके ग्रनुसार सिद्धराज जयसिंह के जीवन की रक्षा के लिये इस वीर परमार ने ग्रपने ग्रौर ग्रपने परिवार के शिर भी काट कर देवी को ग्रर्पण कर दिये थे ग्रौर फिर पुनर्जीवन की प्राप्ति की थी। उसके सम्बन्ध मे यह दोहा भी प्रचलित है—

सम्वत् ग्यारह चौहतरा, चैत तीज रविवार।
शीश ककाली भाट ने, दियो जगदेव उतार॥

इसी ग्राशय का एक दोहा धार-राज्य के इतिहास मे इस प्रकार दिया हुग्रा है—

सबत् ग्यारह सौ इक्यावन, चैत सुदी रविवार।
जगदेव शीश समर्पियो, धारा-नगर पवार॥

यद्यपि इन दोहों के समय मे २३ वर्ष का ग्रन्तर है, फिर भी इस घटना के सम्बन्ध मे सभी लेखक एकमत हैं।

यही जगदेव ग्रागे जाकर राजा उदयादित्य का उत्तराधिकारी हुग्रा ग्रौर इसने ५२ वर्ष तक मालवे पर राज्य किया।

कुमारपाल

सिद्धराज जयसिंह की मृत्यु सन् ११४३ ई० या सम्वत् १२०० मे हुई। उसके कोई पुत्र न होने से राजा भीमदेवकी एक गणिका बकुलादेवीसे उत्पन्न क्षेमराजके प्रपौत्र कुमारपाल को गुजरातकी राजगद्दी प्राप्त हुई। कुमारपालको गद्दी दिलाने मे जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरी ग्रौर राजपुरोहित देवश्री का विशेष हाथ था। इसीके फलस्वरूप कुमारपाल ने जीवन भर ग्राचार्य

सन् १५६० ई० मे गुजरात के शासक मुजफ्फर शाह हुए। इन्ही के समय मे सम्राट् अकबर ने गुजरात पर विजय प्राप्त करके उसे मुगल साम्राज्य मे मिला लिया। मुगल साम्राज्य का पतन हो जाने के पश्चात् सिन्धविजय के उपरात यह प्रान्त भी अग्रेजो के अधिकार मे आ गया।

गुजरात के प्रसिद्ध तीर्थस्थान

गुजरात की पवित्र भूमि हिन्दू-सस्कृति और जैन सस्कृति दोनो के सगम की अत्यन्त पवित्र भूमि रही है। इतिहास के अत्यन्त पुरातन काल से जहा यह भूमि हिन्दू धर्म के द्वारका धाम और सोमनाथ पट्टन के सुप्रसिद्ध तीर्थो से मण्डित रही। वहीं जैन सभ्यता के महान् तीर्थ शत्रुञ्जय और गिरनार भी इसी पवित्र भूमि मे स्थित हैं। यहाँ के राजाओ ने इन दोनो धर्मो का समान रूप से आदर किया था।

द्वारकाधाम

द्वारकाधाम हिन्दू धर्म के ४ प्रसिद्ध धामों मे से एक प्रसिद्ध धाम और ७ प्रसिद्ध पुरियो मे से एक प्रसिद्ध पुरी है। मथुरा से उठकर यादव वश के सुप्रसिद्ध भगवान् श्रीकृष्ण ने यहीं पर अपनी राजधानी स्थापित की थी।

ऐसा कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होते ही यह द्वारकापुरी समुद्र मे डूब गयी। केवल भगवान का निजी मन्दिर डूबने से बचा। द्वारका के जलमग्न हो जाने पर लोगो ने कई स्थानो पर द्वारका का अनुमान करके मन्दिर बनवाए और जब वर्तमान द्वारका की प्रतिष्ठा हो गयी तब उन अनुमानित स्थलो को मूल द्वारका कहा जाने लगा।

श्रीशत्रुञ्जय महान तीर्थ

जैन-धर्म के सुप्रसिद्ध तीर्थों मे महान् तीर्थ शत्रुञ्जय भी गुजरात की पवित्र भूमि मे ही अवस्थित है। जैनियो के २४ तीर्थंकरो मे से सबसे पहले ऋषभदेव ने इस पर्वत पर आकर तपस्या की थी, और उनके प्रधान गणधर 'पुडरीक' ने यही पर निर्वाण प्राप्त किया था तथा और भी हजारो जैनमुनियो ने इस पर्वत पर तपस्या करके निर्वाण प्राप्त किया था। इसी लिए यह स्थान जैन समाज के अन्दर अत्यन्त पवित्र माना जाता है। जैन-परम्परा के अनुसार यदि श्रीऋषभ देव के समय का निरूपण किया जाय तो वह लाखो वर्ष पूर्व पहुँचता है। फिर भी इसमे सन्देह नही कि यह महान् तीर्थ बहुत प्राचीन स्थिति रखता है।

शत्रुञ्जय पर्वत समुद्र की सतह से दो हजार फीट ऊँचा है। यहाँ पर आने वाले यात्री को पर्वत की-तलहटी में होकर 'पालीताना' नगर को पार करते हुए उस मार्ग से जाना पडता है, जिसके दोनो ओर थोडी थोडी दूर पर बहुत से विश्रामस्थान, कुएँ, तालाब और छोटे-छोटे मन्दिर बनेहुए हैं। इसी मार्ग से होता हुआ यात्री अन्त मे रग बिरगी चट्टानो से बनी हुई उस द्वीप-कल्प सुन्दर पहाडी पर पहुचता है, जहाँ जैन-धर्म के प्रधान मन्दिर बने हुए हैं। इस पहाड़ी के दो शिखर हैं। दक्षिण शिखर पर कुमारपाल और विमलसाह के बनवाये हुए मध्यकालीन मन्दिर हैं। यहाँ 'खोडियार' देवी की महिमा से पवित्र तालाब के पास ही जैन तीर्थंकर ऋषभदेव की विशाल मूर्ति प्रतिष्ठित है। उत्तर शिखर पर मौर्य सम्राट् सम्प्रतिराज का बनाया हुआ एक अत्यन्त विशाल और प्राचीन मन्दिर है।

भारतवर्ष भर मे सिन्धु नदी से गङ्गा तक और हिमालय से कन्याकुमारी तक शायद ही कोई ऐसा नगर हो, जहाँ से शत्रुञ्जय तीर्थ के लिए एक या अधिक बार बहुमूल्य भेट न आयी हो।

कितने ही रास्तो और प्रागणो वाले, भव्य परकोटों से घिरे हुए, आधे महलो जैसे, आधे किलो जैसे सगमरमरके बने हुए ये जैन-मन्दिर इस विशाल पर्वत पर स्वर्गीय प्रासादो के समान खडे हुए हैं।

ऐसा कहा जाता है कि 'जावड' नामक एक जैन श्रावक ने ऋषभदेव की यह मूर्ति 'तक्षशिला' नगरी से प्राप्त कर के आचार्य वज्र स्वामी के निरीक्षण मे शत्रुञ्जय पर्वत पर लाकर स्थापित करने का प्रयत्न किया था। मगर कुछ विधर्मी लोगो के विरोध के कारण उसे सफलता नही हुई और वही पर सम्वत् १०८ विक्रमी मे उसकी मृत्यु हो गयी।

उसके बाद आचार्य मल्लदेव सूरि ने अपने मामा राजा शिलादित्य की सहायता से शत्रुञ्जय मे उसकी प्रतिष्ठा की।

इसके बाद कुमारपाल के मन्त्री उदयन के पुत्र 'वाहड' ने सन् ११५२ मे शत्रुञ्जय-तीर्थ का फिर से जीर्णोद्धार करवाया। इस जीर्णोद्धार मे करीब दो करोड सत्तानवे लाख दम्म खर्च हुए।

भालण के पश्चात् गुजराती भाषा मे पदो की रचना १७ वी शताब्दी के प्रारम्भ मे दार्शनिक कवि 'गोपाल' और 'अखा' ने अहमदाबाद मे रह कर की। मगर इस युग मे अन्य कवियो ने प्रधान रचनाएँ आख्यानो की ही की थी।

आख्यान-युग के अन्तिम कवि १७वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे 'प्रेमानन्द' हुए। प्रेमानन्द के समय मे गुजराती-साहित्य मे आख्यान कविताएँ उन्नति की मञ्जिल पर पहुँच गयी। प्रेमानन्द की प्रतिभा इतनी चमत्कारपूर्ण थी कि बीच मे अनेक कवियो के होने पर भी गुजराती साहित्य मे नरसी मेहता के बाद 'प्रेमानन्द' का ही नाम लिया जाता है।

प्रेमानन्द के पश्चात् गुजराती-साहित्य मे उत्तरकालीन भक्ति युग का प्रारम्भ होता है। राजे नामक एक मुसलिम ने इस युग के प्रारम्भ मे कृष्ण भक्ति के पद साहित्य को समृद्ध किया है। इस भक्तियुग मे रणछोड, रघुनाथ, प्रीतम, धीरो, भोजो, नरभो, प्रागो इत्यादि ज्ञानमार्गी कवियों ने अपनी रचनाओं से इस साहित्य को विशिष्टता प्रदान की।

भक्ति युग के अन्तिम भाग मे वल्लभाचार्य के अनुयायी 'दयाराम' और स्वामीनारायण सम्प्रदाय के 'मुक्तानन्द' 'ब्रह्मानन्द' 'प्रेमानन्द' 'प्रेमसखी' जैसे समर्थ कवियो ने गुजरात के भक्ति साहित्य को भरा पूरा कर दिया। इन सबमे 'दयाराम' का स्थान बडा ऊँचा है और इतने कवियोके रहते हुए भी गुजराती कवियो मे 'प्रेमानन्द' के बाद दयाराम का ही नाम लिया जाता है।

दयाराम ने (सन् १७७७) गुजरात के 'गरबा-साहित्य' मे एक अभूतपूर्व और नवीन लहर पैदा की। दयाराम के बनाए हुए गरबा-गीत अभी भी गुजराती घरो में नृत्य के साथ में बडे चाव से गाये जाते हैं।

दयाराम के साथ ही प्राचीन युग की समाप्ति होती है। और अग्रेजी सभ्यता के ससर्ग से अन्य भाषाओं की तरह गुजराती भाषा मे भी एक नये युग का प्रारम्भ होता है। इस युग मे साहित्य के अन्तर्गत गद्य पद्य, नाटक, उपन्यास इत्यादि सभी अग एक नवीन रूप, एक नवीन आदर्श और एक नवीन प्रणाली को ग्रहण करते हैं। पद्य साहित्य की तरह गद्य साहित्य मे भी तेजी से विकास होने लगता है। इस युग के प्रारम्भ मे नर्मदाशकर, नवलराम इत्यादि लेखको ने गुजराती गद्य को जहाँ एक अभिनव रूप मे ढालने का प्रयत्न किया। वहाँ नन्दशकर तुलजा शकर ने 'करणघेलो' और महीपतराय ने 'वनराज चावडो' नामक उपन्यास लिखकर गुजराती के उपन्यास-साहित्य को गति प्रदान की।

मगर गुजराती के उपन्यास-साहित्य में सबसे प्रसिद्ध नाम गोवर्धनराम त्रिपाठी का आता है, जिन्होने 'सरस्वती चन्द्र' नामक महान् उपन्यास ४ बडे-बडे खण्डो मे लिख कर गुजराती-साहित्य मे एक नवीन युग की स्थापना की। यह उपन्यास उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और लोक-मानस के अभ्यास का सुपरिणाम था।

इसके कुछ समय पश्चात् गुजराती-साहित्य के धुरन्धर लेखक कन्हैयालाल मणिकलाल मुशी ने 'पाटणनी प्रभुता' और 'स्वप्नद्रष्टा नामक दो प्रसिद्ध उपन्यासों की रचना की। इसके पश्चात् उन्होने ऐतिहासिक और सामाजिक अनेक उपन्यासो की रचना कर के गुजराती-साहित्य को समृद्ध किया। उनकी रचनाओ के अनुवाद से भारत की अन्य भाषाओ ने भी समृद्धि प्राप्त की और मुशी को भारत व्यापी कीर्ति प्राप्त हुई।

गुजराती-उपन्यासों के क्षेत्र मे श्रीचुन्नीलाल वर्धमान शाह, धूमकेतु, रमणलाल देसाई, पन्नालाल पटेल इत्यादि प्रौढ़ उपन्यासकारो ने भी अपनी सुन्दर रचनाओ से इस साहित्य को अमरत्त्व प्रदान किया।

हास्यरस के क्षेत्र मे कविवर दलपत राम ने अपने 'मिथ्याभिमान' नाटक के द्वारा, नवलराम ने 'भटनूँ भोपालू' रचना के द्वारा और रमणभाई नीलकठ ने 'भद्रभद्र' लिखकर इस साहित्य को परकाष्ठा पर पहुँचाया।

नाटक और रङ्गभूमि के क्षेत्र में गुजरात शुरू से ही अग्र स्थान मे है। गुजराती रङ्गभूमि पर वहाँ के अभिनेताओ ने नवीन शैली के नाटको को अभिनीत किया और यहीं से यह कला महाराष्ट्र ने प्राप्त की। यद्यपि द्विजेन्द्रलाल राय, गिरीशचन्द्र घोष के समान प्रकृतिवादी साहित्यिक नाट्यकार यहाँ पर कम हुए, फिर भी रगभूमि के अनुकूल नाटको की रचना यहाँ पर सैकडो की तादाद मे हुई।

इसी प्रकार एकाकी नाटको की रचनाएँ भी यूरोप के अनुकरण पर काफी हुई। एकाकी नाटककारो मे उमाशकर

सम्प्रदाय अलग-अलग होगये, तब दिगम्बर-सम्प्रदाय 'मूल सघ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद इसके चार भेद हुए। १-नन्दी-सघ, २-देव सघ, ३-सेन-सघ और ४-सिंह सघ। इनमे श्रीगुण भद्राचार्य्य सेन-सघ की परम्परा मे थे।

सेन-सघ की परम्परा मे वीर सेनाचार्य नामक आचार्य बहुत प्रसिद्ध हुए। जिन्होने श्रीधवल और 'जयधवल' नामक महान् ग्रन्थ के एक अश की रचना की।

वीर सेनाचार्य के शिष्य जिनसेनाचार्य हुए, जिन्होने अपने गुरु द्वारा निर्मित 'जय धवल' के अपूर्ण भाग की ७ हजार श्लोक लिख कर पूर्ति की। तथा आदिपुराण नामक एक महान् ग्रन्थ की रचना भी की।

इन्ही जिन सेनाचार्य के शिष्य गुणभद्राचार्य हुए। इन्हो ने अपने गुरु जिनसेनाचार्य द्वारा लिखित अपूर्ण आदि पुराण के अन्तिम पाच पर्वों को लिख कर उसकी पूर्ति की। और स्वय उत्तर पुराण के नाम से एक महान् पौराणिक ग्रथ की अत्यन्त मनोहर भाषा मे रचना की। इनका एक और ग्रन्थ 'आत्मानुशासन' नामक है जो भर्तृहरि के वैराग्य शतक की पद्धति पर लिखा हुआ है।

इनका देहान्त ९वी शताब्दी के अन्तिम भाग मे अथवा १० वी शताब्दी के प्रारम्भ मे किसी समय हुआ-ऐसा माना जाता है।

गुणाढ्य

'बृहत्कथा' नामक विशाल कथा ग्रन्थ के रचयिता, एक साहित्यकार, जिनका समय पहली शताब्दी से लेकर तीसरी शताब्दी के बीच 'सातवाहन' राजाओ के समय मे माना जाता है।

बृहत्कथा की मूल-रचना पैशाची भाषा में की गई थी, ऐसा समझा जाता है और यह भी विश्वास किया जाता है कि उनका मूल-ग्रन्थ ७ लाख श्लोको मे समाप्त हुआ था। मगर अब यह मूलग्रन्थ उपलब्ध नही है। नैपाल के अन्दर सन् १८९३ ई० मे बुद्ध स्वामीकृत एक 'बृहत्कथा श्लोक-सग्रह' नामक ग्रन्थ मिला था जिसमे सिर्फ ४५०० श्लोको का सग्रह था। यह ग्रथ ८वी या नवी शताब्दी का बतलाया जाता है।

११ वी शताब्दी मे बृहत्कथा का एक पाठ क्षेमेन्द्र ने ७५०० श्लोको मे 'बृहत्कथा-मञ्जरी' के नाम से और सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' के नाम से २१००० श्लोको मे प्रस्तुत किया। ये दोनो ही लेखक कश्मीरी थे और अपने ग्रन्थो मे इन्होने पञ्चतत्र की कहानियो को भी सम्मिलित कर लिया है।

गुणाढ्य को इस महान् ग्रथ की रचना की शक्ति कैसे प्राप्त हुई इसके सम्बन्ध मे कई प्रकार की कहानिया प्रचलित है। सोमदेव ने इस कथा का वर्णन करते हुए लिखा है कि-'एक बार अपने मनोरञ्जन के लिए पार्वती ने शिवजी से कुछ अच्छी कहानियाँ सुनाने का आग्रह किया। तब शिवजी ने उनको कई चक्रवर्तियो, विद्याधरो और पराक्रमी सम्राटो की कहानियाँ सुनाई। शिवजी के एक सेवक 'पुष्पदन्त' ने इन कहानियो को चुपचाप सुन लिया और उन्हे अपनी पत्नी 'जया' को सुना दिया। जब यह बात पार्वती को मालूम हुई तो पार्वती ने क्रुद्ध होकर पुष्पदन्त को मनुष्य योनि मे जन्म लेने का शाप दे दिया। उसके भाई मलयवन ने जब उसकी ओर से प्रार्थना की तो उसे भी वही शाप मिला। फिर बहुत रोने-धोने पर पार्वती ने दया करके यह सुधार किया कि मर्त्यलोक मे पुष्पदन्त यदि एक पिशाच से मिलकर उसे सब कहानियाँ ठीक ठीक से सुना देगा तो उसे पुन स्वर्ग प्राप्त हो जायगा।

इसी प्रकार मलयवन के लिए पार्वती ने कहा कि वह मर्त्यलोक मे उन कहानियो का प्रचार करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

कुछ समय के पश्चात् पुष्पदन्त वररुचि के रूप मे जन्म लेकर राजा योगानन्द का मन्त्री बन गया। और मलयवन् गुणाढ्य के रूप मे जन्म लेकर राजा सातवाहन का मन्त्री बना।

वररुचि जब तीर्थयात्रा पर गया हुआ था तो मार्ग मे उसकी भेंट 'कणभूति' नामक पिशाच से हुई और वह उस पिशाच को सारी कहानियाँ सुना कर वापस स्वर्गलोक को चला गया।

इधर गुणाढ्य सातवाहन राजा को सस्कृत पढ़ाने के लिए नियुक्त हुआ, मगर सस्कृत पढ़ाने में अपने साथी सर्ववर्मा के साथ एक बाजी हार जाने से उसे जगल मे चला जाना पडा। वही जगल मे उसकी कणभूति पिशाच से विन्ध्यपर्वत पर भेंट हुई। पिशाच ने वे सब कहानियाँ उसे सुनाई। इन

गुप्त साम्राज्य

भारतवर्ष का एक इतिहास प्रसिद्ध विशाल साम्राज्य जिसने ई० सन् २६० से सन् ५४० तक भारतवर्ष के विशाल भूभाग पर शासन किया और उसके बाद भी सातवी सदी तक किसी रूप मे चलता रहा ।

ईसा से पूर्व चौथी सदी के प्रारम्भ मे नागवश की समाप्ति और वकाटक वश की शक्ति क्षीण होजाने पर भारत-वर्ष का इतिहास एक युग को पार कर दूसरे युग मे प्रवेश करता है और इस दूसरे युग का प्रारम्भ महान् प्रतापी गुप्त साम्राज्य से प्रारम्भ होता है ।

गुप्त साम्राज्य के सस्थापक किस जाति के थे इस सम्बन्ध मे इतिहासकारो के अन्तर्गत मतभेद है । गुप्त नाम वैश्य जाति का सूचक होने से कई इतिहासकार उन्हे वैश्य मानते हैं । इतिहासकार काशीप्रसाद जायसवाल ने उनको शूद्र सिद्ध करने का प्रयत्न किया है । मगर यदि यह वश शूद्र होता अथवा निम्नवर्गीय होता तो लिच्छवी वश के समान् प्रसिद्ध राजवश अपनी कन्या का विवाह इस वश मे कभी न करते । इससे यही सम्भावना अधिक उचित मालूम होती है कि सम्भवतय यह वश क्षत्रिय कुल की ही किमी शाखा मे था ।

इस वश मे ई० सन् २६० मे श्रीगुप्त नामक एक व्यक्ति हुआ । यह वकाटक राजवश का एक सामन्त था । वकाटक लोगो के द्वारा मगध से शक राजवश को निर्मूल करते समय नालन्दा से करीब ४० मील की दूरी पर इसने एक छोटे से राज्य की स्थापना की । इसकी मृत्यु ई० सन् २८० ने हुई । इसका पुत्र घटोत्कच और घटोत्कच का पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम हुआ ।

चन्द्रगुप्त प्रथम—चन्द्रगुप्त की भाग्यलक्ष्मी ने उसका विवाह सम्बन्ध पाटलिपुत्र की लिच्छवी राजकन्या "कुमार-देवी" के साथ करवा दिया । इस विवाह ने भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति को एक नया मोड दिया और भारतवर्ष मे एक विशाल साम्राज्य की स्थापना का मार्ग खोल दिया ।

कुमारदेवी के साथ विवाह हो जाने पर चन्द्रगुप्त ने अपने पराक्रम से गगा और यमुना के सगम तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था । सन् ३२० ई० से उसने अपना एक सम्वत् भी चलाया था ।

सम्राट् समुद्र गुप्त—सन् ३३० ई० चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु हो जाने पर लिच्छवी वश की कुमार देवी से उत्पन्न समुद्रगुप्त उनकी गद्दी पर बैठा ।

समुद्रगुप्त एक महान् प्रतापी, विजेता, वीर और उदार नरेश था । गद्दी पर बैठने के कुछ ही समय पश्चात् सारे देश मे एक छत्र शासन स्थापित करने के उद्देश्य से वह दिग्विजय करनेके लिये निकला । इस दिग्विजयका वर्णन समुद्रगुप्तके दण्डनायक हरिषेण ने सन् ३८० के लगभग इलाहाबाद के 'अशोक-स्तम्भ' पर खुदवाया था । इस लेख से पता चलता है कि उसने अहिछत्र के नरेश 'अच्युत', नागवश के नरेश 'गणपति नाग', पद्मावती-नरेश 'भारशिव नागसेन', तथा 'रुद्रदेव' 'नागदत्त' 'चन्द्रवर्मन' 'नन्दिन' 'बलवर्मन' आर्यावर्त के इन ९ राजाओ को उत्तरप्रदेशमे परास्त करके दक्षिणदेशपर अपनी विजययात्रा प्रारम्भकी । दक्षिणके कई राजाओको पकड-पकडकर सम्राट्ने छोड दिया । इनमे दक्षिण कौशल के महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, केरल के मन्तराज, पिष्टपुर के महेन्द्र गिरि, कोट्टूर के स्वामीदत्त, एरण्डपल्ल के दमन, काञ्ची के विष्णुगोप, अवमुक्त के नीलराज, वेगी के हस्तवर्मन, पातल के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कुस्तलपुर के अनेक राजा सम्मिलित थे ।

इसी प्रकार सरहद के ५ राजाओ से उसने सम्मान और कर प्राप्त किया । और मालव, अर्जुनायन, योद्धेय, माद्रक, आभीर आदि गणराज्यो से भी अपनी अधीनता स्वीकार करवाई ।

इस प्रकार इस विजेता ने सम्पूर्ण भारत मे अपनी विजय पताका फहराई । और गुप्त साम्राज्य को ससार के एक महान् साम्राज्य के रूप मे परिणित कर दिया ।

इस विजय के उपलक्ष्य मे इसने कई नवीन सिक्के भी चलाये । इन सिक्को से यह भी मालूम होता है कि सम्राट् समुद्र-गुप्त सगीत कला और काव्य रचना मे भी बडा निपुण था । हरिषेण के शिलालेख मे लिखा है कि—'नारद, तुम्बुरु आदि के समान सम्राट् समुद्रगुप्त भी सगीत-शास्त्र के ज्ञाता थे ।' सम्राट् समुद्रगुप्त ने सन् ३३० से ३७५ तक ४५ वर्ष तक राज्य किया ।

समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उनका बडा पुत्र 'रामगुप्त' सिंहासन पर बैठा । शक राजाओ के साथ हुई लडाई मे वह बन्दी बना लिया गया । और अपनी रानी 'ध्रुवदेवी' को

बतलाया था कि—"यदि किसी पात्र मे वायु का घनत्व बाहरी वायु के घनत्व से कम कर दिया जाय तो वह वायु मे ऊपर उठने लग जायगा और वह तब तक ऊपर उठता रहेगा जब तक बाहरी वायु का घनत्व भीतरी वायु के घनत्व के बराबर न हो जाय।'

इस सिद्धान्त के आधार पर 'फ्रासिस्को डी-लाना' नामक एक पादरी ने सन् १६७० ई० मे नौका के आकार का एक गुब्बारा बना कर उसे उडाने का प्रयत्न किया। मगर उसमे उसे सफलता नहीं हुई।

उसके पश्चात् फ्रासके 'मॉगाल्येये' बन्धु नामके दो भाइयो ने रेशम का एक बडा थैला बनवा कर उसका मुँह नीचे की ओरसे खुला रखा और उस थैलेके नीचे कागज जलाकर उसका धुआँ उस थैले मे भरने का प्रयत्न किया। सन् १७८३ ई० मे हजारों लोगो के सामने उस गुब्बारे मे धुआ भर कर उन्होने उसे ऊपर उडाया। यह गुब्बारा १॥ मील पर जाकर नीचे उतर गया।

उसके बाद फ्रास के 'राबर्ट बन्धुओ' ने धूएँ की जगह हाइड्रोजन गैस भर कर उसी वर्ष अपना गुब्बारा उडाया। यह गुब्बारा तीन हजार फुट ऊँचाई तक ऊपर उडता हुआ चला गया।

इस सफलता से उत्साहित होकर गुब्बारो पर मनुष्यो को बैठा कर उडाने की प्रथा चालू हुई। ७ जनवरी सन् १७८५ ई० को 'ब्लैंकार्ड' और 'जेफ्रीज' नामक दो व्यक्तियो ने एक विशाल गुब्बारे मे बैठ कर 'इग्लिश चैनल' को पार किया।

प्रथम विश्व युद्ध के समय मे युद्धरत सभी देशो ने गुब्बारो के विकास पर विशेष रूप से ध्यान दिया। जर्मनी ने बेलनके आकार का एक विशाल गुब्बारा बनाया जो ५० मील प्रति घण्टे की चाल से हवा मे ठीक तरह से उडता था।

द्वितीय महायुद्ध के समय लन्दन की सुरक्षा-योजना के अन्दर भी इन गुब्बारो का काफी उपयोग किया गया।

गुरजाडा अप्पाराव

तेलगू-भाषा के एक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि जिनका जन्म १८६१ ई० मे आन्ध्र के विशाखापट्टन जिले के रायवरम् नाम के ग्राम मे एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था।

गुरजाडा अप्पाराव तेलगू भाषा के एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि, नाटककार, इतिहासज्ञ और कहानी लेखक थे। इन्होने अपनी नूतन परम्पराओ से सारे तेलगू साहित्य को नवीन प्रकाश से प्रकाशित किया। सन् १९६१ मे इनकी शताब्दी मनायी गयी।

गुरुकुल

प्राचीन भारत मे ज्ञान, विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के लिए स्थापित की हुई शिक्षा सस्थाए, जिन्हे गुरुकुल कहा जाता था।

इस प्रकार के गुरुकुलोमे बडे-बडे विद्वान्, आचार्य्य और ऋषि नि स्वार्थ भाव से अध्यापन का कार्य्य करते थे। जब बालक की बुद्धि शिक्षा ग्रहण करने के लिए परिपक्व हो जाती थी तब छ, आठ या ग्यारह वर्ष की उम्र मे किसी शुभ मुहूर्त मे उसका उपनयन सस्कार करके किसी श्रेष्ठ आचार्य्य के गुरुकुल मे शिक्षा ग्रहण करने के लिये उसे भेज दिया जाता था। जहाँ वह मनसा, वाचा, कर्मणा अपने को आचार्य्य के चरणो मे समर्पित कर देता था। आचार्य्य विद्यार्थी से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य की प्रतिज्ञा लेकर उसे शिक्षा देना प्रारम्भ करते थे।

इसी समय से विद्यार्थी के सस्कार बिल्कुल बदल दिये जाते थे। और उसे 'वटु' कहकर पुकारा जाता था। बटु को उत्तम वस्त्राभूषण और भोग-विलास के पदार्थों को त्याग कर चर्म, मेखला, सूत्र, दण्ड, कमण्डल धारण करने पडते थे। उसे मानापमान मे समदृष्टि होना पडता था। वन मे जाकर हवन के लिए कुश, शामित् और ईन्धन लाना पडता था। रहने के लिए पर्णकुटि, सोने के लिए कुश शय्या, और जलाने के लिए इगुदी तैल काम मे लाना पडते थे। 'वटु' को अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह का व्रत धारण करना पडता था। और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान का अभ्यास करना पडता था।

इन गुरुकुलो मे राजकुमारो से लेकर अकिंचन वटुओ तक सबकी दिनचर्य्या और आहार विहार, रहन सहन, एक ही प्रकार का होता था। इन गुरुकुलो मे प्रात और साय वेदाध्ययन की सुदर ध्वनि और हवन की पवित्र गन्ध चित्त को

प्रसन्न रहते थे। वहाँ पर मृग निःशङ्क भाव से विचरण करते रहते थे और पक्षी निर्भय होकर चहकते थे।

प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने पर "बटु" "स्नातक" के पाठ्यक्रम में प्रवेश करता था। वहाँ पर उसे धर्मशास्त्र, राजनीति या अधिकार प्राप्त विषयों की ऊँची शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा समाप्त होने पर वह गुरु को यथाशक्ति गुरुदक्षिणा देकर आशीर्वाद लेकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था।

ऐसे गुरुकुलों में सान्दीपनि ऋषि का गुरुकुल विशेष रूपसे प्रसिद्ध हुआ। यह गुरुकुल उज्जयिनी के समीप ही बना हुआ था। वहाँ पर श्रीकृष्ण जैसे राजकुमार और सुदामा जैसे दरिद्र ब्राह्मण की शिक्षा एक ही वातावरण में बिना भेदभाव के सम्पन्न हुई थी।

इसी प्रकार का एक गुरुकुल उद्दालक ऋषि का भी था जिनके शिष्य आरुणि की कथा पुराणों में बहुत प्रसिद्ध है।

बौद्धकाल में इन गुरुकुलों का रूप विशेष व्यापक हो गया था। इस युग में तक्षशिला नालन्दा उज्जयिनी और काशी के विद्यालय बहुत प्रसिद्ध हुए। इन विद्यालयों में संसार के दूर दूर देशों से विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने आते थे और अपने विषय के संसार प्रसिद्ध प्रकाण्ड विद्वान वहाँ अध्यापन का कार्य्य करते थे।

प्राचीन युग में काशी भी ऐसे गुरुकुलों का प्रधान केन्द्र थी। वहाँ विद्यार्थी ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा ग्रहण करते थे और राज्य की ओर से अथवा धनी लोगों की ओर से उनके अन्न वस्त्र और आवास की व्यवस्था होती थी।

आधुनिक युग में भी प्राचीन गुरुकुलों के आदर्श पर गुरुकुल स्थापित करने के प्रयत्न किये गये। इन प्रयत्नों में स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा स्थापित कांगड़ी गुरुकुल और श्री रवीन्द्रनाथ के द्वारा स्थापित शान्ति-निकेतन मुख्य प्रयत्न थे। मगर समय के प्रभाव से और पाश्चात्य शिक्षा के व्यापक प्रचार का प्रभाव इनपर पड़ा और भारतीय गुरुकुलों की विशुद्ध मौलिकता इन्हें प्राप्त न हो सकी।

गुरुत्वा कर्षण

पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति के सम्बन्ध में सर 'आइजक-न्यूटन' के द्वारा स्थापित 'गुरुत्वा-कर्षण' का सिद्धान्त [illegible] सदी के मध्य काल में आविष्कृत हुआ।

सन् १६६६ ई० में
उन्होंने पृथ्वी पर गिरते
कि पृथ्वी में
अपने चारों ओर के पिण्डों को,
और आकर्षित करती रहती है।
ये गुरुत्वाकर्षण शक्ति की [illegible]
जाने पर न्यूटन की यह [illegible]
अधिक सभी ठोस पिंड अपने चारों ओर के
अपनी ओर खींचते हैं। और इसी
यह सारा संसार टिका हुआ है।

न्यूटन से पूर्व [illegible] पूर्व
ग्रहों की गति का निरीक्षण और
इसी प्रकार के निष्कर्षों पर पहुँचे थे।

न्यूटन के द्वारा इस सिद्धान्त के
[illegible] पृथ्वि के लगते हुए [illegible] को
विज्ञान को एक नयी दिशा मिल गयी।

किन्तु २० वीं शताब्दी के आरम्भ में
जो न्यूटन के सिद्धान्त में अनेक त्रुटियाँ [illegible]
त्रुटियों की अभिपूर्ति और नई [illegible]
समाधान के लिए प्रसिद्ध वैज्ञानिक
के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
जिन्हों की यह धारणा थी कि 'सूर्य' और
(एब्सोल्यूट) है। आइन्सटाइन ने
धारणों को गलत कर प्रमाणित और [illegible]
स्पष्ट कर दिया।

सन् १९१६ ई० में 'आइन्सटीन' को
प्रकाश करते हुए भारी सफलता प्राप्त हुई।
प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त
ज्ञान संपत्ति रखते हुए भी न्यूटन के सिद्धान्त
करता था।

आइन्सटीन ने यूनान के सुप्रसिद्ध [illegible]
द्वारा प्रतिपादित रेखागणितीय सिद्धान्तों के
नये स्पष्टीकरण प्रतिपादन किया,
पूरी का भाग [illegible] हुए [illegible],
गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्रों में [illegible] है।
[illegible] गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र में [illegible]
होगी।

न्युटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्तो के साथ-साथ गति के नियमो का भी सूत्रापत किया था, मगर उसके सामने कठिनाई यह थी कि वह उस सापेक्ष पृष्ठभूमि का प्रतिपादन नही कर पा रहा था, जिसके आधार पर गतिको नापा जा सके।

आइन्स्टीन ने सापेक्ष-सिद्धान्त का अनुसधान करके इस कठिनाई को दूर किया।

आइन्स्टीन के पश्चात् भारतीय वैज्ञानिक डा० जयन्त विष्णु नार्लीकर ने प्रोफेसर 'हायल' के साथ गुरुत्वाकर्षण के सिद्धात की नवीन व्याख्या की। उन्होने कहा कि--गुरुत्वाकर्षण की व्याख्या गणित के द्वारा भी की जा सकती है और उसी का परिणाम वह समीकरण है जो ११ जून १९६४ ई० को उन्होने लन्दन की रायल सोसायटी में प्रस्तुत किया।

११ जून सन् १९६४ ई०का दिन भारतीय वैज्ञानिक जयत-विष्णु' नार्लीकर के लिए विशेष महत्व का दिन था। लन्दन का सुप्रसिद्ध रायल सोसाइटी हाल, ब्रिटेन के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिको और विद्वानो से खचाखच भरा हुआ था। इस हाल मे इस मञ्च पर आज 'नार्लीकर' को अपने नवीन गुरुत्वाकर्षण के सिद्धात का प्रतिपादन करना था। मञ्च पर खडे होकर जब २६ वर्ष के इस भारतीय नवयुवक ने विश्व की उत्पत्ति, उसकी वर्तमान स्थिति और उसके भविष्य पर सरल शब्दो मे प्रतिपादन करना प्रारम्भ किया तो सारी सभा आश्चर्य-चकित रह गयी। आज से ३०० वर्ष पूर्व 'रायल सोसायटी' के इसी हाल मे न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का अपना सिद्धात रख कर जो हलचल पैदा की थी, वही हलचल इस भारतीय नवयुवक ने तोन सौ वर्षो के पश्चात् रायल सोसायटी के इसी हाल मे फिर से पैदा की।

दूसरे दिन ब्रिटेन के पत्रो ने इस भारतीय नवयुवक की वैज्ञानिक खोज की तुलना न्युटन और आइन्स्टीन की खोजो के मुकाबले मे की।

जयत-विष्णु नार्लीकर का जन्म १९ जुलाई १९३८ ई० को कोल्हापुर मे एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-परिवार में हुआ। इनके पिता विष्णुपत नार्लीकर बनारस विश्वविद्यालय में गणित विभाग के अध्यक्ष थे और इस समय राजस्थान-लोक-सेवा आयोग के अध्यक्ष हैं।

'जयत' को बचपनसे ही गणितके कठिन से कठिन प्रश्नो के हल करनेका शौक था। इसीके परिणाम स्वरूप कैम्ब्रिज के किंग्स-कालेज मे जयत का गणित के शोध-कार्य के लिए चुनाव हुआ। सन् १९६२ ई० मे डा० जयत को फिट्स विलियम हाउस ने डाइरेक्टर ऑफ मैथेमेटिकल स्टडीज' के पद पर नियुक्त किया और इसी वर्ष उनको अपने सशोधन निबध पर 'स्मिथ' पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। इसके साथ ही उन्होंने प्रोफेसर 'हायल' के साथ गुरुत्वाकर्षण के सिद्धात पर अपना अनुसधान किया।

डा० नार्लीकर की इस खोज के बारे मे कहा जाता है कि वह न्यूटन और आइन्स्टीन की तरह ही महत्वपूर्ण हैं।

गुरिल्ला-युद्ध

युद्ध-सञ्चालन-कला की एक कुटिलताभरी शाखा, जिसमे छिप कर, धोखा देकर और अचानक शत्रु पर आक्रमण कर उसको कष्ट पहुँचाने का प्रयास किया जाता है।

गुरिल्ला का नामकरण अफ्रीका के जगलो मे पाये जाने वाले वानर जाति के एक हिंसक धोखेबाज और दुष्ट वनचर गुरिल्ला के नाम पर किया गया है।

गुरिल्ला युद्ध का विवेचन २५ सौ वर्ष पहले चीन के युद्ध विशारद 'सुन त्जू' ने किया था। उसने इस युद्ध के ४ सूत्र निर्माण किये थे—

(१) शत्रु बढेगा तो हम पीछे हटेंगे।
(२) शत्रु रुकेगा तो हम सतायेगे।
(३) शत्रु थकेगा तो हम आक्रमण करेगे।
(४) शत्रु हटेगा तो हम पीछा करेंगे।

अठारहवी सदीमे गुरिल्ला-युद्ध का सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ फ्रास का 'कानेस्टेवल द-गुरुलीन' माना जाता है। यूरोप मे गुरिल्ला युद्ध का अन्वेषण और प्रयोग 'गुरुलीन' ने ही किया था। फ्रास के साथ होने वाले अग्रेजो के 'सप्तवर्षीय युद्ध' मे गुरुलीन के कारण ही अग्रेजो को फ्रास की भूमि से हटना पडा था। गुरुलीन कभी सामने आकर नही लडता था। उसने फ्रास मे अग्रेजो का जीना दूभर कर दिया था।

इस क्षेत्र मे सबसे अधिक वैज्ञानिक और व्यवस्थित गुरिल्ला युद्ध का जानकार 'टी० ई० लारेंस' था। उसने इस युद्ध सम्बधी साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था। गोरिल्ला-युद्ध के मूलसूत्रो की भी उसने रचना की थी। और वह 'क्लार्से-विज' नामक युद्ध-कला विशारद से बहा प्रभा

दिया था। 'मार्टेंस' ने अपनी युद्ध कला का वर्णन 'सेवन पिलर्स ऑफ विज़डम' नामक ग्रन्थ में किया है।

आधुनिक युग में गुरिल्ला-युद्ध का सबसे बड़ा विशेषज्ञ 'माओत्से-तुंग' समझा जाता है। सन् १६३८ ई० में माओ ने 'आन द प्रोटेक्टेड वार' नामक ग्रन्थ गुरिल्ला-युद्ध नीति पर लिखा और जापान विरोधी गुरिल्ला युद्ध नामक पुस्तक भी उसने लिखी।

गुरिल्ला-युद्ध का विवेचन करते हुए उसने बतलाया कि 'इस प्रकार की लड़ाई में कौशल प्रथम आघात आक्रमण सफल गोपनीयता तीव्रता पूर्णता तथा जन-समर्थन' ये तत्व बहुत प्रधान हैं। इन तत्वों को क्रियात्मक रूप किस प्रकार दिया जाय—इसका विवेचन करते हुए वह लिखता है कि— एक स्थान पर झूठा आक्रमण करो। तथा वास्तविक आक्रमण किसी दूसरी जगह पर करो। जिससे कि शत्रु अपनी रक्षा न कर सके। जहाँ झूठा आक्रमण करो वहाँ शक्ति का प्रदर्शन बहुत अधिक करो। जिससे शत्रु धोखे में आ जाय। जहाँ वास्तविक आक्रमण करना हो—वहाँ बिल्कुल हलचल मत होने दो और अचानक जिस तरह बिल्ली चूहे पर झपटती है, उसी तरह शत्रु पर झपट पड़ो और वह सावधान न हो। तब तक उसे खत्म कर दो।

कभी प्रकट हो जाओ। कभी छिप जाओ जिससे शत्रु तुम्हारे बारे में कोई निश्चयात्मक जानकारी न पा सके। शत्रु के शक्तिशाली स्थानों को मत छेड़ो। केवल अरक्षित और निर्बल स्थानों पर ही हमला करो। आराम करते हुए, भोजन करते हुए, असावधान शत्रुपर अचानक हमला बोल दो। शत्रु के साथ आमने-सामने कभी मत होओ। शत्रु को आगे बढ़ने दो और जब वह थक जाय तब उसे चारों ओर से घेर कर नष्ट कर दो। युद्ध में हठ से काम मत लो। उसे सम्मान का प्रश्न मत बनाओ। सदा एक सी सामरिक नीति मत अपनाओ। अपने दाव-पेच हमेशा बदलते रहो जिससे शत्रु का मनोबल भंग हो जाय। गुरिल्ला-युद्ध की सफलता के लिए शत्रु की शक्ति, गतिविधि सैनिक मनोबल शस्त्र-शक्ति और गुप्तचर सेवाओं की पूरी जानकारी इकट्ठी करो। शत्रु को ऐसे क्षेत्र में लाओ जो तुम्हारे अनुकूल हो। अपनी पसन्द की स्थान पर आक्रमण करो और उसका सर्वनाश कर दो।"

'छिप कर प्रहार करो। और हथगोले विशेष रूप से काम में लाओ। शत्रु के प्रति तनिक भी दया मन में मत लाओ। उसके सैनिकों को नष्ट कर दो और उसका साथ देने वाली प्रजा का कठोरता से दमन करो। तुम्हारा ध्येय धर्म बदला नहीं है। शत्रु को अधिक से अधिक हानि पहुँचाना है। आदर्शों और नैतिकता के जाल में मत फँसो। विजय और शक्ति के अतिरिक्त इस संसार में कुछ भी सत्य नहीं है। हाँ शत्रु को आदर्शों के जाल में फँसाये रखो और उसके विरुद्ध यह प्रचार करो कि वह साम्राज्यवादी शोषक और नर रक्त का पिपासु है।'

गोरिल्ला-युद्ध की सफलता का सबसे प्रमुख रहस्य माओ ने गोपनीयता में बताया है। वह कहता है कि— अपने रहस्य को कभी प्रकट न होने दो। जो करना है उसे किसी से मत कहो और जो कुछ कहते हो उसे कभी मत करो। लड़ते समय बोलो मत। रवानगी के पहले ही सेना को तमाम आवश्यक आदेश दे दो। लौटते समय अपने मृत सैनिकों हथियारों व्यय सामग्री—सबको साथ ले लो या नष्ट कर दो। अपने साथ कोई भी दस्तावेज़, कागज या अभिलेख मत रखो। हत्या करने से मत घबराओ। उसको सामान्य बात समझो। क्योंकि शत्रु भी हत्या करता ही है। शत्रु के ऊपर निरन्तर, नियमित और धुआंधार प्रहार करो। यह प्रचार करो कि शत्रु बर्बर है—वह हत्या लूटपाट तथा शीलभंग जैसे जघन्य कायकर रहा है और अपने आप को निर्दोष भोलाभाला और कमजोर बताओ। शत्रु के प्रदेश में उसकी प्रजा के सामने अपने आप को मुक्ति सेना के रूप में प्रस्तुत करो मगर अपना आतङ्क बराबर बनाये रखो।

'गुरिल्ला-युद्ध में जन-समर्थन नितान्त अनिवार्य है। जनता से मदद और सूचना प्राप्त करो और उसका सहयोग लो मगर उसको मूर्ख बनाने में भी मत चूको। उसे तुम्हारी शक्ति पर विश्वास तो रहना ही चाहिए। साथ ही आतङ्क भी रहना चाहिए।'

यह 'माओ' के गुरिल्ला-युद्ध के मुख्य सिद्धांत हैं। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर दक्षिणी वियतनाम में यह वियट काँग लोगों को अमेरिकियों से लड़ा रहा है।

गुरङ्ग

नेपाल देश मे रहने वाली एक जाति जो बडी साहसी और युद्ध मे निपुण होती है। इस जाति मे दशा गुरङ्ग और बारहा गुरङ्ग ये दो श्रेणियां होती हैं।

यह जाति किसी समय बौद्ध धर्मावलम्बी थी, मगर अब सब हिन्दू हो गये है। ये पाण्डु के दूसरे पुत्र भीमसेनको अपना उपास्यदेव मानते हैं। इनके यहाँ कन्याओ का विवाह बडी उम्र मे होता है। विवाह-बन्धन तोडने के लिए कन्या की माता को रुपया देना पडता है। तलाकशुदा स्त्री फिर से समारोह के साथ विवाह कर सकती है। किन्तु विधवाओ के लिए ऐसा नियम नहीं है। विधवाएँ केवल अपने देवर को ही स्वामी रूप मे ग्रहण कर सकती है।

गुरुदासपुर

पश्चिमी पञ्जाब का एक जिला और नगर। इसके उत्तर मे जम्मू और कश्मीर, दक्षिण पश्चिम म अमृतसर, पूर्व मे कपूरथला, होशियारपुर और कांगडा तथा पश्चिम मे पाकिस्तान का सियालकोट जिला है।

पहले इस जिले मे गुरदासपुर, बटाला, पठानकोट और शङ्करगढ की चार तहसीले थीं। मगर देश विभाजन के पश्चात् इनमे से शङ्करगढ़ नामक तहसील पश्चिमी पाकिस्तान में चली गई है।

ऐसा कहा जाता है कि बारहवी सदी मे जेतपाल नामक दिल्ली के एक राजपूत ने आकर इस जिले के पठानकोट नगर को बसाया था। मगर बाद मे जेतपाल के वशजो ने काङ्गडा के नूरपूर नगर मे अपना राजभवन निर्माण करवाया।

जिस समय सम्राट् हुमायुँ की मृत्यु हुई उस समय युवराज अकबर इसी जिले के 'कलानौ' नामक स्थान पर थे। पिता की मृत्यु के समाचार सुन कर यही पर इन्हो ने सम्राट् की उपाधि ग्रहण की और राज्य के अधिकारी हुए।

इस जिले का 'डेरा' नामक स्थान सिक्खो के प्रथम धर्म गुरु नानक की मृत्यु के उपलक्ष्य मे एक तीर्थ की तरह माना जाता है। इसी स्थान के समीपवर्ती एक ग्राम मे सन् १५३९ में गुरु नानक की मृत्यु हुई थी।

सन् १८१६ मे यह जिला महाराजा रणजीत सिंह के शासन मे आ गया। सन् १८४६ के प्रथम सिक्ख युद्ध की समाप्ति पर इस जिले के पठानकोट और कुछ पर्वतीय विभाग ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दिये गये। सन् १८६१-६२ मे डलहौजी का प्रसिद्ध पर्वतीय स्थान और उसके निकटस्थ समतल क्षेत्र पर भी अगरेज सरकार का अधिकार हो गया।

इस जिले के ऐतिहासिक स्थानो मे रावी नदी के तट पर मुक्तेश्वर का प्रसिद्ध पाषाण मन्दिर, बटाला अञ्चल मे तालाव के अन्दर बना हुआ महाभारत काल का शिव मन्दिर, डेराबाबा नानक मे बना हुआ सिक्खो का स्वर्ण मन्दिर, गुरुदासपुर की हिलनी दीवार इत्यादि स्थान उल्लेखनीय है। इस जिले के प्रधान नगरो मे पठानकोट, बटाला, गुरुदासपुर, डेराबाबा नानक इत्यादि नगर उल्लेखनीय है।

यहाँ का 'डलहौजी' नामक पर्वतीय स्टेशन समुद्रतल से ७६८७ फुट ऊँचा है जो अत्यन्त सुन्दर बना हुआ है। गर्मी के दिनोमे यहाँ बहुत यात्री आते हैं। गुरु गोविन्द सिंह के पश्चात् सिक्खो के धर्मगुरु बन्दाबैरागी ने यहाँ एक किला बनवाया था। बादशाह बहादुर शाह की मृत्यु के पश्चात् सन् १७१२ मे यही पर वे पकडे गये और बाद मे मार डाले गये।

गुरुमुखी

पञ्जाब की एक भाषा और लिपि, जिसका प्रचलन सिक्ख गुरुओ के द्वारा ईसा की सोलहवी सतरहवी सदी से शुरु हुआ।

सिक्ख गुरुओ ने फारसी लिपि का स्थान ग्रहण करने के लिए इस लिपि और बोली का आविष्कार किया था। चूंकि यह लिपि और वाणी गुरुओ के मुख से निकली थी इसलिए इसका नाम गुरुमुखी हुआ। इस लिपि मे ३२ व्यञ्जन और ३ स्वर होते हैं। इस लिपि का विशेष प्रचार गुरु अङ्गद ने किया। और गुरु अर्जुन देव ने इसी लिपि मे सिक्खो के परम पवित्र ग्रथसाहिब का सग्रह करके इस लिपि को सिक्खो की धार्मिक लिपि बना दिया।

आज गुरुमुखी लिपि और भाषा पञ्जाब के एक बड़े हिस्से की लोकप्रिय लिपि और भाषा बनी हुई है और इसीके आधार पर सन् १९६६ मे पञ्जाबी सूबे का निर्माण हुआ है।

गुरुदत्त

हिन्दी के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार और चिकित्सक जिनका जन्म सन् १८९४ में लाहौर में हुआ।

श्रीगुरुदत्त ने जिस समय होश सम्हाला उस समय सारा पञ्जाब स्वामी दयानन्द के द्वारा स्थापित आर्य्य समाज के दिव्य सन्देश से गुञ्जरित हो रहा था। गुरुदत्त के ऊपर भी इस वातावरण का स्थायी प्रभाव पड़ा जो उनके सारे जीवन पर बराबर बना रहा।

श्रीगुरुदत्त भारतीय संस्कारों भारतीय आदर्शों और भारतीय संस्कृति के दृढ़ उपासक हैं। यही भावनाएँ उनके प्रत्येक उपन्यास के ऊपर छायी हुई दिखलाई पड़ती हैं। उनका पहला उपन्यास 'स्वाधीनता के पथ पर' सन् १९४२ ई में प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् १८ वर्षों में उन्होंने ४८ उपन्यास लिखकर प्रकाशित किये। इन उपन्यासों में पौराणिक ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक राजनैतिक और सामाजिक सभी प्रकार के उपन्यास सम्मिलित हैं। प्रत्येक उपन्यास में कथानक का क्रमबद्ध विकास विचार-सौष्ठव चरित्र चित्रण और सबसे ऊपर भारतीय विचार प्रणाली का तर्कपूर्ण समर्थन देखने को मिलता है।

गुलजारीलाल नन्दा

स्वाधीनता के पहले भारतीय मजदूर दलके एक प्रसिद्ध नेता और वर्तमानमें भारतवर्ष के गृहमन्त्री। जिनका जन्म सन् १८९८ ई में पञ्जाब के स्यालकोट नगर में हुआ।

गुलजारीलाल नंदा की शिक्षा पहले लाहौर, फिर आगरा और उसके बाद इलाहाबाद म हुई।

सन् १९२१ ई मे श्रीनंदा ने गांधीजी के असहयोग-आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। और सन् १९२२ ई मे वे अहमदाबाद 'कपड़ा-मिल-मजदूर संघ' के मंत्री निर्वाचित हुए और सन् १९४६ ई तक उसी पद पर रहे।

सन् १९३७ ई में वे बम्बई विधान-सभा के सदस्य और बम्बई प्रांत की प्रथम कांग्रेसी सरकार में संसदीय श्रम-सचिव नियुक्त हुए।

सन् १९४६ ई से सन् १९५ ई तक वे बम्बई-सरकार के श्रम मन्त्री रहे। एक मजदूर नेता के रूप में उन्हों ने देश के श्रमिक आन्दोलन को एक अनुशासन पूर्ण आंदोलन का रूप दिया। सन् १९४७ ई० में श्री नन्दा ने 'जिनेवा' के अन्तर्राष्ट्रीय-श्रम-सम्मेलन में सरकारी प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। सन् १९५० ई में श्री नन्दा केन्द्रीय सरकार के योजना मंत्री और योजना-आयोग के उपाध्यक्ष बनाये गये।

उसके पश्चात् 'कामराज-योजना' के अन्तर्गत जब बहुत से मंत्रियों ने इस्तीफे दिये तब पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने नये मंत्रिमण्डल में श्रीनंदा को गृह-मंत्री के रूप में ले लिया। तब से अभी तक वे उसी पद पर काम कर रहे हैं।

गुलामअली खाँ बड़े

भारतीय शास्त्रीय संगीत के एक प्रसिद्ध उस्ताद जिनका जन्म सन् १९ २ मे लाहौर में हुआ था।

उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ पटियाला घराने के संगीतकार हैं। पाँच वर्ष की उम्र में इनकी संगीत शिक्षा इनके पिता उस्ताद अली खाँ और सुप्रसिद्ध गायक काले खाँ के निरीक्षण में शुरू हुई। सन् १९१९ मे काले खाँ की मृत्यु हो जाने से इन्हें बड़ा सदमा पहुँचा मगर उसके बाद इन्होंने अपने अभ्यास को तेजी से बढ़ाया। सन् १९२१ में १६ वर्ष की अवस्था में इंग्लैण्ड के प्रिंस ऑफ वेल्स के दरबार में इनका संगीत हुआ। तब से इनकी कीर्ति बहुत बढ़ गई।

बड़े गुलाम अली संगीतकार के साथ-साथ अच्छे कवि भी हैं। ये 'सबरङ्ग' के नाम से कविता करते हैं। जितनी रच नाएँ इन्होंने स्वरबद्ध की हैं वे सब इन्हीं की बनाई हुई हैं।

बड़े गुलामअली का संगीत-आलाप की गम्भीरता बोल एवं तानों की विविधता चमत्कारपूर्ण लयकारी और विकास स्वर योजना इत्यादि मिश्रित गुणों से एक अनूठा रूप धारण कर लेता है। उनके कण्ठ में दूँद माधुर्य,"रञ्जकता कोमलता आदि सभी गुण विद्यमान हैं।

गुलाम-कादिर

रोहिला जाति का एक मुसलमान सरदार, जो बावनी महल नामक स्थान का जागीरदार था। यह मुगल सम्राट् शाह आलम का समकालीन था।

गुलाम कादिर का बाप 'जाब्ता खाँ' शाहग्रालम का वजीर था। यह बडा धूर्त, विश्वासघाती श्रौर नमकहराम व्यक्ति था। इसने सम्राट् शाहग्रालम के विरुद्ध कई षड्यन्त्र और विद्रोह किये, मगर इसे सफलता नहीं मिली श्रौर सन् १७८५ मे इसकी मृत्यु हो गई।

जाब्ता खाँ के बाद उसका लडका गुलाम कादिर "नजीबुद्दौला होशियार जग" का खिताब धारण कर बावनी महल के जागीरदार की गद्दी पर बैठा। यह भी बडा दुष्ट, विश्वासघाती श्रौर धूर्त व्यक्ति था। थोडे ही समय मे एक सेना का सगठन कर वह पिता का बदला लेने दिल्ली पर आक्रमण करने को निकला श्रौर शाहदरा के पास मुकाम कर इसने भेद नीति से बादशाह के घर मे फूट डालने की साजिश प्रारम्भ की। इसने छल बलसे बादशाह के नाजिर मजूरग्रली को अपनी तरफ फोड लिया। श्रौर दूसरे सैनिक अफसरो को भी रिश्वतें दे देकर अपनी तरफ मिला लिया। उसके बाद वह दिल्ली शहर मे घुस गया। सम्राट् शाहग्रालम ने तब मराठा सरदार महादजी सिंधिया श्रौर समरूबेगम को सहायता के लिए लिखा। इन लोगो के आने पर गुलाम कादिर दिल्ली छोड कर भाग गया। मगर अन्त मे मराठा लोगो की सलाह से बादशाह ने उसको फिर अमीर उलउमरा बना दिया।

इसके बाद गुलाम कादिर ने बिना सम्राट् की आज्ञा लिए मराठो के विरुद्ध आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। मगर आगरा के समीप मराठा फौज ने गुलाम कादिर के सेनापति इस्माइल बेग को करारी पराजय दी श्रौर उसे दिल्ली मे प्रवेश न करने देने के लिए सम्राट् को लिख दिया।

तब गुलाम कादिर ने दिल्ली पर गोले बरसाना प्रारम्भ किया। मराठो ने भी तोपोसे करारा जवाब दिया। लडाई मे सफलता होती न देख कर उसने इस्माइल खाँ के द्वारा शाही फौज मे बगावत करवा दी। लाचार मराठो को घुटने टेकने पड़े श्रौर गुलाम कादिर ने दिल्ली मे प्रवेश किया। ता० १८ जुलाई सन् १७८८ को वह सम्राट् के सामने दीवान खाने मे आया। दबी हुई बिल्ली की तरह शाह ग्रालम ने उसे फिर वजीर का पद दे दिया। उसके आठ दिन बाद उसने बादशाह से सेना का वेतन मागा, मगर बादशाह का खजाना खाली था। तब गुलाम कादिर ने बादशाह को जबर्दस्ती गद्दी से उतार कर मुहम्मद शाह के पौत्र श्रौर अहमद शाह के पुत्र बेदारबख्त को बादशाह की गद्दी पर बिठा दिया, श्रौर शाहग्रालम को सपरिवार बन्दी बना लिया।

तारीख १० अगस्त १७८८ को उसने शाह ग्रालम के सामने उसके पुत्रो श्रौर पौत्रो को बुलाकर घोर यातनाएँ दी श्रौर उसकी बेगमो को नङ्गी कर दिया। श्रौर शाह ग्रालम को फर्श पर गिराकर उसकी आँखे निकलवा ली।

मगर इसी समय मराठा सेना जोरशोर के साथ दिल्ली की समीप आई। गुलाम कादिर दिल्ली से भागा। मराठा सेना ने फिर से अन्धे शाहग्रालम को गद्दी पर बिठाया। श्रौर गुलाम कादिर को पकडने के लिए सेना भेजी गई। थोडे ही समय मे गुलाम कादिर रस्सियो से बधा हुआ महादजी सेंधिया के सामने पेश किया गया। महादजी ने पहले गुलाम कादिर का मुह काला करके उसे गधे पर उलटा बिठाया श्रौर बाजार मे घुमा कर प्रत्येक दुकान से उससे बावनी नवाब के नाम पर भीख मगवाई। फिर उसकी जबान काट ली गई, फिर उसकी आँखे निकाली गई, फिर नाक, कान श्रौर हाथ पैर काट लिये गये श्रौर उसी हालत मे उसे बादशाह के सम्मुख भेजा। मगर रास्ते मे ही उसके प्राण निकल गये।

गुलाबराय (साहित्याचार्य)

हिन्दी-साहित्य के एक प्रसिद्ध साहित्यकार, समालोचक श्रौर दर्शन शास्त्री जिनका जन्म सन् १८८८ ई० मे इटावा मे वैश्य जाति के अन्दर हुआ।

सन् १९१३ ई० मे बा० गुलाबराय ने 'सेटजास कालेज' आगरा से दर्शनशास्त्र मे एम० ए० किया। सन् १९१३ ई० मे एम० ए० करके वे छत्रपुर राज्य के महाराजा सर विश्वनाथ सिंह जू देव के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए।

सन् १९३२ ई० मे महाराजा का स्वर्गवास होने के पश्चात् बा० गुलाबराय आगरा चले आये श्रौर वहाँ पर निरन्तर साहित्य सेवा मे लगे रहे।

बा० गुलाबराय हिन्दी साहित्य मे द्विवेदी युग के उच्चकोटि के साहित्यकार थे। उनका अध्ययन बडा विशाल श्रौर दार्शनिक भावनाओ से ओतप्रोत है। इनकी रचनाओ मे 'कर्तव्यशास्त्र' (१९१९) 'नवरस' (१९२१) 'तर्क शास्त्र' तीन भाग (१९२९) पाश्चात्य दर्शनो का इतिहास (१९२६)

गुरुदत्त

हिन्दी के एक प्रसिद्ध उपन्यासकार और चिकित्सक जिनका जन्म सन् १८९४ में लाहौर में हुआ।

श्रीगुरुदत्त ने जिस समय होश सम्हाला उस समय सारा पञ्जाब स्वामी दयानन्द के द्वारा स्थापित आर्य्य समाज के दिव्य सन्देश से गुञ्जरित हो रहा था। गुरुदत्त के ऊपर भी इस वातावरण का स्थायी प्रभाव पड़ा जो उनके सारे जीवन पर बराबर बना रहा।

श्रीगुरुदत्त भारतीय संस्कारों भारतीय आदर्शों और भारतीय संस्कृति के दृढ़ उपासक हैं। यही भावनाएँ उनके प्रत्येक उपन्यास के ऊपर छायी हुई दिखलाई पड़ती है। उनका पहला उपन्यास 'स्वाधीनता के पथ पर' सन् १९४२ ई में प्रकाशित हुआ था। उसके पश्चात् १८ वर्षों में उन्होंने ४८ उपन्यास लिखकर प्रकाशित किये। इन उपन्यासों में पौराणिक, ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक राजनैतिक और सामाजिक सभी प्रकार के उपन्यास सम्मिलित हैं। प्रत्येक उपन्यास में कथानक का क्रमबद्ध विकास विचार-सौष्ठव चरित्र-चित्रण और सबसे ऊपर भारतीय विचार प्रणाली का तर्कपूर्ण समर्थन देखने को मिलता है।

—

गुलजारीलाल नन्दा

स्वाधीनता के पहले भारतीय मजदूर वर्ग के एक प्रसिद्ध नेता और वर्तमानमें भारतवर्ष के गृहमन्त्री। जिनका जन्म सन् १८९८ ई में पञ्जाब के स्यालकोट नगर में हुआ।

गुलजारीलाल नंदा की शिक्षा पहले लाहौर, फिर आगरा और उसके बाद इलाहाबाद में हुई।

सन् १९२१ ई मे श्रीनन्दा ने गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन मे सक्रिय भाग लिया। और सन् १९२२ ई में वे अहमदाबाद कपड़ा-मिल-मजदूर संघ' के मंत्री निर्वाचित हुए और सन् १९४६ ई तक उसी पद पर रहे।

सन् १९३७ ई में वे बम्बई विधान-सभा के सदस्य और बम्बई प्रांत की प्रथम कांग्रेसी सरकार में संसदीय श्रम-सचिव नियुक्त हुए।

सन् १९४६ ई से सन् १९५० ई तक वे बम्बई सरकार के श्रम मंत्री रहे। एक मजदूर नेता के रूप में उन्होंने देश के श्रमिक आन्दोलन को एक अनुशासन पूर्ण आंदोलन का रूप दिया। सन् १९४७ ई में श्री नन्दा ने जिनेवा' के अन्तर्राष्ट्रीय-श्रम-सम्मेलन में सरकारी प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। सन् १९५ ई० में श्री नन्दा केन्द्रीय सरकार के योजना मंत्री और योजना-आयोग के उपाध्यक्ष बनाये गये।

उसके पश्चात् 'कामराज-योजना के अन्तर्गत जब बहुत से मंत्रियों ने इस्तीफे दिये तब पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने नये मन्त्रिमण्डल में श्रीनन्दा को गृह-मंत्री के रूप में ले लिया। तब से अभी तक वे उसी पद पर काम कर रहे हैं।

—

गुलामअली खाँ बड़े

भारतीय शास्त्रीय संगीत के एक प्रसिद्ध उस्ताद जिनका जन्म सन् १९ २ में लाहौर में हुआ था।

उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ पटियाला घराने के संगीतकार हैं। पाँच वर्ष की उम्र म इनकी संगीत शिक्षा इनके पिता उस्ताद अली खाँ और सुप्रसिद्ध गायक काले खाँ के निरीक्षण में शुरू हुई। सन् १९१९ में काले खाँ की मृत्यु हो जाने से इन्हें बड़ा सदमा पहुँचा मगर उसके बाद इन्होंने अपने अभ्यास को तभी से बढ़ाया। सन् १९२१ में १९ वर्ष की अवस्था में इन्होंने के प्रिंस ऑफ वेल्स के दरबार में इनका संगीत हुआ। तब से इनकी कीर्ति बहुत बढ़ गई।

बड़े गुलाम अली संगीतकार के साथ-साथ अच्छे कवि भी हैं। वे 'सबरङ्ग' के नाम से कविता करते हैं। जितनी रचनाएँ इन्होंने स्वरबद्ध की हैं वे सब इन्हीं की बनाई हुई हैं।

बड़े गुलामअली का संगीत-आलाप की गम्भीरता बोल एवं तानों की विविधता चमत्कारपूर्ण लयकारी और विशाल स्वर योजना इत्यादि मिश्रित गुणों से एक अनूठा रूप धारण कर लेता है। उनके कण्ठ में ओज, माधुर्य, स्वच्छता कोमलता आदि सभी गुण विद्यमान हैं।

—

गुलाम-कादिर

रोहिला जाति का एक मुसलमान सरदार, जो बावनी महल नामक स्थान का जागीरदार था। यह मुगल सम्राट् शाह आलम का समकालीन था।

उसके पश्चात् गुलाब सिंह ने काश्मीर मे अपने राज्य का और भी विस्तार किया। गुलाब सिंह का प्रधान सेनापति 'जोरावर सिंह' अत्यन्त वीर और पराक्रमी था। इसने अपनी सेना के साथ 'बल्तस' और 'बलूचिस्तान' पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की। इन्ही के सेनापतित्व मे एक सेनाने 'तिब्बत' पर भी आक्रमण किया था, मगर मौसम प्रतिकूल होने से वे भी मारे गये और उनकी सेना भी तहस नहस हो गयी।

सन् १८४६ ई०मे 'अलीवाल' के सिक्ख-युद्ध के पश्चात् राजा गुलाब सिंह के साथ अंग्रेजो की एक सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार राजा गुलाब सिंह पुश्त दर-पुश्त के लिए एक स्वतन्त्र शासक बना दिये गये और सिंधु नदी से पूर्व और रावी नदी से पश्चिम के तमाम प्रान्त उन को दे दिये गये। इसके बदले गुलाब सिंह ने अंग्रेजी सरकार को ७५ लाख रुपये एक मुश्त नगद दिये।

इस प्रकार सन् १८४६ ई०मे काश्मीर के सम्पूर्ण शासन-सूत्र महाराज गुलाब सिंहके हाथो मे आये। ११ वर्ष तक पूरे कश्मीर पर शासन करके सन् १८५७ ई० मे गुलाब सिंह का देहान्त हो गया। (वसु-विश्वकोष)

गुलाबों का युद्ध

सन् १४५४ ई० मे इंग्लैण्ड के लड्कास्टर वश के राजा छठे हेनरी और लकास्टर वश की दूसरी शाखा यार्क वश के रिचर्ड ड्यूक ऑफ यॉर्क के बीच मे छिड़ा हुआ भयङ्कर युद्ध। जो इंग्लैण्ड के इतिहास 'गुलाबो के युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है।

उस समय इंग्लैण्ड की गद्दी पर लड्कास्टर वश का छठा हेनरी विद्यमान था। इस समय लड्कास्टर वश को इंग्लैण्ड पर राज्य करते हुए ५४ वर्ष बीत चुके थे। मगर वास्तव मे तृतीय एडवर्ड की गद्दीका वास्तविक हक यार्क वश को पहुँचता था।

राजा छठा हेनरी राज्य-प्रबन्ध के सर्वथा अयोग्य था और उसे पागलपन के दौरे भी आते रहते थे। इसलिए रिचर्ड ड्यूक आफ यॉर्क ने अपने अधिकारो के लिए नियमानुसार छठे हेनरी से युद्ध छेड़ दिया।

इस युद्ध में यार्कवालो की पार्टी का निशान सफेद गुलाब का फूल था, और लकास्टर वश का निशान लाल गुलाब का फूल था। इसी से यह युद्ध 'गुलाब के युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इनकी पहली लड़ाई सन् १४५५ ई० मे हुई, जिसमे यार्क वालो की विजय हुई। राजा हेनरी कैद हो गया और उसी समय फिर पागल हो गया। दूसरी लड़ाई सन् १४६० ई० मे हुई, जिसमे भी यार्क वालो की विजय हुई। रिचर्ड यार्क ने गद्दी का दावा किया, मगर प्रतिनिधि-सभा ने यह निश्चित किया कि इंग्लैंड की गद्दी पर हेनरी ही राजा रहे, मगर राज्य-प्रबन्ध रिचर्ड यॉर्क करे और हेनरी के मरने के बाद रिचर्ड यॉर्क इंग्लैड की गद्दी पर बैठे।

इस निर्णय से असन्तुष्ट होकर हेनरी के पुत्र 'एडवर्ड' ने सेना एकत्रित करके सन् १४६० मे 'वेकफील्ड' स्थान पर यार्क वालो को पराजित कर दिया। रिचर्ड यार्क मारा गया, मगर उसका लड़का एडवर्ड फिर सेना सहित लन्दन पर चढ आया और चौथे एडवर्ड के नाम से गद्दी पर बैठ गया। इसी वर्ष 'टौटन' की लड़ाई मे चतुर्थ एडवर्ड ने छठे हेनरीके पक्ष को हमेशाके लिए हरा कर इंगलैंडकी गद्दी प्राप्त की।

गुलाम हुसेन खाँ सैय्यद

बङ्गाल मे मुर्शिदाबाद नवाब के एक अमीर, इनके पिता का नाम हिदायत अली खाँ 'आसद जङ्ग' था।

इनका समय १८ वी सदी के मध्य मे था। सन् १७८० ई० मे इन्होने 'सिअार-उल-मुताखिन' नामक मुसलमानी नवाबो का इतिहास फारसी भाषा मे लिखा था। इस ग्रथ मे बङ्गाल की तत्कालीन अवस्था का बड़े सुन्दर रूप मे विवेचन किया गया है।

बङ्गाल के इतिहासकार इस ग्रथ का बड़ा आदर करते रहे। इतिहासकार 'बालफोर' ने इस ग्रथ का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित करवाया। इस इतिहास के अलावा गुलामहुसेन ने 'बशारत-उल इमानत' नामक एक काव्य ग्रथ की भी रचना की थी।

गुलिस्तां

फारसी के सुप्रसिद्ध सूफी कवि शेखसादी के द्वारा लिखा हुआ फारसीभाषा का नीति मूलक अमरकाव्य। जिसकी रचना सन् १२५८ मे शीराज नगर मे हुई।

"गुलिस्तां" एक अत्यन्त ऊँचे दर्जे का गद्य-पद्य मय काव्य

मैत्रीधर्म (१९२७) प्रबन्ध प्रभाकर (१९१४) विज्ञान वार्ता (१९११) फिर निराशा क्यों (१९१९) सिद्धान्त और अध्ययन (१९४६) काव्य के रूप (१९४७) इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

निबन्धकार और दार्शनिक होने के साथ-साथ बा. गुलाब राय हास्यरस के भी कलाकार थे। इस क्षेत्र में उनकी 'ठलुआ-क्लब' और 'मेरी असफलताएँ' नामक रचनाएँ विशेष लोकप्रिय हुईं।

गुलबर्गा

आधुनिक मैसूर राज्य का एक जिला और उसके पहले हैदराबाद के निजाम-राज्य के गुलबर्गा डिवीजन का एक जिला और शहर। गुलबर्गा शहर की जनसंख्या ९७ ११ है।

बारहवीं तेरहवीं शताब्दी में यह क्षेत्र वरंगल के काकातीय राजाओं के शासन में था। सन् १३४७ में हसन गंगू नामक एक मुसलमान सरदार ने बहमनशाह की उपाधि धारण कर शक्ति संचय की। दौलताबाद पर कब्जा कर उसने अपने को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया और बहमनी राजवंश की स्थापना कर गुलबर्गा को एहसानाबाद के नाम से अपनी राजधानी बनाई। बहमनी राजाओं के द्वारा बनाई हुई कई मसजिद किले और महल यहां खण्डहरों के रूप में दिखलाई पड़ते हैं।

हैदराबाद में निजामशाही की स्थापना के बाद यह क्षेत्र निजाम के शासन में चला गया। यहां की जनता में कन्नड़ी, तैलगू, उर्दू और मराठी-भाषाएं प्रचलित हैं।

गुलाबसिंह डोगरा

जम्मू-कश्मीर में डोगरा-वंश के संस्थापक, जिनका जन्म सन् १७८८ ई० के लगभग और मृत्यु सन् १८५७ में हुई।

राजा गुलाबसिंह डोगरा-वंश के राजपूत थे। ऐसा कहा जाता है कि यह राजवंश राजपूताने से आकर डोगरा प्रदेश के बीरपुर नामक ग्राम में बस गया था। यहां से यह वंश तीन शाखाओं में विभक्त हो गया। एक शाखा ने 'चम्बा' को एक ने 'कांगड़ा' को और एक ने 'जम्मू' को अपना केन्द्र बनाया।

गुलाबसिंह इसी जम्मू वाली शाखा में पैदा हुए थे।

जब सिक्ख-नरेश 'रणजीत सिंह' ने दीवानचन्द्र मिश्र के सेनापतित्व में एक सेना जम्मू को जीतने के लिए भेजी थी उस समय १८ वर्ष के गुलाब सिंह ने बड़ी वीरता का परिचय दिया था। जिसकी प्रशंसा सेनापति दीवानचन्द ने महाराजा रणजीत सिंह के सामने भी की थी।

जब जम्मू सिक्ख-नरेश के हाथ में आ गया तब जम्मू का यह परिवार भयङ्कर विपत्ति में पड़ गया और गुलाब सिंह को मुश्किल नामक किसी पर ३) महीने में नौकरी करनी पड़ी। परन्तु यह नौकरी भी बहुत अधिक दिनों तक नहीं चली और वे इस्माइलपुर में अपने पिता के पास चले गये।

कुछ समय के पश्चात् दुर्लभ नामक एक महाजन से थोड़ा सा धन लेकर और मियाँ मोटो' नामक अधिकारी से एक सिफारिशी पत्र लेकर गुलाब सिंह अपने भाई ध्यान सिंह को लेकर लाहौर में दीवानचन्द के पास गये। दीवानचन्द ने उनकी भेंट महाराजा रणजीत सिंह से कराई और सन् १८१२ ई० में ये दोनों घुड़सवार सेना में भर्ती किये गये।

ध्यान सिंह पर महाराजा रणजीतसिंह की विशेष रूप से कृपा थी और इसी के फलस्वरूप रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद उसने पंजाब की राजनीति में बड़े-बड़े खेल खेले।

सन् १८१८ ई० में महाराज रणजीतसिंह ने गुलाब सिंह को राजा की उपाधि देकर उनको जम्मू का राजा बना दिया। जम्मू का राज्य प्राप्त होने पर गुलाबसिंह ने वहां के आस पास के सरदारों को जीत कर अपने राज्य में मिलाना शुरू किया। इसके बाद गुलाब सिंहने रणजीतसिंहकी मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र खड्गसिंह, पौत्र नौनिहालसिंह और पुत्रवधू चांदकुमारी के विरुद्ध ध्यानसिंह ने जो षड्यन्त्र किये थे—उनमें ध्यानसिंह का साथ दिया और रानी चांदकुमारी को गद्दी से हटा कर शेर सिंह को गद्दी पर बैठा दिया और रानी चांदकुमारी की करीब करोड़ रुपये की सम्पत्ति को लेकर वहां से जम्मू चला गया।

बडा आनन्द आता। अगर कॉंटो का भय न होता तो गुलाब के फूलों का सौन्दर्य और भी दर्शनीय होता।

गुलाम-राजवंश

भारतवर्ष मे दिल्ली के तख्त पर स्थायी रूप से मुसलमानी सत्ता की स्थापना करनेवाला पहला राजवश। जिसने सन् १२०६ से सन् १२९० तक शासन किया।

शहाबुद्दीन गौरी ने सन् ११९२ मे तलावडी के मैदान मे पृथ्वीराज चौहान को पराजित कर भारत मे इसलामी साम्राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया और सन् १२०३ मे वह अपने जर खरीद गुलाम और सेनापति कुतुबुद्दीन को भारतीय साम्राज्य का गवर्नर बनाकर वापस गजनी चला गया। कुतुबुद्दीन ने ही दिल्ली मे गुलाम राजवश की प्रतिष्ठा की।

कुतुबुद्दीन ने सत्ता सम्हालने के पश्चात् गुजरात के चालुक्य राजा रायकर्ण को करारी पराजय (११९९) दी। जिसके परिणाम स्वरूप नहरवाला और गुजरात का प्रान्त उसके साम्राज्य मे आ गये। अजमेर पहले गोरी के समय में ही साम्राज्यमे आचुका था। अजमेर और गुजरात को अपने अधीन कर कुतुबुद्दीन ने भारत प्रसिद्ध कालिञ्जर के किले पर (१२०२) आक्रमण किया। वहाँ का राजा परमर्दिदेव बहुत समय तक लडता रहा। मगर अन्त मे उसे आत्मसमर्पण करना पडा। कालिजर पर अधिकार करके कुतुबुद्दीन ने वहाँ के सब मन्दिरो को तोड डाला और उनकी जगह मसजिदें बनवा दी। दिल्ली और कन्नौज पहले ही अधिकार मे आ चुके थे। इस प्रकार अजमेर, दिल्ली, कन्नौज और बनारस मे मुसलमानी सत्ता पूर्णरूप से स्थापित हो गई। उधर इसी के एक सरदार मुहम्मद बख्तियार खिलजी ने अवध, बिहार और बङ्गाल को जीत लिया था। इस प्रकार कुतुबुद्दीन के समय मे ही भारत के बहुत बडे हिस्से पर उस का अधिकार हो गया था।

कुतुबुद्दीन के समय मे उसने तथा उसके सेनापतियो ने हिन्दुओ या काफिरो के विरुद्ध बडे-जिहाद किये। कितनो ही को मारा, कितनों ही को मुसलमान बनाया, कितने ही मन्दिरो और मूर्त्तियो को तोडा और लूटा। जिसका वर्णन तबकात-इ-नासिरी इत्यादि ग्रन्थो मे बड़े गर्व के साथ किया गया है।

स्वय कुतुबुद्दीन ने उश निवासी कुतुबशाह फकीर की स्मृति मे कुतुब मसजिद, कुतुबमीनार इत्यादि इमारतें बनवाईं। अकेली कुतुब मसजिद मे सत्ताइस हिन्दू और जैन मन्दिरो की सामग्री लगी हुई है। अजमेर की बडी मसजिद तो वहाँ के एक विशाल जैन-मन्दिर को ध्वस्त करके वही पर बनाई गई थी।

सन् १२११ मे कुतुबुद्दीन की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका लडका आराम शाह और उसके बाद कुतुबुद्दीन का गुलाम और बाद मे उसका दामाद 'अल्तमश' (१२११-१२३६) गद्दी पर आया। यह एक प्रसिद्ध विजेता और शूरबीर था। इसने कुतुबुद्दीन के अधूरे रहे हुए काम को पूरा किया। इसीके समय मे मङ्गोल सम्राट् चङ्गेज खाँ ने भारत पर सबसे पहले आक्रमण किया, मगर अल्तमश ने चतुराई से उसे सिन्ध से ही वापस लौटा दिया। अल्तमश के समय मे दिल्ली, बदायूँ, अवध, बनारस, शिवालिक पर्वत, लाहोर, सिध, बङ्गाल इत्यादि प्रान्त दिल्ली के अन्तर्गत आ चुके थे। उसने रणथम्भोर पर भी विजय प्राप्त की और गवालियर के किले पर ग्यारह महीने तक घेरा डाल कर उसे भी जीत लिया। उसके बाद उसने मालवा पर चढाई करके भेलसा पर अधिकार किया और वहाँ के एक विशाल मन्दिर को जो १०५ हाथ ऊँचा था और तीन शताब्दियो मे बन कर तैयार हुआ था उसे तोड डाला, भेलसा से अल्तमश उज्जयिनी की ओर बढा और वहाँ के सुप्रसिद्ध महाकाल के मन्दिर और विक्रमादित्य की विशाल मूर्ति को भी तोड डाला।

सन् १२३६ मे अल्तमश की मृत्यु हुई। अल्तमश के बाद कुछ महीने उसके लडके रुकनुद्दीन ने राज्य किया मगर नालायक होने के कारण सरदारो ने उसे मार डाला और उसकी जगह उसकी बहन रजिया सुलताना को गुलाम वश की गद्दी पर बिठाया। रजिया बडी योग्य और बुद्धिमती थी। इतिहासकारो ने भी उसकी प्रशसा की है। मगर अपने किसी गुलाम के प्रेमपाश मे पड जाने से उसने भी अपने जीवन से हाथ धोया।

रजिया के पश्चात् उसके भाई बहराम ने और उसके भतीजेने थोडे-थोडे समय तक राज्य किया। उसके बाद अल्त-

गुसाईं आनंद कृष्ण

फारसी भाषा के एक प्रसिद्ध कवि, जिनका जन्म सन् १७५० के आसपास शाहजहाँवाद मे हुआ था।

गुसाई आनन्द कृष्ण ने अंग्रेज विद्वान् डङ्कन के आग्रह से फारसी के ४०००० शेरो मे सात काण्ड रामायण का और १२००० शेरो मे मत्स्य पुराण का अनुवाद किया था। रामायण का अनुवाद सन् १७६० (विक्रम सम्वत् १८४७) मे किया गया था।

गुहिलोत-राजवंश

मेवाड का सुप्रसिद्ध राजवश जो वाद मे 'सीसोदिया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका शासनकाल ईसा की आठवी सदी से प्रारम्भ हुआ और भारत की स्वाधीनता मिलने के पूर्व तक वदस्तूर इसी क्षेत्र मे जारी रहा।

इस प्रकार करीब तेरह शताब्दियो तक इस राजवश ने लगातार—एक दो छोटे वडे अपवादो को छोड़ कर—मेवाड पर शासन किया। इतने लम्वे समय तक एक ही क्षेत्र मे शासन करने वाले एक ही वश का उदाहरण सारे ससार के इतिहास मे ढूढे न मिलेगा।

मेवाड के इतिहास पर अभी तक दो ग्रथ विशेष प्रामाणिक रूप से लिखे गये हैं। पहला ग्रन्थ प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल टॉड ने राजस्थान के इतिहास के रूप मे लिखा और दूसरा ग्रन्थ इसी विषय पर प्रसिद्ध इतिहासकार गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा ने लिखा। इन दोनो इतिहासकारो मे कई स्थान पर वड़े गहरे मौलिक मतभेद हैं, और कर्नल टॉड के निकाले हुए अनेक तथ्यो को ओझाजी ने कपोलकल्पित और गलत बतलाया है।

भाटों की पोथिया, शिलालेख, प्रशस्तियाँ तथा प्रचलित किम्वदन्तियो की टूटी फूटी कडियो को जोड़ कर उनको इतिहास की एक शृ खला मे परिणित करने मे अच्छे से अच्छे इतिहासकारो से कई जगह गलतियाँ हो सकती हैं, कई स्थानो पर ऐसे प्रसङ्ग आते हैं जहाँ मतभेद हो सकते हैं, मगर इन सब बातो के बावजूद किसी इतिहासकार को, एक उपन्यासकार को तरह कपोल कल्पित तो नही कहा जा सकता।

कर्नल टॉड ने राजस्थान के इतिहास को तैयार करने मे अपना जीवन दे दिया। इस कार्य्य के लिये वे राजस्थान के कोने-कोने मे घूमे, वहाँ पर जितनी भी तरह की सामग्री उन्हे प्राप्त हो सकती थी वह इकट्ठी की, और सबके आधार पर उन्होने इस महान् ग्रन्थ को तैयार किया। उन्होने जो तथ्य एकत्रित किये उनमे कपोलकल्पना करने मे उनका क्या स्वार्थ हो सकता था। हा, तथ्यो के साथ दो इतिहासकारो मे मत भेद अवश्य हो सकता है।

ऐसी स्थिति मे गुहिलोत राजवश का परिचय सक्षिप्त मे हम इन दोनो इतिहासकारो के आधार पर कर रहे हैं।

गुहिलोत राजवश की उत्पत्ति सूर्य्यवश के लव और कुश से मानी जाती है। कर्नल टॉड ने इस वश की उत्पत्ति लव से मानी है और ओझाजी कुश से मानते हैं।

इसी वश मे आगे चलकर 'गुहिल' नामक एक व्यक्ति हुआ और उसी व्यक्ति के नाम पर यह वश "गुहिलोत" कहलाया।

'गुहिल' कौन था, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई। इसका वर्णन करते हुए कर्नल टॉड ने भाटो की पोथियो के आधार पर लिखा है कि—

राजा कनकसेन की आठवी पुश्त मे राजा शिलादित्य सौराष्ट्र की वल्लभी नगरी का राजा था। उसीके शासनकाल मे सन् ५२४ मे म्लेच्छो ने वल्लभीपुर पर आक्रमण करके उसका विध्वस कर दिया। राजा शिलादित्य लडाई मे मारा गया। उसके साथ उसकी कई रानिया सती हुई, मगर एक रानी जो चन्द्रावती के परमार राजा की पुत्री थी और उस समय नैहर मे थी, सगर्भा होनेके कारण गर्भस्थ बालक की रक्षा के लिए जीवित रही, मगर सब कुछ छोडछाड कर तपस्वी जीवन व्यतीत करने के लिए मलिया नामक एक पहाडी गुफा मे जाकर रहने लगी, वही पर उसको एक पुत्र हुआ।

इसी गुफा के समीप बीर नगर नामक एक बस्ती थी। उसमे कमलावती नामक एक ब्राह्मणी रहती थी। रानीने उस ब्राह्मणी को बुलाकर उसे अपना पुत्र सौप दिया और स्वय चिता में जलकर भस्म हो गई।

कमलावती ने अपने पुत्र की तरह ही स्नेह के साथ उसका पालन किया और गुफा मे पैदा होने के कारण उसका

मश का छोटा लड़का नासिरुद्दीन राजा हुआ। सुलतान नासिरुद्दीन बड़ा नेक और धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसके एक कर्मचारी ने 'तबकाते-ए-नासिरी' नामक भारतीय मुसलमानों का पहला इतिहास ग्रन्थ फारसी में लिखा।

सन् १२६६ में नासिरुद्दीन की मृत्यु होने पर उसका श्वसुर 'बलबन' के नाम से गद्दी पर बैठा। इसका परिचय 'गयासुद्दीन बलबन' के नाम से इस ग्रन्थ के इसी भाग में दिया गया।

'बलबन' के पश्चात् उसका पौत्र कैकुबाद गुलामवंश का अन्तिम सुलतान था। यह बड़ा दुराचारी था। जिसके परिणामस्वरूप सन् १२९० में इसकी हत्या की गई और गुलाम राजवंश का खात्मा हो गया।

—

गुलाल साहिब

भारतवर्ष में बावरी पन्थ की सन्त परम्परा के एक प्रसिद्ध सन्त। जिनका समय अठारहवीं सदी के दूसरे चरण में और मृत्यु सन् १८१७ में हुई।

गुलाल साहिब गाजीपुर जिले के भुरकुड़ा गाँव में एक जमींदार थे। इनके यहाँ बुलाकी राम नामक एक कुनबी किसान हल चलाने का काम करता था। बुलाकीराम को एक बार दिल्ली जाने का अवसर प्राप्त और वहाँ पर उसे बावरी पन्थ के सन्त यारी साहब के सत्संग का अवसर मिला। यारी साहब का उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वह उनका शिष्य हो गया।

कुछ समय तक इधर उधर भ्रमण करने के बाद वह फिर भुरकुड़ा आया। मालिक ने फिर उसे हल चलाने को रखा मगर अब उसकी तबियत हल चलाने में नहीं लगती थी और वह अपने ध्यान में खोया-खोया रहता था।

एक दिन किसी चमत्कारपूर्ण घटना को देखकर उसके मालिक उससे बड़े प्रभावित हुए और वे उसी समय अपने उसी हलवाहे के शिष्य बन गये। यही हलवाहा बावरी मत में बुला साहब के नाम से और वह जमींदार गुलाल साहब के नाम से प्रसिद्ध हुए।

गुलाल साहेब बावरी पन्थ के बड़े प्रसिद्ध सन्त हुए। इनकी रचनाओं में भक्ति की भावना और ईश्वर प्रेम के उद्‌गार उनके गुरु और दादागुरु से अधिक मात्रा में देखने को मिलते हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह गुलाल साहब की बानी के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनके दो अन्य ग्रंथ "ज्ञान-गुष्टि" और 'राम सहस्र नाम' भी सुनने में आते हैं।

(भारत की सन्त परम्परा)

—

गुसाईं

गुसाईं गोस्वामी शब्द का अपभ्रंश है। गोस्वामी,का अर्थ इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाला होता है। यह मत एक सम्प्रदाय के रूप में चल रहा है। इस सम्प्रदाय में वैष्णव और शैव दोनों मत के लोग होते हैं।

भारत के बहुत से पुण्यक्षेत्रों तीर्थस्थानों और बड़े शहरों में गुसाइयों के मठ या अखाड़े स्थापित हैं। इन्द्रियों पर जय प्राप्त करने वालों को ही गोस्वामी या गुसाईं कहते हैं। पहले इस सम्प्रदाय के साधु जीवन भर अविवाहित रह कर ब्रह्मचर्य का पालन करते थे मगर अब इस नियम में शिथिलता आ गई है।

—

गुसाईगञ्ज

लखनऊ जिले का एक नगर। जो लखनऊ सुल्तानपुर मार्ग पर स्थित है। इसकी स्थापना सन् १७५४ में हिम्मतगिरि गुसाईं ने की थी।

गुसाईं हिम्मतगिरि १ • गुसाइयों की राजपूत सेना के नायक थे। इस सेना के खर्च के लिए इन्हें अमेठी परगना जागीर में मिला था। नवाबी काल में यह वंश बड़ा प्रबल था। बक्सर के युद्ध में पराजित होने पर नवाब शुजाउद्दौला ने इनके यहाँ आश्रय माँगा था। मगर इन्होंने आश्रय नहीं दिया। लेकिन जब नवाब और अंग्रेजों में संधि हो गई तब इन्हें भाग कर हरिद्वार चला जाना पड़ा।

गुसाईगञ्ज एक छोटा सुन्दर कस्बा है। कानपुर और लखनऊ तक सीधा मार्ग होने से यहाँ का व्यापार अच्छा है।

—

के शासन काल मे मेवाड राज्य मे दो परिवर्तन हुए। पहला परिवर्तन यह हुआ कि मेवाड का राजवश जो अब तक गहलोत-राजवश के नाम से प्रसिद्ध था, अब सीसोदिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि इस वश के राजाओ की उपाधि, जो अब तक 'रावल' नाम से चली आ रही थी, अब 'राणा' के नाम मे परिवर्तित हो गयी।

राहप्प के पश्चात् सन् १२७५ मे राणा लक्ष्मण सिंह चित्तौर की गद्दी पर बैठे। इनके चचा भीमसिंह की पत्नी सिंहलद्वीप की कन्या 'पद्मिनी' भारतवर्ष मे अभूतपूर्व सुदरी थी। उसके सौन्दर्य की प्रशसा सुन कर उसको पाने के लिए 'अलाउद्दीन' ने मेवाड पर आक्रमण किया। एक बार के आक्रमण मे सफलता न मिलने पर उसने दूसरी बार आक्रमण किया। इस दूसरे आक्रमण मे 'चित्तौड' का पतन ही गया और रानी 'पद्मिनी' बहुत सी अन्य क्षत्राणियो के साथ 'जौहर' व्रत करके अग्नि के समर्पित हो गयी।

पण्डित ओझा ने कर्नल टाड की इस परम्परा को गलत बतलाया है। उनके मतानुसार विजय सिंह की तीन पीढी के पश्चात् 'रणसिंग' नामक राजा हुआ। उसके एक पुत्र 'क्षेमसिंह' के वशज 'रावल' और दूसरे पुत्र 'राहप्प' के वशज 'राणा' कहलाये। क्षेमसिंह के बाद उसका पुत्र 'सामन्त सिंह' और उसके बाद उसका भाई कुमारसिंह राजा हुआ। कुमारसिंह का प्रपौत्र 'जैतसिंह' बडा प्रतापी राजा हुआ। उसने गुजरात के चालुक्यो, नाडोल के चौहानो और मालवा के परमारो को युद्ध में पराजित किया। इसका देहान्त सन् १२६० के लगभग हुआ। जैतसिंह का पौत्र रतन सिंह हुआ। डा० ओझा ने इसी रतनसिंह को महारानी पद्मिनी का पति बताया है। और इसी के समय मे चित्तौड़ पर अलाउद्दीन का आक्रमण होना बतलाया है और महारानी पद्मिनी के जौहर व्रत के सम्बन्ध मे भी नई शकाएँ उपस्थित की है।

अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड को विजय करके उ का प्रबन्ध मालदेव सोनगरा नामक सरदार के हाथ मे दे दिया। उधर राणा भीमसिंह का लडका अजयसिंह चित्तौड छोड कर केलवाड़ा चला गया। उसने वहाँ से चित्तौड़ का राज्य प्राप्त करने की योजना बनाना प्रारम्भ किया। अजय सिंह के बडे भाई अरिसिंह का पुत्र 'हम्मीर' छोटा होने पर भी बड़ा तेजस्वी और साहसी था। अजयसिंह ने सुजान सिंह और अजीम सिंह अपने दोनो लडको को राजतिलक न करके 'हम्मीर' के मस्तक पर राजतिलक किया। इससे नाराज होकर उसका लडका सुजान सिंह दक्षिण मे चला गया। वहाँ पर उसने एक नये राजवश की स्थापना की। उसीकी १२ वी पीढी मे छत्रपति 'शिवाजी' हुए।

'हम्मीर' को जिस समय राजतिलक किया। उस समय हम्मीर के हाथ मे कोई सत्ता नही थी। कर्नल टाड के मतानुसार चित्तौड के शासक मालदेव ने धोखे से अपनी विधवा लडकी की शादी हम्मीर से कर दी। उसी लडकी के सहयोग से हम्मीर ने राजा मालदेव को परास्त कर चित्तौड की गद्दी फिर से प्राप्त की।

राणा हम्मीर ने अपने पराक्रम से मेवाड की बडी उन्नति की और थोडे ही दिनो मे वह भारतवर्ष का बडा पराक्रमी राजा बन गया। उसका प्रभाव सारे राजस्थान मे छा गया। राणा हम्मीर ने मेवाड का पुनर्निर्माण किया।

राणा हम्मीर के पश्चात् सन् १३६५ मे उसका पुत्र क्षेत्र सिंह गद्दी पर बैठा। इसके समय मे भी चित्तौड की अच्छी तरक्की हुई।

राणा क्षेत्र सिंह के पश्चात् राणा लाखा चित्तौड की गद्दी पर बैठा। इसने महम्मद शाह लोदी की सेना को बिदनौर नामक स्थान पर परास्त किया। राणा लाखा के समय मे मेवाड के शिल्प की बहुत उन्नति हुई। उसने कितने ही सुन्दर तालावो को बनवा कर राज्य की शोभा बढाई। उसका बनवाया हुआ ब्रह्माजो का मन्दिर अब भी प्रसिद्ध है।

जिस समय राणा लाखा वृद्धावस्था मे था, उस समय मारवाड के राजा रणमल्ल ने लाखा के पुत्र युवराज चन्द्र के साथ अपनी लडकी का सम्बन्ध करने के लिए अपना दूत भेजा। उस दूत को राणा लाखा ने मजाक मे कहा कि "मैं नही समझता कि तुम मेरे जैसे सफेद दाढी वाले के लिए इस प्रकार के खेल की सामग्री लाये हो"। इसी समय राजकुमार 'चन्द्र' दरबार मे आया। सब बात सुनकर उसने कहा कि यद्यपि मेरे पिता ने मजाक मे इस सम्बन्ध को अपने लिए माना है, फिर भी मेरे लिए यह कैसे सम्भव है कि मैं इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लूँ।

तब राणा ने चन्द्र को बहुत समझाया। मगर उसने एक न मानी। उधर राणा के लिए सगाई के लिए आया

नाम गुह रक्खा। इसी गुह के नाम से 'गहिल या गहिलोत वंश चला।

कुछ बड़ा होने पर गुह ने भीलों का नेतृत्व किया और भीलों ने उसे 'ईडर' राज्य का राजा बना दिया। अतएव गहिलोत वंश की पहली स्थापना 'ईडर' में हुई।

गहिल की आठवीं पीढ़ी में नागादित्य हुआ। इसी नागादित्य के पुत्र का नाम 'बप्पा' था। यही बप्पा मेवाड़ के राजवंश का मूल प्रतिष्ठाता था। अपने मामा चित्तोड़ के राजा मानसिंह को गद्दी से उतार कर यह स्वयं चित्तोड़ की गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठने के बाद उसने हिन्दू सूर्य और राजगुरु की उपाधियाँ धारण की।

रायबहादुर प० ओझा ने कर्नल टॉड की उपरोक्त सारी बातों को कपोलकल्पित और अनर्गल बताया है उन्होंने अपने प्रमाणोंसे सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि मेवाड़के राजवंश का वल्लभी नगर से कोई सम्बन्ध नहीं है। 'गहिल' कहाँ का रहनेवाला था इसका कोई निश्चित प्रमाण नहीं है,और 'बप्पा' किसी व्यक्तिका नाम नहीं एक पदवीका नाम है। उनके मतसे शिलादित्य गुहिलका पिता नहीं बल्कि गहिलके आगे वाली पुश्तोंमें होने वाला उसका एक वंशज था। उन्होंने काल-भोज को ही बप्पा रावल और चित्तोड़ का विजेता माना है।

बाप्पा रावल के पश्चात् कर्नल टॉडके मतानुसार इस वंश के प्रसिद्ध राजाओं में अपराजित कालभोज खुमाण (८११ ८३६) भर्तृभट्ट शक्तिकुमार (६६८) अमरसिंह(११६३) राहप्प (१२०१ १२३८) लक्ष्मण सिंह (१२७५ हमीर सिंह, क्षेत्र सिंह (१३६५ १३७१) लाखा (१३७१ १३६८) मुकुल (१३६८ १४१६) और उसके बाद महाराणा कुम्भा हुए।

ओझाजी के अनुसार यह वंश इस प्रकार चला। गुहिल (५६८) भोज, महेन्द्र नाग शिलादित्य (६४६) अपराजित महेन्द्र द्वितीय कालभोज खुमाण भर्तृभट्ट, खुमाण द्वितीय महायक खुमाण तृतीय भर्तृभट्ट द्वितीय (६४२) अल्लट (६५१) नरवाहन (६७१) शालिवाहन और शक्तिकुमार (६७७) राजा हुए।

ओझाजी ने रावल समरसी का समय १२७४ बतला कर उनको पृथ्वीराज का समकालीन होना गलत साबित किया है जब कि कर्नल टॉड ने रावल समरसिंह को पृथ्वीराज का समकालीन बतला कर उनका मुहम्मद गोरी के साथ युद्ध करते हुए मारा जाना लिखा है।

कर्नल टॉड के मतानुसार बाप्पा रावल और समर सिंह के बीच चार सौ वर्षों में इस वंश में अठारह राजा हुए। मगर उनमें 'खुमान भर्तृभट' और 'शक्ति कुमार' विशेष प्रसिद्ध थे।

राणा खुमान ने सन् ८१२ से ८३६ ई० तक राज्य किया। इसके समय में 'मुहम्मद' नामक एक मुसलमान आक्रमणकारी ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। इस युद्ध में खुमान ने आक्रमणकारी को परास्त कर दिया। उसकी विजयों और सुशासन के कारण उसका प्रताप उसके जीवनकाल में ही बहुत बढ़ गया था।

राणा खुमान के लड़के मंगल ने मरुभूमि में जाकर लोद्रवा नामक नगर बसाया और मंगली गोत्र की स्थापना की।

खुमान के बाद भर्तृभट मेवाड़ की गद्दी पर बैठा और उसने मालवा और गुजरात में तेरह स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की। उस समय से उसके पुत्र 'पाटेरा-गुहिलोत' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

प० ओझा के मतानुसार सन् ६६७ में भर्तृभट द्वितीय के समय से गहिलोत वंश की बड़ी समृद्धि हुई, उसका पुत्र अल्लट और प्रपौत्र शक्तिकुमार बड़े प्रतापी हुए।

इस वंश में आगे चलकर सन् ११२६ में विक्रमकुमार नामक राजा हुआ। जिसने मालवाके राजा उदयादित्य परमार की लड़की से विवाह किया और अपनी लड़की ल्हणदेवी का विवाह जयपुरि राजा 'जयकर्ण' के साथ किया।

कर्नल टॉड शक्तिकुमारकी चौथी पुश्त में समर सिंह का होना मानते हैं। जिसका जन्म उनके मतानुसार सन् ११४६ ई० में हुआ और जिसकी शादी पृथ्वीराज चौहान की बहन 'पृथा'के साथ हुई थी। पृथ्वीराज चौहानके साथ शहाबुद्दीनकी दूसरी लड़ाई में यह मारा गया और उसके बाद उसका बड़ा पुत्र राजकुमार कर्णसिंह सन् ११६३ ई० में मेवाड़ की गद्दी पर बैठा।

कर्णसिंह के बाद उसके चाचा सूर्यमल का पौत्र 'राहप्प' सन् १२०१ में चित्तोड़ की गद्दी का अधिकारी हुआ। राहप्प

उदय सिंह के पश्चात् इतिहास मे सुप्रसिद्ध महाराणा प्रताप मेवाड की गद्दी पर आये। उनकी अनुपम वीरता, महान आत्मबलिदान और देश की स्वतन्त्रता के लिए झेली हुई महान् आपदाएँ आज भी न केवल मेवाड मे, बल्कि समस्त भारत के घर-घर मे उनके महान् गौरव का शखनाद कर रही हैं। उनके द्वारा किया हुआ 'हल्दी घाटी' का महा भयङ्कर युद्ध यूनान की 'थर्मापोली' की याद दिलाता है। (उनका पूरा परिचय महाराणा प्रताप के नाम पर इस ग्रथ के अगले भागो मे पढे ।)

सन् १५८६ ई० मे महाराणा प्रताप ने माडलगढ़ और चित्तौड को छोड कर समस्त मेवाड पर फिर से अधिकार कर लिया। सन् १५९७ ई० मे उनकी मृत्यु हो गयी।

राणा प्रताप के पश्चात् किसी रूप मे मेवाण को दिल्ली की अधीनता स्वीकार करनी पडी, मगर मुगल बादशाहो ने भी उनकी वीरता, साहस और आत्मत्याग को देखकर उनके गौरव को अक्षुण्ण रखा।

औरङ्गजेब के समय मे राणा राजसिंह ने फिर एक बार सीसोदिया-कुल की जागती हुई ज्योति के दर्शन करवा दिए। उस समय रूपनगर नामक स्थान के सामन्त की लडकी प्रभावती अपने रूप और सौन्दर्य के लिए बडी प्रसिद्ध हो रही थी। बादशाह औरङ्गजेब उसको अपने हरम मे दाखिल करना चाहता था। उसने २००० सैनिको के साथ एक सेनापति को रूपनगर के सामन्त के पास यह सन्देश देकर भेजा। यह बात जब प्रभावती को मालूम हुई तो उस बीर राठौर कन्या ने राजसिंह के पास एक भावभरा पत्र अपने पुरोहित के साथ भेजा।

राजसिंह को जब यह पत्र मिला तो वह उस राठौर-कन्या की रक्षा के लिए एक छोटी सी सेना लेकर रूपनगर चल पड़ा और मुगल सेना को पराजित कर दिया। उसके बाद रूपनगर के सामन्त ने प्रभावती की सगाई का नारियल राजसिंह के पास भेज दिया। राजसिंह ने उसे स्वीकार कर लिया।

तब औरङ्गजेब ने अपनी एक विशाल सेना रूपनगर पर भेजी। मगर रास्ते ही मे राजसिंह के चूडावत-सरदार ने बादशाही सेना को रोक दिया। तीन दिन तक वह बादशाह की फौज को रोके रहा। तब तक राजसिंह का विवाह प्रभावती से होचुका था। वहाँ से विवाह कर राजसिंह रूपनगर से लौट आये। मगर तीन दिन की भयङ्कर लडाई मे चूडावत सरदार मर चुका था।

इसके बाद राजसिंह के साथ बादशाह की फौज का 'देवारी' के मैदान मे बडा भारी सग्राम हुआ। इस युद्ध मे भी औरङ्गजेब की भारी पराजय हुई।

राणा राजसिंह अत्यन्त युद्ध-कुशल होने के साथ-साथ बडे राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होने भारतवर्ष से मुसलमानी-साम्राज्य को हटा कर फिर से 'हिन्दू-साम्राज्य' स्थापित करने के लिए शिवाजी को एक अत्यन्त भावपूर्ण पत्र लिखा था। उन्होने शिवाजी और बुन्देला राजा छत्रसाल के साथ मिलकर इस योजना को सफल करना चाहा। मगर उसके कुछ ही समय पश्चात् राणा राजसिंह और शिवाजी—दोनो की ही सन् १६८१ और १६८० ई० मे मृत्यु हो गयी।

फिर भी इन लोगो की टक्कर से मुगल साम्राज्य को जो भयङ्कर आघात लगा, उससे वह न सम्हल सका और उसका वैभव-सूर्य्य अस्ताचलगामी हो गया।

राणा राजसिंह ने राज्य के वैभव के लिए बहुत से काम किए। एक पहाडी नदी की धारा को रोक कर उसने १२ मील के घेरे मे 'राजसमन्द' नामक विशाल सरोवर का विशुद्ध सगमरमर से निर्माण करवाया। उस झील के दक्षिण बाजू पर उसने 'राजनगर' नामक एक नगर बसाया और सङ्गमरमर के एक विशाल मन्दिर का भी निर्माण करवाया।

गुहिलोत-राजवंश के अन्य राज्य

कर्नल टाड ने गुहिलोत-राजवश की २४ शाखाओ का वर्णन किया है। इन शाखाओ मे अहाडिया डूगरपुर मे, माँग लिया मरूभूमि मे, सीसोदिया मेवाड मे, पीपाडा मारवाड मे ये शाखाएँ प्रसिद्ध थी। इनके अतिरिक्त बाँसवाडा और प्रतापगढ के राज्य भी इसी वश के हैं। काठियावाड मे भावनगर के महाराजा, पालीताना के ठाकुर और मध्यप्रदेश मे बडवानी के महाराजा भी इसी वश के थे शिवाजी का राजवश भी इसी वश के द्वारा स्थापित किया गया था।

नैपाल का राजवश भी मेवाड के राजवश की ही एक शाखा है। रावल समरसिंह के छोटे भाई कुम्भकर्ण ने हिमा-

नारियल लौटा देना भी एक नई दुश्मनी को पैदा करना था। अन्त में क्रुद्ध होकर राणा ने राजकुमार को कहा कि तुम्हारे मंजूर न करने पर मैं स्वयं इस विवाह को करूँगा लेकिन इस बात को याद रखना कि अगर उससे कोई लड़का पैदा हुआ तो वही इस राज्य का उत्तराधिकारी होगा।

राजकुमार चन्द्र ने पिता की इस बात को सहर्ष स्वीकार किया और इस मध्ययुग में भीष्म पितामह के आदर्श को फिर से दोहरा दिया।

मारवाड़ी की रानी से राणा लाखा को 'मुकुल' नामक लड़का पैदा हुआ और वही मुकुल चित्तौड़ की गद्दी का उत्तराधिकारी हुआ।

राणा मुकुल का पुत्र इतिहास प्रसिद्ध राणा कुंभा हुआ। (राणा कुंभा का विस्तृत परिचय हम इस ग्रंथ के तीसरे भाग में लिख आये हैं।) राणा कुंभा ने अपने सारे जीवन में कभी पराजय का मुंह नहीं देखा। उसने मालवा और गुजरात के मुसलमान सुल्तानों को कई दफे बार बार पराजयें दीं। बूंदी मांडलगढ़ गागरोन सारङ्गपुर, रणथम्भोर अजमेर नागौर, आबू इत्यादि कई स्थानों पर विजय प्राप्त करके उसने उनपर अधिकार किया। चित्तौड़ के ८४ दुर्गों में से ३२ दुर्ग अकेले राणा कुम्भा के बनाए हुए हैं। चित्तौड़ का कीर्ति स्तम्भ राणा कुम्भा की अमर कीर्ति का द्योतक है। राणा कुम्भा अनेक शास्त्रों का ज्ञाता महान् विद्वान् और धुरन्धर संगीत शास्त्री था। राणा कुम्भा की हत्या उसके 'ऊदा' नामक पुत्र ने सन् १४७१ ई. में कर डाली।

राणा कुम्भा के पश्चात् मेवाड़ के राजवंश में राणा संग्राम सिंह या 'साँगा' बहुत प्रतापी हुआ। यह सन् १५ ८ ई. में गद्दी पर बैठा। इसने भी कई लड़ाइयों में भारी विजय प्राप्त की। गुजरात के सुल्तान मुजफ्फर शाह और दिल्ली के सुल्तान इब्राहिम लोदी के प्रहार को इसने रोका। राणा कुम्भा के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों के समय में मेवाड़ राज्य ने जो कुछ खोया था वह राणा संग्राम सिंह के शासन में फिर से प्राप्त कर लिया। संग्राम सिंह के सिंहासन पर पैर रखते ही मेवाड़ राज्य ने अपनी उन्नति प्रारम्भ की और कुछ समय में यह भारत का चक्रवर्ती राज्य समझा जाने लगा। उसने अपनी सेना का संचालन भी बड़ी बुद्धिमानी से किया। मगर फिर भी दैवयोग से बाबर के साथ होने वाले 'खानवा' के युद्ध में [illegible] ही समय पश्चात् सन् १५[illegible] गयी। जिस स्थान पर [illegible] स्मारक में एक मन्दिर बनवाया [illegible]

राणा साँगा के पश्चात् उसके [illegible] विक्रमाजीत उसके पश्चात् [illegible] के पुत्र पृथ्वीराज का दासी पुत्र बनवीर [illegible] पर आया। उस समय राज्य का [illegible] सिंह का छोटा पुत्र उदयसिंह केवल [illegible] यह समझकर कि होशियार होने पर [illegible] मालिक होगा—उसने इस बच्चे [illegible] चाहा।

उस समय उदय सिंह, [illegible] संरक्षण में था। पन्ना धाई को कुछ [illegible] से इस षड्यन्त्र का पता [illegible] वंश की रक्षा के लिए उसने [illegible] छिपा कर, एक व्यक्ति के साथ [illegible] उसकी जगह पर अपने लड़के को सुला दिया। पश्चात् बनवीर हाथ में नंगी तलवार लिए [illegible] और उसने अपनी तलवार से उदय सिंह की [illegible] उस बच्चे को मार डाला। पन्नाधाई के बलिदान [illegible] उदाहरण भारतवर्ष के इतिहास की शोभा बढ़ा सकते हैं।

उसके बाद पन्नाधाई ने उदय सिंह को [illegible] में पहुँचा दिया। वहीं से आकर मेवाड़ के [illegible] १५४१ ई. में उदयसिंह ने चित्तौड़ की गद्दी [illegible] बनवीर वहाँ से भाग कर दक्षिण में चला गया, [illegible] भोंसले वंश की स्थापना की।

राणा उदय सिंह ने चित्तौड़ की [illegible] पहाड़ी के बीच में 'उदयपुर' नामक नगर बसाया [illegible] की और उदय सागर नामक एक तालाब [illegible] करवाया।

उदय सिंह के समय में सम्राट् अकबर ने [illegible] में चित्तौड़ पर आक्रमण किया और इस युद्ध [illegible] फिर से पतन हुआ। और उदय सिंह को [illegible] नामक स्थान पर जाना पड़ा। [illegible]

उदय सिंह के पश्चात् इतिहास मे सुप्रसिद्ध महाराणा प्रताप मेवाड की गद्दी पर आये। उनकी अनुपम वीरता, महान आत्मबलिदान और देश की स्वतन्त्रता के लिए झेली हुई महान् आपदाएँ आज भी न केवल मेवाड मे, वल्कि समस्त भारत के घर-घर मे उनके महान् गौरव का शखनाद कर रही हैं। उनके द्वारा किया हुआ 'हल्दी घाटी' का महा भयङ्कर युद्ध यूनान की 'थर्मापोली' की याद दिलाता है। (उनका पूरा परिचय महाराणा प्रताप के नाम पर इस ग्रथ के अगले भागों मे पढे।)

सन् १५८६ ई० में महाराणा प्रताप ने माडलगढ़ और चित्तौड को छोड कर समस्त मेवाड पर फिर से अधिकार कर लिया। सन् १५९७ ई० मे उनकी मृत्यु हो गयी।

राणा प्रताप के पश्चात् किसी रूप मे मेवाण को दिल्ली की अधीनता स्वीकार करनी पडी, मगर मुगल बादशाहो ने भी उनकी वीरता, साहस और आत्मत्याग को देखकर उनके गौरव को अक्षुण्ण रखा।

औरङ्गजेब के समय मे राणा राजसिह ने फिर एक बार सीसोदिया-कुल की जागती हुई ज्योति के दर्शन करवा दिए। उस समय रूपनगर नामक स्थान के सामन्त की लड़की प्रभावती अपने रूप और सौन्दर्य के लिए बडी प्रसिद्ध हो रही थी। बादशाह औरङ्गजेब उसको अपने हरम मे दाखिल करना चाहता था। उसने २००० सैनिको के साथ एक सेनापति को रूपनगर के सामन्त के पास यह सन्देश देकर भेजा। यह बात जब प्रभावती को मालूम हुई तो उस वीर राठौर कन्या ने राजसिह के पास एक भावभरा पत्र अपने पुरोहित के साथ भेजा।

राजसिह को जब यह पत्र मिला तो वह उस राठौर-कन्या की रक्षा के लिए एक छोटी सी सेना लेकर रूपनगर चल पडा और मुगल सेना को पराजित कर दिया। उसके बाद रूपनगर के सामन्त ने प्रभावती की सगाई का नारियल राजसिह के पास भेज दिया। राजसिह ने उसे स्वीकार कर लिया।

तब औरङ्गजेब ने अपनी एक विशाल सेना रूपनगर पर भेजी। मगर रास्ते ही मे राजसिह के चूडावत-सरदार ने बादशाही सेना को रोक दिया। तीन दिन तक वह बादशाह को फौज को रोके रहा। तब तक राजसिह का विवाह प्रभावती से हो चुका था। वहाँ से विवाह कर राजसिह रूपनगर से लौट आये। मगर तीन दिन की भयङ्कर लडाई मे चूडावत सरदार मर चुका था।

इसके बाद राजसिह के साथ बादशाह की फौज का 'देवारी' के मैदान मे बडा भारी सग्राम हुआ। इस युद्ध मे भी औरङ्गजेब की भारी पराजय हुई।

राणा राजसिह अत्यन्त युद्ध-कुशल होने के साथ-साथ बडे राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होने भारतवर्ष से मुसलमानी-साम्राज्य को हटा कर फिर से 'हिन्दू-साम्राज्य' स्थापित करने के लिए शिवाजी को एक अत्यन्त भावपूर्ण पत्र लिखा था। उन्होने शिवाजी और बुन्देला राजा छत्रसाल के साथ मिलकर इस योजना को सफल करना चाहा। मगर उसके कुछ ही समय पश्चात् राणा राजसिह और शिवाजी—दोनो की ही सन् १६८१ और १६८० ई० मे मृत्यु हो गयी।

फिर भी इन लोगो की टक्कर से मुगल साम्राज्य को जो भयङ्कर आघात लगा, उससे वह न सम्हल सका और उसका वैभव-सूर्य्य अस्ताचलगामी हो गया।

राणा राजसिह ने राज्य के वैभव के लिए बहुत से काम किए। एक पहाडी नदी की धारा को रोक कर उसने १२ मील के घेरे मे 'राजसमन्द' नामक विशाल सरोवर का विशुद्ध सगमरमर से निर्माण करवाया। उस झील के दक्षिण बाजू पर उसने 'राजनगर' नामक एक नगर बसाया और सङ्गमरमर के एक विशाल मन्दिर का भी निर्माण करवाया।

गुहिलोत-राजवंश के अन्य राज्य

कर्नल टाड ने गुहिलोत-राजवश की २४ शाखाओ का वर्णन किया है। इन शाखाओ में अहाडिया डूगरपुर मे, मांग लिया मरूभूमि मे, सीसोदिया मेवाड मे, पीपाडा मारवाड़ मे ये शाखाएँ प्रसिद्ध थी। इनके अतिरिक्त बाँसबाडा और प्रतापगढ़ के राज्य भी इसी बश के हैं। काठियावाड़ मे भावनगर के महाराजा, पालीताना के ठाकुर और मध्यप्रदेश मे बडवानी के महाराजा भी इसी वश के थे शिवाजी का राजवश भी इसी वश के द्वारा स्थापित किया गया था।

नैपाल का राजवश भी मेवाड के राजवश की ही एक शाखा है। रावल समरसिह के छोटे भाई कुम्भकर्ण ने हिमा-

पर्वत पहाड़ में जाकर १३वीं शताब्दी में अपने इस राज्य की स्थापना की थी। [illegible] की १८वीं पीढ़ी में मेवाड़ के सुप्रसिद्ध महाराणा पृथ्वीराजसिंह सिंह हुए थे।

गुहिलोतोंकि इतिहास पर टिप्पणी करते हुए 'टाड' लिखते हैं— पृथ्वी पर ऐसी कौन सी जाति है जो शौर्य धैर्य, पराक्रम और जीवन के ऊँचे सिद्धान्तों में मेवाड़ के राजवंश की बराबरी कर सके। सैकड़ों वर्षों तक विदेशी आक्रमणकारियों के अत्याचारों को सहकर और भीषण सर्वनाश को पाकर भी इस राजपूत जाति ने अपने पूर्वजों की प्राचीन सम्पदा को सुरक्षित रखा है—उसकी समता विश्व की कोई भी जाति नहीं कर सकती। अपने सम्मान और गौरव की रक्षा करने के लिए प्राणों का उत्सर्ग करना उनके लिए साधारण स्वभाव की बात होती थी। युद्ध में पराजित होकर भागने की अपेक्षा मृत्यु का सामना करने में वे अपने जीवन का महत्व समझते हैं। उनकी समता वे जातियाँ नहीं कर सकतीं जो अवसरवादी होने का लाभ उठाती हैं। राजपूत किसी प्रकार भी सरकारी नहीं कहे जा सकते—इसका प्रमाण उनका हजारों वर्षों का इतिहास है।

ग्रुण्ट्विग

डेनमार्क का एक सुप्रसिद्ध कवि और साहित्यकार। जिसका जन्म सन् १७८३ में और मृत्यु सन् १८७२ में हुई।

ग्रुण्ट्विग ने डेनमार्क के इतिहास और साहित्य में एक नवीन युगान्तर कर दिया। इसकी गणना डेनमार्क के महान् लेखकों में होती है। इतिहास के क्षेत्र में उसने नवीन आलोचनाओं के साथ कई ग्रन्थ प्रकाशित किये। इतिहास के इस नवीन अध्ययन की प्रचलित परिपाटी के लोगों ने कठोर आलोचनाएँ की थीं। मगर ग्रुण्ट्विग इन आलोचनाओं से प्रभावित नहीं हुआ। डेनमार्क के तत्कालीन सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में उसका प्रभाव और उसकी धाक मानी जाती थी। वह सर्वतोमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था।

ग्रीक-बेक्ट्रियन साम्राज्य

महान् यूनानी विजेता सिकन्दर के द्वारा मध्य एशिया में स्थापित किया हुआ एक विशाल साम्राज्य। जो ई० पू० ३३० से लेकर ई० पू० १२ तक अर्थात् दो सौ वर्ष चला।

सिकन्दर [illegible] की स्थापना की [illegible] लिए उसके सेनापतियों में युद्ध [illegible]

सिकन्दर ने उसको [illegible] और पूर्वी देशों का शासन [illegible] की [illegible] सेल्यूकस [illegible] और उसके बाद ई० पू० ३०५ में [illegible] को फिर से जीत कर 'बेसीलियस' [illegible] धारण की। उसके बाद उसने भारत पर आक्रमण किया [illegible] कर, उसे अपनी लड़की देकर [illegible] २८० में सेल्यूकस [illegible] सेल्यूकस के पश्चात् एण्टिओकस प्रथम ([illegible] और एण्टिओकस द्वितीय (ई० पू० [illegible] उत्तराधिकारी हुए।

डियोडोटस प्रथम—[illegible] बैक्ट्रिया [illegible] नगरी का [illegible] इसका विवाह एण्टिओकस द्वितीय की पुत्री [illegible] की शक्ति को कमजोर होते [illegible] को स्वतन्त्र राजा 'बेसीलियस' घोषित कर [illegible] ई० पू० २५६ से ई० पू० २३० तक [illegible]

जिस समय यह नया ग्रीक-बैक्ट्रियन [illegible] रहा था ठीक उसी समय [illegible] की एक [illegible] पार्थिया नामक नगरी पर अधिकार [illegible] प्रसिद्ध हुई। इसका पहला [illegible] इसी शाखा ने आगे चलकर [illegible] ईरान पर लगभग ४ [illegible] वर्षों तक [illegible]

डियोडोटस द्वितीय—[illegible] द्वितीय' ग्रीक बैक्ट्रियन [illegible] इसका समय ई० पू० २३० से ई० पू० [illegible] इसके पश्चात् इसके [illegible] 'यूथीडिमस' [illegible] और स्वयं बैक्ट्रिया का राजा बन बैठा। [illegible] ई० पू० २२५ से ई० पू० १८८ तक [illegible]

एउथुडिम—[illegible] और [illegible] को [illegible] ग्रीक बैक्ट्रियन [illegible] रहा। [illegible] बैक्ट्रिया, [illegible]

याना, फर्गाना, द्रगियाना, अरखोसिया और परोपनिसदे के प्रदेश और भारतवर्ष का भी कुछ भाग सम्मिलित था। ये प्रदेश इस समय ताजिकिस्तान, उजबेकिस्तान, कजाकिस्तान, सीस्तान, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत मे है।

एउथिदिम का बैक्ट्रिया (वान्हीक) आज की तरह मरु-भूमि से आक्रान्त नही था। अपनी उर्वरता के कारण वह 'पोलितिमेतस' (बहुमूल्य) कहलाता था। अपनी हजारो नहरोके कारण वह सहस्रभुज और हजारो नगरो के कारण सहस्र नगर कहलाता था। इस राज्य मे बदरुशा के अन्दर पद्मराग-मणि की तथा ताम्बे की खानें, खुरासान मे फिरोजाकी खानें और यमगान मे वैडूर्य के समान मूल्यवान खाने थी। चीन से पश्चिम की ओर जाने वाला रेशम पथ भी इसी राज्य मे से होकर गुजरता था। इससे एउथुदिम का यह साम्राज्य अत्यन्त सम्पत्तिशाली हो गया था।

एउथुदिम ने अल्ताई पर्वत की सोने की खदानो को प्राप्त करने के लिए शक लोगो पर भी आक्रमण किया था, मगर उसमे उसे सफलता नही मिली। एउथुदिमकी मुद्राएँ तेत्रादाख्म चाँदी की होती थी। उसके समय मे इन मुद्राओ का जैसा सुन्दर रूप था वह उसके बाद की मुद्राओ मे नही दिखलाई पड़ता।

दिमित्रि—ई० पूर्व १८९ मे एउथुदिम एक लडाई मे मारा गया। उसके बाद उसका पुत्र 'दिमित्रि' ग्रीक बैक्ट्रिया साम्राज्य का स्वामी हुआ। इसके अन्तिमाखू और अपोलोदोत नामक दो भाई और थे।

दिमित्रि द्वितीय के शासनकाल मे उसकी भारतविजय सबसे महत्वपूर्ण घटना है। ई० पूर्व १८३-१८२ मे एक विशाल सेना के साथ उसने हिन्दूकुश पर्वत को पार किया। दिमित्रि के साथ उसका दूसरा पुत्र दिमित्रि द्वितीय, उसका छोटा भाई अपोलोदोत और उसका सेनापति मिनाण्डर थे। उस समय भारतवर्ष मे पुष्यमित्र का शुग बश राज्य कर रहा था। दिमित्रि सिकन्दर वाले मार्ग से भारत की ओर बढ़ा।

उसने अपनी सेना को दो भागो मे विभक्त किया। एक सेना मिनाण्डर के सेनापतित्व मे गाधार से सियालकोट पर विजय प्राप्त करते हुए मथुरा पहुची। वहाँ से पाँचाल को जीत कर वह साकेत या अयोध्या पहुँची। दूसरी सेना अपो-लोदोत के नेतृत्व मे सिन्ध के डेल्टा से होकर सौराष्ट्र को विजय करके भृगु कच्छ (भडौच) मे अपनी राजधानी बनाकर चित्तौड के पास माध्यमिका नगरी को जा घेरा। शायद उसने उज्जैन को भी ले लिया। इस प्रकार दिमित्री के दोनो सेना-पतियो ने भारतवर्ष के बहुत बडे भूभाग पर अधिकार कर लिया। मिनाण्डर गाधार से पाटलिपुत्र तक जा पहुँचा और अपोलोदोत सारे सिन्ध, सौराष्ट्र और चित्तौड तथा उज्जैन तक पहुँच गया।

दिमित्रि तक्षशिला मे बैठा हुआ दोनो सेनाओ की गति-विधि देख रहा था। देखते-देखते दक्षिणी कश्मीर, पञ्जाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, मालवा, राजस्थान, उत्तरी गुजरात, काठियावाड, कच्छ, और सिन्ध उसके अधिकार मे आ गये थे। मध्य एशिया और मगध के बीच मे होने से 'तक्षशिला' को उसने अपनी राजधानी बनाया। इसने भारत के पुराने चौकोर सिक्को की नकल पर अपना सिक्का चलाया। यही पहला ग्रीकराजा था जिसने अपने सिक्के का पूर्णरूप से भारतीयकरण किया। अपने सिक्के परसे उसने ग्रीक लिपि और भाषा को बिलकुल हटाकर ब्राह्मी लिपि और पाली भाषा का प्रयोग किया। इसके तेत्राद्राख्म चादी के सिक्को मे एक ओर गजमुख मुकुट धारण किये दिमित्रि का आधा चित्र है और दूसरी ओर हाथ मे दण्ड और सिंहचर्म लिये हेरकल खडा है। मूर्ति की दाहिनी ओर 'बसिलेउस्' और पैरो के पास 'दिमित्रिओस' अङ्कित है।

इतनी भारी विजय प्राप्त करने के बाद भी दिमित्रि को अपने मूलस्थान बैक्ट्रिया पर आक्रमण की सूचना मिलने पर भाग कर यहाँ से जाना पडा।

बात यह थी सेल्यूक बशी राजा अभी भी बैक्ट्रिया को अपना एक सामन्ती राज्य समझते थे जब कि बैक्ट्रिया अपने आप को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर चुका था। इसलिये सेल्यू-कीय राजा एण्टीओक चतुर्थ ने अपने सेनापति 'एउक्रातिद' को दिमित्रि को परास्त करने का भार सौपा। जिसके फल-स्वरूप ई० पू० १६७ तक एउक्रातिद ने हिन्दूकुश के पश्चिमी प्रदेश, सीस्तान, बलूचिस्तान, (अरखोसिया) हिरात, बैक्ट्रिया को जीत लिया। यह खबर पाते ही दिमित्रि तक्षशिला से चला। उसने मिनाण्डर को भी ऐसा करने का आदेश दिया। मगर मिनाण्डर ने उस आदेश को नही माना। दिमित्रि

हिन्दूकुश के पास ही एऊक्रतिद से लड़ता हुमा (ई० पूव १६७) मारा गया।

एऊक्रतिद—ई० पू १६७ में एऊक्रतिद का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं रहा। संयुक्त राजा उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। प्रत. निर्भीक हो उसने 'बसीलेउस् मेगलीस' (महा राजाधिराज) की पदवी ग्रहण की। उसके बाद ई पू १६४ में उसने भारत के ऊपर अभियान किया। वह हिन्दूकुश पारकर कपिशा पहुँचा। वहाँ दिमित्रि के पुत्र अपलोदत्त ने उसका मुकाबिला किया मगर लड़ाई में अपलोदत्त मारा गया। इसके बाद उसने गान्धार जीता। गान्धार की लड़ाई में दिमित्रि का भाई पन्तलेवोन मारा गया। मगर मिनान्दर ने उसकी गति को एक दम रोक दिया।

इसी समय पार्थियन राजा मिथ्रदत्त' ने मीडिया पर आक्रमण करके उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। यह सुन कर 'एऊक्रतिद' को सफर भागना पड़ा। ई० पू १२१ में "एऊक्रतिद" पार्थियन राजा से लड़ते हुए लड़ाई में मारा गया।

एऊक्रतिद का पुत्र हेमियोक्लस ई पू १२१ में अपने पिता की गद्दी पर बैठा। इस समय तक सीस्तान अरखोसिया और पैरोपेनिया पार्थियन साम्राज्य में आ चुके थे। हेमियोक्लस हो ग्रीक बैक्ट्रियन साम्राज्य का अन्तिम राजा था। इसने अपने साम्राज्य की रक्षा और विस्तार का बहुत *प्रयत्न किया। मगर पार्थियन वश का यह मुकाबिला नहीं* कर सका और इसका साम्राज्य पार्थियन साम्राज्य में विलीन हो गया।

मिनान्दर—इसके बाद ग्रीक बैक्ट्रियनों की दूसरी शाखा कायम रही जो मिनान्दर के अधीन भारतवर्ष में राज्य कर रही थी। इस समय मिनान्दर की राजधानी सियालकोट में थी। मगर मथुरा और मरीच में भी इनके राज्यपाल रहते थे। गान्धार सिन्ध और गुजरात में भी उसका शासन था मिनान्दर का शासन ई पू १६६ से ई पू १४५ तक रहा। मिनान्दर की मृत्यु के पश्चात् स्नात प्रथम और स्नात द्वितीय इस वंश के राजा हुए।

गूद्-लु (इलतेरस)

मध्य-एशिया के पूर्वी तुर्क कबीले का प्रधान। जिसका *समय सन् ६८२ से ६९१ तक रहा।*

गूद्-लु का असली नाम इलतेरस' था। यह खाकानों के घराने वश का राजकुमार था। जिस समय यह खाकान बना उस समय तुर्क जातियों में बड़ा असन्तोष छाया हुआ था। एक ओर चीन की ज्यादतियों के कारण तुर्कों में चीन के प्रति असन्तोष छाया हुआ था दूसरी ओर तोबा वश के खाकानों के प्रति भी लोगों का विश्वास खतम हो चुका था। इस असन्तोष का इलतेरस ने फायदा उठाया। वह तुर्कों के परम दल का नेता बन गया और बहुत सी रिश्वतें देकर कई तुर्क कबीलों को अपनी तरफ मिलाने में वह सफल हो गया। *आस पास से बहुत सी लूटमार करके उसने सम्पत्ति बटोरी* और जल्दी ही अपने को खाकान घोषित करके गूद्-लु की उपाधि ग्रहण की और अपने एक भाई को शाह और दूसरे को बेग यू की उपाधि देकर उप-खाकान बना दिया।

चीन की साम्राज्ञी 'वू' ने उसकी हरकतों को देखकर १३ सेना उसके विरुद्ध भेजी। मगर गूद्-लु ने उस सेना को नष्ट कर दिया। इसने अपने समय में पूर्वी तुर्क कबीले का बड़ा विस्तार किया। सन् ६९१ में वह एक लड़ाई में लड़ते हुए मारा गया।

गेइजर (Geijer)

स्वीडेन का एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार जिसका समय अठारहवीं सदी के अन्त में था।

गेइजर स्वीडन का एक महान् साहित्यकार था। उसने प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित कई मधुर कविताओं की रचना की। गेइजर को अपने एक और काव्य पर सन् १८ १ में स्वीडन एकेडेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। यह उपसाला युनिवर्सिटी में इतिहास का प्रोफेसर था।

गेओन-सादिया (Saadia Gaon)

दसवीं सदी का यहूदी भाषा का एक महान् कवि और साहित्यकार। जिसका जन्म सन् ८९२ में और मृत्यु सन् ९४२ में हुई।

नवी सदी के अन्तर्गत यहूदी साहित्य पर अरवी और स्पेनी साहित्य का काफी प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो गया था। अरबो की राजसत्ता हो जाने के कारण यहूदी लोग भी वैज्ञानिक ग्रन्थो का निर्माण अरबी भाषा मे ही करने लगे थे। और इस कारण इब्रानी साहित्य मे नौवीं सदी से ग्यारहवी सदी तक का काल अरब स्पेनी युग ही कहा जाता है।

इब्रानी साहित्य मे इस युग को प्रारम्भ करने वालो मे सबसे पहला और प्रभावशाली नाम 'गेम्रान सादिया' का आता है। सिर्फ पचास वर्ष के अल्प जीवन मे इस अकेले व्यक्ति ने इब्रानी साहित्य के विकास मे जो योगदान दिया वह कई सदियो तक कोई न दे सका।

गेम्रोन सादिया की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। केवल इक्कीस वर्ष की आयु मे उसने इब्रानी भाषा का एक कोष तैयार किया। उसने 'सिद्दूर' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ मे साल भर की प्रार्थनाओ के लिए कविताओ का सग्रह किया। इसकी कविताएँ यहूदियो मे बहुत लोकप्रिय हुई। उसने बाइबिल का अरबी भाष्य के साथ अनुवाद किया। 'सेफेर योजिरो' नामक ग्रथ पर उसने अरबी टीका का निर्माण किया।

गेओन सादिया की सबसे अधिक कीर्त्ति उसके प्रसिद्ध ग्रन्थ एमुनोथ वे-डेग्रोथ नामक दार्शनिक ग्रन्थ से हुई। यह ग्रथ विश्वास और सिद्धान्त के निरूपण पर लिखा गया है। इस महान् लेखक ने यहूदियो के ईश्वर सम्बन्धी सिद्धान्तो और कथानको को बडे सुन्दर ढङ्ग से प्रस्तुत किया। इसने अपने प्रयत्नो से बेबीलोनिया मे कई ज्ञानपीठो की स्थापना की थी जो इसकी मृत्यु के बाद बन्द कर दिये गये।

गेंजी मोनोगातारी

प्राचीन जापानी साहित्य का एक प्रसिद्ध उपन्यास। जिसे प्राचीन जापान की प्रसिद्ध लेखिका 'मुरासाकी शिमिबू' ने ग्यारहवी सदी मे लिखा।

यह रचना जापानी भाषाका सबसे पहला उपन्यास माना जाता है। जिसको बहुतसे समालोचक आजभी जापानी साहित्य की अनुपम कलाकृति मानते हैं। कुछ लोग इसे विश्व साहित्य का सबसे पहला मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिखा हुआ उपन्यास मानते हैं। इस उपन्यास मे जापानी इतिहास के हेनियन युग (७६४ ११६२) का दरबारी चित्र हृदयग्राही और प्रवाहयुक्त भाषा मे खीचा गया है। उस जमाने मे जापान के अन्तर्गत प्रचलित यौन सम्बन्धी स्वतन्त्रता का दिग्दर्शन भी इस उपन्यास मे स्पष्ट रूप से अङ्कित किया गया है। इसकी भाषा अलङ्कारो से जकडी हुई होने पर भी सरल और स्पष्ट है। इस रचना का प्रभाव भविष्य के लेखको पर बहुत पडा।

इस उपन्यास मे राजकुमार गेंजी उसके पुत्र और पौत्र का चरित्र चित्रण किया गया है।

गेटे

(Johann Wolegang Goethe)

जर्मन साहित्य का विश्व-प्रसिद्ध महाकवि, नाटककार और उपन्यासकार। जिसका जन्म सन् १७४६ मे और मृत्यु सन् १८३२ मे हुई।

सस्कृत साहित्य मे जो स्थान कालिदास का, अग्रेजी साहित्य मे जो स्थान शेक्सपीयर का और ग्रीक साहित्य मे जो स्थान महाकवि होमर का है, वही स्थान जर्मन साहित्य मे महाकवि गेटे का है।

ससार मे अधिकाश कलाकार ऐसे होते है जो कला के शास्त्र और अनुशासन मे बधे रह कर ही सफलता प्राप्त करते हैं। मगर कुछ महान् और विशिष्ट कलाकार ऐसे होते हैं जो नियमो और अनुशासन को स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत नियम और अनुशासन ही उनका अनुकरण करते हैं। छन्द शास्त्र, अलकार शास्त्र इत्यादि सब शास्त्रो के बन्धन से मुक्त उनकी स्वर-लहरी जब मुक्त आकाश मे लहराने लगती है। तो सारा ससार मुग्ध दृष्टि से उसके आनन्द को प्राप्त कर निहाल हो जाता है।

महाकवि गेटे ऐसे ही महान् कलाकारो मे से एक था। उसका जन्म सन् १७४६ मे हुआ। गेटे के साहित्य क्षेत्र मे अवतीर्ण होने के पूर्व, जर्मन साहित्य का आकाश महा कवि हर्डर की प्रतिभा से छाया हुआ था। हर्डर से प्रभावित होकर गेटे ने उससे लाइजिक मे भेट की। हर्डर के ही अनुकरण मे उसने भी अपनी कविता मे "तूफान और आग्रह" का नारा लगाया। तमाम शास्त्रीय बन्धनो को तोड मरोड कर गगा की मुक्त धारा की तरह उसकी कविताओ का मधुर

हिन्दूकुश के पास ही एउक्रतिद से लड़ता हुआ (ई० पू० १६७) मारा गया।

एउक्रतिद—ई० पू० १६७ में एउक्रतिद का कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा। सेल्यूक राजा उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। अतः निर्भीक हो उसने 'बसीलेउस् मेगलीस' (महाराजाधिराज) की पदवी ग्रहण की। उसके बाद ई० पू० १६४ में उसने भारत के ऊपर अभियान किया। वह हिन्दूकुश पारकर कपिशा पहुँचा। वहाँ दिमित्रि के पुत्र अगथोक्लस ने उसका मुकाबिला किया मगर लड़ाई में अगथोक्लस मारा गया। उसके बाद उसने गान्धार जीता। गान्धार की लड़ाई में दिमित्रि का भाई अपोलोदोतस मारा गया। मगर मिनाण्डर ने उसकी गति को एक दम रोक दिया।

इसी समय पार्थियन राजा 'मित्रदात' ने मीडिया पर आक्रमण करके उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया। यह सुन कर 'एउक्रतिद' को उधर भागना पड़ा। ई० पू० १५६ में 'एउक्रतिद' पार्थियन राजा से लड़ते हुए लड़ाई में मारा गया।

एउक्रतिद का पुत्र हेलियोक्लस ई० पू० १५६ में अपने पिता की गद्दी पर बैठा। इस समय तक सीस्तान, अरकोसिया और हिरात या पार्थियन साम्राज्य में आ चुके थे। हेलियोक्लस ही ग्रीक बैक्ट्रियन साम्राज्य का अन्तिम राजा था। इसने अपने साम्राज्य की रक्षा और विस्तार का बहुत प्रयत्न किया। मगर पार्थियन शक का वह मुकाबिला नहीं कर सका और इसका साम्राज्य पार्थियन साम्राज्य में विलीन हो गया।

मिनाण्डर—इसके बाद ग्रीक बैक्ट्रियनों की यही शाखा कायम रही जो मिनाण्डर के अधीन भारतवर्ष में राज्य कर रही थी। उस समय मिनाण्डर की राजधानी सियालकोट में थी। मगर मथुरा और माध्यमिका में भी इसके राजदूत रहते थे। गान्धार, सिन्ध और गुजरात में भी इसका शासन था। मिनाण्डर का शासन ई० पू० १६६ से ई० पू० १४५ तक रहा। मिनाण्डर की मृत्यु के पश्चात् स्त्रातो प्रथम और स्त्रातो द्वितीय इस वंश के राजा हुए।

गू-टू-लु (इलतेरस)

मध्य-एशिया के पूर्वी तुर्क कबीले का शासक। जिसका समय सन् ६८२ से ६९१ तक रहा।

गू-टू-लू का असली नाम इलतेरस था। यह आश्मनों के अशिना वंश का राजकुमार था। जिस समय यह शासक बना उस समय तुर्क जातियों में बड़ा असन्तोष छाया हुआ था। एक ओर चीन की ज्यादतियों के कारण तुर्कों में चीन के प्रति असन्तोष छाया हुआ था दूसरी ओर तोबा वंश के शासकों के प्रति भी लोगों का विश्वास खतम हो चुका था। इस असन्तोष का इलतेरस ने फायदा उठाया। वह तुर्कों के गरम दल का नेता बन गया और बहुत सी रिश्वतें देकर कई तुर्क कबीलों को अपनी तरफ मिलाने में वह सफल हो गया। आस पास से बहुत सी लूटमार करके उसने सम्पत्ति बटोरी और जल्दी ही अपने को शासक घोषित करके गू-टू-लू की उपाधि ग्रहण की और अपने एक भाई को शाद और दूसरे को येब गू की उपाधि देकर उप-शासक बना दिया।

चीन की साम्राज्ञी 'वू' ने उसकी हरकतों को देखकर ११ सेना उसके विरुद्ध भेजी। मगर गू-टू-लू ने उस सेना को नष्ट कर दिया। इसने अपने समय में पूर्वी तुर्क कबीले का बड़ा विस्तार किया। सन् ६९१ में वह एक लड़ाई में लड़ते हुए मारा गया।

गेइजर (Goljer)

स्वीडेन का एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार, जिसका समय अठारहवीं सदी के अन्त में था।

गेइजर स्वीडन का एक महान् साहित्यकार था। उसने प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित कई मधुर कविताओं की रचना की। गेइजर को 'वान' एक वीर काव्य पर सन् १८ १ में स्वीडन एकेडेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। वह उपसाला यूनिवर्सिटी में इतिहास का प्रोफेसर था।

गेओन सादिया (Saadia Gaon)

यहूदी धार्मिक भाषा का एक महान् कवि और साहित्यकार। जिसका जन्म सन् ८९२ में और मृत्यु सन् ९४२ में हुई।

दूसरा कोई भी झरना नही जो ऊँचाई, लम्बाई, चौड़ाई और सुघड़ाई मे इसका मुकाबला कर सके।

इस झरनेसे कोई १८ मील दूर 'गेरसप्पा' नामक ताल्लुके मे जैनों की राजधानी के ध्वसवशेष मिलते हैं। ऐसी किम्बदन्ती है कि किसी समय इस नगर मे एक लाख घर और चौरासी मन्दिर थे। एक जैन मन्दिर में अब भी चार द्वार लगे हुए हैं। और चार मूर्तियाँ रखी हुई है। वर्धमान के मन्दिर मे २४ वें जैन तीर्थंकर भगवान् महाबीर की एक काले रङ्ग की मूर्ति स्थापित है। और ४-५ टूटे-फूटे मन्दिरो मे कुछ मूर्तियाँ और शिला-लिपियाँ रखी हुई हैं। इटली के एक पादरी ने लिखा है कि—"सन् १६२३ ई० मे गेरसप्पा एक प्रसिद्ध राजधानी था।"

गेबर

ईरान के एक सुप्रसिद्ध कीमियागर और रसायन-शास्त्री। जिनका जन्म सन् ७६१ ई० मे और मृत्यु सन् ८१३ ई० मे हुई।

'गेबर' का असली नाम अबू-मूसा-जाबिर-इब्बन हयन था। मध्यकाल के वे एक प्रसिद्ध रसायन शास्त्री और किमीयागिर थे। ये प्रसिद्ध खलीफा हारूँ-अल रसीद के समकालीन थे। इनके कई ग्रथो का लेटिन और अन्य यूरोपीय भाषा में अनुवाद किया जा चुका है। ईसा की १५वी शताब्दी तक विज्ञान के क्षेत्र मे ये सर्वोपरि विद्वान् माने जाते थे।

११वीं सदी मे जब एक मकान की नीव खोदी जा रही थी, उस खुदाई मे गेबर की सारी प्रयोग-शाला मिली। इस प्रयोग शाला में उनकी लिखी हुई पुस्तको की सूची भी मिल गयी।

गेबर ने भारतीय परम्पराओ के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि सभी धातुओ का आधार गन्धक और पारद—इन दो तत्वो पर रहता है। इनकी मान्यता थी कि यदि ये दोनों तत्व शुद्ध हो और इनके सम्मिश्रण पूर्ण अनुपात मे हो तो इनकी परिणित धातु शुद्ध स्वर्ण होगी। शुद्धता की कमी या अनुपात की अपूर्णता से वही वस्तु चाँदी, राँगा या टिन में बदल जाती है।

भारतवर्ष मे भी 'नागार्जुन इत्यादि रसायन् शास्त्रियो ने पारद के अष्टादश सस्कार करके गन्धक के सम्मिश्रण से धातु सिद्धि का समर्थन अपने ग्रन्थो में किया है।

श्री गेबर उन प्रथमतम वैज्ञानिको मेसे थे, जिन्होने परीक्षणो पर विशेष बल दिया है। उनकी कुशल परीक्षाओ के विस्तृत विवरण से आधुनिक विश्व मे विज्ञान की परीक्षणात्मक प्रणाली का मार्ग उन्मुक्त हो गया है।

गेमरा

यहूदियो के अन्दर प्राचीन युग मे 'कल्ला' नामक धार्मिक और कानूनी विषयो की एक सभा होती थी। इस सभा मे इब्रानी साहित्य मे सशोधित और सगृहीत दर्शन शास्त्र और कानून के ग्रथ 'मिश्ना' के सूत्रो पर वाद-विवाद, विवेचन और भाष्य होते थे। यही विवेचन और भाष्य बाद मे सगृहीत कर लिये जाते थे। इन्ही सग्रहो को 'गेमरा' कहा जाता था। यह प्रथा ईसा की दूसरी सदी से पाचवी सदी तक रही।

गेलू साक, लुई जोसेफ

फ्राँस के एक प्रसिद्ध रसायन-शास्त्री, जिनका जन्म सन् १७७८ ई० मे और मृत्यु सन् १८५० ई० में हुई।

गेलू साक ने गैसो के प्रसारण, भाप के दबाव, भाप के घनत्व इत्यादि विषयो पर अपने अन्वेषण-अनुसन्धान किये। आकाश मण्डल मे वायु की नमी और ताप का पता लगाने के लिए उन्होने दो गुब्बारे अन्तरिक्ष मे उड़ाये।

सन् १८०४ ई० मे 'साइस एकेडेमी' मे उन्होने अपने एक साथी के साथ इस बात की घोषणा की कि एक आयतन आक्सीजन और दो आयतन हाइड्रोजन मिल जाने पर पानी की उत्पत्ति हो जाती है।

गेलू साक ने कार्बोलिक यौगिको के विश्लेषण की विधियो का भी सशोधन किया। सन् १८२९ ई० मे फ्राँस की टकसाल मे गेलू साक प्रधान विश्लेपक नियुक्त हुए और सन् १८३९ ई० मे ये फ्राँस के 'पीयर' बनाये गये। सल्फ्यूरिक एसिड के औद्योगिक क्षेत्र मे इनके नाम का 'टावर' गेलू-साक टावर के नाम से अब भी प्रसिद्ध है। (नागरी-प्रचारिणी विश्वकोश)

प्रवाह कलकल नाद करता हुआ जर्मन साहित्य में बह निकला। जनता मुग्ध दृष्टि से इस महान् कवि की मुक्त काव्यधारा में गोते लगा कर आनन्द विभोर होने लगी।

उस युग में जर्मनी में कार्लअगस्ट कला और साहित्य का अनन्य प्रेमी समर्थक और पुजारी था। राजा भोज की धारा नगरी की तरह अथवा विक्रमादित्य की उज्जयिनी की तरह उसने अपने नगर 'वाइमर' को साहित्य और कला का एक प्रधान केन्द्र बना दिया था। उस समय 'वाइमर' नगर जर्मनी का एथेन्स या सिकन्दरिया बना हुआ था। जर्मनी के तमाम प्रसिद्ध साहित्यकार और कलाकार कार्लआगस्ट के संरक्षण में वहाँ पर अपनी प्रतिभा का विकास करते थे।

सन् १७७५ में गेटे भी कार्लआगस्ट के वाइमर में पहुँच गया। इस समय तक उसकी लोकगीतों की परम्परा में लिखी हुई रचना 'हाइडेन-रोसलाइन' उपन्यासों में "दी लाइडेन डेस युंगेन वर्दर्स" नाटकों में 'गोत्स फॉन बर्लिशीगेन' तथा प्रोमेथियस नामक महान् रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी थीं और इन रचनाओं ने उसे जर्मन साहित्य का सम्राट बना दिया था। उसकी ख्याति इन रचनाओं से जर्मनी की सीमा को लाँघ कर विश्व-साहित्य के क्षेत्र में पहुँचने लग गई थी। उसकी रचना 'हाइडेन रोसलाइन' के मधुर गीत प्रत्येक जर्मन की जबान पर छा गये थे।

सन् १७८० में उसके 'एग्मान्ट' और 'टारिस इफजनी' नामक दो काव्य पूरक नाटक प्रकाशित हुए।

मगर गेटे की कीर्ति को विश्व-साहित्य के अन्तर्गत अमरता की मंजिल पर पहुँचाने वाला उसका प्रसिद्ध नाटक 'फास्ट' था।

यह नाटक सोलहवीं सदी में होने वाले एक रसायनशास्त्री और जादूगर 'फास्ट' की जीवनी पर लिखा गया था। फास्ट एक ऐसा व्यक्ति था जो समाज व्यवस्था और विधान का विरोधी था और अपराध तथा पाप करने से बिल्कुल नहीं डरता था। उसका सारा जीवन भयंकर अपराधों से परिपूर्ण था। इस नाटक की रचना गेटे ने युवावस्था में ही आरम्भ कर दी थी। मगर बहुत समय तक यह अधूरा पड़ा रहा और अन्त में जाकर सन् १८३१ में यह पूर्ण हुआ। तब तक गेटे की लेखनी भी युवावस्था के अल्हड़ से निकल कर प्रौढ़ावस्था के शान्त क्षितिज पर पहुँच चुकी थी और उसका प्रधान नायक फास्ट एक उद्दण्ड पापी और अनाचारी से बदल कर एक जन साधारण के कल्याण में मन लगाने वाला महान् सन्तोषी फास्ट बन चुका था। इस नाटक को पूर्ण करने के पूर्व महाकवि कालिदास की शकुन्तला भी उसके पढ़ने में आ गई थी जिसे पढ़ते-पढ़ते वह नाच उठा था। कहना न होगा कि उसके इस प्रसिद्ध नाटक 'फास्ट' पर अभिज्ञान शाकुन्तल का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा जिसे स्वयं उसने स्वीकार किया है।

'फास्ट' की ही तरह उपन्यास के क्षेत्र में गेटे के 'विल्हेल्म मेइस्टर' नामक उपन्यास को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। यह उपन्यास सन् १८२१ में प्रकाशित हुआ।

महाकवि गेटे कालिदास की शकुन्तला से बहुत प्रभावित हुआ था। उसको पढ़ते-पढ़ते वह मुग्ध हो गया था और कहा था—

Wouldst tho ս see Spring s Blossom and
the fruits of its Decline
Wouldst thow see by what the Souls
entraptured feasted fed
Wouldst thow have this earth and beaven
in one Soul name combine
I name thee Shakuntala and all at once
is said.

इस प्रकार जर्मन साहित्य का यह महान् कवि पूरे पचास वर्ष तक जर्मन साहित्य को नेतृत्व प्रेरणा और जीवन देता रहा। सन् १७७५ से लेकर सन् १८३० तक का युग जर्मन साहित्य में गेटे युग के नाम से प्रसिद्ध है।

—

गेरसप्पा (जलप्रपात)

यह प्रपात मैसूर और महाराष्ट्र राज्यों की सीमा पर 'शिमोगा' नगर से ६२ मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर चार जल-प्रपात हैं जो शिरावती नामक नदी के ऊपर से गिरने से बनते हैं :

पहला राजा नामक प्रपात ८२९ फुट की ऊँचाई से १३२ फुट गहरे कुंड में गिरता है। इसी प्रकार तीन और प्रपात भी अलग-अलग से गिरते हैं। समस्त भारत में ऐसा

दूसरा कोई भी झरना नहीं जो ऊँचाई, लम्बाई, चौडाई और सुघडाई मे इसका मुकावला कर सके।

इस झरनेसे कोई १८ मील दूर 'गेरसप्पा'नामक ताल्लुके मे जैनो की राजधानी के ध्वसवशेष मिलते हैं। ऐसी किम्वदन्ती है कि किसी समय इस नगर मे एक लाख घर और चौरासी मन्दिर थे। एक जैन-मन्दिर में अव भी चार द्वार लगे हुए हैं। और चार मूर्तियाँ रखी हुई हैं। वर्धमान के मन्दिर मे २४ वें जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर की एक काले रङ्ग की मूर्ति स्थापित है। और ४-५ टूटे-फूटे मन्दिरो मे कुछ मूर्तियाँ और शिला-लिपियाँ रखी हुई है। इटली के एक पादरी ने लिखा है कि—"सन् १६२३ ई० मे गेरसप्पा एक प्रसिद्ध राजधानी था।"

गेबर

ईरान के एक सुप्रसिद्ध कीमियागर और रसायन-शास्त्री। जिनका जन्म सन् ७६१ ई० मे और मृत्यु सन् ८१३ ई० मे हुई।

'गेबर' का असली नाम अबू-मूसा-जाबिर-इब्नन हयन था। मध्यकाल के वे एक प्रसिद्ध रसायन शास्त्री और किमीयागिर थे। ये प्रसिद्ध खलीफा हारूँ-अल रसीद के समकालीन थे। इनके कई ग्रथो का लेटिन और अन्य यूरोपीय भाषा में अनुवाद किया जा चुका है। ईसा की १५वी शताब्दी तक विज्ञान के क्षेत्र में ये सर्वोपरि विद्वान् माने जाते थे।

११वीं सदी मे जब एक मकान की नीव खोदी जा रही थी, उस खुदाई मे गेबर की सारी प्रयोग-शाला मिली। इस प्रयोग शाला में उनकी लिखी हुई पुस्तको की सूची भी मिल गयी।

गेबर ने भारतीय परम्पराओ के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि सभी धातुओ का आधार गन्धक और पारद—इन दो तत्वो पर रहता है। इनकी मान्यता थी कि यदि ये दोनों तत्व शुद्ध हो और इनके सम्मिश्रण पूर्ण अनुपात मे हो तो इनकी परिणित धातु शुद्ध स्वर्ण होगी। शुद्धता की कमी या अनुपात की अपूर्णता से वही वस्तु चाँदी, राँगा या टिन मे बदल जाती है।

भारतवर्ष मे भी 'नागार्जुन इत्यादि रसायन शास्त्रियो ने पारद के अष्टादश सस्कार करके गन्धक के सम्मिश्रण से धातु सिद्धि का समर्थन अपने ग्रन्थो में किया है।

श्री गेबर उन प्रथमतम वैज्ञानिको मेसे थे, जिन्होने परीक्षणो पर विशेष बल दिया है। उनकी कुशल परीक्षाओ के विस्तृत विवरण से आधुनिक विश्व मे विज्ञान की परीक्षणात्मक प्रणाली का मार्ग उन्मुक्त हो गया है।

गेमरा

यहूदियो के अन्दर प्राचीन युग मे 'कह्ला' नामक धार्मिक और कानूनी विषयो की एक सभा होती थी। इस सभा मे इब्रानी साहित्य मे सशोधित और सगृहीत दर्शन शास्त्र और कानून के ग्रथ 'मिश्ना' के सूत्रो पर बाद-विवाद, विवेचन और भाष्य होते थे। यही विवेचन और भाष्य बाद मे संगृहीत कर लिये जाते थे। इन्ही सग्रहो को 'गेमरा' कहा जाता था। यह प्रथा ईसा की दूसरी सदी से पाचवी सदी तक रही।

गेलू साक, लूई जोसेफ

फ्रांस के एक प्रसिद्ध रसायन-शास्त्री, जिनका जन्म सन् १७७८ ई० मे और मृत्यु सन् १८५० ई० में हुई।

गेलू साक ने गैसो के प्रसारण, भाप के दवाव, भाप के घनत्व इत्यादि विषयो पर अपने अन्वेषण-अनुसन्धान किये। आकाश मण्डल मे वायु की नमी और ताप का पता लगाने के लिए उन्होने दो गुब्बारे अन्तरिक्ष मे उडाये।

सन् १८०४ ई० मे 'साइस एकेडेमी' मे उन्होने अपने एक साथी के साथ इस वात की घोषणा की कि एक आयतन आक्सीजन और दो आयतन हाइड्रोजन मिल जाने पर पानी की उत्पत्ति हो जाती है।

गेलू साक ने कार्बोलिक यौगिको के विश्लेषण की विधियो का भी सशोधन किया। सन् १८२९ ई० मे फ्रांस की टकसाल मे गेलू साक प्रधान विश्लेपक नियुक्त हुए और सन् १८३९ ई० मे ये फ्रांस के 'पीयर' वनाये गये। सल्फ्यूरिक एसिड के औद्योगिक क्षेत्र मे इनके नाम का 'टावर' गेलू-साक-टावर के नाम से अब भी प्रसिद्ध है। (नागरी-प्रचारिणी विश्वकोश)

गेलस्टेड

डेनमार्क के एक सुप्रसिद्ध कवि जिनका जन्म सन् १८८८ ई० में मिडिल फोर्ट नामक स्थान में हुआ।

गेलस्टेड डेनमार्क के एक सुप्रसिद्ध समालोचक और महान् कवि समझे जाते हैं। इनकी प्रगतिवादी कविताओं पर कम्युनिस्ट भावनाओं का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इनके निबन्ध बहुत उच्चकोटि के हैं।

—

गेलेन

प्राचीन यूनान का एक सुप्रसिद्ध चिकित्सा शास्त्री जिसका जन्म सन् १६ ई में और मृत्यु सन् २ में हुई।

१६ साल की उम्र से गेलेन ने चिकित्साशास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया और इस अध्ययन के लिए उसने बाद बाद के कई देशों की यात्रा की। उसके पश्चात् रोम के सम्राट 'मार्कस मारेलियस' के उत्तराधिकारी कामोडियस का चिकित्सक बन कर वह रोम में आया।

गेलेनस चिकित्साशास्त्र तथा दर्शन शास्त्र पर कई निबन्ध और बहुत से ग्रन्थों का निर्माण किया। चिकित्सा के सम्बंध में उस समय अरस्तू-कालीन जो मत प्रचलित थे उनके विरोध में उसने अपनी सशक्त लेखनी से बहुत कुछ लिखा।

प्राचीन यूनान में चिकित्सा-शास्त्र के संस्थापक 'हिपाक्रेटीज' के पश्चात् गेलेन चिकित्साशास्त्र का सबसे बड़ा विद्वान् माना जाता है।

शरीर-रचना और शरीर-क्रिया विज्ञान पर इसके अनुसन्धानों ने इसकी कीर्ति को बहुत बढ़ाया। कई प्रकार के पशुओं के शवों का उच्छेदन करके उनके आधार पर उसने मनुष्य के शरीर का वर्णन किया। हृदय के सम्बन्ध में भी इसने बड़ी महत्वपूर्ण खोजें की।

इन्हीं सब कारणों से इसको प्रयोगात्मक शरीर-विज्ञान का संस्थापक माना जाता है।

धर्म और दर्शन तथा तर्क-शास्त्र के क्षेत्र में भी उसने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की।

—

गेर्सेन एलेक्जेंडर

रूस के सुप्रसिद्ध अराजकतावादी विचारक क्रान्तिकारी और लेखक जिनका जन्म सन् १८१२ ई० में और मृत्यु सन् १८७० ई में हुई।

सन् १८४० ई में क्रान्तिकारी कार्यों के कारण गेर्सेन को साइबेरिया के जेल में निर्वासित कर दिया गया। वहाँ से छूटने के बाद सन् १८४८ ई में इन्होंने फ्रांस की प्रसिद्ध क्रान्तियों में भाग लिया। गेर्सेन बाकुनिन' की अराजकतावादी विचारधारा के समर्थक थे। कार्ल-मार्क्स के साथ इनके बड़े मतभेद थे। सन् १८५२ ई में लन्दन आकर इन्होंने दो पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया और इन पत्रों के द्वारा अपने क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करना प्रारम्भ किया। इन्होंने रूस और योरोप के सामाजिक जीवन और क्रान्तिकारी आन्दोलनों का चित्रण करने के लिये कई उपन्यासों की भी रचना की।

—

गेंसबरो-टामस

अंग्रेज-जाति का एक प्रसिद्ध चित्रकार जिसका जन्म सन् १७२७ ई में और मृत्यु सन् १७८८ ई में हुई।

१४ वर्ष की उम्र में उसने चित्रकार-कला को सीखना प्रारम्भ किया। सन् १७७४ ई में लन्दन में आकर उसने अपनी चित्रकारिता का प्रारम्भ किया। लन्दन में उस समय चित्रकला के क्षेत्र में जोशुआ-रेनाल्डस का नाम बहुत प्रसिद्ध था। 'गेंसबरो' को उसकी स्पर्धा में उतरना पड़ा मगर शीघ्र ही इसने अपनी चित्रकार-कला के प्रभाव से लन्दन के राजकीय क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र को आकर्षित करना प्रारम्भ किया।

गेंसबरो के भू-चित्रों में अद्भुत आकर्षण था। भिन्न-भिन्न रङ्गों के *विश माध्यम का उसने अपने चित्रों में उपयोग* किया। वह लन्दन की चित्रकला में एक परम्परा बन गयी। जिसके कारण गेंसबरो की गणना संसार के प्रसिद्ध भू-चित्रकारों में होने लगी।

गैरिक-डेविड

अंग्रेजी रंगमंच के विश्वविख्यात कुशल अभिनेता, जिनका जन्म सन् १७१८ ई० मे और मृत्यु सन् १७७९ ई० मे हुई।

इनका पहला नाटक 'लैथ टू दी शेड्स' सन् १७४० ई० मे अभिनीत हुआ और इससे इनकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। सन् १७४१ ई० मे इन्होने पहली बार अभिनेता के रूप मे तीसरे रिचर्ड का पार्ट अभिनीत किया। शीघ्र ही इनकी गणना अंग्रेजी मंच के प्रथम श्रेणी के अभिनेताओ मे होने लगी। इनका अभिनय देखने के लिए बड़े बड़े राज्याधिकारी और धर्माधिकारी भी आतुर रहते थे। रोमन चर्च के 'पोप' भी इनका अभिनय देखने के लिए कई बार आये और उन्होने कहा कि—'इनकी बराबरी का कोई दूसरा अभिनेता अभी नही और न कोई भविष्य मे हो सकेगा।"

इनके अभिनय की उच्चता उस समय प्रमाणित हुई, जब इन्होंने शेक्सपियर के नाटको के करीब १८ भिन्न भिन्न पात्रो के हूबहू अभिनय किये। इन्ही के विशिष्ट अभिनय से शेक्सपियर की लोकप्रियता मे भी चार चांद लग गये।

गैरिसन

अमेरिका मे गुलामी-प्रथा के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन करने वाला प्रसिद्ध नेता। जिसका जन्म सन् १८०५ ई० मे 'मैसच्यूसेटस' के अन्दर और मृत्यु सन् १८७९ ई० मे हुई।

उस समय अमेरिका मे 'बेंजामिन लैंडी' नामक व्यक्ति गुलामी-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन का नेतृत्व कर रहा था। उसके व्याख्यानो से प्रभावित होकर गैरिसन भी इस आन्दोलन मे शामिल हो गया। और बडे जोर शोर से गुलामो को नागरिक अधिकार दिलाने के लिए सरकार पर दबाव डालना शुरू किया। इसके इस आन्दोलन से गुलामो के स्वामी लोग बडे क्रुद्ध हो गये और सन् १८३७ ई० मे उस पर एक भारी मुकदमा चलाया गया और उसको पकडने के लिए ५ हजार डालर का इनाम घोषित किया गया।

तब गैरीसन वहाँ से इग्लैंड चला गया। और वहाँ पर भी गुलामी प्रथा के विरोध करने के लिए एक सभा की स्थापना की। वहाँ से जब वह वापस अमेरिका आया, उस समय 'अब्राहम लिंकन' वहाँ के राष्ट्रपति हो चुके थे। अब्राहम लिंकन ने गैरीसन की गुलामी विरोधी भावनाओं को बडी प्रशंसा की और उन्होने पूरी शक्ति के साथ अमेरिका से गुलामी प्रथा का अन्त किया।

गेरी-वाल्डी

इटली का एक महान् उद्धारक जननेता और सेनापति। जिसका जन्म सन् १८०७ ई० मे और मृत्यु सन् १८८२ ई० मे हुई।

सन् १८१५ ई० मे वीएना की कांग्रेस मे विजयी राष्ट्रो ने इटाली देशके टुकडे-टुकडे कर आपस मे बांट लिए। देश के इस प्रकार टुकडे होने की प्रतिक्रिया वहाँ की जनता पर बहुत खराब हुई। जिसके फल-स्वरूप 'ग्वीसेप मेजिनी' नामक एक क्रान्तिकारी युवक ने सन् १८३० ई० मे 'यङ्ग इटली' के नाम से एक सगठन किया। जिसका उद्देश्य सारे इटली देश को एक गणतन्त्र राज्य के रूप मे सगठित करना था। इस कार्य्य के लिए उसको बडे-बडे कष्ट उठाने पडे। मगर इसी समय गेरीवाल्डी नामक 'गुरिल्ला युद्ध' का विशेषज्ञ और सैनिक वृत्ति मे कुशल युवक मेजिनी के दल मे सम्मिलित हो गया। यद्यपि इन दोनो नेताओ के आदर्श और लक्ष्य भिन्न-भिन्न थे। पर इटली की आजादी के सम्बन्ध मे दोनो का लक्ष्य समान था।

इस लडाई मे लडते लडते गेरीवाल्डी को कई बार अपना देश छोड कर भागना पडा। मगर गेरीवाल्डी की आजादी की लगन मे कोई कमी नही आयी।

इसके कुछ ही समय पश्चात् 'पीडमाट' के राजा 'विक्टर इमानुएल' का प्रधान मन्त्री 'कावूर' भी मेजिमी और गेरीवाल्डी के साथ इस लडाई मे शामिल हुआ, मगर उसका उद्देश्य इन दोनो के उद्देश्य से भिन्न था। वह इटली मे गणतन्त्र की जगह अपने राजा इमानुएल का शासन स्थापित करना चाहता था।

सन् १८५९ ई० मे गेरीवाल्डी ने अपने एक हजार सैनिको के साथ बिना किसी से पूछे नैपल्स और सिसली पर आक्रमण कर दिया। यद्यपि दुश्मनो की सख्या ज्यादा थी, मगर गेरीवाल्डी की सगठन कुशलता और जनता की सद्भावना से उसे एक के बाद दूसरी विजय मिलती गयी और

हजारों स्वाधीनता प्रेमी नवयुवक उसके संगठन में शामिल होने लगे। जिसके परिणामस्वरूप सन् १८६१ ई० में इटली का राष्ट्र विदेशी शासन से मुक्त हो गया। और पीडमॉट का राजा इमानुएल इटली का बादशाह बना दिया गया।

गेलिलिओ

इटली के एक संसार प्रसिद्ध वैज्ञानिक गति विज्ञान के जन्मदाता दूरबीन यन्त्र के आविष्कारक और गणितज्ञ जिनका जन्म सन् १५६४ में और मृत्यु सन् १६४२ में हुई।

गैलिलियो का जन्म इटाली के 'पीसा' नगर में हुआ था। इनके पिता एक गणितशास्त्री और संगीतज्ञ थे।

गैलिलियो को बचपन से ही विज्ञान और अनुसन्धान से प्रेम था। अठारह वर्ष की अवस्था में एक बार जब वह पीसा के गिरिजाघर में गये तो वहाँ जलनेवाले दीपक की शिखा को हिलते डुलते देखा। उनका ध्यान उसी पर केन्द्रीभूत हो गया। उन्होंने अपनी नाड़ी की चाल से दीपशिखा के हिलने की चाल को मिला कर देखा। उन्हें पता चला कि नाड़ी की चाल और दीपशिखा के हिलने की चाल एक सी मिलती है। इसी आधार पर उन्होंने समय निरूपण की एक युक्ति निकाली और घड़ी के पेन्डुलम का आविष्कार किया। आगे चलकर घड़ी बनाने वालों ने इसी सिद्धान्त को अपना कर घड़ियों में पेन्डुलम लगाना प्रारम्भ किया।

गणित शास्त्र के अन्दर भी गैलिलियो की खोजें महत्व-पूर्ण हैं। ज्योमिती गणित में उन्होंने विशेष खोज की और पानी के द्वारा किसी वस्तु का घनत्व निकालने के लिए उन्होंने हाइड्रोस्टेटिक बैलन्स (Hydrostatic Balance) के यन्त्र का आविष्कार किया।

सन् १५८६ में उनके गणितीय ज्ञान से प्रभावित होकर टस्कनी के ड्यूक ने उनको पीसा विश्वविद्यालय में गणित का अध्यापक नियुक्त किया। यहीं पर उन्होंने गतिविज्ञान के (Law of motion) सिद्धान्तों का निरूपण किया। उन्होंने अरस्तू के बतलाये हुए इस नियम का खंडन किया कि ऊपर से गिराये जाने पर भारी वस्तु पहले नीचे आती है और कम भार की उसके बाद में। गैलिलियो ने एक दस पौण्ड के गोले के साथ एक पौण्ड के गोले को मीनार पर से गिरा कर बतलाया कि दोनों गोले एक साथ ही पृथ्वी पर आते हैं। उन्होंने गति के सम्बन्ध में तीन नियम (Three Lawes of motion) का निरूपण किया।

अरस्तू के गति सिद्धान्त का खण्डन करने से इनके लिए वहाँके लोगोंमें बड़ा असन्तोष फैला। जिसके फलस्वरूप इनको 'पीसा' छोड़कर 'पेडुआ' नामक स्थान पर जाना पड़ा। यहीं पर वे अठारह वर्ष तक रहे। जब वे 'पेडुआ' में थे तब इनके लेक्चर सुनने के लिए भिन्न भिन्न देशों के विद्यार्थी यहाँ आते रहते थे।

सन् १६०६ में गैलीलियो ने दूरबीन या दूरवीक्षण यंत्र का आविष्कार कर उसका नमूना वेनिस के प्रधान विचारपति को भेंट किया। इसी वर्ष उन्होंने दूसरे दूरबीन का भी निर्माण किया।

पहले यन्त्र में कोई भी दूर की वस्तु वास्तविक दूरी से ⅓ दूरी पर दिखाई पड़ने लगी। दूसरे यन्त्रसे दूर के पदार्थ तीस हिस्से कम दूरी पर दिखाई पड़ने लगे।

इस यन्त्र के द्वारा गैलीलियो ने आकाश के नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त करना प्रारम्भ किया और वे आकाश के सम्बन्ध में नये-नये रहस्यों का उद्घाटन करने लगे। जहाँ साधारण निगाह से स. तारे दिखलाई पड़ते थे वहाँ इस यन्त्र के द्वारा चालीस या उससे भी ज्यादा दिखलाई पड़ने लगे। ७ जनवरी १६११ को उन्होंने बृहस्पति ग्रह के आस पास चार और तारों का पता लगाया।

गैलीलियो ने जब प्रसिद्ध ज्योतिषी कोपरनिकस के इस सिद्धान्त का समर्थन किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है तो सारे ईसाई धर्म जगत् में उनके प्रति प्रबल विरोध पैदा हो गया। क्योंकि उस समय तक लोगों का यह विश्वास था कि पृथ्वी ही सारे विश्व का केन्द्र है और उसके चारों ओर सूर्य आदि ग्रह घूमते हैं।

गैलीलियो के इस आविष्कार ने उनके लिए जेल का द्वार खोल दिया। इस सिद्धान्त के प्रचार के लिये ७ वर्ष की अवस्था में उन्हें आजीवन कारावास का दण्ड मिला। वहीं पर सन् १६४२ में उनकी मृत्यु हुई।

गैलीलियो की मृत्यु के पश्चात् उनके सिद्धान्तों की सारे यूरोप में बहुत कदर हुई और फ्लोरेंस में जहाँ उनका शव

दफनाया गया था बाद मे एक सुन्दर स्मारक का निर्माण करवाया गया ।

गेस्टा दानीरुम

डेनमार्कके प्रसिद्ध मध्यकालीन लेखक साक्मे (११६०-१२२०) के द्वारा लैटिन भाषा मे लिखा हुआ ग्रन्थ । जो १६ खण्डो मे पूर्ण हुआ है । और जिसमे डेन जाति के वीरो की वीरताओ का उल्लेख किया गया है । डेनमार्क मे यह इस युग का सवसे वडा ग्रन्थ था और इसका डैनी भाषा मे सौरेसन वेंडेल नामक लेखक ने अनुवाद किया ।

गेस्टावस प्रथम

स्वीडन का प्रसिद्ध राजा, जिसने अपने देश को डेनमार्क की दासता से मुक्त किया । इसका जन्म सन् १४९६ मे और मृत्यु १५६० मे हुई ।

सन् १५१६ मे अतिथिके रूपमे अपने यहाँ वुलाकर डेनमार्क के राजा ने गेस्टावसको कैद कर लिया । मगर किसी प्रकार वह कैद से निकल कर भागा और स्वीडन चला आया । यहाँ आते ही स्टॉकहोम के हत्याकाण्ड की उसे खवर मिली जिसमे उसका पिता भी मारा गया था । कुछ ही समय पश्चात् दक्षिणी स्वीडेन की जनता के सहयोग से उसने डेनमार्क को हरा कर स्वीडन को स्वतन्त्र कर लिया। तभी से वह स्वीडन की स्वतन्त्रता के सस्थापक की तरह स्मरण किया जाता है । सन् १५२३ मे वह सीनेट के द्वारा स्वीडन का राजा चुन लिया गया । इसने अपने शासनकाल मे स्वीडन की शासन व्यवस्था को दृढ किया । पडोसी देशो से मित्रता के सम्वन्ध स्थापित किये तथा व्यापार और उद्योग की स्थिति को सुधार कर उसने स्वीडन को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न किया ।

गेस्टावस द्वितीय

स्वीडन का राजा, जिसका जन्म सन् १५९४ मे और मृत्यु सन् १६३२ मे हुई ।

सन् १६११ मे यह स्वीडन की गद्दी पर वैठा । एक उत्तम शासक होने के साथ साथ यह लैटिन, इटालियन, डच, स्वीडिश और जर्मन भाषाओ का विद्वान था । भाषा विज्ञान का भी यह विशेषज्ञ था । शासन सूत्र हाथ मे आने पर इसने सारे शासन यन्त्र का कुशलतापूर्वक सञ्चालन किया ।

सन् १६१३ मे कालमार के युद्ध मे इसने डेनमार्क को पराजित किया । रूस और पोलैण्ड से भी उसने लडाइयाँ की मगर उसमे उसको सफलता नही मिली । सन् १६३१ मे विटन फेल्ड नामक स्थान पर उसने टिली के काउण्ट को पराजित किया । लेकिन सन् १६३२ मे वालस्टीन के साथ हुई लडाई मे वह गोली से मारा गया ।

गेस्टावस तृतीय

स्वीडन का राजा, जिसका जन्म सन् १७४६ मे और मृत्यु सन् १७९१ मे हुई ।

गेस्टावस तृतीय की शादी डेनमार्क के फ्रेडरिक पञ्चम की लडकी 'मेगडालेन' से हुई । सन् १७७१ मे वह गद्दी पर वैठा और सन् १७७२ की क्रान्ति के पश्चात् ससद को भङ्ग कर वह एकतन्त्री शासक हो गया । गेस्टावस तृतीय स्वीडन के अन्दर नाट्यकला का प्रवर्त्तक माना जाता है । उसके लिखे हुए अनेको नाटक वडे लोकप्रिय हुए ।

फिर भी निरकुश राजतन्त्र का स्वामी होने के कारण कुछ क्षेत्रो मे तो उसका विरोध था ही । जिसके सलस्वरूप सन् १७९१ मे एक षड्यन्त्र के द्वारा वह मार दिया गया ।

ग्रे (अर्ल-ग्रे)

इग्लैण्ढ के राजा विलियम चतुर्थ के राज्यकाल मे इग्लैंड का प्रधान मन्त्री जो रावर्ट पील के पदत्याग के पश्चात् सन् १८३२ मे इग्लैंढ का प्रधान मन्त्री हुआ । यह व्हिग दल का सदस्य था ।

अर्ल-ग्रे का प्रधानमन्त्री काल इग्लैंण्ड के इतिहास मे दो घटनाओ के लिए प्रसिद्ध है । पहली घटना इसके समय मे 'पार्लमेंट रिफार्म विल' का पास होना है । इस विल के अनुसार इग्लैंडमे मशीन युग के कारण जो नई वस्तियाँ वस गई थीं उनको पार्लमेट मे प्रतिनिधित्व देना, तथा जो वस्तियाँ उजड गई थी उनके प्रतिनिधित्व कम करना था। इस विल के पास होने पर पार्लमेंट के करीव १४० प्रतिनिधियो को

समय होना पड़ता था। इसलिए कई बार यह बिल पेश होकर भी असफल हो चुका था।

इस बार लार्ड रसेल ने इस बिल को पेश किया मगर फिर भी यह बिल लोगों की आवाजाकशी के बीच गिर गया। तब प्रधान मन्त्री ने पार्लमेंट भङ्ग कर दी। सारे देश में चारों ओर से रिफार्म बिल की आवाज आ रही थी। नई पार्लमेंट का चुनाव होने पर यह बिल फिरसे पेश किया गया। इस बार हाउस ऑफ कॉमन्स ने इस बिल को पास कर दिया मगर हाउस ऑफ लार्ड स ने इस बिल को ४१ मतों की कमी से फिर अस्वीकृत कर दिया।

बिल के अस्वीकृत होते ही सारे देश में तूफान आ गया। उपनगरों ने जिनको वोट देने का अधिकार नहीं था विद्रोह कर दिया। मार्टिनस का महल जला दिया गया। ब्रिस्टल दो दिन तक विद्रोहियों के हाथ में रहा और बर्मिंघम समिति ने दो लाख मनुष्यों के साथ लन्दन पर धावा बोलने का निश्चय किया। इस भयङ्कर विद्रोह को देखकर अन्त में पार्लमेंट ने इस बिल को पास कर दिया। इसी समय से इङ्गलैण्ड में 'टोरी दल' का नाम 'कन्जरवेटिव' और 'व्हिग' दल का नाम 'लिबरल दल' पड़ा।

ग्रे-के प्रधान मन्त्रित्व में दूसरा बड़ा काम्य 'दास-प्रथा' की समाप्ति का हुआ। सन् १८३४ में यह बिल पास हो गया। जिससे परिणाम स्वरूप इङ्गलैण्ड के करीब आठ लाख दासों को मुक्ति मिली।

लार्ड ग्रे के प्रधानमन्त्रित्वकाल में विदेश मन्त्री पामस्टन के प्रभाव से यूरोप के अन्य देशों में भी लिबरल दल का प्राधान्य हो गया।

जुलाई सन् १८३४ में आयरलैण्ड के दशांशकर (Tithe) के सम्बन्ध में मतभेद हो जाने के कारण ग्रे ने इस्तीफा दे दिया।

ग्रेगरी महान्

प्राचीन युग में रोमन चर्च के प्रसिद्ध पोप। जिन्होंने संसार में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए बहुत महत्वपूर्ण काम कर दिया। इनका समय ई० सन् ५९० से ६०४ तक रहा।

ग्रेगरी एक धनी पिता के पुत्र थे। सम्राट् ने इनको 'प्रीफेक्ट' का उच्च पद प्रदान किया था। इनकी माता बड़ी धार्मिक भावनाओं से परिपूर्ण महिला थीं। बचपन से ही उसने इनके अन्दर धार्मिक संस्कार आरोपित किये। युवा होने पर पोप बनने के पहले एकाएक एक दिन इनके अन्दर यह विचार उत्पन्न हुआ कि इतना धन और इतना अधिकार होने के कारण मुझमें सहज ही अहङ्कार बुद्धि जाग्रत होगी इस लिए इस धन को धार्मिक कार्यों में व्यय करना चाहिये। तब उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति धार्मिक मठ या धर्मशालाएँ बनवाने में लगा दी। एक धर्मशाला इनके घर में ही थी। इसमें रह कर इन्होंने अपने शरीर को उपवास इत्यादि तपस्या के द्वारा इतना कमजोर कर दिया कि उससे इनका स्वास्थ्य हमेशा के लिए बिगड़ गया। उसी समय तत्कालीन पोप ने किसी काम से इनको कुस्तुन्तुनिया भेज दिया। वहाँ पर इन्होंने अपनी बुद्धिमानी और चतुराई का पहला नमूना दिखाया।

सन् ५९० में ग्रेगरी को पोप की गद्दी पर बैठाया गया। रोमन चर्च के सम्पूर्ण इतिहास में ग्रेगरी एक महान् पोप माने जाते हैं। ये बड़े विद्वान्, त्यागी और महान् व्यक्ति थे। इनके लिखे हुए ग्रन्थ ईसाइयों के धार्मिक क्षेत्र में आज भी बड़े पवित्र माने जाते हैं। इनके लिखे हुए जो पत्र अभी उपलब्ध हुए हैं उनसे इनकी गहरी दूरदर्शिता का पता चलता है और यह मालूम होता है कि किस प्रकार ये रोमन चर्च को यूरोप की सर्वश्रेष्ठ शक्तिपूर्ण संस्था बनाना चाहते थे।

ईसाई धर्म के सुधार के लिए, उसमें त्यागी और योग्य व्यक्तियों को ही धर्माधिकारी बनाने का इनको बड़ा ध्यान रहता था। धार्मिक क्षेत्र के अलावा राजनैतिक क्षेत्र में भी इनका काफी वर्चस्व था। कुस्तुन्तुनिया के सम्राट् और आस्ट्रिया लम्बार्डी आदि के राजाओं से इनका हमेशा सम्बन्ध रहता था।

इन सब बातों के बावजूद इतिहास में इनकी विशेष प्रसिद्धि इसलिए है कि इन्होंने ही ईसाई धर्म का सारे संसार में प्रचार करने के लिए पादरियों और प्रचारकों के बड़े-बड़े जत्थे बना कर भेजे। आधुनिक इंग्लैण्ड जर्मनी फ्रांस आदि देशों का ईसाई धर्म में सम्मिलित करना और इनको पोप की सत्ता के नियन्त्रण में लाना इन्हीं का काम

था। ग्रेगरी स्वय सन्यासी थे और इसी के बल से इन्हो ने इतनी भारी सफलता प्राप्त की।

ग्रेगरी महान् के पश्चात् रोमनचर्च की परम्परा मे ग्रेगरी के नाम से सोलह पोप और हुए। इनमे से ग्रेगरी सप्तम का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

ग्रेगरी-सप्तम

रोमन चर्च के एक सुप्रसिद्ध पोप। जो सन् १०७३ से १०८५ तक पोप की गद्दी पर रहे।

रोमन चर्च के इतिहास मे ग्रेगरी सप्तम का नाम भी बडा महत्वपूर्ण है। इसने पोप की सत्ता को राज की सत्ता से श्रेष्ठ सिद्ध करने का भारी प्रयत्न किया। और उसके लिए जर्मनी के राजा चतुर्थ हेनरी से भारी झगडा भी मोल लिया।

इसके पहले विशपो और पोप की नियुक्ति का काम जर्मनी के सम्राट् ही करते थे। जर्मनी के सम्राट् तृतीय हेनरी ने पोप और विशपो के चुनाव का यह अधिकार अपने हाथ मे रक्खा था।

मगर पोप ग्रेगरी सप्तम ने सम्राट् के इस अधिकार को चुनौती दी। उसने 'डिक्टेटस' नामक अपनी एक रचना मे पोप के अधिकार की विवेचना करते हुए लिखा कि —

"पोप के पद की कोई तुलना नही है। वह ससार भर मे एक ही विशप है, और उसे अधिकार है कि चाहे जिस विशप को निकाल दे और उसकी जगह दूसरे की नियुक्ति कर दे। रोमन चर्च ने न कभी भूल की है न वह कभी कर सकता है। जो मनुष्य रोमन चर्च से सहमत नही है वह कैथोलिक नही समझा जा सकता।"

"ससार मे पोप ही एक ऐसी शक्ति है जिसके पैर तमाम राजा महाराजा छूते है। वह बादशाह को गद्दी से उतार सकता है और प्रजा को अन्यायी राजा की सहगामी होने से रोक सकता है।"

ग्रेगरी कहा करता था कि 'राज्यसत्ता को किसी दुष्ट व्यक्ति ने शैतान के सहयोग से बनाया है। उस पर धर्म संस्था का नियन्त्रण आवश्यक है।'

पोप के पद पर आते ही ग्रेगरी ने सारे यूरोप के राजाओ के पास अपने दूत भेजे और कहला भेजा कि 'बुरे रास्तो को छोड दे, न्याय प्रिय बने और मेरे अनुशासन को मानें।' इस प्रकार उसने सभी राजाओ को आदेश के रूप मे कुछ न कुछ सन्देश दिये।

उस समय जर्मनी के सिंहासन पर हेनरी चतुर्थ आसीन था। उसके पास ग्रेगरी ने सन् १०७५ मे तीन दूत पत्र देकर भेजे। इन पत्रो मे उसने राजा को उसकी बुरी कार्य्यवाहियो के लिए फटकारा था। और कहलाया था कि वह बुरे कामो को छोड दे वरना वह राज्य से अलग कर दिया जायगा।

हेनरी चतुर्थ ने जब इन पत्रो को पढा तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया, और सन् ११७६ मे उसने गिरजेमे एक सभा बुलाई। उस समय तक विशपो का चुनाव राजा के द्वारा होने से सब विशप भी उसके पक्ष मे थे। वहाँ पर सब लोगो ने मिलकर यह प्रस्ताव किया कि ग्रेगरी का चुनाव विधान के अनुसार नही हुआ है, इसलिए उसे पदच्युत करके दूसरे पोप का चुनाव किया जाय। तब हेनरी ने पोप के पत्र का जवाब देते हुए लिखा कि—"ईश्वर से प्राप्त इस राज्याधिकार के विरुद्ध आँख उठाते हुए तुझे कुछ भी भय नही हुआ। और तिसपर तू हमको यह अधिकार छीनने की धमकी दे रहा है। मैं हेनरी राजा अपने तमाम विशपो के साथ तुझे आदेश देता हूँ कि तू अपने पद से उतर जा और समस्त समाज की घृणा का पात्र बन।'

ग्रेगरी राजा के इस पत्र से विचलित नही हुआ। उसने राजा को और उन विशपो को उत्तर देते हुए लिखा कि—

पूजनीय महात्मा पीटर! मेरी बात सुनिये। आप की कृपा से आप के ही प्रतिनिधि के रूपमे स्वर्ग तथा मर्त्यलोक मे बन्धन तथा मुक्ति का अधिकार ईश्वर ने मुझे दिया है। उस अधिकार के आधार पर गिरजो के यश और प्रतिष्ठा के लिए मैं बादशाह हेनरी चतुर्थ को सारे राज्याधिकार से पदच्युत करता हूँ। क्यो कि वह आपके गिरजे के प्रतिकूल प्रबल उद्दण्डता से खडा हुआ है।"

ग्रेगरी के इस आदेश के निकलते ही राजा हेनरी का वातावरण उसके एक दम खिलाफ हो गया। उसके विशप भी उससे बदल गये। सेक्सनलोग पहले ही उसके विरुद्ध थे। उन सब लोगो ने मिलकर एक भारी सभा की। उन्होने हेनरी

को अपना आचरण सुधारने और पोप से समझौता करने के लिए एक वर्ष का समय दिया।

इसके पश्चात् आगेकी व्यवस्थाके लिए पोप को आग्सबर्ग मे बुलाया गया। पोप बड़ी शान के साथ आग्सबर्ग आकर वहाँ के कानोसा प्रासाद में ठहरा। पोप का आगमन सुनकर हेनरी भयंकर जाड़े में आल्प्स पहाड़ियों को पारकर पोप के महल के दरवाजे पर गये पर मोटे वस्त्र पहने हुए, हाथ जोड़ कर तीन दिन तक महल के फाटक के पास खड़ा रहा मगर पोप ने उसको मिलने का समय नहीं दिया। चौथे दिन बड़ी कठिनाइयों से उसे पोप के सामने हाजिर होने की अनुमति मिली।

ग्रेगरी से क्षमा मांगने पर उसके सब अपराध क्षमा कर दिये गये। मगर सन् १०८० में ग्रेगरी ने फिर से हेनरी को पदच्युत करने का आदेश दिया। मगर इस बार के आदेश के परिणाम एक दम उलटे हुए। इस बार हेनरी के समर्थकों की संख्या अधिक थी। जर्मनी के पादरियों ने भी पोप ग्रेगरी को पदच्युत करने का आदेश निकाला। हेनरी के सब शत्रु लड़ाई में मारे गये। ग्रेगरी ऐसी स्थिति को दो वर्ष तक सम्हालता रहा पर अन्त में रोम हेनरी के हाथ चला गया और ग्रेगरी को गद्दी छोड़नी पड़ी। थोड़े ही दिनों बाद ग्रेगरी सप्तम की मृत्यु हो गयी। मरते समय उसने कहा था कि "मैं न्याय का प्रेमी और अन्याय का विरोधी था। और यही कारण है कि मैं विदेश में प्राण त्याग कर रहा हूं।"

ग्रे टॉमस (Thomas Grey)

अंग्रेजी साहित्य में 'ऐलेजी' या विषादपूर्ण काव्यों का रचयिता एक प्रसिद्ध कवि। जिसका जन्म सन् १७१६ में और मृत्यु सन् १७७१ में हुई।

ग्रे टॉमस इंगलण्ड के अन्तर्गत उस युग में पैदा हुआ जब वहाँ पर मशीन युग का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था और सारा समाज पूंजीपति और मजदूरों के दो स्पष्ट विभागों में विभक्त होता जा रहा था। मनुष्य के अन्तर्जगत् में विद्रोह की भावनाएं पैदा होना प्रारम्भ हो गया था। और इसी के फलस्वरूप कविता के क्षेत्र में 'एलेजी' या विषादपूर्ण भावनाओं का प्रचार बढ़ता जा रहा था।

टामस-ग्रे इसी प्रकार की विषादपूर्ण कविताओं का प्रसि[द्ध] कवि था। यद्यपि उसका प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त सुखी औ[र] समृद्ध अवस्था में व्यतीत हुआ था। मगर अन्तिम जीवन [में] उसे कई प्रकार की कठिनाइयों का बड़ा विषादपूर्ण अनुभ[व] हुआ और यही विषाद उसकी कविताओं में बड़े प्रभावशा[ली] ढंग से व्यक्त हुआ और इस कवि की गणना तत्कालीन यूरो[प] के प्रसिद्ध कवियों में हुई।

इसकी रचनाओंमें 'डिसेण्ट ऑफ ओडिन' और 'दी बार्[ड]' विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं।

ग्रेट बेरियर रीफ

संसारमें सबसे बड़ी मूंगे की दीवार। जो आस्ट्रेलिया के 'क्विन्सलैण्ड' प्रदेश के उत्तर-पूर्वी तट पर बनी हुई है।

इस दीवार की लम्बाई लगभग १२ सौ मील और चौड़ाई १० मील से ६० मील तक है। इसका अधिकांश भाग जल में डूबा हुआ है। कहीं-कहीं जल से बाहर भी इसकी [चोटियां] दृष्टिगोचर होती हैं।

ग्रेट बेयर झील

कनाडा के उत्तर-पश्चिम मैकेंझी जिले में स्थित स्वच्छ जल की एक झील। इसकी लम्बाई २०० मील चौड़ाई २५ से लेकर १०० मील तक और गहराई २७० फुट है। झील का कुल क्षेत्रफल १२ हजार वर्गमील है।

इस झील से ग्रेट बेयर' नाम की एक नदी का निकास होता है। इस झील का पता सन् १८२५ ई० में सर जॉन फ्रैंकलिन ने लगाया था।

ग्रेटब्रिटेन

यौरोप महाद्वीपमें स्काटलैंड आयर्लेंड वेल्स तथा इंग्लैंड के संयुक्त राज्यों का नाम सन् १७०७ ई० में ग्रेट ब्रिटेन पड़ा। इसका पूरा इतिहास इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में इंग्लैंड के साथ देखना चाहिए।

ग्रेनविल

इग्लैण्ड के राजा तृतीय जॉर्ज के राज्यकाल मे इग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री। जो सन् १७६३ मे प्रधान मन्त्री बनाया गया।

ग्रेनविल के मन्त्रित्वकाल मे अमेरिकन-उपनिवेशो का झगडा, एक महत्वपूर्ण घटना है। सन् १७६५ ई० मे इग्लैड की पार्लियामेंट ने सप्तवर्षीय युद्ध का कुछ खर्च अमेरिका से वसूल करने के लिये 'स्टाम्प-ऐक्ट' पास किया। इस स्टाम्प एक्ट के विरोध मे अमेरिका मे भयकर तूफान खडा हो गया। अमेरिका के लोगो ने एक ओर तो आग जला कर टिकटो की होली की और दूसरी ओर सूली खड़ी की, और टिकट बेचने वालो से कहा कि—"या तो तुम पद को छोडो या तुम्हें सूली दे दी जायगी।' अमेरिका के इस भयकर विरोध के कारण ग्रेनविल की बडी बदनामी हुई और जार्ज तृतीय ने उससे त्यागपत्र ले लिया।

ग्रेनविल के मन्त्रिमण्डल काल मे दूसरी घटना 'दि नार्थ ब्रिटेन' नामक समाचार पत्र के सम्पादक जॉन-विलक्स के सम्बन्ध मे हुई। सन् १७६३ मे पेरिस की सन्धि के पश्चात् जो 'राज्य-भाषण' हुआ, उसमे राजा ने इस सन्धि को गौरव-पूर्ण बतलाया था। लेकिन विल्क्स ने अपने पत्र मे इसका विरोध किया और लिखा कि मन्त्रियो ने दबाव डालकर राजा से यह वक्तव्य दिलाया। इस पर सन् १७६४ मे विल्कस को 'हाउस ऑफ कामन्स' से निकाल दिया गया। और उसे फ्रास भाग जाना पडा। पर इस झगडे मे बिल्क्स बहुत लोकप्रिय हो गया और ग्रेनविल की ओर से राजा और प्रजा दोनो को अरुचि हो गयी।

ग्रेशम

महारानी 'एलिजाबेथ' के समय मे ब्रिटिश-रायल इक्सचेंज के प्रथम सस्थापक और मुद्रानीति के विशेषज्ञ। जिनका जन्म सन् १५१९ मे और मृत्यु सन् १५७९ मे हुई।

मुद्रानीति के सम्बन्ध मे इनका बनाया हुआ सिद्धान्त 'ग्रेशम सिद्धान्त' के नाम से प्रसिद्ध है।

ग्रेब

जर्मन-साहित्यका एक सुप्रसिद्ध नाटककार। जिसका जन्म सन् १८०१ ई० मे और मृत्यु सन् १८३६ ई० मे हुई।

जर्मन नाट्य-कला के अन्तर्गत एक नवीन यथार्थवादी प्रणाली को विकसित करने का श्रेय 'ग्रेब' को प्राप्त हैं। ग्रेब ने अपने नाटको की रचना राष्ट्रीय और ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर की, जिसका अनुकरण आगे के बहुत से नाटककारो ने किया।

ग्लेडस्टन

इग्लैड के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और प्रधानमन्त्री, जिसका जन्म सन् १८०९ ई० और मृत्यु सन् १८९८ ई० मे हुई।

इग्लैड के प्रधान मन्त्री 'पामर्स्टन' के पश्चात् २० वर्ष तक ब्रिटिश राज्य की बागडोर बारी बारी से 'ग्लेडस्टन' और 'डिजरेली' के हाथो मे रही। ग्लेडस्टन महानविचारक, राजनीतिज्ञ और धुरन्धर वक्ता था। इग्लैड की राष्ट्रीय उन्नति और जन-कल्याण इसके जीवन के प्रधान ध्येय थे।

सन् १८६५ ई० मे पामर्स्टन के पश्चात् लार्ड 'रसिल' इग्लैड का प्रधान मन्त्री हुआ। मगर इस समय भी 'हाउस ऑफ कामन्स' ग्लेडस्टन के ही हाथो मे था। ७ वर्ष से वह अर्थ-विभाग का मन्त्री था। ग्लेडस्टन के प्रयत्नो से इग्लैड मे व्यापार के नियन्त्रणको हटा कर मुक्त द्वार व्यापार प्रारम्भ कर दिया गया था, जिससे वहाँ की गरीब जनता को बहुत राहत मिली। सैकडो चीजो पर मे उसने चुङ्गी उठा दी।

सन् १८५३ ई० जहाँ ४६६ चीजो पर चुङ्गी लगती थी, वहाँ सन् १८६० ई० मे केवल ६८ चीजो पर ही चुङ्गी रह गयी। सन् १८६५ ई० मे ग्लेडस्टन ने पार्लियामेट मे राजनैतिक सुधार का प्रस्ताव पेश किया। जिसके अनुसार ७ पौण्ड मकान का कर देने वाले को नगर मे और १४ पौण्ड कर देने वाले को प्रान्त मे वोट देने का अधिकार मिल जाता मगर यह प्रस्ताव पास न हो सका।

सन् १८६८ ई० मे ग्लेडस्टन इग्लैड का प्रधान मन्त्री हुआ। उसने कैबिनेट मे आते ही आयरलैंड वालो की आपत्तियो को दूर करने का प्रयत्न किया। उसने आयर्लैंड का

भूमि-सम्बन्धी कानून पास करवाया। इसी प्रकार उसने और भी कुछ कानून पास करवाये।

ग्लेडस्टन के समय में यूरोपके अन्दर कई महत्वपूर्ण अन्त र्राष्ट्रीय घटनाएँ हुई। मगर ग्लेडस्टनका ध्यान देशकी अन्दरूनी राजनीति की तरफ अधिक था। इस कारण वह बाहरी घटनाओं की ओर विशेष ध्यान न दे सका। जिसके परिणाम स्वरूप उसके मन्त्रिमण्डल का सन् १८७४ ई० में पतन हो गया।

सन् १८८ ई० में ग्लेडस्टन दूसरी बार प्रधान मन्त्री चुना गया। इस बार उसके मन्त्रित्वमें तीन प्रश्न मुख्य रूपसे उपस्थित थे। (१) पार्लमेंट का सुधार (२) मिस्र की समस्या और (३) आयलैंड का स्वराज्य।

सन् १८८४ ई० में ग्लेडस्टन ने एक कानून पास करवा कर ग्रामों के मजदूरों को भी मत देने का अधिकार प्रदान किया। मिस्र के प्रश्न पर वहाँ की अंग्रेजी फौज की रक्षा के लिए फौज भेजने में सुस्ती करने के कारण और मिस्र के सेनापति जेनरल गार्डन को विद्रोहियों के द्वारा मार जाने के कारण तथा आयर्लैंड के स्वराज के सम्बन्ध में उसके दल में मतभेद हो जाने के कारण सन् १८८५ में उसको फिर त्यागपत्र देना पड़ा।

एक वर्ष बाद वह पुन प्रधान मन्त्री बनाया गया। इस बार भी आयर्लैंड के स्वराज्य का प्रस्ताव ग्लेडस्टन ने फिर पार्लियामेंट में पेश किया मगर इस बार भी उसकी हार हुई और उसे त्याग-पत्र देना पड़ा।

इंग्लैंड के इतिहास के निर्माण में ग्लेडस्टन का बड़ा महत्वपूर्ण हाथ रहा। अनुदार-दल का होते हुए भी वह विचारों में बड़ा उदार, लोकहित की भावनाओं से परिपूर्ण समस्याओं की गहराई में घुस कर अध्ययन करनेवाला और महान् राजनीतिज्ञ था।

सन् १८९८ ई० में ग्लेडस्टन की मृत्यु हो गयी।

गोआ

भारत के मालाबार-समुद्र-तट पर स्थित एक राज्य जो सन् १९६१ ई० के पहले पुर्तगाली-साम्राज्य का एक उपनिवेश रहा और उसके बाद भारतसंघ में मिलाया गया।

गोआ का इतिहास बहुत प्राचीन काल से शुरू होता है। हरि वंश पुराण से पता चलता है कि जरासन्ध के भय से भयभीत होकर कृष्ण और बलराम दक्षिण में परशुराम के समीप गये। परशुराम ने उनको गोमन्त-क्षेत्र का पता बतलाया। यहीं से उन्होंने जरासिन्ध को पराजित किया। महाभारत और हरिवंश-पुराण में यह स्थान 'गोमन्त' नाम से सह्याद्रि-खण्ड में गोमांचल और कदम्बराजाओं के अनुशासन पत्र में गोपराष्ट्र और गोपकपुरी नाम से वर्णित है।

गोआ नगर तीन भागों में विभक्त है। पहला विभाग कदम्बराजाओं द्वारा स्थापित प्राचीन गोपकपुरी कहलाता है, दूसरा विभाग पोर्तुगीजों द्वारा अधिकृत पुराना गोआ है, सन् १४७९ में मुसलमानों ने इस बसाया था। तीसरा नवीन गोआ सन् १७११ में पोर्तगीजों के द्वारा बसाया गया और यहाँ राजधानी की स्थापना हुई।

आधुनिक ज्ञात इतिहास में यह स्थान १ वीं शताब्दीके पहले कोंकणके शिलाहार राजाओंके अधिकार में था। उसके पश्चात् कदम्ब वंश के राजाओं ने इसको विजय कर यहाँ पर अपना अधिकार किया। कदम्ब-वंश में राजा जयकेशी बड़ा प्रतापी हुआ। गुड्डीकट्टी के शिलालेख में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है। गोआ को पहले पहल इसी ने अपनी राजधानी बनाया था। इसका समय सन् १ ५२ के आसपास था। गुजरात के राजा कर्ण सोलंकी की रानी 'मीनल देवी' इसी जयकेशी की पुत्री थी।

जयकेशी के पश्चात् राजा विजयादित्य और उसके पश्चात् द्वितीय जयकेशी इस वंश का राजा हुआ। द्वितीय जयकेशी ईसवी सन् ११८७ में गद्दी पर बैठा। इसके समय की सन् ११ और १२१ में लाखी गयी स्वर्णमुद्राएं प्राप्त हुई हैं। द्वितीय जयकेशी का पुत्र त्रिभुवन-मल्ल और उसके पश्चात् उसका पुत्र षष्ठदेव द्वितीय सन् १२४६ में गद्दी पर बैठा। उसका सन् १२५७ का लिखा हुआ शिलालेख प्राप्त हुआ है जिससे पता चलता है कि यह एक स्वतन्त्र राजा था।

सन् १३१२ ई० में मलिक-तुगलिय नामक मुसलमान ने गोआ को अपने अधिकार में किया। उसके बाद सन् ११७० में विजय नगर के राजा हरिहर के प्रधान मन्त्री ने इस देश का मुसलमानों के हाथ से उद्धार किया।

सन् १४४६ ई० मे यह बहमनी राज्य मे मिला लिया गया।

सन् १५१० ई० की १७ वी फरवरी को पोर्तगाल के 'अलबूकर्क' ने २० जहाज और १२०० सेना लेकर 'गोवा' पर आक्रमण किया। इस आक्रमण मे अलबूकर्क कोई कष्ट नही उठाना पडा। उसके पश्चात् अलबूकर्क ने इस नगर को किलेबन्दी करके सुरक्षित किया। 'मार्टिन ऐलफेमो' सबसे पहले गोवाके शासक बनकर आये और उनके साथ 'सेंट जेवियर' भी क्रिश्चियन धर्म का प्रचार करने के लिए यहा आये।

सन् १५७० मे अली आदिल शाह ने एक विशाल सेना के साथ गोआ नगर पर घेरा डाला। यह घेरा १० महीने तक पडा रहा, मगर पोर्तगाल के प्रतिनिधि लुई दि-आयेटी ने बडी चतुराई से इस स्थान की रक्षा की। तब से लेकर सन् १९६१ तक गोआ बराबर पोर्तुगीजो के ही अधिकार मे रहा। यद्यपि मराठो और डच लोगो के आक्रमणो से वह बराबर पीडित होता रहा।

सत्रहवी सदी मे पोर्तुगीजो के समय मे गोआ नगर अत्यत विलासी और नैतिक रूप से अध पतित हो गया था। जगह-जगह जुए के अड्डे और विलासके लिए प्रमोदगृह खुल गये थे। जिनमे मुक्तरूप से जुआ और व्यभिचार होता था। ये जुआ-घर बडे ठाटबाटसे सुसज्जित रहते थे। पोर्तुगीज सरकार इन अड्डो से कर लेती थी। प्रमोदगृहो मे दिनरात, सङ्गीत, नृत्य और शराब के दौर चलते थे। उस समय के यात्रियो ने गोआ की विलासिता और उसकी समृद्धि का दिल खोल कर वर्णन किया है।

भारत के स्वाधीन होने के पश्चात् जब फ्रेंच सरकार ने भी अपने भारतीय उपनिवेश भारतवर्ष को दे दिये तो पोर्तुगाल उपनिवेशो का भी सवाल उठा। मगर पोर्तुगाल के सालारजङ्ग ने अपने उपनिवेश देने से साफ इनकार कर दिया। काफी समय तक इस विषय मे खीचातानी चलती रहे। अन्त में सन् १९६१ मे एक दिन भारतीय सेनाओं ने जाकर बहुत मामूली प्रतिकार के पश्चात् इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। इस समय यह क्षेत्र भारत सरकार का एक राज्य है। महाराष्ट्र और मैसूर दोनो ही राज्य इस क्षेत्र को अपना अङ्ग समझ कर अपने साथ विलीनीकरण की माग कर रहे हैं और इसका निर्णय अभी विचाराधीन है।

गोआ के धर्मक्षेत्र

गोआ का क्षेत्र हिन्दुओ और ईसाइयो के लिए पुण्यक्षेत्र की तरह है। सेण्ट जेवियर ने यहाँ आकर भारत मे सबसे पहले ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया था। इसलिए ईसाईयो के लिए यह स्थान बहुत पवित्र है। यहाँ पर बडे बडे गिरजाघर बने हुए हैं।

हिन्दुओ के भी यहाँ प्राचीनकाल के बने हुए अनेक मन्दिर तीर्थ रूप मे बने हुए है। इनमे चन्द्रचूड नामक तीर्थ सबसे अधिक प्रसिद्ध है। जिसका वर्णन सैह्याद्रि खण्ड और स्कन्द पुराण मे वर्णित है। चन्द्रचूड के अतिरिक्त गौतमतीर्थ, सोमतीर्थ, कपिलतीर्थ इत्यादि तीर्थ भी बहुत प्रसिद्ध हैं।

यहाँ के सुप्रसिद्ध गिरिजाघरो मे सेण्ट जेवियर, सेन्ट-फ्रान्सिस, सेण्ट ऑगस्टाइन, सेण्ट रोजारी, सेण्ट कईटानो कैथिड्रल आदि गिरजे उल्लेखनीय हैं।

गोएबल्स

जर्मनी के नाजी-शासक हिटलर का प्रसिद्ध सहयोगी डा० गोएबल्स। जिसका जन्म सन् १८९७ ई० मे हुआ था।

सन् १९२६ ई० मे हिटलर ने गोयबल्स को 'बर्लिन' मे नाजी दल के सगठन का काम सौंपा और उसके बाद इनकी योग्यता को देखकर सन् १९२९ ई० में सारे जर्मनी के नाजी-दल का मुख्य अधिकारी बना दिया।

सन् १९३३ मे नाजी दल की सत्ता कायम होने पर डा० गोयबल्स को प्रचारमन्त्री बनाया गया। नाजी दल के सगठन मे गोयबल्स का स्थान 'हिटलर' के पश्चात् बहुत ही महत्व-पूर्ण रहा। जिस सूझ बूझ और लगन के साथ इसने नाजी जर्मनी का सङ्गठन किया, वह अद्भुत था। नाजी जर्मनी के पतन के साथ ही ऐसा समझा जाता है कि इस व्यक्ति ने आत्महत्या करके अपने प्राण दे दिये।

गोकुलनाथ गोस्वामी

'चौरासी वैष्णवो की वार्त्ता' नामक हिन्दी गद्य की प्रारम्भिक रचनाके रचयिता तथा वल्लभ सम्प्रदाय की परम्परा बचनामृत पद्धति का प्रारम्भ करने वाले एक सुप्रसिद्ध सत।

[illegible] ई० मे हुआ।

जिस प्रकार वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत गोस्वामी गोकुल नाथ का नाम उनके द्वारा वचनामृत पद्धति का प्रारम्भ करने के कारण और धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों को सरल भाषा में व्यक्त करने के कारण प्रसिद्ध है उसी प्रकार हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास में हिन्दी गद्य को अपनी चौरासी वैष्णवों की वार्ता और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता के द्वारा प्रारम्भ करने के कारण हिन्दी गद्य के आदि कर्त्ता के रूप में भी ये प्रसिद्ध हैं।

गोस्वामी गोकुल नाथ ने अपनी वार्त्ताओं भजनों और सङ्गीत के द्वारा वल्लभ सम्प्रदाय का प्रचार करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा किया।

गोखले—गोपालकृष्ण

भारतवर्ष के एक सुप्रसिद्ध समाज सुधारक शिक्षा-शास्त्री और राजनीतिज्ञ। अपने समयमें भारतीय राजनीति में नरम दल के नेता। जिनका जन्म सन् १८६६ ई० में महाराष्ट्र के कोल्हापुर नामक स्थान में और मृत्यु सन् १९१५ में हुई।

भारत की राजनैतिक और सामाजिक चेतना को एक बुद्धिवादी शान्त और वैधानिक ढङ्ग से जागृत करने का जिन लोगों ने प्रयास किया उनमें गोपालकृष्ण गोखले का नाम बहुत आगे है। गोखले प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री और सुधारक महादेव गोविन्द रानडे के शिष्य और अनुयायी थे।

सन् १८८९मे वे ऑल इण्डिया कांग्रेसमे सम्मिलित हुए। उस समय कांग्रेस का सारा संगठन वैधानिक मार्ग के द्वारा प्रग्र ब सरकार से शासनाधिकार प्राप्त करने वाले लोगों के हाथ में था। गोखले अपने समय के माने हुए उदारदलीय नेता थे। अपनी योग्यता प्रतिभा और कर्त्तव्य परायणता के कारण वे तत्कालीन कांग्रेस के स्तम्भ समझे जाते थे। उनका ध्येय भारत को अंग्रेजी राज्य के संरक्षण मे उन्नतिशील बनाना था। क्योंकि उनका ब्रिटिश साम्राज्यकी न्यायप्रियतामें विश्वास था और इसीलिये उनको उग्रवादी विचारधारा ने कभी आकर्षित नहीं किया।

गोपालकृष्ण गोखले और लोकमान्य तिलक का जीवन साथ-साथ चलता है। दोनों एक ही प्रांत के बने हुए विचारक ईमानदार और देशभक्त थे मगर दोनों की कार्यपद्धतियों की ऐसी समानान्तर रेखाएँ थीं जो कभी नहीं मिलीं। इन दोनों देशभक्तों में कांग्रेस के अन्तर्गत बराबर विवाद रहे, मगर दोनों अपने-अपने पथ पर अडिग रहे।

सन् १९०५ में विरोधियों के विरोध के बावजूद भी गोखले बनारस-कांग्रेस अधिवेशन के सभापति चुने गये। उस समय इन्होंने यह स्वीकार किया था कि यदि सहयोग के सारे मार्ग बन्द हो जांय तो उस हालत में राजनैतिक बहिष्कार का प्रयोग किया जा सकता है।

राजनीति के साथ ही सामाजिक क्षेत्र में भी गोखले की सेवाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सन् १९०५ में उन्होंने सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया सोसायटी नामक प्रसिद्ध संस्था की स्थापना की। यह कार्य्य शायद उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था। इसमें ऐसे लोगों को सदस्य बनाया जाता था जो नाम-मात्र के लिए आवश्यक खर्च लेकर अपना जीवन देश सेवा में अर्पित कर देते थे। कई सुप्रसिद्ध और सुयोग्य व्यक्ति इस संस्था के सदस्य थे।

श्री गोखले के साथ महात्मा गांधी की पहली भेंट सन् १८९६ में हुई। महात्मा गांधी इस पहली ही भेंट में उनसे बड़े प्रभावित हुए। उन्हों ने लिखा है कि 'सन् १८९६ की भेंट के उपरान्त गोखले का राजनैतिक जीवन मेरे लिए आदर्श बन गया है। उसी समय से मैंने हृदय में उनको अपने राजनैतिक गुरु की तरह स्वीकार कर लिया। एक जगह गान्धीजी ने उनके लिए लिखा है— 'उन्होंने लार्ड कर्जन को भी इतना प्रभावित कर लिया कि किसी से भी न डरने वाला लार्ड कर्जन भी उनसे तो डरता ही था।"

गोखले अत्यन्त मधुर भाषी वक्ता थे। जनसाधारण से लेकर बड़े से बड़े विद्वान और अधिकारी को आकर्षित कर लेने का उनमें असाधारण गुण था। लार्ड मार्ले ने एक बार उनके लिए कहा था कि— 'जहाँ उनमें कुशल राजनीतिज्ञ जैसी विचारशक्ति है वहाँ एक योग्य प्रशासक की तरह उनमें व्यवहार कुशलता भी है।

गोगें पाल

फ्रांस का एक प्रसिद्ध उत्तर प्रभाववादी चित्रकार। जिसका जन्म सन् १८४८ में और मृत्यु सन् १९ ३ में हुई।

गोगैंपाल की चित्रशैली ने आधुनिक यूरोपीय चित्र कला काफी प्रभावित किया। कई चित्रकारो ने उसकी शैली का अनुकरण किया। फ्रान्स की गतिहीन चित्र-कला को उसने एक नवीन मोड दिया। सन् १८८९ मे उसने पेरिस मे अपने नवीन चित्रो की प्रदर्शनी की।

मगर इन सब सफलताओ के बावजूद उसके चित्रो का उसके जीवन मे उचित मूल्याकन नही हुआ। वह जीवन भर आर्थिक कष्ट से पीडित रहा और उसी स्थिति मे सन् १९०३ मे उसकी मृत्यु हुई।

गोगोल-निकोलाय

रूसी साहित्य का सुप्रसिद्ध गद्य लेखक और नाटककार, जिसका जन्म सन् १८०९ ई० मे और मृत्यु सन् १८५२ ई० में हुई।

गोगोल प्रारम्भ मे कजाकिस्तान का रहने वाला था मगर बाद में वह सेण्टपीटर्सवर्ग चला गया। यह रूस के प्रसिद्ध महाकवि पुश्किन का साथी था और अपनी कई रचनाओ में इसे पुश्किन से प्रेरणा मिली थी।

इसकी पहली रचना के प्रकाशित होते ही रूसी साहित्य मे एक तहलका मच गया। और यह रूसी साहित्य का एक प्रकाशमान नक्षत्र समझा जाने लगा। इसके कहानी ग्रंथो मे 'अरावेस्क' 'मीरगोरद' 'तारासबुल्बा' इत्यादि रचनाएँ बहुत लोकप्रिय हुई। इसके नाटको मे 'इन्सपेक्टर जनरल' बडा लोकप्रिय हुआ। इस नाटक मे रूसी नौकरशाही के भयकर अत्याचारों और उसकी भ्रष्टाचारिता पर बडी सजोव भाषा मे प्रकाश डाला गया है। इस नाटक के रगमच पर अभिनीत होते ही गोगोल रूस, छोडकर हमेशा के लिए रोम मे जा बसा।

गोगोलकी रूसी साहित्यमे सबसे सुन्दर कृति 'मृत आत्माएँ' मानी जाती हैं। यह उपन्यास तीन खण्डोमे समाप्त होने वाला था लेकिन दूसरा भाग समाप्त होते होते गोगोल को अपने धार्मिक सस्कारो के कारण इससे विरक्ति हो गयी। और उसने इसके दूसरे भाग को आग मे डाल कर जला दिया। फिर भी उसका कुछ अश बच गया। और इस ग्रंथ का पहला खण्ड और दूसरा अपूर्ण खण्ड प्रकाशित हुए।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन ने रूसी साहित्य मे एक अजीब युगान्तर कर दिया। सारे रूसी जीवन को इसने झकझोर दिया। हास्य, करुणा और गम्भीर तीनो प्रकार के रसो की सृष्टि ने इस ग्रन्थ को और इसके साथ गोगोल को रूसी साहित्य मे अमर कर दिया।

गोञ्चारोव-इवानोविच

रूसी साहित्य का एक उपन्यासकार जिसका जन्म सन् १८१२ मे और मृत्यु १८९१ में हुई।

गोञ्चारोव उन्नीसवी सदी मे रूसी साहित्य के अन्तर्गत एक प्रसिद्ध उपन्यासकार हुआ। इसने सारे ससार का भ्रमण कर अपने यात्रा सम्बन्धी अनुभवो को पत्रो के रूप मे लिखा। इसका उपन्यास 'आब्लोमोव' रूसी साहित्य मे बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस उपन्यास मे रूस के सामन्ती श्रीमानो के मौज, शौक और प्रमादी जीवन का चित्र बडी ओजस्वी भाषा मे खीचा गया है।

गोञ्जालो-डी-बर्सियो
(Gonzalo-D-Berceo)

स्पेन का प्राचीन कालीन एक पादरी और कवि जिसने छन्दबद्ध कविता मे कई ईसाई सन्तो की जीवनियाँ लिखी। इसका समय सन् ११९८ से १२६५ तक था।

गोंडा

उत्तरप्रदेश के सरयूपार क्षेत्रमे स्थित एक जिला। जिसके उत्तरमें हिमालय की पर्वत श्रेणी, पूर्व मे बस्ती जिला, दक्षिण मे फैजाबाद, बाराबंकी और घाघरा नदी तथा पश्चिममे बहराइच है। इसका क्षेत्रफल १८२९ वर्गमील और जनसख्या ३० लाख ७३ हजार २३७ है।

गोडा जिले का प्राचीन इतिहास प्राचीन "श्रावस्ती नगरी" से सम्बन्धित है। सूर्यवंशीय राजा श्रावस्ती के पुत्र 'वशक' ने यहाँ पर श्रावस्ती नगरी बसाई थी। यह नगरी रामचन्द्र के पुत्र 'लव' की राजधानी भी थी। आजकल इसका

ईसा की ११वीं शताब्दी में अयोध्या के राजा विक्रमादित्य के राज्यकाल में यह क्षेत्र बहुत समृद्धशाली था। मगर उसके पश्चात् पुरुषवंशीय राजाओं के समय में बौद्धों और ब्राह्मणों के संघर्ष में यह क्षेत्र वीरान हो गया।

ईसा की १४वीं शताब्दी में यह क्षेत्र 'कलहंसों' और विसेनवंशी क्षत्रियों के अधिकार में आ गया। कलहंसी राजाओं ने हिसामपुर से ले कर गोरखपुर तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था।

१५वीं सदी में विसेन राजा मानसिंह ने इस क्षेत्र की बड़ी तरक्की की। राजा रामदत्त के शासनकाल में यह नगर एक प्रसिद्ध राजपूती गढ़ और व्यापारिक संस्थान बन गया था। रामदत्त सिंह ने इस नगर की तरक्की में विशेष रूप से भाग लिया।

सन् १८५७ ई० के विद्रोहमें गोंडाके राजाने विद्रोही पक्ष में अवध की बेगम को सहायता दी थी। जिसके फलस्वरूप उनका राज्य छीन कर अंग्रेज गवर्नमेंट ने बलरामपुर के महाराज दिग्विजय सिंह और शाहगंज के महराज सर मान सिंह को बाँट दिया था।

गोंडा जिले के अन्तर्गत गोंडा बलरामपुर उतरौला कर्नलगंज और नवाबगंज प्रसिद्ध नगर और कस्बे हैं।

गोण्ड

भारतवर्ष के मध्यवर्ती प्रदेश मध्य प्रदेश उड़ीसा और नर्मदा नदी के दक्षिण क्षेत्र में फैली हुई एक प्राचीन आदिम जाति। जो द्रविड़ नस्ल की मानी जाती है।

गोण्ड भारतवर्ष की आदिम जातियों में एक श्रेष्ठ जाति मानी जाती है। ऐसा समझा जाता है कि सतपुड़ा की पहाड़ियों और उसकी तराई के अतिरिक्त छिन्दवाड़ा बैतूल होशंगाबाद सिवनी मण्डला और बालाघाट से बिहार को भाग दन्तेवाड़ा तक फैला हुआ है उसमें गोण्ड हमेशा से रहते आये हैं। यही प्रदेश गोंडवाना के नाम से प्रसिद्ध है। पन्द्रहवीं से अठारहवीं सदी तक इस सारे गोंडवाने पर गोण्ड राजाओं का एक छत्र राज्य था। उनका यह साम्राज्य राजपूतों मुसलमानों और मराठों के समय में भी कायम रहा। इतिहास प्रसिद्ध रानी दुर्गावती जिसने मुगल सम्राट अकबर के दाँत खट्टे किये थे गोण्ड राजवंश की ही रानी थी। गोण्ड राजाओं ने अपने शासन में बहुत से दुर्ग तालाब और स्मारकों का निर्माण करवाया था।

इस जाति के लोग खेती और शिकार से अपना गुजारा करते हैं। इनकी खेती करने की पद्धति 'दाहिया' कहलाती है जो जंगल को जलाकर उसकी राख में की जाती है।

अपने विवाह सम्बन्धों के लिए गोण्ड जाति के लोग दो या अधिक समूहों में बटे रहते हैं। एक समूह के अन्दर सभी शाखाओं के लोग भाईबन्द कहलाते हैं। एक समूह के विवाह सम्बन्ध दूसरे समूह में होते हैं। विवाह के लिए लड़के के द्वारा लड़की को भगाये जाने की प्रथा है। गोण्ड जाति के सघन क्षेत्रों में बहुत से विवाह सामूहिक रूप में होते हैं। ऐसे अवसरों पर कई दिनों तक उत्सव मनाया जाता है। सामूहिक भोज और नाच गान होते हैं।

गोण्ड स्त्रियां बड़ी हंसमुख और आभारी पसन्द होती हैं, इनमें तलाक की प्रथा भी चालू है जो पंचायत की इजाजत से होती है।

गोण्डों के देवताओं में बूढ़ादेव दूल्हादेव, नारायण देव सूरसेन भीमासु इत्यादि देवता प्रधान हैं। इनके सिवाय फसल के देवता शिकारके देवता तथा बीमारियोंके देवता अलग होते हैं। इस जाति का जादू, टोना और देवता के प्रकोप पर बहुत विश्वास है। इनकी पुरानी प्रथा मृतकों के शव को गाड़ने की थी मगर आजकल अनेक लोग अपने शवों को जलाने भी लगे हैं।

गोण्ड जाति के अविवाहित युवक और युवतियां मनोरंजन के लिए अपने अलग अलग क्लब बनाते हैं। जिन्हें 'घोटुल' कहा जाता है। बस्ती से दूर दूर बांसके अविवाहित युवक एक बड़ा घर बनाते हैं। वहां वे रात्रि को नाचते गाते और सोते हैं। ऐसे ही 'घोटुल' अविवाहिता लड़कियों के भी होते हैं।

गोण्डों का खास देव गोण्डबाबा के नाम से प्रसिद्ध है जो नर्मदा नदी के दक्षिणी तट पर बना हुआ है।

गोताखोरी

समुद्र के भीतर गोता लगा कर उसके तल का पता लगाने और उसमे डूबी हुई चीजें निकालने की एक कला। जिसका विकास इस युग मे बहुत हुआ।

समुद्र के अन्तर्गत सैंकडो वर्षो से बहुत से जहाज डूब जाते हैं और उनकी सारी धनराशि समुद्र के गर्भ मे समा जाती है। इसी प्रकार समुद्र के बढाव से बहुत से नगर और बहुत सी सभ्यताएँ ज्यो की त्यो समुद्र के गर्भ मे चली जाती हैं। पिछले ४०० वर्षो मे जहाज दुर्घटनाओ के कारण अरबो रुपयो की सम्पत्ति समुद्र के पेट मे चली गयी।

गोताखोरी-विद्या के द्वारा समुद्र के अन्दर डूबी हुई इस सम्पत्ति का और उन सभ्यताओ का पता गोताखोर लोग लगाते हैं। वे नवीनतम साधनो और यन्त्रो के द्वारा समुद्र के अन्दर गोता लगा कर कई घण्टो तक सुरक्षित रूप मे समुद्र के अन्दर रह सकते है। वहाँ से अपना काम करके फिर सुरक्षित रूप मे वापस चले आते हैं।

इसी प्रकार हाल ही मे 'आर्थर क्लार्क' और 'माइक विल्सन' नामक दो गोताखोरो ने लङ्का के पास सन् १९६१ ई० मे 'ग्रेट-बेसेस' नामक द्वीप के समानान्तर स्थित डूबी हुई शैल मालाओ के निकट गोता लगाकर औरङ्गजेब के डूबे हुए खजाने को बरामद किया। इस गोताखोरी मे इन लोगो को पहले पीतलकी छोटी छोटी दो तोपें प्राप्त हुई जो पुरानी होने बावजूद काफी चमक रही थी। इन तोपो के पीछे की तरफ सैकडो पुराने सिक्के चिपके हुए थे। जो समुद्र मे बहुत वर्षो तक पडे रहने के कारण मैले पड गये थे और आपस मे जुड भी गये थे। ये सिक्के २५-२५ या ३०-३० पौड के पिंडो मे जुड़े हुए थे। इन सिक्को की परीक्षा करने के लिए जब उन्हे एक मुद्राशास्त्रीके पास भेजा गया तो उन मुद्राओपर लिखी हुई फारसी लिखावट और उनकी तिथि को देखकर उसने बतलाया कि ये मुगल-सम्राट् औरङ्गजेब के शासनकाल के चाँदी के रुपये हैं।

इसके बाद और भी बहुत सी मुद्राएँ और दूसरी-दूसरी सामग्रियाँ वहाँ से प्राप्त हुई।

इस प्रकार गोताखोरी के द्वारा भिन्न-भिन्न समुद्रो में और भी कई चमत्कारपूर्ण खोजें करने के उदाहरण मिलते है।

गोदान

हिन्दी के सुप्रसिद्ध इतिहासकार 'प्रेमचन्द अंतिम और श्रेष्ट उपन्यास। जिसका प्रकाशन ई० मे हुआ।

इस उपन्यास मे भी प्रेमचन्द की स्वाभावि सुन्दर विकास हुआ है। भारतीय प्रकृति का वा सच्चा स्वरूप ग्रामो के अन्दर ही देखा जा सकता है प्रेमचन्द ने अपने अनेको उपन्यास और कहानियो ग्राम्य जीवन का स्वाभाविक और वास्तविक चित्र प्रयास किया है और उसके साथ ही उसकी पृष्ठभूमि सभ्यता का भी चित्रण करके उनका तुलनात्म किया है।

'गोदान' भी इस पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ उ इसके मुख्य पात्रो मे एक ओर होरी, धनियाँ, गोब इत्यादि ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करने वा तो दूसरी ओर राय साहब अमरपाल सिंह, मि खन्ना, लेडी डाक्टर मालती, प० ओंकारनाथ इत्या जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले आनुसङ्गिक पात्र

इस उपन्यास का प्रधान पात्र 'होरी' एक सरल, आत्मसम्मानी, ईमानदार और सामाजिक प्रतिष्ठा समझने वाला किसान हैं। पूरे परिश्रम के साथ अपनी आजीविका पैदा करता है, मगर फिर भी द विजय नही प्राप्त कर पाता। वह उदार और वि है। कुल की मर्यादा को प्राणो से भी अधिक समझत उस मर्यादा की रक्षा के लिए घर के आँगन मे ए बाँधना आवश्यक समझता है। भोला से एक गाम वह अपने आँगन मे बधवाता है। मगर उसके भाई इससे बडी ईर्ष्या होती हैं और एक दिन मौका पाक गाय को जहर दे देता है। गाय के मरने से सारे गाँव मचता है। पुलिस थानेदार आकर जब होरीके घरक लेने लगता है तो होरी को फिर कुल-मर्यादा का ख्य है और वह थानेदार को घर की तलाशी लेने से म है और बडी कठिनाई से थानेदार को वापस लौटाता

इसी के बीच होरी के लड़के 'गोबर' का विधवा लड़की झुनियाँ से प्रेम हो जाता हैं और इ

रह जाता है। इस अस्वाभाविक काम के लिये पंचायत उस पर सौ रुपये नगद और ग मन अन्न का जुरमाना करती है। इससे उसकी आर्थिक स्थिति और भी खराब हो जाती है और वह किसान से मजदूर बन जाता है। उसकी बैल-जोड़ी और घर बिकते हो जाते हैं। वह चारों ओर ऋण के बोझ से दब जाता है। जीवन के संघर्ष में वह चूर चूर हो जाता है। फिर भी वह अपने हृदय की विशालता और इंसानियत को नहीं छोड़ता। अन्त में एक दिन उसको लू लग जाती है। वह मृत्यु शैया पर पड़ जाता है। उसकी गाय की लालसा पूर्ण नहीं होती और मृत्यु के समय उसकी स्त्री धनियाँ अपनी समस्त कमाई बीस आने पति के ठन्डे हाथ में रखकर रोती हुई ब्राह्मण से कहती है— महाराज! घर में न गाय है, न बछिया न पैसा। यही पैसे है और यही इनका 'गोदान' है। इस प्रकार अत्यन्त करुणापूर्ण और हृदय-द्रावक स्थिति में उपन्यास समाप्त होता है।

शहरी सभ्यता के पात्रों में लेडी डाक्टर मालती और प्रोफेसर मेहता भी अनिच्छा एक शिकार पार्टी में जा जाती है। मालती बाहर से तितली और भीतर से मधुमक्खी है उसकी चटक-मटक को देख कर मिल मालिक खन्ना भी उसकी ओर आकर्षित होते है। और पैसे के बल पर उसको खरीदना चाहते है, किन्तु इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं मिलती। उधर मेहता और मालती दोनों का प्रेम दृढ़ होता जाता है। मगर वे विवाह के बन्धन में बंधकर समाज की संकीर्ण मर्यादा से अपने आप को नहीं बांधना चाहते और मित्रभाव से रह कर समाज की सेवा करने में लग जाते है। मिल मालिक खन्ना जो समाज के पूंजीपति अङ्ग का प्रतिनिधित्व करते है और मजदूरों का शोषण और स्वार्थ-साधन ही जिनका मुख्य ध्येय है। मजदूरों की हड़ताल के बाद जब मजदूर उनकी मिल को जला देते है, तब सीधी राह पर आकर अपने पिछले जीवन के लिए पश्चाताप करते हैं।

इस प्रकार इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने अपनी कला के द्वारा देहाती जीवन का सुन्दर चित्र मनुष्य की उत्कृष्ट भावनाओं का प्रतिबिम्ब शहरी जीवन की विलासपूर्ण सभ्यता का सजीव चित्र पूंजीपतियों की शोषण-नीति का और शिक्षित समाज मे वैवाहिक जीवन के प्रति उत्पन्न होने वाली उदासीनता का मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है।

उपन्यास बहुत बड़ा हो जानेसे कहीं २ लम्बे-लम्बे वर्णनों के कारण कथा के प्रवाह में कुछ शिथिलता अनुभव होती है। फिर भी इन बातोंके बावजूद भारतीय जीवन का सुन्दर और विशद चित्रण करनेमें 'गोदान' को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

गोपालराम गहमरी

हिन्दी-साहित्य में जासूसी-उपन्यासों के प्रथम प्रवर्तक जिनका जन्म सन् १८६६ ई० में गाज़ीपुर जिले के 'गहमर' नामक गाँव मे हुआ और मृत्यु सन् १९४६ ई० में काशी म हुई।

गहमर में जन्म होने के कारण ये गहमरी नाम से मशहूर हुए। गोपालराम गहमरी की प्रतिभा बहुमुखी थी। शुरू-शुरू में इन्होंने बङ्गला के कई नाटकों और उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद किया। मगर इनकी सबसे अधिक ख्याति जासूसी-उपन्यासों के क्षेत्र में हुई। सन् १८९९ ई० से इन्होंने अपने जासूसी उपन्यासों की परम्परा प्रारम्भ की जो सन् १९४६ ई० तक बराबर चलती रही।

भारत के जासूसी साहित्य में इनका स्थान अंग्रेजी जासूसी-साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक 'कानन-डायल' की तरह माना जाता है।

गोपबन्धु-दास

उड़ीसा के एक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय और सामाजिक कार्यकर्ता। जिनका जन्म सन् १८७७ में पुरी जिले के सत्यवादी नगर में और मृत्यु सन् १९२८ में हुई।

राष्ट्रीय सामाजिक और शैक्षणिक तीनों ही क्षेत्रों में गोपबन्धु दास की सेवाएँ बहुत महत्वपूर्ण थी। अपनी जन्म भूमि सत्यवादी में उन्होंने खुले आकाश के नीचे गुरुकुल के ढङ्ग के एक वनविद्यालय की स्थापना की थी। राष्ट्रीय जागृति के लिए इन्होंने 'समाज' नामक एक दैनिक पत्र का भी प्रारम्भ किया था। उत्कल की जनता में वे 'उत्कलमणि' के नाम से प्रसिद्ध थे। पुरी में जगन्नाथ मन्दिर से कुछ दूरी पर उनकी यादगार में एक संगमरमर की मूर्ति लगाई गई है।

गोपालचन्द्र प्रहराज

उडिया भाषा के विशाल कोष के प्रणेता और व्यङ्ग साहित्यकार। जिनका जन्म सन् १८७२ मे कटक जिले के सिद्धेश्वरपुर में और मृत्यु सन् १९४५ मे हुई।

उडिया भाषा मे ''पूर्णचन्द्र उडिया भाषा कोष'' नामक महान् कोष की रचना कर उन्होने अमर कीर्ति सम्पादन की। यह विशाल कोष डेढ डेढ़ हजार पृष्ठो के सात खण्डो मे विभाजित है और इसमे एक लाख चोरासी हजार शब्दो का वर्णन दिया गया है। प्रत्येक शब्द का उच्चारण अग्रेजी अक्षरो मे भी दिया हुआ है और कई शब्दो के साथ उनके हिन्दी, बङ्गला और अग्रेजी अर्थ भी दिये गये हैं। इस कोष की रचना मे उनका बीस बरस से भी अधिक समय लगा था।

गोपालदास बरैया

दिगम्बर जैन दर्शन और न्याय के एक प्रकाण्ड विद्वान्, जिनका जन्म सन् १८६६ मे आगरा मे और मृत्यु सन् १९१७ ई० मे हुई।

प० गोपालदास बरैया, जैन दर्शन और जैन न्याय के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनकी विद्वता के कारण जैन समाज ने इनको 'स्याद्वाद बारिधि' 'वादिगज केशरी' 'न्याय वाचस्पति' इत्यादि कई उपाधियाँ प्रदान की थी। गवालियर के समीप मुरैना नामक स्थान पर इन्होने 'जैन सिद्धान्त विद्यालय' के नाम से एक जैन विश्वविद्यालय की स्थापना की थी और उसी की सेवा मे अपना सारा जीवन अवैतनिक रूप से अर्पित कर दिया था। इस विद्यालय से पचासो जैन सिद्धान्त के विद्वान तैयार हुए। 'जैनमित्र' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रारम्भ भी इन्ही के द्वारा हुआ था।

जैन न्याय और दर्शन के सम्बन्ध मे इन्हो ने कई ग्रन्थो की रचना की। इनमे 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका' जैन सिद्धान्त दर्पण इत्यादि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।

गोपाल

गौड देश या उत्तरी बङ्गाल मे सुप्रसिद्ध पाल राजवश के सस्थापक। जिनका समय आठवी शताब्दी के मध्य मे समझा जाता है।

आठवी सदी के प्रारम्भ मे गौड नरेश आदिशूर के पश्चात् गौड देश मे अराजकता की स्थिति प्रारम्भ हो गई। सन् ७५० ई० के करीब 'गोपाल' नामक एक व्यक्ति ने इस अराजकता का अन्त कर 'पालवश' नामक सुप्रसिद्ध राजवश की स्थापना की। पालवश बङ्गाल का एक सुप्रसिद्ध राजवश रहा। इस वश के सभी राजा प्रायः बौद्ध मतावलम्बी थे। गोपाल ने उद्दण्डपुर मे एक बौद्ध बिहार का निर्माण करवाया। कन्नौज के वत्सराज प्रतिहार ने एक बार ''गोपाल'' को युद्ध मे परास्त भी किया था।

गोपाल एक अत्यन्त उदार, बीर और प्रजाप्रिय राजा था। उसने धीरे धीरे सारे बङ्ग देश पर अधिकार कर 'गौडाधिपति' का विरुद ग्रहण किया। उसके राज्य की तुलना पृथु और सगर के प्रजाप्रिय राज्यो के साथ की जाती थी।

गोपालशरण सिंह

हिन्दी-साहित्य मे द्विवेदी-युग के एक सुप्रसिद्ध कवि, जिनका जन्म सन् १८९१ ई० मे रीवाँ राज्य के 'नईगढ़ी' नामक स्थान पर और मृत्यु सन् १९६० ई० मे हुई।

सन् १९११ से इन्होने कविता करना प्रारम्भ किया। इनकी सबसे पहली काव्यकृति 'माधवी' प्रकाशित हुई, जो इनकी मुक्तक रचनाओ का सग्रह है। इनकी दूसरी रचना 'कादम्बिनी' मे जीवनकी अनुभूतियाँ और अनुभूतियो से अनुप्राणित नैसर्गिक दृश्यो के अनेक चित्र अङ्कित हैं। इनकी तीसरी कृति 'मानवी नारी-जीवन की विविध अवस्थाओ का मर्मान्तिक प्रदर्शन करने वाली काव्यकृति है। इसमे लेखक ने नारी को देवदासी, उपेक्षिता, अभागिनी, भिखारिणी, बीराङ्गना, विधवा आदि अनेक रूपो मे देखा है।

इसके अतिरिक्त इनकी 'सुमना' 'ज्योतिष्मती' 'सञ्चिता' इत्यादि काव्य कृतिया भी उल्लेखनीय हैं। ठाकुर गोपालशरण सिंह उस युगके कवियोमे एक श्रेष्ठकवि समझेजाते थे। इनकी काव्य भाषा शुद्ध, सहज और प्रासाद गुण से परिपूर्ण है।

गोपालसिंह नेपाली

हिन्दी-साहित्य में मानववादी कविता के क्षेत्र में सबसे प्रसिद्ध और अविस्मरणीय कवि। जिनका जन्म सन् १९ २ ई में बेतिया के अन्दर और मृत्यु सन् १९६३ ई में हुई।

यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि इतने प्रसिद्ध और महान् कवि की शिक्षा केवल प्रवेशिका परीक्षा तक हुई। यह इस बात का प्रमाण है कि जिसके हृदय में प्रकृति प्रदत्त स्वाभाविक प्रतिभा रहती है वह व्यक्ति स्कूली शिक्षा का मोहताज नहीं रहता।

नेपाली की कविताका प्रारम्भ सन् १९२९ ई से हुआ। सन् १९३४ ई में इनकी उमङ्ग नामक पहली काव्यकृति प्रकाशित हुई। इस पहली कृति से ही कवि की प्रतिभा का प्रमाण लोगों को मिल गया। इस कृति मे कवि की काव्य प्रतिभा स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित होकर प्रवाहित हुई है। भावों की भावुकता स्वर माधुर्य और उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का इसमें प्रदर्शन हुआ है।

इसी वर्ष उनका दूसरा काव्य 'पंछी' के नाम से प्रकाशित हुआ। सन् १९३५ ई में उनका तीसरा काव्य-संग्रह 'रागिनी' के नाम से प्रकाश में आया। इसी प्रकार 'नीलिमा' 'पंचमी' और 'सावन' भी नेपाली' की उत्कृष्ट रचना है।

सावन नामक रचना १ १ कविताओं में समाप्त हुई है, जिसमें जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में बड़ी सुन्दर व्याख्या की गयी है।

भाषा का माधुर्य प्रकृति के सहजस्वरूप का चित्रण भावों निर्भीकता उत्कृष्ट काव्यप्रतिभा इत्यादि जो विशेषताएँ नेपाली की काव्य रचना में मिलती है, वह छायावाद के प्रथम द्वितीय और तृतीय उत्थान के कवियों में भी दृष्टिगोचर नहीं होती। रसपूर्ण सङ्गीतमय स्वर सुकुमार भावमयी सौन्दर्य भरी वृत्ति आन्तरिक स्फुरण मन की सहज प्रेरणा और कल्पनाप्रवण यौवन की उन्मत्ता के लिए नेपाली के गीत हमेशा चिरस्मरणीय रहेंगे।

गोम्मटेश्वर

मैसूर राज्य के श्रवणबेलगोला नामक सुप्रसिद्ध जैनतीर्थ में विन्ध्यगिरि के ऊपर स्थित गोम्मटेश्वर' की विशाल प्रतिमा। जिसका निर्माण गङ्ग राजवंश के राजा राचमल्ल चतुर्थ के प्रधान मन्त्री और सेनापति चामुण्डराय ने ई० सन् ९७७ के आसपास करवाया।

श्रवण बेलगोला की विन्ध्यगिरि' या 'इन्द्रगिरि' नामक पहाड़ी समुद्रतल से ३ ३४७ फुट ऊँची है। इस पहाड़ी के शिखर पर पहुँचने के लिए लगभग ५ सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। ऊपर एक समतल चौक है। चौक के ठीक बीचोबीच गोम्मटेश्वर' की विशाल-नग्न-खड्गासन मूर्ति स्थापित है।

यह उत्तरमुख खड्गासन-मूर्ति समस्त संसार की आश्चर्यकारी वस्तु में से एक है। सिर के बाल घुँघराले कान बड़े और लम्बे वक्षस्थल चौड़ा विशाल बाहु नीचे को लटकते हुए हैं। मुख पर अपूर्व कान्ति और अगाध शान्ति है। घुटनों से कुछ ऊपर तक बाँबिएँ दिखाई गयी हैं जिनसे सर्प निकल रहे हैं। दोनों पैरों और बाहुओं से माधवी लता लिपट रही है। मूर्ति के ऊपर तपस्या का तेज और शान्ति छायी हुई है।

निस्सन्देह मूर्तिकार ने अपने इस अपूर्व प्रयास में अनुपम सफलता प्राप्त की है। देश और विदेश के बड़े-बड़े पुरातत्त्वज्ञ और इतिहासकार इस विशाल मूर्ति की कारीगरी को देखकर हैरतअंगेज हो गये हैं! एशिया खण्ड ही नहीं सारे विश्व में भी गोम्मटेश्वर के समान मूर्ति-कला का उत्तम उदाहरण देखने को नहीं मिलेगा।

अभी तक इस विशाल मूर्ति की ऊँचाई का ठीक-ठीक पता लोगों को नहीं मिला है। अंग्रेज विद्वान् बुकानन ने इसकी ऊँचाई ७ फीट ३ इंच और सर 'आर्थर-वेलेस्ली' ने ६ फुट ६ इंच दी है।

सन् १८६५ ई में मैसूर के चीफ कमिश्नर मि 'बोरिंग' ने मूर्ति का माप करवा कर उसकी ऊँचाई ५७ फुट तय करवाई है।

गोम्मट स्वामी कौन थे और उनकी मूर्ति यहाँ किसके द्वारा किस प्रकार प्रतिष्ठित की गयी—इसका विवरण एक शिलालेख में (२३४) पाया जाता है। यह लेख एक छोटा सा कनाड़ी काव्य है। जो सन् ११८ के लगभग 'बोप्पण' कवि के द्वारा रचा गया है। इस लेख के अनुसार गोम्मट प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र थे। इनका नाम बाहुबली या भुजबली भी था। इनके भाई भरत चक्रवर्ती थे। ऋषभ देव के दीक्षा धारण करने के पश्चात् भरत और बाहुबली दोनों

भाइयों मे राज्य के लिए लडाई हुई। इसमे बाहुबली की विजय हुई, पर ससार की गति से विरक्त हो, उन्होने अपना राज्य बडे भाई भरत को दे दिया और स्वय तपस्या के हेतु वन को चले गये। 'पोदनपुर' नामक स्थान मे तपस्या करते हुए उन्होने केवल ज्ञान की प्राप्ति की। भरत चक्रवर्ती ने उनके स्मारक मे उनकी शरीराकृति के अनुरूप ५२५ धनुष ऊंची प्रतिमा पोदनपुर मे स्थापित करवाई। कुछ समय पश्चात् पोदनपुर के आसपास का सारा क्षेत्र 'कुक्कुट' सर्पों से व्याप्त हो गया। जिससे उस मूर्ति का नाम 'कुक्कुटेश्वर' पड गया। धीरे-धीरे वह मूर्ति लुप्त हो गयी और उसके दर्शन केवल दीक्षित व्यक्तियों को मन्त्रशक्ति के द्वारा प्राप्त होने लगे।

दसवी सदी मे गगवश के राजा राचमल्ल चतुर्थ के प्रधान मन्त्री जैन श्रावक चामुण्डराय ने जब इस मूर्ति का वर्णन सुना तो उन्हे उसके दर्शन करने की अभिलाषा हुई, पर पोदनपुर की यात्रा अशक्य जान उन्होने उसी के समान मूर्ति का निर्माण करवा कर श्रवणबेलगोला मे उसे स्थापित किया।

भुजबली शतक नामक १६ वी सदी के लिखे हुए एक काव्य मे भी इसी प्रकार का वर्णन कुछ हेर-फेर के साथ पाया जाता है।

मूर्ति का निर्माण होने के पश्चात् उसके अभिषेक की तैयारी की गयी। मगर जितना भी दूध चामुण्डराय ने अभिषेक के लिए इकट्ठा करवाया था, वह सारा दूध मूर्ति पर डाल देने पर भी जघा से नीचे का स्नान नही हो सका। तब चामुण्डराय ने घबरा कर अपने गुरु आचार्य अजिनसेन से सलाह ली। आचार्य ने उन्हें बतलाया कि एक वृद्धा स्त्री अपनी गुल्लकाई मे थोडा सा दूध लाई है, उससे स्नान कराओ। चामुण्डराय ने तब उस थोडे से दूध की धारा गोम्मटेश्वर के मस्तक पर छोडी तो सारी मूर्ति का स्नान हो गया। और दूध धरती पर बह निकला।

इस वृद्धा स्त्री का नाम इसी समय से 'गुल्लकायज्जी' पड गया। इसके पश्चात् चामुण्डराय ने पहाडी के नीचे एक नगर बसाया और मूर्ति के लिए ६८ ग्राम नाम मे दिये। इस नगर का नामकरण उस वृद्धा स्त्री के नाम पर 'बेलगोल' रखा गया और उस वृद्धा स्त्री गुल्लकायज्जी की एक मूर्ति भी स्थापित की गयी।

इस मूर्ति का अभिषेक १२ वर्षों के अन्तर से होता है। जो बडी धूमधाम, क्रिया काण्ड और भारी द्रव्य व्यय के साथ मनाया जाता है। इसे महाभिषक भी कहते हैं। इस महाभिषेक का सबसे प्राचीन उल्लेख शक-सम्वत् १३२० के एक लेख मे पाया जाता है।

इसके बाद सन् १८२५ ई० के लगभग मैसूर-नरेश कृष्णराज ओडायर तृतीय के द्वारा कराये हुए महाभिषेक का उल्लेख एक शिलालेख मे पाया जाता है। इसके बाद समय-समय पर कई महाभिषेक होते रहते हैं जिनमे लाखो दिगम्बर जैन सारे भारतवर्ष से आकर इकट्ठे होते रहते हैं।

सन्दर्भग्रथ—

मैसूर आर्कियालॉजिकल रिपोर्ट
एपी ग्राफिया कर्नाटिका
डॉ० हीरालाल जैन—जैन शिलालेख संग्रह

गोम्मट सार

दिगम्बर जैन साहित्य का एक महान् और बिशाल ग्रथ। जिनकी रचना जैनाचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने ईसा की दशवी सदी मे की।

इस ग्र थ के जीव काण्ड, कर्म काण्ड आदि कई भाग हैं। जैन धर्म के जीव सिद्धान्त और कर्म सिद्धात की इस ग्र थ मे विशद आलोचना की गई है। यह ग्रथ जैनियो के सुप्रसिद्ध ग्रथ धवल-सिद्धात से सग्रहीत किया गया है। गगवश के राजा 'राचमल चतुर्थ' के मत्री चामुण्डराय की प्रेरणा से नेमिचद्र सिद्धात चक्रवर्ती ने इस ग्र थ की रचना की थी।

गोरखनाथ

नाथ योगी सम्प्रदाय के एक सुप्रसिद्ध सिद्ध। जिनका समय ईसाकी दसवी से ग्यारहवी सदी के बीच माना जाता है।

गुरु गोरखनाथ नाथ-योगी सम्प्रदाय के सर्वप्रधान नेता थे। और इस सम्प्रदाय को सगठित करने और सुव्यवस्थित रूप देने का श्रेय इन्ही को प्राप्त है। अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिए इन्होंने समस्त भारत की, नैपाल की

और कश्मीर की लम्बी-लम्बी यात्राएँ कीं। और कई स्थानों पर अपने केन्द्र स्थापित किए। इन केन्द्रों में १२ केन्द्र अब भी प्रसिद्ध हैं। जिनके नाम हैं—

(१) उड़ीसा स्थित भुवनेश्वर का सत्यनाथ पन्थ (२) कच्छ का धमनाथ पन्थ (३) गंगा सागर के निकट का कपिलानी पन्थ (४) गोरखपुर का रामनाथ पन्थ (५) पञ्जाब में झेलम जिले के अन्तर्गत गोरख टीकाका नटमणानाथ पन्थ (६) पुष्कर के पास रात हूँगा स्थान का वैराग्य पंथ (७) जोधपुर के महामन्दिर का मानमाथी पन्थ (८) बंगाल में दिनाजपुर जिले के गोरखकुई का आई पन्थ (९) पञ्जाब के मुल्तानपुर का गंगानाथ पन्थ (१०) अम्बाले का ध्वजनाथ पन्थ (११) जोहर का पागल पन्थ और (१२) रावलपिण्डी का नायनाथ पन्थ हैं।

उपर्युक्त १२ पन्थों के अतिरिक्त ९ नाथों के नाम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। इन नव नाथोंमें पूरन भगत भर्तृ हरि, गोपीचन्द आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिनके सम्बन्ध में अनेक रहस्यमय कथाएँ भी प्रचलित हैं।

गुरु गोरखनाथ के दार्शनिक सिद्धान्त वेदान्त के सिद्धान्तों से मिलते जुलते हैं। परन्तु वेदान्त की साधना और नाथ पथ की साधना मे बहुत मौलिक अन्तर है। वेदान्त जहाँ ज्ञानमार्ग के द्वारा तत्व-विचार को सर्वोच्च स्थान देता है तथा नित्या नित्य विवेक वैराग्य एवं ब्रह्म स्वरूप में समाहित होने की एकान्तिक चेष्टा को ही सब कुछ समझता है। वहाँ गोरखनाथ का योगदर्शन शारीरिक प्रक्रियाओं के द्वारा प्राणों के नियमन और चित्तवृत्तियों के अवरोधपर भी पूर्ण बल देता है। इनके मत से योग-साधना का मुख्य ध्येय किसी प्रकार चित्तवृत्तियों की बहिर्मुखता और बहुमुखता को अन्तर्मुखता व एकमुखता में परिणित करना है,। जिसके द्वारा साधक के सभी भाव ज्ञान एवं कर्म एकात्मतत्व की ओर ही केन्द्रीभूत हो जावें तथा उसके जीवन में साम्य एवं शान्ति आ जाय।

गुरु गोरखनाथ की गोरखबाणी में बताया है—

अवधू नवघाटी रो कर्म बाइ

बाई बंधिबे चौसठि सन्ध।

काया पलटै अविचल बिध

छाया बिबिरजित निपजै सिध॥

अर्थात्—शरीर के नवों द्वारों को बन्द करके वायु के आने जाने का मार्ग रोक दिया जाय तो उसका व्यापार ६४ सन्धियों में होने लगेगा। इससे निश्चय ही काया-कल्प होगा। और साधक एक ऐसे सिद्ध में परिणित हो जायगा जिसकी छाया नहीं पड़ती।

सारमसारं गहर गम्भीरं गगन उछलिया नादं।

मानिक पाया फेरि लुकाया, झूठा वाद विवादं॥

अर्थात् साधना के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाने पर अनाहत नाद सुनाई पड़ता है, जो समस्त सारतत्वों का भी सार है और गम्भीर से भी गम्भीर है। इससे ब्रह्मानुभूति की स्थिति उपलब्ध होती है। जिसे कोई शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। तभी प्रतीत होने लगता है कि इसके अतिरिक्त सारा वाद-विवाद झूठा है।

गोरखनाथ कहते हैं कि यदि तुम्हें मेरे वचनों में पूरी आस्था हो जाय और तुम उसके अनुसार कर देखो तो पता चलेगा कि बिना खम्भे के आधार पर स्थित आकाश में तेल और बत्ती के बिना ज्ञान का प्रकाश हो गया। और तुम सदा उसके उजाले में विचरण कर रहे हो।

इसी कारण गोरखनाथ प्राणायाम की साधना को पूरा महत्व देते हुए बतलाते हैं कि उन्मनी योग इस प्रकार प्राणा याम के द्वारा ही सिद्ध होता है। इस लिए साधकों को चाहिए कि कोरे अध्ययन में ही लीन न रह कर उक्त सारी बातों को क्रियाओं के द्वारा प्रत्यक्ष कर ले।

उक्त युक्तियों के द्वारा 'शब्द' को प्राप्त कर लेने पर परमात्मा आत्मा मे वैसे ही दिखने लगता है जैसे जल में चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है।

गोरखनाथ के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि पारद की रस क्रिया के द्वारा शरीर सिद्धि और धातु-सिद्धि के ज्ञान का भी उन्होंने प्रचार किया था। मगर उनकी रच नाओं में इस प्रकार के प्रयोगों का उल्लेख बहुत कम पाया पाया जाता है।

इस प्रकार गुरु गोरखनाथ के द्वारा निर्विघ्न निर्गुण व निराकार की उपासना भक्ति व प्रेम का आधार पाकर और भी लोकप्रिय बन गयी।

गोरखनाथ के सम्प्रदाय मे आगे चलकर कई लोग 'औघड़' या 'औघड़पन्थी' भी हो गये। ऐसे लोग सम्भवतः पाशुपत

शैवो और कापालिकों से विशेष प्रभावित थे। ऐसे लोगों में मोतीनाथ, दत्तात्रय, और कालूराम के नाम विशेष उल्लेखनीय समझे जाते हैं।

इनकी संस्कृत रचनाओं में अमरौघ-गीता, अमरौघ शासनम्, गोरक्षगीता, गोरक्षसंहिता, योगशास्त्र, गोरख सिद्धासन पद्धति और हिन्दी रचनाओं में ज्ञानोदय बोध, प्राणसंकली, आत्मबोध, मच्छीन्द्र गोरखबोध, गोरख गणेश-गोष्ठी, गोरख वाणी इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

ऐसा कहा जाता है कि नाथयोगी सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक आदिनाथ स्वयं शिव थे। उनके शिष्य मच्छेन्द्रनाथ और जालन्धरनाथ हुए। जालन्धरनाथ के शिष्य कृष्णापाद और मच्छेन्द्रनाथके शिष्य गोरखनाथ हुए। जालन्धरनाथ और कृष्णापाद का सम्बन्ध कापालिक साधना से रहा। और मच्छेन्द्रनाथ और गोरखनाथ नाथ सम्प्रदाय के संस्थापक हुए।

(परशुराम चतुर्वेदी–भारत की सन्त-परम्परा।)

गोर्की (Maxim Gorky)

रूसी साहित्य मे नवीन युग के महान् और अप्रतिम लेखक और उपन्यासकार। जिनका जन्म सन् १८६८ ई० मे और मृत्यु सन् १९३६ ई० मे हुई। इनका असली नाम Alekscy Nikoloyevish, Pyc-hkov (एलेक्सी निकोलेविच पेसकोव) था।

पुश्किन, गोगोल, टालसटाय और चेखव की कृतियो मे मूर्त रूसी साहित्य की मानवतावादी परम्परा को आगे बढ़ाते और विकसित करते हुए महान् रूसी लेखक मैक्सिम गोर्की ने विचारो, भावचित्रों और सौन्दर्य सम्बन्धी सिद्धान्तो की एक नई दुनियाँ का उद्घाटन किया। मानवतावाद का एक नया रूप, एक नया दृष्टिकोण उन्होने पेश किया।

साहित्य की पुरानी परम्पराओं को तोड़ कर एक मौलिक भावना, मौलिक विचार-धारा और मौलिक पृष्ठभूमि के साथ उन्होने वहाँ के साहित्य क्षेत्र मे प्रवेश किया। उन्होंने अपने उपन्यासो मे समाज के शोषण से पीडित किसानो और मजदूरो के चरित्रो का चित्रण किया। मगर ऐसे चरित्रो मे दूसरे लेखको की तरह उन्होने कही भी निराशा, मायूसी, करुणा तथा दुर्दैव के सम्मुख नतमस्तक होने का अकन नही किया। उनके चरित्र जीवन की चुनौती को स्वीकार करते हैं। साहस और आत्मबल के साथ कार्यक्षेत्र मे बढ़ते है। अपनी कठिनाइयो को दूर करने के लिए न वे किसी के सामने हाथ पसारते हैं और न आत्मसमर्पण करते है।

सन् १९०६ ई० मे उनका अमर उपन्यास "मा" प्रकाशित हुआ। विश्व-साहित्य मे पहली बार इस ग्रंथ मे क्रान्तिकारी संघर्ष और क्रान्तिकारी मजदूरो का व्यापक चित्र प्रस्तुत किया गया। उसमे उन्होने दिखाया कि केवल वे ही लोग, जो जनता के साथ घनिष्टरूप मे गुथे हुए होते हैं और अपने कर्तव्य के प्रति असीम निष्ठा का परिचय देते हैं—जनता को विजय की ओर ले जा सकते है।

दुनियाँ की सभी भाषाओ मे 'माँ' का अनुवाद किया गया। सभी देशो के मजदूरो के लिए 'माँ' एक प्रिय पुस्तक बन गयी। इसके बाद विश्व-साहित्य के विकास मे गोर्की की कृतियो ने धुरी का स्थान ग्रहण कर लिया।

उपन्यासो के सिवा कविता के क्षेत्र मे और कहानियो के क्षेत्र मे भी गोर्की ने बहुत सफलता प्राप्त की। उनकी 'लडकी और मौत' नामक कविता, पहली कविता थी, जो सन् १८९२ मे प्रकाशित हुई थी। इस कविता मे उन्होने जीने तथा संघर्ष करने के संकल्प को ऊँचा उठाया।

इस प्रकार गोर्की ने मजदूर वर्ग के जीवन की व्याख्या करने मे रूसी साहित्य को नया मोड दिया। उनके द्वारा किया हुआ प्रकृति का चित्रण भी पुराने लेखको के प्रकृति चित्रण से एक दम भिन्न, बिलकुल वास्तविक और स्वाभाविक है।

इस प्रकार इस महान रूसी लेखक ने रूसी साहित्य के अन्दर एक नये युग का प्रादुर्भाव हुआ।

गोरखपुर

उत्तर प्रदेश के उत्तर पूर्वी भाग का एक जिला और शहर। इसके उत्तर मे नैपाल राज्य, पूर्व में सारन और चम्पारन जिला, दक्षिण मे घाघरा नदी तथा पश्चिम मे बस्ती जिला है।

गोरखपुर शहर का नामकरण सुप्रसिद्ध सिद्ध गोरखनाथ के नाम पर किया गया था। बाबा गोरखनाथ का मन्दिर जिसपर इस नगर का नाम आधारित है, नगर के विकास का मुख्य केन्द्र रहा है।

गोरखपुर का नामकरण सन् १४०० के करीब हुआ ऐसा समझा जाता है उस समय के आस पास यह क्षेत्र मझौली वंश और सतासी वंश के राजाओं के अधिकार में था। अकबर महान् के समय में यहाँ पर राजपूत राजाओं का आधिपत्य समाप्त हुआ तथा यह क्षेत्र मुसलमानों का बहुत बड़ा गढ़ बन गया।

सन् १६१० ई० में श्रीनेत राजपूत राजा बसन्तसिंह ने यहाँ पर फिर हिन्दू राज्य की स्थापना की। जो सन् १६८ ई० तक चला। सन् १६८ ई में औरंगजेब ने इस पर फिर अधिकार कर लिया। उसी समय की बनी हुई जामा-मस्जिद अभी विद्यमान है।

सन् १८०१ ई में यह क्षेत्र अंग्रेजों के अधिकार में आया। अंग्रेजी राज्य में आने के पश्चात् गोरखपुर नगर का सर्वतोमुखी विकास हुआ। सन् १८८५ ई० में यहाँ पर रेलवे लाइन प्रारम्भ हुई और बी एन डब्लू० आर० का मुख्य केन्द्र यहाँ पर स्थापित हुआ।

इसी प्रकार सिविललाइन पोलिस लाइन रेलवे कालोनी तथा तरह-तरह के उद्योग-धन्धों से यह नगर चहल-पहल का बड़ा केन्द्र हो गया।

आजकल यह नगर उत्तर-पूर्व रेलवे का बहुत बड़ा जंक्शन और केन्द्र है। यहाँ पर निजी क्षेत्र के आठ और सरकारी क्षेत्र के चार कारखाने हैं। जिनमें ६ से अधिक व्यक्ति काम करते हैं। हाथ-करघा उद्योग का गोरखपुर एक बहुत बड़ा केन्द्र है। यहाँ के हाथ-करघे की कारीगरी बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ एक युनिवर्सिटी दो डिग्री कालेज और बारह माध्य-मिक विद्यालय हैं।

गोरख प्रसाद डॉक्टर

हिन्दी-साहित्य में वैज्ञानिक विषयों के सुप्रसिद्ध लेखक। जिनका जन्म सन् १८९६ ई में गोरखपुर में हुआ और मृत्यु सन् १९६१ ई में काशी के अन्तर्गत गंगाजी में डूब जाने से हुई।

सन् १९१८ ई में काशी-विश्व-विद्यालय से एम एस सी करने के पश्चात् महामना मालवीयजीकी प्रेरणासे इन्होंने एडिनबरा जाकर सन् १९२४ ई में गणित शास्त्र में डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। सन् १९२५ ई० में इलाहाबाद विश्व विद्यालय में गणित विभाग के रीडर नियुक्त हुए और सन् १९५७ ई० तक वहीं काम किया।

दुरूह और जटिल वैज्ञानिक विषयों को सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने में डाक्टर गोरखप्रसाद ने बहुत सफलता प्राप्त की। सन् १९३० में इनका 'फोटोग्राफी' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। जिस पर इन्हें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का मङ्गला प्रसाद-पुरस्कार प्राप्त हुआ।

सन् १९३२ में इनकी 'सौर-परिवार' नामक ज्योतिष-शास्त्र की महत्वपूर्ण रचना प्रकाशित हुई। सन् १९५५ ई० में 'नीहारिकाएँ' और सन् १९५६ ई० में 'भारतीय-ज्योतिष का इतिहास' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुए।

अंग्रेजी भाषा में गणित शास्त्र पर इनकी कई पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित हुईं। सन् १९५७ में विश्वविद्यालय से रिटायर होकर डा० गोरख प्रसाद 'नागरी प्रचारिणी सभा' काशी में 'हिन्दी विश्व-कोश' के एक सम्पादक नियुक्त हुए। मगर सन् १९६१ में नदी-दुर्घटना में इनकी मृत्यु हो गयी।

गोरखा

नैपाल-राज्य के 'गोरखा' नामक जिले के अन्तर्गत बसने वाली एक बहादुर सैनिक जाति।

गोरखा जिला गंडकी नदी के उत्तर-पूर्व में अवस्थित है। कहा जाता है कि एक समय गुरु गोरखनाथ नैपाल में आये थे। जिस स्थान पर रह कर उन्होंने १२ वर्ष तक घोर तपस्या की थी वह स्थान उनके नाम पर 'गोरखा' नाम से प्रसिद्ध हुआ और वहाँ के निवासी भी गोरखनाथ के भक्त होने से गोरखा' नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार गोरखा शब्द का प्रयोग उन सब जातियों और वर्गोंके लिए होता है जो गोरखा प्रदेश में रहती थी।

ईसा की १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण से त्रस्त होकर उदयपुर के गहलोत वंश की एक शाखा उदयपुर से निकल कर नैपाल की पालपा और गोरखा बस्तियों में जाकर बस गयी। और वहाँ पर अपना अधि

ये लोग धीरे धीरे वहाँ के निवासियो के साथ घुल मिल गये। १५ वी, १६वी, और १७वी सदियो मे वर्तमान नैपाल मे किसी सुसगठित राज्य की सत्ता नही थी। छोटे छोटे पहाडी राज्य विद्यमान थे। इनमे गोरखा राज्य सबसे शक्तिशाली था। इस राज्य के राजा 'नर पाल शाह' थे। इनकी कल्पना सारे नैपाल राज्य को एक सगठित रूप देने की थी। उनके जीवन मे यह कल्पना पूरी न हो सकी, मगर उनके पुत्र पृथ्वीनारायण शाह ने गोरखा सेना को नवीन अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित कर निरन्तर युद्धो के पश्चात् सारे नैपाल को एक झडे के नीचे संगठित कर दिया। उन्होंने नैपाल की घाटी और उसके चारो ओर के पार्वत्य प्रदेश मे सुव्यवस्थित गोरखा शासन की स्थापना कर दी।

सन् १७७२ ई० मे राजा पृथ्वीनारायण शाह की मृत्यु हो गयी और सन् १७७७ ई० मे उनके पुत्र प्रताप सिंह भी चल बसे। तब प्रतापसिंह की विधवा रानी राजेन्द्र लक्ष्मी अपने नाबालिग पुत्र रणबहादुर के नाम पर राज्य करने लगी। इस समय गोरखा सेनाओ ने नैपाल के पश्चिम 'सप्त गण्डकी प्रदेश' और पूर्व मे 'सप्त कौशिकी प्रदेश' पर भी विजय प्राप्त कर उसे नैपाल-साम्राज्य मे मिला लिया।

इसके पश्चात् रणबहादुर के सन्यासी हो जाने के कारण उसकी बडी रानी राजराजेश्वरी ने नैपाल की सत्ता अपने हाथ मे सम्भाली।

इस काल मे गोरखा-इतिहासमे अमरसिंह थापा का नाम चमकता हुआ दृष्टिगोचर होता है। यह व्यक्ति बडा बहादुर, राजनीतिज्ञ और योग्य सेनापति था। रानी राजेश्वरीने अमरसिंह थापा को सेना मे उच्च स्थान देकर उसे गढ़वाल को विजय करने का काम सौपा। कुमायूँ पहले ही नैपालके आधीन हो चुका था। अमरसिंह थापाने गढवाल विजयके साथ-साथ सारे हिमाचल प्रदेश को, जिसमे सुकेत, कुल्लू, चम्बा, नूरपुर, बसौली, कांगड़ा इत्यादि शामिल थे विजय प्राप्त की। निस्सन्देह अमगरसिंह थापा एक अत्यन्त योग्य और कुशल सेनापति था। हिमालय के इतने बिशाल प्रदेश को विजय कर नैपाल की अधीनता मे ले आने मे उसे अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई, मगर नैपाल की ओर से सैनिक मदद न मिलनेसे उसकी आगे की योजनाएँ सफल न हो सकी और पञ्जाब के राजा रणजीत सिंह ने उसकी बढ़ती हुई गति को रोक दिया।

उसके बाद अग्रेजो के साथ नैपाल के गोरखा-राज्य का सघर्ष शुरू हुआ। इस सघर्ष मे भी अमरसिंह थापा ने बडी बहादुरी से अग्रेजो का मुकाबला किया। मगर नैपाल दरबार से समय पर पर्याप्त सहायता न मिलने के कारण उसे असफल होना पडा। जिसके परिणाम स्वरूप मई सन् १८१५ ई० मे अग्रेजो के साथ नैपाल की एक अत्यन्त अपमानजनक सन्धि हुई। जिसमे अमरसिंह का जीता हुआ सारा प्रदेश और सिक्किम का राज्य नैपाल के अधिकार से निकल गये और राज्य मे अग्रेज रेजिडेण्ट के रूप मे अग्रेजो का प्रभाव कायम हो गया।

गोरखा-जाति वफादारी और सैनिक बहादुरी के क्षेत्र मे अतुलनीय समझी जाती है। इनकी वफादारी को देख कर अग्रेज सरकार ने भारतवर्ष मे कई गोरखा-रेजिमेंटें तैयार की थी। इन रेजिमेंटों मे करीब ३० हजार गोरखा सैनिक भर्ती हो गये थे। इन गोरखा सैनिको ने समय समय पर कई बार अंग्रेजी सरकार की कई कठिन परिस्थियो मे बडी महत्वपूर्ण सहायता की थी। सन् ५७ के सिपाही विद्रोह के समय मे 'जगबहादुर' ने गोरखा सैन्य की सहायता से ब्रिटिश सल्तनत की रक्षा करने मे बडा महत्वपूर्ण भाग लिया था।

प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के समय मे भी गोरखा सैनिको ने जो बहादुरी बतलाई, वह इतिहास के पृष्ठो पर अङ्कित है।

गोरी-राजवंश

मध्य-एशिया के गोर प्रदेश मे गयासुद्दीन मुहम्मद गोरी के द्वारा स्थापित एक साम्राज्य, जिसने भारत मे भी इसलामी राज्य की स्थापना की। इसका समय सन् ११५६ से १२०७ तक रहा।

मध्य-एशिया मे हिरात से पूर्व और दक्षिण की ओर तथा गजिस्तान और गुजगान के दक्षिण मे जो पहाडी प्रदेश है उसे गोर कहा जाता है। सन् ११५६ मे जब मध्य-एशिया मे सल्जुकी साम्राज्य बिखरने लगा तब आसपास के सब सामन्त स्वतन्त्र होने लगे।

इसी धीगाधींगी मे गोर के सामन्त गयासुद्दीन ने भी गोर मे एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की, और शीघ्र ही

गजनी बामियान तुखारिस्तान खुत्लान तथा चित्राल की पहाड़ियों पर और पश्चिम में हिरात और खुरासान पर भी अधिकार कर लिया। जिसके फलस्वरूप गौरवंश मुस्लिम एशिया के पूर्वी भाग का एकमात्र स्वतन्त्र और सबल राज्य बन हो गया।

गयासुद्दीन ने अपने भाई शहाबुद्दीन को गजनी का शासक बना दिया था। शाहबुद्दीन बड़ा महत्वाकांक्षी और युद्धलोलुप व्यक्ति था। भारत पर विजय करने की उसकी बड़ी आकांक्षा थी। उसने धीरे-धीरे मुलतान और सिंध पर अधिकार कर लिया और सन् ११७८ में उसने गुजरात पर आक्रमण किया। मगर उस लड़ाई मे गुजरात की सेनाओं ने उसे बुरी तरह पराजित किया।

सन् ११९१ में उसने तरावड़ी के मैदान में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान से भयङ्कर युद्ध किया। मगर इस युद्धमें भी पृथ्वीराज ने उसे बुरी तरह पराजित किया। मगर अगले साल फिर उसने पृथ्वीराज पर चढ़ाई की। इस लड़ाई में उसने पृथ्वीराज को पराजित कर पकड़ लिया और बाद में मार डाला। उसके बाद उसने अजमेर को भी जीत लिया और इस क्षेत्र का राज्यपाल गुलाम कुतुबुद्दीन को बना कर गजनी लौट गया।

मगर वह जानता था कि भारत की सबसे बड़ी शक्ति दिल्ली में नहीं कन्नौज में है। इसलिए सन् ११९४ मे उसने कन्नौज के राजा जयचन्द पर आक्रमण कर उसे पराजित किया और भारतवर्ष म एक स्थायी इस्लामी साम्राज्य की नींव डाल दी।

गयासुद्दीन की मृत्यु होने पर सन् १२०३ में शहाबुद्दीन भारत से लौट कर गोर आया। उसके बाद उसे ख्वारिज्मशाह और कराखिताइयों से भयङ्कर युद्ध करना पड़ा। इन लड़ाइयों में उसे भारी पराजय का मुंह देखना पड़ा। उसका सारा साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। सन् १२०६ में वह अपने खेमे में एक गक्खड़ सिपाही के हाथों मारा गया।

इस प्रकार अपने देश में उसका स्थापित किया हुआ साम्राज्य ३ वर्ष में छिन्न भिन्न हो गया। मगर भारत में उसने जिस इस्लामी साम्राज्य की नींव डाली वह कई सदियों तक चलता रहा।

गोलकुण्डा

दक्षिणी भारतवर्ष में हैदराबाद नगर से ५ मील पश्चिम में स्थित एक दुर्ग तथा ध्वस्त नगर।

भारत के प्राचीन दुर्गों में दक्षिण के दुर्गम दुर्ग 'गोलकुण्डा' का अपना विशेष महत्व है। विश्व के सबसे बड़े 'कोहेनूर' हीरे का बाल्यकाल गोलकुण्डा के राजमहल मे ही व्यतीत हुआ।

गोलकुण्डा का दुर्ग समुद्र-तल से २०० फुट की ऊँचाई पर बना हुआ है। १२ वी शताब्दी में इस क्षेत्र पर वारंगल के काकातिय राजवंश का आधिपत्य था। इस वंश के राजा 'प्रताप रुद्रदेव प्रथम' ने एक गड़ेरिए के कहने पर एक पहाड़ी पर, एक छोटे से दुर्ग का निर्माण करवाया और उसका नाम करण उन्होंने गड़ेरिये के नाम पर ही 'गोल्ला कोंडा' रख दिया।

सन् १३६४ में वारंगल के राजा कृष्णदेव ने यह दुर्ग बहमनी-राज्य के मुहम्मद शाह प्रथम को दे दिया। बहमनी राज्य का शासन गोल-कुंडा पर सन् १३६४ से सन् १५१८ तक रहा।

सन् १५१८में मुहम्मद शाह चतुर्थ बहमनीकी मृत्युके बाद उसके तैलंगाना के गवर्नर कुतुब-उल-मुल्क सुल्तान कुली ने बगावत करके बहमनी-राज्य के कई किलों पर अधिकार कर गोलकुण्डा दुर्ग मे अपनी राजधानी स्थापित की।

सुल्तान कुली कुतुबशाह ने इस छोटे से दुर्ग को विशाल किले के रूप में परिणित कर दिया। इस नव निर्माण मे इस वंश के तीन सुल्तानो को करीब ६२ वर्ष का समय लगा। सन् १५८० में मुहम्मद कुली कुतुब शाह ने हैदराबाद को बसा कर वहाँ पर अपनी राजधानी स्थापित की। तब से इस दुर्ग का वैभव फिर कम होने लगा।

गोलकुण्डा का यह विशाल दुर्ग ५ मील के क्षेत्रफल में फैला हुआ था। दुर्गमें ८ शाही दरवाजे तथा ५२ झरोखे थे। दुर्ग की रक्षा करने के लिए ऊँचे-ऊँचे ४८ मिनोरस बने हुए थे इन पर रखी कुतुबशाही तोपें हमेशा गरजा करती थीं।

सन् १६५६ में औरंगजेब ने अब्दुल्ला कुतुबशाह शाह के शासन में इस दुर्ग पर पहली बार आक्रमण किया जिसमें कुतुबशाह ने अपनी पुत्री का विवाह औरंगजेब के लड़के

मुहम्मद सुल्तान के साथ करके किसी प्रकार अपना बचाव किया।

सन् १६८७ मे औरगजेब का दूसरा आक्रमण हुआ। उस वक्त मुगल फौजो ने ८ महीने तक इस दुर्ग पर अपना घेरा डाले रखा। अन्त मे कुतुबशाही फौज के एक सूबेदार को प्रलोभन देकर उसने किले का पूर्वी द्वार खुलवा लिया और सुल्तान को कैद करके दौलतावाद के किले मे बन्द कर दिया। तब से गोलकुण्डा दुर्ग मुगल-साम्राज्य के अधीन हो गया।

दक्षिण के सुप्रसिद्ध सन्त, छत्रपति शिवाजी के धर्मगुरु स्वामी रामदास की कहानी भी इसी दुर्ग से सम्बन्धित बतलाई जाती है। ऐसा कहा जाता है कि सन् १६४७ ई० मे गोलकुडा-राज्य के प्रधान मन्त्री 'मदन्ना' तथा सेनापति 'अकन्ना' बनाये गये। इसी अकन्ना का भानेज 'गोपेन्ना' था। जो बाद मे स्वामी रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गोपेन्ना भद्राचलम् मे मालगुजारी वसूल करने के लिए तहसीलदार बनाया गया था। गोपेन्ना भगवान् राम का परम भक्त था। इस भक्ति के आवेश मे उन्होने सुल्तान से अनुमति लिए बिना ही मालगुजारी के रुपये से भगवान् राम का एक विशाल मन्दिर बनवा डाला। इससे नाराज होकर बादशाह ने उनको गोलकुडा की एक अन्धेरी कोठरी मे बन्द कर दिया। उसी कोठरी मे उनको भगवान् रामचद्रके दर्शन हुए औ रभगवान् ने मनुष्य का रूप धारण कर रामदास का सम्पूर्ण ऋण चुका कर उन्हें कारागार से मुक्त करवाया। आज भी 'भद्राचलम्' मे स्वामी रामदास की स्मृति मे प्रत्येक वर्ष एक मेला लगता हैं, जिसमे दूर-दूर से यात्री आते हैं।

गोलकुडा दुर्ग मे मदन्ना और अकन्ना का बनाया हुआ महाकाली का मन्दिर अभी भी विद्यमान है। प्रत्येक आषाढ़ मास मे हिंदुओ का वहाँ एक विशाल मेला लगता है।

गोलगुम्बज

बीजापुर मे मुहम्मद आदिलशाह के द्वारा बनाया हुआ एक विश्व विख्यात् स्मारक जिसका निर्माण सन् १६२७ ई० से सन् १६५५ ई० तक हुआ।

आदिलशाही युग मे बीजापुर के अन्दर जिन भव्य इमारतो और स्मारको का निर्माण हुआ, उनके सम्बन्ध मे प्रसिद्ध स्थापत्यकलाविज्ञ 'फर्ग्यूसन' ने अपने सुप्रसिद्ध 'इण्डियन ऐड ईस्टर्न आर्किटेक्चर' नामक ग्रथ मे लिखा है कि—

'हिन्दुस्तान मे भव्यता की दृष्टि से ऐसी कोई दूसरी चीज नही, जो बीजापुर के गोलगुम्बज का मुकाबला कर सके तथा वैभवपूर्ण अलङ्करण की दृष्टि से 'इब्राहिम के रौजा' के मुकाबले मे कोई भी चीज दृष्टिगोचर नही होती। कुछ लोगो के विचार मे आगरे का ताजमहल सर्वोपरि माना जाता है। श्वेत सङ्गमरमर और बहुमूल्य पत्थरो से निस्सन्देह ताज की शोभा मे वृद्धि हुई है। साथ ही यमुना के किनारे पर स्थित होने से ताज की परिस्थिति बहुत सुन्दर हो गयी है, मगर ऐसी ही परिस्थितिया यदि 'इब्राहिम के रौजे' को मिली होती तो निश्चय ही वह ताज से अधिक सुदर होता।

बीजापुर का गोल-गुम्बज विश्व विख्यात भारतीय स्मारक है। यहाँ की गूँजती हुई बीथिका ससार के गिने-चुने आश्चर्यों मे से एक है। मुहम्मद आदिलशाह ने इस स्मारक को सन् १६२७ ई० मे बनाना शुरू कियाथा और यह सन् १६५५ई० मे बन कर तैयार हुआ था। गोल गुम्बज एक विशाल वर्ग के ऊपर रखे ऐसे गोलार्ध के आकार की है जिसके चार ओर चार मीनारें खडी हैं। इस विशाल वर्ग का क्षेत्रफल १८३३८ वर्ग गज है। गुम्बज के चारो ओर एक वीथिका बनी हुई है। इस वीथिका की सबसे बडी विशेषता यह है कि गुम्बज मे उच्चारित स्वरो की उसमे तत्काल प्रतिध्वनि सुनाई देती है। गुम्बज के ठीक नीचे तहखाने मे मुहम्मद आदिल शाह और उनकी बगमो की कब्रें बनी हुई हैं।

गोल्ड स्मिथ

अंग्रेजी के एक सुप्रसिद्ध कवि और लेखक, जिनका जन्म सन् १७२८ मे आयर्लेण्ड मे और मृत्यु सन् १७७४ मे हुई।

गोल्डस्मिथ अग्रेजी के ऐसे साहित्यकारो मे थे जो जीवन भर आर्थिक कष्ट और दरिद्रता से पीडित रहे। उनके पिता थोडी तनख्वाह पाने वाले एक कर्मचारी थे और परिवार बडा होने से उनका गुजारा नही होता था। गोल्डस्मिथ ने

इस दरिद्रता से छुटकारा पाने के लिए कई प्रकार के व्यवसाय किये मगर सफलता नहीं मिली।

अन्त में सन् १७३१ में वे लन्दन आये और यहाँ पर उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र को अपनाया। इस क्षेत्र में उनकी प्रतिभा खिल उठी। सन् १७६४ में उनकी 'दी ट्रवलर' नामक कविता प्रकाशित हुई। इस कविता से लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। इसके पश्चात् उनके उपन्यासों ने तथा हास्यरस सम्बन्धी कृतियों ने उनको बहुत लोकप्रिय बना दिया और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उनकी कीर्ति बहुत बढ़ गई। इस नाम में जो भी पैसा उनके पास आता उसे वे मुक्त हस्त से खर्च कर देते और उनका आर्थिक कष्ट ज्यों का त्यों बना रहता। इसी आर्थिक कष्ट के बीच केवल ४६ वर्ष की उम्र में इस महान् लेखक की मृत्यु हो गई।

गोल्डस्मिथ बहुत अच्छे बाँसुरी वादक भी थे और इस बाँसुरी के द्वारा ही वे अपने कठिनाई के क्षणों को मादक बना लेते थे।

इनकी रचनाओं में 'दी विकार ऑफ वेकफील्ड' 'डेजर्टेड विलेज' इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। गोल्डस्मिथ की शैली अत्यन्त सुन्दर मधुर और समाज के पारदर्शी दर्पण की तरह है।

गोल्ड फेडेन

एक यहूदी नाटककार कवि और लेखक जिनका जन्म सन् १८४ ई म और मृत्यु सन् १९ ८ मे हुई।

गोल्ड-फडेन यहूदी-रङ्ग-मञ्च के आधुनिक प्रणेता माने जाते हैं। यहूदियों के बोलचाल की भाषा 'ईडिश' के रङ्गमञ्च की सन् १८७६ ई में रूमानियाँ की जेसी नगरमें इन्होंने स्थापना की। इनके नाटकों मे स्वछन्दता और आधुनिकता की छाप बहुत अधिक रहती थी जिसके परिणाम स्वरूप सरकार ने इनके थियेटर पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसके पश्चात् यह अमेरीका चले गये।

नाटकों के साथ-साथ इनकी कविताएँ भी बहुत लोकप्रिय हुई। इनकी बहुत सी कविताएँ यहूदियों में लोकगीतों की तरह गायी जाती हैं।

गोल्डस्टकर थियोडोर

जर्मनी के यहूदी परिवार में उत्पन्न संस्कृत के एक प्रसिद्ध विद्वान्, जिनका जन्म सन् १८२१ ई० में और मृत्यु सन् १८७२ ई में हुई।

गोल्डस्टकर' संस्कृत में उच्च शिक्षा प्राप्त कर लन्दन के युनिवर्सिटी कालेज में संस्कृत के प्रोफेसर हो गये। गोल्डस्टकर पाणिनीय व्याकरण के योरोप में सबसे बड़े विद्वान् माने जाते थे। इन्होंने 'पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' पर विद्वत्तापूर्ण जर्मन-व्याख्या प्रकाशित की थी।

गोल्डोनी-कार्लो

इटालियन भाषा के एक सुप्रसिद्ध नाटककार, रङ्गमञ्च अभिनेता जिनका जन्म सन १७०७ में और मृत्यु सन् १७९३ में हुई।

गोल्डोनी इटाली के एक सुप्रसिद्ध नाटककार और अभिनेता थे। इन्होंने रङ्गमञ्चके लिए सैकड़ों नाटक और प्रहसनों की रचना की। अपने समय में वे इटाली और फ्रांस के रंगमञ्चीय क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हो गये थे। इन्होंने नाटकों के अन्दर प्रचलित कृत्रिमता और कुरुचि को निकालकर स्वाभाविकता और सुरुचि को स्थापित किया। रंगमञ्च में भी इन्होंने काफी सुधार किया। होटलवाली (लोकान्दिएरा) प्रेमी (इन्नमोराती) इत्यादि इनकी कृतियां बहुत लोकप्रिय हुई।

गोवर्द्धन राम त्रिपाठी

गुजरात के एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार, जिनका जन्म सन् १८५५ ई में नडियाद नगर में हुआ और मृत्यु सन् १९ ७ में हुई।

गोवर्द्धन राम त्रिपाठी बचपन से ही साहित्यिक प्रवृत्ति और त्याग भावना से युक्त व्यक्ति थे और तत्वचिन्तन तथा समाज स्थिति का अध्ययन ही उनके जीवन का प्रिय विषय था। इस कार्य के लिए सन् १८८८ में इन्होंने अपनी तेजी से चलती हुई वकालत को छोड़ दिया।

गोवर्द्धनराम त्रिपाठी की सबसे महान् कृति 'सरस्वतीचंद्र' नामक उपन्यास है जो इन्होंने १४ वर्ष के परिश्रम से सन्

१८८७ से प्रारम्भ कर सन् १९०१ मे पूरा किया। यह महान् ग्रंथ ४ बडे-बडे भागों में विभाजित है। किसी मूल्यवान् रत्न को भिन्न-भिन्न बाजुओं से देखने पर उसमे जिस प्रकार भिन्न २ प्रकार की ज्योति दिखलाई पड़ती है, उसी प्रकार इस ग्रंथ को भी विविध दृष्टि-बिन्दुओ से देखने पर इसमे भिन्न भिन्न विचार-धाराएँ बहती हुई मालूम पडती हैं।

इस ग्रंथ मे लेखक ने अपने जीवन के सारे अनुभवो को उँडेल कर रख दिया है।

इसमे व्यावहारिक, धार्मिक और राजकीय दर्शन पर रामायण, महाभारत और पौराणिक ग्रथो के अध्ययन से प्रकाश डाला गया है और लोककल्याण की भावना से एक 'कल्याण-ग्राम' नामक आदर्श बस्ती के साथ यह उपन्यास समाप्त होता है।

इस प्रकार इस उपन्यास के प्रकाशन ने सारे गुजराती-साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की।

गोवर्धनराम त्रिपाठी की अन्य कृतियो मे 'स्नेह-मुद्रा' नामक काव्य ग्रंथ भी बहुत सुदर समझा जाता है जो सन् १८८९ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त इनकी रचनाओ मे 'दयाराम नो अक्षरदेह' 'लीलावती नी जीवन-कला' तथा 'नवल ग्रंथावली' इत्यादि उल्लेखनीय हैं। 'लीलावती नी जीवन कला' मे उन्होने अपनी स्वर्गीय पुत्री लीलावती के जीवन-चरित्र को बडी सुदरता से अङ्कित किया है।

गोवर्धनाचार्य

'आर्या-सप्तशती' नामक काव्य-ग्रंथ के रचयिता, जिनका समय १२वी सदी मे, बगाल के राजा लक्ष्मणसेन के समकालीन माना जाता है।

गोवर्धनाचार्य की रचित 'आर्या-सप्तशती' प्राकृत भाषा की गाथा-सप्तसती के आधार पर रची हुई एक रचना है। जो जयदेव के गीतगोविंद की तरह शृंगाररस की एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है। जिसमें आधुनिक समय की परिभाषा के अनुसार यत्र-तत्र अश्लीलता का दोष भी आ गया है।

गोविंद राष्ट्रकूट

दक्षिणी भारत के सुप्रसिद्ध राष्ट्रकूट-वश के नरेश। जो गोविन्द प्रथम, गोविन्द द्वीतिय और गोविंद तृतीय के नाम से प्रसिद्ध हुए।

ईसा की ८वी शताब्दी मे वातापि के चालुक्य-राजवश का अन्त होने पर दक्षिण भारतीय साम्राज्य का उत्तराधिकार राष्ट्रकूट-वश को प्राप्त हुआ। इस शाखा का प्रथम, ज्ञात राजा 'दन्ति वर्म्मन' था और दन्तिवर्म्मन के पुत्र इन्द्र प्रथम गोविंद प्रथम और कर्क थे। ये सब वातापी के चालुक्यो के करद सामन्त थे।

इन्द्र प्रथम का पुत्र 'दन्ति दुर्ग' अत्यन्त चतुर, साहसी और महत्वाकाक्षी था। सन् ७४२ के लगभग उसने 'एलोरा' पर अधिकार करके वहाँ पर अपनी राजधानी स्थापित की और सन् ७५२ मे चालुक्य नरेश 'कीर्तिवर्म्मन' को पराजित करके कई उपाधियो के साथ उसने अपने को सम्राट् घोषित किया। 'दन्तिदुर्ग' की मृत्यु के पश्चात् उसका चाचा कृष्ण प्रथम सिंहासन पर बैठा। और उसने सन् ७७३ तक राज्य किया।

गोविन्द द्वितीय - कृष्ण प्रथम की मृत्यु के पश्चात् गोविंद द्वितीय इस वश का राजा हुआ। इसने सन् ७७३ से ७७९ ई० तक राज्य किया। मगर गोविंद द्वितीय अयोग्य और दुराचारी था। इसलिए उसके भाई ध्रुव ने उसको हरा कर राष्ट्रकूट वश की राजगद्दी प्राप्त की। ध्रुव ने अपने साम्राज्य का बहुत विस्तार किया।

गोविन्द तृतीय--ध्रुव के पश्चात् उसका पुत्र गोविंद तृतीय गद्दी पर बैठा। इसने सन् ७९३ से सन् ८१४ ई० तक राज्य किया। गोविंद तृतीय अत्यन्त प्रतापी नरेश था। उसने कई राज्यो को पराजित करके अपने साम्राज्य का विस्तार किया। गङ्ग नरेश को पराजित करके अपने बडे भाई 'कम्ब' को उसने वहाँ का शासन सौंप दिया। उसके पश्चात् 'लाटदेश' को विजय करके अपने छोटे भाई 'इन्द्र' को गुजरात का शासक बनाया। इसी प्रकार मालवा, वेंगी इत्यादि कई नरेशो को पराजित कर अपनी राजधानी को 'एलोरा' और 'मयूरखण्डी' से हटा कर 'मान्यखेट' मे स्थापित की और इस नगरी को एक सुदर और सुदृढ़ महानगरी के रूप मे परिवर्तित

कर लिया। उसने गुर्जर प्रतिहार 'नागभट्ट द्वितीय' को कन्नौज के 'चक्रायुध' को और बंगाल के 'धर्मपाल' पराजित कर उनसे अपनी अधीनता स्वीकार कराई। उत्तरापथ के एक अभियान से लौटते हुए सन् ८०३–४ में जब गोविंद तृतीय नर्मदा तटवर्ती श्री-भवन नामक स्थान में छावनी डालकर पड़ा हुआ था उसी समय उसके पुत्र 'अमोघवर्ष' का जन्म हुआ और उसी समय पल्लव राज्य दन्तिवर्म्मन के आक्रमण का समाचार उसे मिला। तुरत उसने वहाँ जाकर पल्लव राज का दमन किया। सन् ८११ १४ में गोविंद तृतीय की मृत्यु हो गयी।

गोविंद तृतीय इस वंश के महान् नरेशों में से एक था। भारतवर्ष की समस्त शक्तियाँ उसका लोहा मानती थीं। साथ ही वह एक महान् निर्भीक त्यागी विद्वानों का आदर करने वाला और सक्षम समदर्शी नरेश था। शैव-धर्म और जैनधर्म के प्रति भी वह अत्यन्त सहिष्णु और उदार था। सन् ८ २ सन् ८ ७ और सन् ८१२ के उसके दानपत्र प्राप्त हुए हैं। जिनमें उसके द्वारा कई जैन-मन्दिरों और अन्य धर्म-संस्थाओं को दिए गये दानों का उल्लेख किया गया है।

गोविन्द सिंह—गुरु

सिक्ख जातिके दसवें धर्म गुरु। जिनका जन्म सन् १६६६ में पटना में और मृत्यु सन् १७ ८ में नान्देड़ में हुई।

गुरु गोविन्द सिंह, सिक्खों के नौवें गुरु तेगबहादुर के पुत्र थे। गुरु नानक के पश्चात् पांचवें गुरु अर्जुनदेव तक पाँचों गुरु जनताको केवल धार्मिक शिक्षाका ही प्रचार करते थे राजनीति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। मगर गुरु अर्जुनदेव के बलिदान के पश्चात् मुगलों के अत्याचारों से त्रस्त हो सिक्ख-जाति में आ म रक्षा और धर्म रक्षा की भावनाएं जागृत हुईं। और अर्जुनदेव के पुत्र और शिष्य गुरु हरगोबिन्द ने धर्म प्रचार के साथ २ आत्मरक्षा के लिए तलवार का भी सहारा लिया। वे अपने साथ हमेशा दो तलवारें रखते थे। एक तलवार धर्मसत्ता की और दूसरी राजसत्ता की प्रतीक थी।

औरंगजेबके समयमें उसके द्वारा होने वाले अत्याचारों से हिन्दुओं और सिक्खोंमें त्राहि २ मचगई थी। इन्हीं अत्याचारों की परम्परा में नौवें गुरु गुरु तेगबहादुर का बलिदान हुआ। यह देखकर तेगबहादुरके पुत्र और शिष्य दसवें धर्म गुरु गोविन्द सिंह को भयङ्कर कष्ट हुआ। गुरु गोविन्द सिंह बड़ी सूझ बूझ के और दूरदर्शी व्यक्ति थे। उन्होंने मुगलों की इस नीति का दमन करने के लिए स्वयं शस्त्र विद्या का अभ्यास किया और अपने सहयोगियों को भी इसके लिए प्रवृत्त किया। नाहन की पहाड़ियों में ग्यारह वर्षों तक उन्होंने इसके लिए कठोर तपस्या की।

उन्होंने गुरु नानक के तीन सिद्धांतों (१) किरत करना (ईमानदारी की आजीविका) (२) नाम जपना (भगवान् का भजन) और (३) वंड छकना (बाँटकर खाना) में अपनी ओर से तीन नये सिद्धान्तों को जोड़ा। देग (१) (सामुदायिक भोजन) (२) तेग (तलवार) और (३) फतेह ये तीन सिद्धांत और जोड़कर उसे षट सूत्री बना दिया।

सन् १६९९ को गुरु गोविन्द सिंह ने बैसाखी के दिन एक बड़ा उत्सव किया। उत्सव में जब चारों ओर गाना बजाना हो रहा था तब अचानक गुरु गोविन्द सिंह ने नंगी तलवार लेकर भरी संगत में कहा कि " है कोई ऐसा बन्दा जो धर्म के लिए अपना जीवन न्योछावर कर सकता हो।" गुरु गोविन्द सिंह की ऐसी ललकार सुनकर सारी संगत में सन्नाटा छा गया। जब उन्होंने तीसरी बार यही आवाज लगाई तो संगत में से दयाराम नामी आगे बढ़ा और उसने अपना जीवन गुरु को समर्पित किया। गुरु उसे लेकर तम्बू में गये और वहाँ से खून से भरी हुई तलवार लेकर फिर बाहर आये और फिर वही ललकार लगाई। इस बार धर्मदास आगे आगे बढ़ा। उसको भी तम्बू में ले जाकर फिर गुरु बाहर आये। इस प्रकार पांच बलिदानियों को गुरु तम्बू में ले गये। गुरु ने उन पांचों व्यक्तियों की जगह पांच बकरियां काटी थी। और उन्हीं के खून से लथपथ तलवार सभा में दिखाई थी।

इसके बाद गुरु उन पांचों बलिदानियों को लेकर बाहर आये। ये पांचों बलिदानी 'पंच प्यारों' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसी समय से खालसा-सम्प्रदाय की स्थापना हुई। इसके अनुयायी संत सिपाही कहलाने लगे और सबके नाम के आगे दास राय आदि के बदले 'सिंह' लगाया जाने लगा। खालसा लोगों का नारा 'वाह गुरुजी का खालसा वाह गुरुजी की फतेह' बना और 'केश कच्छा कड़ा कंघा

ग्रौर कृपाण ये पाच ककार प्रत्येक सिख के लिए धारण करना ग्रनिवार्य हो गया।

गुरु गोविन्द सिंह की इस बढ़ती हुई सैनिक शक्ति को देखकर ग्रासपास के पहाडी राजा वडे चिंतित हुए। ग्रौरंगजेब भी इनसे सतर्क रहने लगा। सन् १७०१ मे पर्वतीय सामतो ने गुरु गोविंद सिंह के विरुद्ध ग्रानन्दपुर पर चढाई कर दी। मगर इस चढाई मे खालसा लोगो ने उनको हरा दिया। तब इन सामन्तो ने गुरु के विरुद्ध ग्रौरंगजेब से साठ-गाठ की। जिसके फलस्वरुप सन् १७०३-४ मे सरहिन्दके गवर्नर ने इन पर हमला किया। इस हमले मे इन्हें ग्रपना किला (पोण्टा) छोड़ना पडा। इस लडाई मे गुरु गोविन्द सिंह के २ पुत्र पकड़े गये जिन्हें जीते जी दीवार में चुनवा दिया गया।

इसके बाद "चमाकौर" मे फिर तीसरी लडाई हुई। जिसमें केवल ४० खालसा शूरवीरों ने मुगल सेनाका सामना किया। इस लडाईमे इनके बचे हुए दो पुत्र भी मारे गये। सन् १७०६ में मुक्तसर मे फिर चौथी लडाई हुई, इसमे सिक्खो ने मुगलो को करारी पराजय दी। इसके बाद गुरु गोविन्द सिंह दक्षिणी भारत मे नान्देड़ मे जाकर रहने लगे। वही पर एक पठान के हाथों सन् १७०८ मे इनकी मृत्यु हुई। गुरु गोविन्द सिंह का नारा था—"चिड़ियो से मैं वाज उडाऊ तो गुरु गोविंद कहलाऊँ।" गुरु गोविंद की मृत्यु के पश्चात् उनके-शिष्य बन्दा वैरागी ने मुगलो से कड़ा मुकाबिला किया।

गुरु गोविन्द सिंह को कविता ग्रौर धर्म साहित्य से बडा प्रेम था। कहा जाता है कि उनके दरवार मे बावन कवि रहा करते थे। इनमें नन्दलाल, हुसैन ग्रली, मंगल, चदन, ईशरदास, कुवर इत्यादि उल्लेखनीय हैं। गुरु गोविंद सिंह की निजी रचनाग्रो मे "दशम ग्रथ" "गोविंद गीता" "प्रेम प्रबोध" इत्यादि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

गोविन्ददास मालपाणी

हिन्दी-साहित्य के एक सुप्रसिद्ध लेखक, कांग्रेसी नेता, हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध समर्थक, जिनका जन्म सन् १८९६ ई० मे जवलपुर मे हुग्रा।

सेठ गोविंददासका जन्म ऐसे माहेश्वरी परिवारमे हुग्रा था जो ग्रपनी सम्पन्नता, उदारता ग्रौर रईसी के लिए सारे भारत वर्ष मे प्रसिद्ध था। इनकी फर्म भारतवर्ष की सुप्रसिद्ध फर्मों मे एक गिनी जाती थी।

इनके दादा का नाम राजा गोकुलदास था, जो सारे मध्यप्रदेश के नामाकित व्यक्ति थे। जब सेठ गोविंददास देश-भक्ति की तरगमे सन् १९२० मे भारतीय स्वतन्त्रता-ग्रान्दोलन में सम्मिलित हो गये, उस समय इनके राजभक्त परिवार से इनका गहरा मतभेद हो गया। उस मतभेद के कारण इनको ग्रपनी बहुत सी सम्पत्ति ग्रौर जायदाद से वचित होना पड़ा। जिसे इन्होंने हँसते-हँसते स्वीकार किया।

सार्वजनिक जीवन मे प्रविष्ट होने के बाद सेठ गोविंददास ने पूरी शक्ति से ग्रपने ग्राप को उस ग्रादोलन मे लगा दिया। ग्रौर इस सिलसिले मे कई बार जेल मे भी गये। जेलों मे ही इन्होंने ग्रपने बहुत से साहित्य का निर्माण किया। देश के स्वाधीन होने के बाद वे लगातार भारतीय ससद के सदस्य बने हुए है। ससद के इस जीवन मे इनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रौर ठोस कार्य राष्ट्रभाषा हिन्दी को उसके उचित ग्रासन पर प्रतिष्ठित करना है। इस कार्य के लिए सेठ गोविंददास ने जिस नैतिक निष्ठा, दृढता ग्रौर साहस का परिचय दिया है, वह उनके जीवन की बहुमूल्य वस्तु हैं। पार्टी के लोगों के विरोध की चिंता न करते हुए ग्रत्यन्त तर्कपूर्ण शैली से उन्होंने हिंदी के पक्ष मे जो काम किया है, वह ससद ने चाहे स्वीकार न किया हो, मगर देश के ग्रधिकांश भाग के विचारपूर्ण व्यक्तियो ने उसको जरूर स्वीकार किया है।

राजनीति की ग्रपेक्षा भी हिंदी साहित्य के क्षेत्र मे सेठ गोविंददास की सेवाएं ग्रधिक महत्वपूर्ण हैं। केवल १२ वर्ष की उम्र से ही इन्होंने लिखना प्रारम्भ कर दिया था। सन् १९१६ मे शारदा-भवन पुस्तकालय की स्थापना, 'श्रीशारदा' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन ग्रौर शारदा-पुस्तकमाला के प्रकाशन से साहित्य क्षेत्र मे इनका व्यवस्थित कार्य प्रारम्भ हुग्रा। वैसे सेठ गोविंददास ने साहित्य के कई क्षेत्रो में ग्रपनी रचनाएँ की, मगर उनकी विशेष ख्याति नाटको के क्षेत्र मे हुई। इनके द्वारा रचित नाटक, तीन विभागो मे विभक्त किये जा सकते हैं। १—पौराणिक, २—ऐतिहासिक, ग्रौर ३—सामाजिक। इनके पौराणिक नाटको में 'कर्तव्य' (१९३६) 'कर्ण' (१९४६) 'स्नेह या स्वर्ग' (१९४६) ऐतिहासिक नाटकों मे 'हर्ष' (१९३५) 'शशिगुप्त' (१९४२)

हैं। इसलिए अधिकाश इतिहासकार इनका समय ईसा की सातवी सदी मे मानते हैं।

गौडपाद की रचनाओ मे उनकी गौडपादी कारिकाएँ भारतीय दर्शन शास्त्र के इतिहास मे बहुत प्रसिद्ध है। इन कारिकाओ को चार भागो मे विभक्त किया गया है पहला विभाग आगम-विभाग है, जो उपनिषदो पर आधारित है। दूसरा विभाग वैतथ्य-विभाग है, जिसमे ससार के मिथ्यात्व को सिद्ध किया गया है। तीसरा अद्वैत-विभाग है, जिसमे वेदात के अद्वैत तत्व का प्रतिपादन किया गया है और चौथा विभाग अलात शान्ति के नाम से विख्यात है।

गौड़-प्रदेश

आधुनिक बगाल का प्राचीन नाम गौड़-प्रदेश था। इस गौड प्रदेश की सीमा मे भुवनेश्वर और उड़ीसा का भी कुछ भाग शामिल था। भिन्न २ राजाओ के समय मे इसकी सीमाए घटती बढती थी।

गौड-प्रदेश की राजधानी कभी गौड-नगर मे, कभी लखनौती में और कभी पाण्डुवा नामक स्थान में रहती थी। पाल राजवश की राजधानी 'गौड' मे और सेन राजवश की राजधानी 'लखनौती' मे थी।

गौड-राज्य का पूरा इतिहास बगाल नाम के साथ इस ग्रथ के अगले अको में देखना चाहिए।

गौतम-न्याय सूत्र

न्याय-दर्शन के सुप्रसिद्ध सस्थापक महर्षि गौतम। जिनके काल निर्णय मे विद्वानो के अन्दर बहुत मतभेद हैं। कुछ इतिहासकारो के मत से इनका समय ईसा से ६ शताब्दी पूर्व और कुछ के मत से ४ शताब्दी पूर्व और कुछ के मत से २ शताब्दी पूर्व समझा जाता है।

इनका दूसरा नाम 'अक्षपाद' भी था। महर्षि गौतम का मूल ग्रथ न्याय-सूत्र है। जिसमे ५ अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय २ अह्निको मे बँटा हुआ है। सारे सूत्रों की सख्या ५३० है।

हिन्दू साहित्य मे महर्षि गौतम न्याय-सूत्र के प्रथम प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका न्याय-सूत्र इस कथन से प्रारम्भ होता है—"प्रत्येक आध्यात्मिक महत्वकाक्षी का चरम लक्ष्य मोक्ष होता है और मोक्ष की यह पूर्णता तथा स्वतंत्रता १६ सिद्धातो को समुचित रूप से समझने से ही सभव हो सकती है। ये १६ सिद्धान्त—१–प्रमाण २–प्रमेय ३–सशय ४–प्रयोजन ५–दृष्टात ६–सिद्धात ७–अवयव ८–तर्क ९–निर्णय १०–वाद ११–जल्प १२ वितण्डा १३–हेत्वाभास १४–छल १५–जाति और १६–निग्रह स्थान है।

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन ४ प्रमाणो से ज्ञान उत्पन्न होता हैं।

सुप्रसिद्ध विद्वान 'श्रीकृष्ण चैतन्य' का कथन है कि :—"न्याय-दर्शन एक यथार्थवादी दर्शन हैं। आदर्शवादियो के समान यह इस बात पर बल नहीं देता कि वाह्य जगत् की वास्तविकता प्रत्यक्षीकरण करने वाले मन पर निर्भर करती है। इसके तर्क सामान्य ज्ञान पर आधारित स्वस्थ विचार है। यद्यपि यह गभीर विचार-पद्धतियो मे चमत्कार पूर्ण शोध-कार्य आरभ करता है। जिसमे प्रत्यक्षीकरण, प्रमाण, सादृश्यता तथा अनुमान के मूल्य स्पष्टता पूर्वक दरसाये गये हैं। यदि अरस्तू ने योरोप मे निगमात्मक तर्क के लिए हेत्वनुमान को आधारभूत सिद्धात के रूप मे स्थापित किया तो भारत मे न्याय-विचारधारा ने एक दम स्वतत्र रूप से इसे प्राप्त किया।

न्याय-दर्शन के लिए वेदो को 'अपौरुषेय' स्वीकार करना सभव न हो सका। न्याय ईश्वर को विश्व का कारण स्वरूप तथा अतिम प्रेरणा-स्रोत के रूप मे स्वीकार करता है। न्याय एक विशुद्ध दर्शन है जो तर्क और परम्परा मे समन्वय स्थापित करने का प्रयास करता है।

वह बतलाता है कि स्पष्ट और स्वस्थ चितन मोक्ष का मार्ग है। मुक्ति का अर्थ अभिलाषाओं के अत्याचार से स्वतत्रता प्राप्त करना है। घृणा, प्रेम और अज्ञानता के कारण मनुष्य मूर्खता पूर्ण क्रियाओ को करने के लिए प्रेरित होता है। प्रेम के अतर्गत वासना, घृणा और लालच सम्मिलित हैं।

इस प्रकार न्याय-दर्शन एक सुविकसितय दर्शन है जो आचार शास्त्र से परिपूर्ण और तर्क-शास्त्र से पूर्णतया सम्बधित है। न्याय-दर्शन ने भारतीय मस्तिष्क को तर्क करने को स्पष्ट विधि प्रदान की।"

न्याय दर्शन के टीकाकारो और व्याख्याकारो मे वात्स्यायन, वाचस्पति मिश्र, उद्योतकर, भारद्वाज, गागेश, विश्वनाथ और दिङ्नाग हैं।

न्याय-दर्शन का आधुनिक आलोचनात्मक अध्ययन करने में बी० एल० आत्रेय, एस० भादुड़ी एस० सी० चटर्जी, ए बी कीथ मू० मिश्र, एच० एन० रैंडल एस० सी० विद्याभूषण तथा डी० एच० एच० इंगलिस के नाम उल्लेखनीय हैं।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

भारतवर्ष के एक मशहूर पुरातत्वज्ञ और सुप्रसिद्ध इतिहासकार। जिनका जन्म सन् १८६३ में सिरोही के 'रोहेड़ा' नामक ग्राम में औदीच्य-जाति में हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। मगर फिर बम्बई जाकर इन्होंने पुरातत्व और लिपियों का विशेष अध्ययन किया। उसके पश्चात् उदयपुर में पुरातत्व-विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए।

सन् १८९४ ई में इन्होंने 'भारत की प्राचीन लिपी माला' का प्रकाशन किया, जिससे इनकी कीर्ति बहुत बढ़ गयी। सन् १९०८ ई में ये 'राजपूताना म्युजियम' के अध्यक्ष नियुक्त हुए। और सन् १९३८ ई तक वहीं काम करते रहे। सन् १९१४ ई० में इनको 'रायबहादुर' की और सन् १९२८ ई में महामहोपाध्याय की सम्मानित उपाधि प्राप्त हुई। सन् १९३७ई० में इन्हें 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि सन् १९३७ में काशी-हिन्दू-विश्व-विद्यालय से डी० लिट् की उपाधि और आगरा विश्व-विद्यालय से 'पुरातत्ववेत्ता' की मान्यता प्राप्त हुई। सन् १९१८ में प्राचीन लिपि माला का नया संस्करण प्रकाशित हुआ। जिस पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने 'मंगला प्रसाद-पारितोषिक' प्रदान किया।

सन् १९ २ में ओझा जी ने कर्नल टॉड के 'राजस्थान के इतिहास' का सम्पादन किया। सन् १९११ से इन्होंने राजपूताने का विशाल इतिहास लिखना आरम्भ किया जो कई खंडों में समाप्त हुआ। यह इतिहास राजपूताने का एक प्रामाणिक इतिहास माना जाता है।

इस प्रकार पुरातत्व और इतिहास दोनों ही क्षेत्रों में श्री ओझा की सेवाएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। उनकी सेवाओं का सम्मान करने के लिए उन्हें 'ओझा-अभिनन्दन-ग्रन्थ' भेंट किया गया।

गोशाल-मंखलीपुत्र

सुप्रसिद्ध आजीवक-सम्प्रदाय के संस्थापक और 'नियति-वाद' नामक सिद्धांत के पुरस्कर्ता। जिनका समय ईसा से पूर्व ६ठीं शताब्दी में था। और जो भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध के समकालीन थे।

गोशाल के आजीवक सम्प्रदाय और नियतिवाद-सिद्धांत का कोई स्वतंत्र ग्रंथ इस समय उपलब्ध नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि सम्राट अशोक के पश्चात् आजीवक सम्प्रदाय का अस्तित्व समाप्त हो गया था। इसी लिए उसका कोई स्वतंत्र साहित्य उपलब्ध नहीं है, पर जैन-साहित्य और बौद्ध-साहित्य में इनके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा हुआ प्राप्त होता है।

जैन-परम्परा के अनुसार गोशाल के पिता का नाम 'मंखली' और माता का नाम 'भद्रा' था। ये दोनों पति-पत्नी तरह तरह के चित्रपट लेकर उनको दिखा कर दिखाते अपनी आजीविका चलाते थे। घूमते-घूमते ये एकबार 'सरवण' नामक ग्राम में पहुंचे वहां की एक गोशाला में इनके एक पुत्र हुआ। गोशाला में जन्म होने के कारण ही इसका नाम 'गोशाल' रखा गया।

युवा होने पर वह घूमता-घूमता एक बार राजगृह नगर में आया। उस समय भगवान् महावीर भी वहीं पर ठहरे हुए थे। गोशाल भगवान महावीर को देखकर उनसे बहुत प्रभावित हुआ और उसने उनसे शिष्य बना लेने की प्रार्थना की। भगवान् महावीर ने मौन रह कर उसकी प्रार्थना का कोई उत्तर नहीं दिया। गोशाल उनके मौन को स्वीकृति समझ कर उनके साथ रहने लगा और साथ रह कर तरह-तरह के उपद्रव करने लगा।

जब भगवान् महावीर छद्मस्थ अवस्था में अपने १ वें चातुर्मास के समय 'सिद्धार्थपुर' में जाते मार्ग में एक तिल के पौधे को देखकर गोशाल ने उनसे पूछा कि 'भगवान्! यह तिल का पौधा फलेगा या नहीं?' भवितव्यता के योग से स्वयं भगवान् महावीर मौन तोड़ कर बोले— हां! यह तिल का पौधा फलेगा और इसके ७ तिल उत्पन्न होंगे।

महावीर की इस बात को असत्य करने के लिए गोशाल ने उस पौधे को उखाड़ कर एक तरफ रख दिया। दैवयोग से

उसी समय वहाँ पर एक गाय निकली। उसके पैर का जोर लगने से वह पौधा वही पर लग गया।

जब महावीर के साथ गौशाल सिद्धार्थपुर से वापस लौटा तो वहाँ आकर पूछा कि भगवान्! आपने तिल के पौधे के सम्बन्ध मे जो बात कही थी—वह तो नष्ट हो गया। महावीर ने कहा कि नही, वह यही हैं और लगा है। तब गौसाल ने उस पौधे को देख कर उसे चीरा और उसमे देखा तो ७ ही दाने नजर आये।

यह देख कर उसी समय गौसाल ने यह सिद्धान्त निश्चित किया कि शरीर का परावर्तन करके जीव वापिस जहाँ के तहाँ उत्पन्न होते हैं। जैन सिद्धान्त जहाँ पर मानता है कि प्राणी कर्म करने में स्वतन्त्र है, मगर उसका फल भोगने मे परतन्त्र है। वहाँ गौशाल ने यह स्थिर कियट कि प्राणी कर्म करने मे भी परतन्त्र है और उसका फल भोगने मे भी परतन्त्र है। एक दुर्दान्त नियति के चक्र मे पडा हुआ, वह उसी की प्रेरणा से कर्म करता है और उसके फल भी भोगता है।

एक राजा ने जब गौसाल से कर्मफल के विषय मे प्रश्न किया तो उसने उत्तर दिया कि—'महाराज! प्राणियो के पाप कर्म के लिए कोई कारण नही है। जीव बिना कारण के ही पापी हो जाते हैं। पुण्य कार्य के लिए भी कोई कारण नहीं। वह बिना कारण के ही पवित्र हो जाते हैं। शक्ति, तेज, बल या पराक्रम—आदि कुछ भी माननीय तत्व नही हैं। अण्डज, पिण्डज, वनस्पति आदि कोई भी प्राणी बलवान, वीर्यवान् या शक्तिवान नही है। नियति के दुर्दान्त चक्र मे पडे हुए उसी की प्रेरणा से ये प्राणी कर्म करते और उसका फल भोगते हैं।'

इसके बाद गौसाल महावीर का साथ छोड़कर श्रावस्ती-नगरी मे जाकर स्वतन्त्र रूप से तपस्या करने लगा। वहाँ पर उसने 'तेजोलेस्या' इत्यादि कई सिद्धियां भी प्राप्त की और 'आजीवक' सम्प्रदाय नाम से एक नवीन सम्प्रदाय की स्थापना की।

इस सम्प्रदाय के उस समय करीब ११ लाख अनुयायी हो गये थे। भगवान् महावीर के साथ इनका सघर्ष और मतभेद चलता रहा।

'ऐन्शेंट सिविलिजेशन' नामक ग्रथ में उसके विद्वान् लेखक ने लिखा है कि–'ईसवी सन् से ६०० वर्ष पूर्व बौद्धो और जैनियो के साथ त्याग धर्म मत वाले जो दूसरे धर्म प्रचलित हुए, उनमे गौशाल के द्वारा स्थापित किया हुआ 'आजीवक' सम्प्रदाय सबसे अधिक लोक,परिचित था।' सम्राट् अशोक ने अपने शिलालेखो मे बौद्धो और जैनियो के साथ इस सम्प्रदाय का भी विवेचन किया है। इससे मालूम होता है कि गौशाल बुद्ध और महावीर का प्रतिस्पर्धी था लेकिन अब उसका चलाया हुआ धर्ममत लोप हो गया है।''

गौहाटी

असम राज्य का कामरूप जिले का प्रसिद्ध शहर, जो पहले आसाम की राजधानी था और अब भी उस प्रदेश का सबसे बडा नगर है। इसका इतिहास बहुत प्राचीन है।

गौहाटी प्राचीन युग मे प्रागज्योतिषपुर के नाम से प्रसिद्ध था। महाभारत काल मे यहाँ का राजा भगदत्त था।

मन्दसौर के एक स्तम्भलेख से पता चलता है कि मालवा के राजा यशोधर्मन के सामने ब्रह्मपुत्र के राजाओ ने आत्म-समर्पण किया था। एक दूसरे लेख से पता चलता है कि मालवा के राजा महासेन गुप्त ने कामरूप के राजा सुस्थिर वर्मन को हराया था और मालवा के राजा देवगुप्त ने सातवी सदी मे कामरूप के राजा भास्कर वर्मन के विरुद्ध गौड प्रदेश के राजा शशाङ्क से मित्रता भी कर ली थी जिसके प्रतिवाद स्वरूप भास्कर वर्मन ने कन्नौज के हर्ष से मित्रता की थी। सन् ६४३ मे चीनी यात्री हुएनसग भास्कर वर्मन के यहाँ गया था। इन सब बातो से ऐसा मालूम होता हैं कि छठी, सातवी सदी मे कामरूप मे वर्मन वश के लोग राज्य करते थे। इनके नामो के आगे वर्मन लगा रहता था। और इनका मालवा के राजाओ से वैर रहता था।

नौवी शताब्दी मे बगाल के पाल राजवश ने कामरूप पर अधिकार कर लिया। सन् १२२८ से लेकर १८२५ ई० तक आसाम पर शान जातिकी अहोम शाखा का राज्य रहा। और इसी जातिके नाम पर इस देशका नाम 'आसाम' पडा। बीच मे सोलहवी सदी मे यहाँ पर कूच विहार के कोच राजाओ का अधिकार हो गया था। सत्रहवी सदीके प्रारम्भमे कुछ मुसलमान आक्रमणकारियो ने वहा पर अपना आधिपत्य कर लिया था, मगर सन् १६८१ मे वे यहाँ से निकाल दिये

गये। सन १८२६ में यह स्थान अंग्रेजी हुकूमत में आया। सन १८९७ में यहाँ पर भयंकर भूकम्प आया जिसमें यहाँ का हर एक पक्का मकान ध्वस्त हो गया था।

गौहाटी में कामाख्या देवी का मन्दिर भारत का प्रधान शक्ति पीठ है जो तांत्रिक लोगों का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। सन १५५५ में प्रसिद्ध आक्रमणकारी काला पहाड़ ने इस मन्दिर को तोड़ कर नष्टभ्रष्ट कर दिया था। उसके बाद कूच बिहार के राजा नरनारायण ने इसका फिर से निर्माण करवाया।

गौहाटी आसाम का सब से बड़ा नगर और शिक्षा तथा व्यापार का केन्द्र है। यहाँ पर विश्वविद्यालय हवाई अड्डा और नदी का बन्दरगाह बने हुए हैं।

घड़ी

मनुष्य को समय का ज्ञान कराने वाला एक यंत्र। जिसने सभ्यता के प्रारम्भ से अब तक कई रूपों में अपने आप को परिवर्तित किया।

मानव-जाति के आविर्भाव के साथ ही उसे समय के ज्ञान की आवश्यकता विशेष रूप से महसूस हुई।

घड़ियों का इतिहास देखने से पता लगता है कि सूर्य की धाम से समय का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य ने सबसे पहले धूप घड़ी का आविष्कार किया।

मिस्र की सबसे प्राचीन धूप घड़ी जो इस समय बर्लिन के संग्रहालय में सुरक्षित है ईस्वी सन् से १५५ वर्ष पूर्व की मानी जाती है। चीन में भी ईसा से ११ वर्ष पूर्व धूप घड़ी का आविष्कार हो गया था ऐसा समझा जाता है। भारतवर्ष में भी ईसा से पूर्व धूपघड़ियों का ज्ञान हो चुका था। रोम में सबसे पहली धूप घड़ी ईसा से २६ वर्ष पूर्व स्थापित हो चुकी थी।

मगर रात्रि के समय में बदली के दिनों में धूप-घड़ी से समय का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता था। इसलिए इस कठिनाई को दूर करने के लिए जल घड़ी का आविष्कार हुआ। जल-घड़ी का आविष्कार सबसे पहले चीन में हुआ। वहाँ से मिस्र और यूनान में इसका प्रचार हुआ।

इसके पश्चात् मनुष्य [illegible] आवश्यकता ने उसे यांत्रिक घड़ियों के आविष्कार की ओर प्रेरित किया। यांत्रिक घड़ियों में सबसे पहले दीवाल-घड़ियों का आविष्कार हुआ। इन घड़ियों का सबसे पहले ११ वीं शताब्दी में इटली के अन्दर आविष्कार हुआ ऐसा समझा जाता है।

सन् १३६२ ई० में जर्मनी के 'हेनरी-डी-विक' ने फ्रांस के तत्कालीन सम्राट 'चार्ल्स' के लिए एक बड़ी घण्टा-युक्त घड़ी बनाई जो कि 'पैलेस-दि-जस्टिस' नामक उसके महल की मीनार पर लगाई गयी। उसके अवशेष अभी भी उपलब्ध हैं। ये भारी-भरकम दीवार घड़ियाँ कमानी के जोर से नहीं बल्कि लटकते हुए बाँट के बल से चलती थीं। एक बेलन पर लिपटी रस्सीके निचले सिरे पर भारी बाँट बंधा हुआ रहता था। यह बाँट अपने भारी वजन के कारण धीरे-धीरे नीचे उतरता तो बेलन भी घूमता था और बेलन के सहारे सुइयाँ भी डायल पर घूमती थीं। बाँट की इसी सूझ के ऊपर इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलीलियो ने सन् १५८१ में पेंडुलम् युक्त घड़ी घड़ी का आविष्कार किया। उसके बाद तरह तरह की विशाल घड़ियों का निर्माण हुआ।

लन्दन की 'बिग बेन घड़ी' तो विश्व की आश्चर्यजनक वस्तुओं में से एक है। लन्दन के पार्लियामेंट भवन में लगी हुई इस घड़ी में हाथ से चाभी भरने में पूरे दो घण्टे लगते थे पर सन् १९२० ई० से इसमें मशीन के द्वारा चाभी भरी जाती है।

न्यूयार्क नगर में कोलगेट-कम्पनी के ऊँचे भवन में एक घड़ी लगी हुई है। इस घड़ी में मिनट की सुई १५ फीट लम्बी और घण्टे की सुई १ फीट लम्बी है। रात्रि में प्रकाश होने पर यह घड़ी दूर से दिखाई देती है।

दक्षिण भारत के विशाल नगर हैदराबाद के सालारजंग म्यूजियम के संग्रहालय में पुराने समय की अनेक विचित्र घड़ियाँ संग्रहीत की हुई हैं। एक घड़ी के डायल में झूला पड़ा हुआ है जिसमें बच्चे बैठे झूल रहे हैं। एक ऐसी अद्भुत घड़ी है जिसमें हर एक घण्टे के ५ मिनट पहले उसमें से एक आदमी निकलता है और घण्टा पूरा होते ही उतने घण्टे बजाकर उसी में वापस चला जाता है।

फिलिपीन द्वीप के मैनीला नामक नगर में गिरजाघर की मीनार पर एक अद्भुत घड़ी लगी है। इस घड़ी के साथ ही एक ऐसे सिंह की मूर्ति बनी हुई है जो दोपहर होते ही अपनी पूँछ हिलाने लगता है और साथ ही साथ गरजने लगता है।

इस प्रकार यह घडी सुबह, दोपहर और सायकाल के बाद ३ बार मुर्गे की तरह बाँग भी देती है ।

बडे आकार की घडियो को चलाने के लिए अब बिजली की शक्ति का भी प्रयोग होने लगा है । लीवरपूल के टावर मे लगी हुई एक घडी के डायल का व्यास २५ फुट है । इसके घण्टे और मिनट की सूइयो की लम्बाई १८ फुट है । और पूरी घडी का वजन ५०० मन के करीब है । यह घडी विद्युत शक्ति से चलाई जाती है ।

जमीन पर लिटाई हुई ससार की सबसे बडी घडी दक्षिण अफ्रीका के रैंड एयरोड्रम पर लगी हुई है । इसके डायल का व्यास ३० फुट है । यह घड़ी हवाई जहाज के पाइलेटो को समय का ज्ञान बताने के लिए लगाई गयी है ।

स्विट्जरलैंडके जिनेवा नगर के एक विशाल घण्टाघर पर एक ऐसी घडी लगी हुई है जिसमे जब घण्टा बजता है, तब घडी के डायल के आगे एक सिरे से खिलौने के जानवरो और बच्चो का एक जलूस निकलता है और दूसरे सिरे पर जाकर खतम हो जाता है ।

घड़ी-उद्योग

आधुनिक घडी-उद्योग का प्रारम्भ योरोप मे व्यवस्थित रूप मे १८वी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ । यद्यपि इस उद्योग का प्रारम्भ ग्रेट-ब्रिटेन और फ्रास मे हुआ, मगर इसका पूरा विकास स्विट्जरलैड मे हुआ । थोडे ही समय मे इस उद्योग ने वहाँ पर आशातीत उन्नति की और वहाँ की घडियाँ ससार भर मे प्रचलित हो गयी । स्विटजरलैंड की घडियाँ ठीक समय बतलाने के लिए ससार मे प्रसिद्ध हैं । इस लिए इसे घडियो का देश भी कहा जाता है तरह तरह की छोटेबडे साइज की जेब घडियाँ, हाथ घडियाँ अत्यन्त सुन्दर डिजाइनो मे वहाँ निर्मित होती हैं । स्विट्जरलैंड के न्यु चाटल नामक स्थान पर स्थित स्विस घडी अनुसन्धान-शाला ने हाल मे एक ऐसी अणुशक्ति की घडी बनाई है, जो २७००० वर्षों तक बिल्कुल सही समय बताती रहेगी । इस तमाम अर्से मे अगर उसके समय मे फर्क पडा भी तो वह एक सेकड से अधिक न होगा ।

सयुक्त राज्य अमेरिका मे घडी उद्योग का जन्म १८ वी सदी के अन्त मे एल्-टेरी नामक व्यक्ति के द्वारा हुआ यह लकडी की घडियाँ बनाया करता था । यान्त्रिक विधियो से घडी का निर्माण सबसे पहले उसी ने किया । सेंट टामस और चासी-जेरोम ने इस उद्योग मे लकडी के बदले पीतल के पुर्जों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया । १९वी सदी के अन्त और २० वी सदी के प्रारम्भ मे इस उद्योग का बहुत विस्तार हुआ। विद्युत-घडियो के आविष्कार ने इस उद्योग मे क्राति कर दी अब वहाँ अणुशक्ति की घडियो का निर्माण की योजना चल रही है ।

घण्टा-नाद

मन्दिरो मे और ईसाई गिर्जो मे ऊपर से लटका कर बाधा जाने वाला एक वाद्ययन्त्र, जिसका प्रचार बहुत प्राचीन काल से पूजा स्थानो मे किया जाता है ।

मन्दिरो मे घण्टा बजाने की प्रथा भारत मे बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है । स्कन्द पुराण मे लिखा है कि जो वासुदेव के सामने पूजा के समय घण्टा बजाता है, वह हजारो वर्ष तक देवलोक मे वास करता है और मनोहारिणी अप्सराएँ उसकी सेवा करती हैं । सर्ववाद्यमय घण्टा विष्णु को अतिशय प्रिय है । दूसरे वाद्य यन्त्रो के अभाव मे केवल घण्टा बजाने से ही पूजा सिद्धि होती है ।

मिस्र, प्राचीन यूनान और प्राचीन रोम मे भी हाथ से बजाने योग्य घटा का काफी प्रचार था । मिस्र मे 'ओरिसिस के भोज' नामक उत्सव के समय घण्टा बजा कर सबको सूचना दी जाती थी ।

मगर घण्टा का जैसा विशाल रूप ईसाइयो के गिरजो मे स्थापित हुआ, वैसा दुनियाँ में शायद कही भी नही हुआ ।

सन् ४०० ई० में कैम्पानियाँ के अतंर्गत नौला के विशप पोलिनियास ने सबसे पहले बडे घण्टा का व्यवहार प्रारम्भ किया । विशाल रूप का पहला घण्टा कैम्पानिया में बना इसीलिए गिरजाघरो में टगे हुए बडे घण्टो को कैम्पानिया के नाम पर 'कैम्पेनाइल' कहा जाता है ।

फ्रास मे सन् ५५० मे गिरजाघरो मे घण्टा बँधना चालू हुआ । छठी शताब्दी मे आयर्लैण्ड, स्काटलैण्ड इत्यादि कई देशो मे घण्टो का बजना प्रारम्भ हो चुका था । उस समय के कई घण्टे अभी सुरक्षित रखे हुए हैं ।

ईसा की ग्यारहवीं सदी में 'मारसिल्स' नगर के गिरजा घर को एक बड़ा किसी राजा ने दान में दिया था। इस घण्टे का वजन २९० पौण्ड था। उस समय इस घण्टे ने बड़ी प्रसिद्धि पाई थी। सन् १४ में पारी नगर में 'जैकलिन' नामक एक घण्टा साँचे में ढाला गया था जिसका वजन १५ ० पौण्ड था।

रूस के मास्को नगर में यूरोप का सबसे बड़ा घण्टा ढाला गया था। इसका नाम 'जार कोलोकोल' था इसका निर्माण पन्द्रहवीं सदी में किया गया था। ऐसी किम्वदन्ती है कि मास्को के गिरजाघरों में १७ ९ घण्टे थे। इसमें यह घण्टा इतना भारी था कि उसको हिलाने में २४ आदमी एक साथ लगते थे। इसका वजन ११ मन के करीब था। एक बार यह टूट गया था तब सन् १६५४ में फिर बनाया गया। उसके बाद सन् १७९४ में इसे तोड़ कर इसमें और धातु मिलाकर फिर ढाला गया उसी समय इसका नाम 'जार कोलोकोल' रखा गया। यह घण्टा १८ फुट ३ इंच लम्बा ६ फुट ६ इंच घेरा और २ फुट की मोटाई का था। इसके निर्माण में ९७ पौण्ड खर्च हुए थे और इसका वजन १९८ टन था। दूसरे-दूसरे गिर्जाघरों के घण्टे भी ५ टन से लेकर १८ टन तक के होते थे।

जिस प्रकार भारतवर्ष में मूर्तियाँ स्थापित करते समय विधि विधान के साथ उनकी प्रतिष्ठा की जाती है। उसी प्रकार ईसाइयों में घण्टा बाँधते समय कई प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान होते थे। फिर मनुष्यों की तरह उसका बैप्टाइज्म किया जाता था। ईसाई लोग घण्टा को अत्यन्त पवित्र मानते हैं और उस पर पवित्र धर्मवाक्य खुदवाते थे। मध्य युग के प्रायः सभी घण्टों पर निम्नलिखित शब्द खुदे रहते थे–

Funera plango fulgura frango Sabbata pango Excito lentos dissipo ventos paco cruentos

उस समय के लोगों का विश्वास था कि घण्टानाद से आन्धी तूफान अग्निकाण्ड इत्यादि दैवी विपत्तियाँ रुक जाती हैं। सन् १८५२ में जब माल्टा के उपकूल में भयंकर आँधी आयी थी। तब माल्टा के बिशप ने उस आँधी को रोकने के लिए सब गिरजाघरों में लगातार कई घण्टों तक घण्टानाद करवाया था। सत्रहवीं सदी के पहले तक मरणोन्मुख व्यक्ति के कानों पर घण्टे की आवाज डाली जाती थी यह विश्वास किया जाता था कि उससे मरने वाले की आत्मा पवित्र हो जाती है।

इसके पश्चात् घण्टानाद में से तरह-तरह के सङ्गीत के स्वर निकालने की प्रथा प्रारम्भ हुई। इस प्रथा का जन्म सबसे पहले नैदरलैण्ड में हुआ। इस प्रकार के घण्टे 'कैरिलेन्स' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इंग्लैण्ड में ५९ घण्टों को सुर मिलाकर ऐसे कौशल से रखा गया है कि बजते समय इन घण्टों से तरह-तरह के सुर निकल कर बड़ी मनमोहक ध्वनि पैदा करते हैं। बार्सेल नगर के 'बि-हौसे' नामक प्रासाद के शिखर पर एक ऐसा ही 'कैरिलोन्स' लगा हुआ है। कहा जाता है कि ऐसी सर्वाङ्ग सुंदर और मधुर ध्वनिवाला घण्टा यूरोप में दूसरा नहीं है।

एशिया के दक्षिण पूर्वी देशों में भी घण्टा-नाद का बहुत प्रचार है। बरमा में बहुत से घण्टों में लटकन नहीं रहता। वे हिरन के सींग की हथौड़ी से बजाये जाते हैं। ब्रह्मदेश के करीब करीब सब मन्दिरों में घण्टे लगे हुए हैं। रंगून के 'शुवेदागुन' नामक मन्दिर में सन् १८४२ का ढला हुआ एक घण्टा है जिसका वजन ४२ टन से अधिक है इसकी ऊँचाई ६॥ हाथ है।

चीन के पेकिंग नगर में एक छोटे से मठ में एक घण्टा है जिसका वजन ५३॥ टन है। इस घण्टे पर चीनी भाषा में बौद्ध धर्म का उपदेश और मठ का इतिहास खुदा हुआ है। चीन में और भी कई स्थानों पर बड़े विशाल घण्टे लगे हुए हैं जिनका वजन ५० टन से अधिक है।

घाना (Gold Coast)

पश्चिमी अफ्रीका का समुद्रतटवर्ती देश, जो पहले गोल्ड-कॉस्ट नाम से प्रसिद्ध था और अब 'घाना' के नाम से विख्यात है। इसका क्षेत्रफल ६२१०० वर्गमील और जन-सख्या ६६६७७३० है।

चौथी सदी से लेकर तेरहवीं सदी तक इस क्षेत्र पर नाइजर क्षेत्र के घाना-राजवंश का राज्य था। १४ वी सदी मे सबसे पहले यहाँ पुर्तगाली लोग आये। १७ वी सदी मे अंग्रेज तथा डच व्यापारी इस क्षेत्र से गुलामो को पकड-पकड कर उन्हे मण्डियो मे ले जाकर बेचते थे। उसके बाद यह क्षेत्र धीरे धीरे अंग्रेजी राज्य का एक उपनिवेश बन गया।

दूसरे महायुद्ध के पश्चात् जब दूसरे सब उपनिवेश अंग्रेजो की गुलामी से मुक्त होने लगे, तब सन् १९५१ ई० मे गोल्ड कॉस्ट के अन्दर भी डा० एन्क्रूमा के नेतृत्व मे वहाँ की 'पीपुल्स-पार्टी' ने स्वतन्त्रता का जोरदार आन्दोलन प्रारम्भ किया। उन दिनो एन्क्रूमा का गोल्ड कॉस्ट की जनता पर इतना भारी प्रभाव था कि ब्रिटिश सरकार की नजरबन्दी मे रहते हुए भी 'अकरा' शहर के चुनाव मे उनको २३१२२ मतो मे से २२७८० मत मिले थे। उनकी इस सफलता से प्रभावित होकर ब्रिटिश-गवर्नमेट ने १३ फरवरी सन् १९५१ ई० को उन्हे छोड दिया और मार्च सन् १९५२ मे उन्हे वहाँ का प्रधान मन्त्री बना दिया।

उसके बाद पहली जुलाई सन् १९६० को घाना एक स्वतन्त्र गणराज्यके रूप मे इतिहास के पृष्ठो पर आया। वहाँ के नये विधान मे राष्ट्रपति को सर्वोच्च शक्तियाँ प्रदान की गयी और डाक्टर 'एन्क्रूमा' उस सर्वशक्ति सम्पन्न राष्ट्रपति के पद पर आसीन हुए।

इस पद पर आने के साथ ही, उनमे एक तानाशाह की दुर्दान्त भावनाओ का उदय होना प्रारम्भ हुआ। इसके पहले ही सन् १९५९ मे उन्होने प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे कई ऐसे कानून पास कर दिये थे, जो जनतन्त्रीय परम्परा के विरुद्ध थे। मगर राष्ट्रपति होने के बाद उनका रूप और भी विकृत हो गया।

सन् १९६१ के अक्टूबर महीने मे उन्होने लगभग ५० ऐसे प्रमुख नेताओ को गिरफ्तार किया जो स्वाधीनता-आदोलन मे उनके साथ कन्धे से कन्धा भिडाकर लडे थे, मगर अब वे उनकी तानाशाही को मानने के लिए तैयार नही थे। इनमे डा० 'जे० बी० डैन्काह' का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनकी जेल के अन्दर सन्देहास्पद स्थिति मे मृत्यु हो गयी। और भी डा० एन्क्रूमा से मतभेद रखने वाले कई लोगो को तङ्ग आकर देश से बाहर चला जाना पडा।

जनवरी सन् १९६४ मे डा० एन्क्रूमा ने सविधान मे सशोधन करके 'घाना' को एक पार्टी वाला राज्य घोषित कर दिया जिसके फलस्वरूप पीपुल्प-पार्टी ही घाना की एक मात्र राजनैतिक पार्टी हो गयी। इससे भी अधिक खतरनाक बात यह हुई कि डा० एन्क्रूमा ने एक सशोधन पास करवा कर उच्च न्यायालय के जजो को भी अपनी मरजी से हटाने के अधिकार प्राप्त कर लिए। इस अधिकार से उसने बहुत से जजो को बरखास्त कर दिया और प्रधान सेनापति 'अक्राह' और गुप्तचर विभागके प्रधान 'अमीयाहिया' को भी बरखास्त कर दिया। इधर घाना की प्रमुख फसल 'कोको' के दाम गिर जाने से वहाँ की आर्थिक स्थिति भी बहुत खराब हो गयी।

इन सब बातो से असन्तोष की ज्वाला बडी तेजी से बढ़ने। लगी जिसके परिणाम स्वरूप वहापर एक मुक्ति परिषद की स्थापना हुई और जिस समय डा० एन्क्रूमा वडे ठाट बाट से 'वियेटनाम' मे शान्ति स्थापित करने के लिए 'हनोई' के लिए रवाना हुए। उसी समय को क्रान्तिकारियो ने उचित समझा और फरवरी सन् १९६६ मे एक दिन अचानक सारे ससार को मालूम हुआ कि घाना मे एन्क्रूमा की सरकार उलट दी गयी। डा० एन्क्रूमा और उनके मत्री पदच्युत कर दिये गये।

२४ फरवरी १९६६ को उनकी राजधानी 'अकरा' मे स्थापित उनका आदमकद स्टैच्यू तोड फोड कर नष्ट कर दिया गया। पीपुल्स पार्टी भङ्ग कर दी गयी। राजनैतिक बंदी छोड दिये गये और सेना तथा पोलिस ने सत्ता के अधिकार सम्भाल लिये। विद्यार्थियो ने इस खुशी मे बडे-बडे जलूस निकाले और जनता ने इस तानाशाह के पञ्जे से छूट कर राहत की साँस ली।

घाना का प्रदेश सोना, मैगनीज, हीरा, बाक्साइट इत्यादि खनिज सम्पदा के लिए प्रसिद्ध है। खेती की प्रधान